टेढ़े-मेढ़े रास्ते

संक्षिप्त छात्र-संस्करण

संक्षिप्त छात्र-संस्करण

भगवतीचरण वर्मा

संक्षिप्त छात्र-सस्करण

टेढ़े-मेढ़े रास्ते

पहला खंड

पहला परिच्छेद

दिन और तारीख याद नहीं, और उन्हें याद रखने की कोई आवश्यकता भी नहीं, बात सन् १६३० के मई मास के तीसरे सप्ताह की है।

गरमी ने एकाएक भयानक रूप धारण कर लिया था और थरमामीटर ने बतलाया था कि दिन का टेम्परेचर ११५ तक पहुँच गया है। लू के प्रचंड झोंके चल रहे थे और उन्नाव शहर की सड़कों पर सन्नाटा था। लोगों को घर के बाहर निकलने का साहस न होता था; सूर्य के प्रखर प्रकाश से आँखें झुलसा जाती थीं। उस समय दोपहर के दो बज रहे थे।

पंडित रामनाथ तिवारी अपने कमरे में सोए हुए थे। दरवाजों पर खस की टट्टियाँ लगी थीं जिन पर नौकर हर आधा घंटे बाद पानी छिड़क देता था। पंखा चल रहा था।

पंखा-कुली बाहर बरामदे में बैठा हुआ लू के थपेड़े खा रहा था और पंखा खींच रहा था। तीन घंटे तक लगातार पंखा खींचने के बाद उसे कुछ थकावट मालूम हुई, और उस थकावट पर लू के झुलसा देने वाले थपेड़े भी विजय न पा सके। उसकी आँखें धीरे-धीरे झपने लगीं और हाथ धीरे-धीरे धीमा पड़ने लगा। आँखें झपते-झपते बन्द हो गईं, हाथ धीमा पड़ते-पड़ते रुक गया; और पंखा-कुली सपना देखने लगा।

पंखा बद हो गया और रामनाथ तिवारी की मीठी नींद टूट गई। उन्होंने जोर से आवाज लगाई, "अबे ओ कलुआ के बच्चे—सोने लगा! साले—मारे हंटरों के खाल उधेड़ दूँगा।"

पंडित रामनाथ का इतना कहना था कि पंखा-कुली चौंक पड़ा। उसने अपनी आँखें खोल दीं और उसका हाथ फिर मशीन की भाँति चलने लगा।

पंडित रामनाथ ने करवट बदली, पर उन्हें नींद न आई। लेटे ही लेटे उन्होंने सिरहाने रखे चाँदी के गिलौरीदान से पान खाया, उसके बाद उन्होंने घड़ी देखी। अभी केवल दो बजे थे—केवल दो; और उन्हें कचहरी करनी थी पाँच बजे शाम को। तिवारी जी उठकर बैठ गए। उन्होंने आवाज दी, "कोई है?"

"हाँ, सरकार!" कहता हुआ उनका निजी खिदमतगार रामदीन बगलवाले दालान से निकलकर उनके सामने खड़ा हो गया।

"वह खिड़की खोल दो!" तिवारी जी ने कोने वाली खिड़की की ओर इशारा किया। रामदीन ने खिडकी खोल दी। इसके बाद वह फिर दालान में चला गया।

तिवारी जी ने मेज पर निगाह डाली, उस दिन की डाक पड़ी थी। चश्मे के केस से चश्मा निकालकर लगाते हुए उन्होंने डाक का गड उठा लिया और एक वार आदि से अन्त तक वे डाक को उलट-पुलट गए। दो पत्र उन्होंने व्यग्रता के साथ निकाले, एक पर 'ऑन हिज़ मैजेस्टीज सर्विस' लिखा था और दूसरे के पते पर उमानाथ के हाथ की लिखावट थी। कुछ देर तक यह सोचकर कि पहले कौन-सा पत्र खोला जाय, उन्होंने उमानाथ का पत्र खोला।

उमानाथ तिवारी जी का मंझला लड़का था, बड़े का नाम था दयानाथ और छोटे का प्रभानाथ था। दयानाथ कानपुर में वकालत कर रहा था और प्रभानाथ इलाहाबाद से एम० ए० की परीक्षा देकर घर आ गया था। दो-एक दिन में उसकी परीक्षा का फल भी आने वाला था। उमानाथ दो साल हुए औद्योगिक शिक्षा के लिए जर्मनी गया था। उसका पत्र जापान से आया था जिसमें उसने लिखा था कि वह जून के दूसरे सप्ताह में कलकत्ता में पदार्पण करेगा।

पत्र पढ़कर रामनाथ मुसकराए। एक क्षण के लिए उमानाथ की मूर्ति उनकी आँखों के आगे आ गई। वे उमानाथ पर और भी कुछ सोचना चाहते थे, पर इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली क्योंकि सरकारी पत्र आँख फाड़कर उन्हें देख रहा था। उस पत्र को उन्होंने खोला।

उस पत्र को पढ़कर रामनाथ की मुसकराहट लोप हो गई और उनका मुख गंभीर हो गया। उन्होंने उस पत्र को तीन वार पढ़ा और प्रत्येक बार उनके मुख की गंभीरता बढ़ती ही गई। वह पत्र कलक्टर का था जिसमें कलक्टर ने लिखा था कि रामनाथ के बड़े लड़के दयानाथ ने कॉंग्रेस ज्वाइन कर ली है और सरगर्मी के साथ कॉंग्रेस की गैर-कानूनी कार्रवाइयों में हिस्सा ले रहा है। साथ ही रामनाथ से यह भी कहा गया था कि सरकार रामनाथ के लिहाज से अभी तक दयानाथ के खिलाफ कार्रवाई करने से रुकी हुई है। कलक्टर साहेब ने यह आशा प्रकट की थी कि रामनाथ अपने बड़े पुत्र दयानाथ को गलत मार्ग पर चलने से रोकेंगे।

तिवारी जी ने पत्र मेज पर रख दिया, तकिये के सहारे बैठकर वे सोचने लगे। जितना सोचते थे विचार उतने ही उलझते जाते थे, और अंत में उन विचारों से ऊबकर उन्होंने फिर पान खाया। इसके बाद उन्होंने घड़ी देखी—साढ़े तीन बजे थे।

वे लेट गए और फिर सोचने लगे। जिस समय आँख खुली, साढ़े पाँच बज रहे थे।

पंडित रामनाथ तिवारी अवध के एक छोटे-से ताल्लुकेदार थे। अपनी रियासत वागापुर में न रहकर वे प्रायः उन्नाव में रहते थे और इसके कारण थे। तिवारी जी सभ्य तथा सुसंस्कृत पुरुष थे, उन्हें सभ्य तथा पढ़े-लिखे लोगों का ही साथ पसंद था। ग्रामीण जीवन में विद्वानों के संसर्ग का अभाव था। इस अभाव को उन्होंने उन्नाव आकर दूर किया था। यद्यपि उन्नाव छोटा-सा कस्बा था पर जिला का सदर होने के कारण वहाँ कलक्टर, डिप्टी कलक्टर आदि पढ़े-लिखे अफ़सर रहते थे।

दूसरा कारण था तिवारी जी का दयालु होना। किसानों की हालत वैसे कहीं भी अच्छी नहीं है, पर अवध के किसानों की हालत तो बहुत अधिक करुणाजनक है। ये किसान अपनी-अपनी फरियादें लेकर राजा साहेब, अर्थात् तिवारी जी के पास आते थे, और इनकी शिकायतों को दूर करना तिवारी जी अपना कर्तव्य समझते थे। पर शिकायतों को दूर करने के अर्थ प्रायः हुआ करते थे राज्य को, अर्थात् तिवारी जी को आर्थिक हानि। इस आर्थिक हानि से बचने के लिए किसानों को जिलेदार, मरवराहकार और मैनेजर से निपटने के लिए उनके भाग्य पर छोड़ कर तिवारी जी उन्नाव में आ बसे थे।

तिवारी जी आनरेरी मजिस्ट्रेट थे और किसी का नौकर न होने के कारण, अपनी अदालत वे अपने बंगले में ही करते थे। इसमें सरकार को भी कोई आपत्ति न थी क्योंकि यदि तिवारी जी अपने बंगले में अदालत न करते तो सरकार को कोई इमारत किराए पर लेनी पड़ती, और इसमें उसका खर्च होता।

किसी का नौकर न होने के कारण तिवारी जी की अदालत का समय भी अनिश्चित था। अदालतों का समय प्रायः दस बजे हुआ करता है। हरेक सम्मन पर यही वक्त दिया होता है और देहात से आने वाले लोगों को ठीक दस बजे अदालत में हाजिर होना पड़ता है।

तिवारी जी के बंगले के सामने वाले मैदान में नीम के पेड़ के नीचे मुकदमों में आए हुए लोगों की भीड़ एक बजे से तिवारी जी के दर्शनों का इंतजार कर रही थी। कुछ अपने मुकदमों की बातें कर रहे थे, कुछ भयानक गरमी और उससे भी भयानक लू पर, जिससे उसी दिन तीन आदमी मर चुके थे, टीका-टिप्पणी कर रहे थे और कुछ दबी जबान तिवारी जी को गालियाँ दे रहे थे। तिवारी जी की लाइब्रेरी के कमरे में जो दोपहर बारह बजे से छः बजे शाम तक अदालत का कमरा कहलाता था, पेशकार उस दिन पेश होने वाले मुकदमों की मिसलें को उलट-पुलट रहा था। उसके इर्द-गिर्द खड़े हुए वकीलों के मुहर्रिर पेशकार साहेब की रुपये और अठन्नी से पूजा कर रहे थे।

ठीक छः बजे तिवारी जी अदालत के कमरे में आए। चपरासी खुदाबख्श से उन्होंने कहा, "सत्यनारायण से बोलो कि वह मेरी मोटर लाए!" और फिर

उन्होंने पेशकार से कहा, "आज के सब मुकदमें मुलतवी कर दो, मेरी तबीयत ठीक नहीं, अभी कानपुर जाना है।"

कार कमरे के सामने लग गई, सत्यनारायण ड्राइवर ने आकर सूचना दी। तिवारी जी ने कुछ सोचकर बाहर चलते हुए कहा, "तुम्हें मेरे साथ नहीं चलना है—देखो, प्रभा तैयार हो गया ?"

"सरकार, छोटे कुंवर तो मोटर पर बैठे आपका इंतजार कर रहे हैं !"

"ठीक ! प्रभा ड्राइव कर लेगा, तुम्हारी आज की छुट्टी है !" और तिवारी जी कार पर बैठ गए।

प्रभानाथ स्टियरिंग ह्वील पर बैठा था और रामनाथ पिछली सीट पर बैठे नहीं, लेटे थे। उस समय उनका मुख गंभीर था और उनके मस्तक पर बल पड़े हुए थे। उन्नाव से कानपुर का फासला केवल ग्यारह मील का है, पर पंडित रामनाथ तिवारी को वह फ़ासला ग्यारह सौ मील का मालूम हो रहा था। आंखें खोलकर उन्होंने सड़क की ओर देखा, सड़क पर लगे हुए मील के पत्थर ने उन्हें बतलाया कि वे अभी केवल दो मील आए हैं। झल्लाकर उन्होंने कहा, "कितना धीमे चल रहे हो, प्रभा ! तेज चलो, मुझे जल्दी है !"

प्रभानाथ ने स्पीडोमीटर की ओर देखा, सूई चालीस पर थी। उसने कार की रफ्तार और तेज की, सूई साठ पर पहुंच गई। रामनाथ ने ठंडी सांस ली और फिर आंखें बंद कर लीं।

इस तरह आंखें बंद किए हुए वे करीब दो-तीन मिनट बैठे रहे कि एक झटके से चौंक उठे। "कितना आए हैं ?" उन्होंने अपने चारों तरफ देखते हुए पूछा।

"पांच मील !" प्रभानाथ मुसकराया, "ददुआ, क्या बात है जो आप इतने व्यग्र हो रहे हैं ?"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि प्रभानाथ का मुंह सामने था और रामनाथ उसे न देख सकते थे, फिर भी रामनाथ को मालूम हो गया कि प्रभानाथ मुसकरा रहा है—और शायद उन पर। पुत्र की इस बात पर रामनाथ को हलकी-सी झुंझलाहट आई, और उनका मौन उनकी झुंझलाहट का द्योतक था।

प्रभानाथ ने बात बदली। "ददुआ, साठ मील फी घंटा की रफ्तार से गाड़ी दौड़ रही है, अभी उन्नाव छोड़े कुल सात-आठ मिनट हुए होंगे !"

"एं ! साठ मील फी घण्टा !" कहते हुए पंडित रामनाथ ने अपनी सोने की जेबघड़ी देखी, "अरे—कुल छः मिनट ! गाड़ी धीमी करो, प्रभा !"

लेकिन प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करने के स्थान पर और तेज कर दी—स्पीडोमीटर अब सत्तर दिखला रहा था। पर रामनाथ ने गाड़ी की इस तेजी पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपनी बात कहकर वह फिर सोचने लगे थे।

गंगा के पुल के पास वाले सड़क के मोड़ पर गाड़ी धीमी करते हुए प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ, कहां चलें, बड़के भैया के यहां ?"

रामनाथ चौंक उठे, वे तनकर बैठ गए। फिर उन्होंने अपने चारों ओर

देखा। बायीं ओर गंगा बह रही थी और सामने करीब दो सौ गज, की दूरी पर गंगा का पुल था। उन्होंने कहा, "दया के यहाँ, सीधे और जल्दी-से-जल्दी ! समझे !"

दयानाथ का बँगला सिविल लाइंस में था और वे मशहूर आदमी थे। प्रभानाथ ने देखा कि दयानाथ के बँगले की बरसाती के नीचे तीन-चार कारें खड़ी हैं, इसलिए अपनी कार उसे पोर्टिको से कुछ दूर हटकर लगानी पड़ी। रामनाथ ने कहा, "दया को यहीं बुला लाओ !"

प्रभानाथ गाड़ी से उतरकर बँगले की ओर बढ़ा। वह करीब दस कदम ही गया होगा कि रामनाथ ने आवाज दी, "नहीं—मैं खुद चलूँगा—ठहरो ! तुम मेरे साथ-साथ मेरे पीछे रहोगे।" इतना कहकर रामनाथ कार से उतर पड़े।

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में नगर के प्रमुख कांग्रेसमैनों की बैठक हो रही थी। कमरे के बाहर एक स्वयंसेवक स्टूल पर बैठा हुआ 'झंडा ऊँचा रहे हमारा !' गाने की पहली पंक्ति बड़ी तन्मयता के साथ गा रहा था।

स्वयंसेवक ने स्टूल पर बैठे-ही-बैठे कहा, "वकील साहब से इस समय मुलाकात नहीं हो सकती, कांग्रेस की बैठक हो रही है !"

स्वयंसेवक की बात पर ध्यान न देकर पंडित रामनाथ तिवारी तेजी के साथ दरवाजे की ओर बढ़े। स्वयंसेवक उठ खड़ा हुआ, अपने डंडे को उसने दरवाजे से लगाकर कहा, "आप भीतर नहीं जा सकते। मैंने कहा न, कि सभा हो रही है।"

पंडित रामनाथ तिवारी की आँखों में खून उतर आया। एक टुकड़खोर स्वयंसेवक की यह हिम्मत कि वह बानापुर के ताल्लुकेदार पंडित रामनाथ तिवारी को उनके लड़के के मकान में जाने से रोके। उन्होंने उसी समय एक तमाचा स्वयंसेवक को मारा।

स्वयंसेवक पचीस वर्ष का एक नवयुवक था। पर पैंसठ वर्ष के वृद्ध पंडित रामनाथ तिवारी का तमाचा खाकर उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह जमीन पर बैठ गया। रामनाथ तिवारी ने महान् उग्ररूप धारण करके ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया। प्रभानाथ उनके पीछे था।

३

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में दस आदमी थे, सभी कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता।

नमक-सत्याग्रह आरम्भ होने से दो महीने तक सरकार चुपचाप सब कुछ देखती रही थी, पर अब सरकार ने भी गिरफ्तारियाँ आरम्भ कर दी थीं। इधर कांग्रेस ने भी सरगर्मी के साथ अपना युद्ध-मोरचा जमा रखा था—जोरों के साथ काम चल रहा था।

सन् १९३० के आंदोलन में एक खास बात यह थी कि देश के व्यापारियों ने कांग्रेस का बहुत साथ दिया था। यद्यपि जेल जाने वालों में प्रमुख व्यापारियों की

संख्या नगण्य-सी थी, पर उन्होंने धन से बहुत अधिक सहायता की थी। कानपुर उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक केंद्र है और इसलिए वहाँ भी कांग्रेस का बहुत बड़ा जोर था। दयानाथ के यहाँ जो सभा हो रही थी उसमें अमीर श्रेणी वाले भी काफी तादाद में थे।

कमरे में रामनाथ के प्रवेश करने के साथ ही लोगों की बातचीत बंद हो गई और सबों ने रामनाथ की ओर देखा। अपने पिता को देखते ही दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "अरे ददुआ!" और उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

रामनाथ ने दयानाथ को आशीर्वाद नहीं दिया, क्रोध से उनकी आँखें लाल थीं। उन्होंने एक बार गौर से उस कमरे में बैठे हुए समुदाय को देखा, फिर उन्होंने उन लोगों से कहा, "अपने उस बदतमीज टुकड़खोर वालंटियर को, जिसे आप लोगों ने मेरा अपमान करने के लिए दरवाजे पर बिठला रखा था, सँभालिये। देखिये उसे कुछ चोट-ओट तो नहीं आ गई।"

उत्तर लाला रामकिशोर ने दिया, "आप दयानाथ जी के पिता हैं और उनसे आप सब कुछ कह सकते हैं, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि आप हम लोगों का अपमान क्यों कर रहे हैं!"

लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख व्यापारी थे। उनकी चार मिलें थीं, और इनकमटैक्स तथा सुपरटैक्स में वे सरकार को इतना रुपया देते थे जितने की पंडित रामनाथ तिवारी की निकासी थी। लाला रामकिशोर से पंडित रामनाथ तिवारी भली-भाँति परिचित थे, वे जरा धीमे पड़े। एक खाली कुरसी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "लाला रामकिशोर, मैंने आप लोगों का अपमान किया या आप लोगों ने मेरा अपमान किया, यह तो वह स्वयंसेवक ही बतला सकता है जिसको आपने दरवाजे पर बिठला रखा था, लेकिन मैं इतना जरूर कहूँगा, खास तौर से आपसे कि आप ऐसे शरीफों के लिए यह फकीरों, बागियों और आवारों की संस्था कांग्रेस नहीं है। फिर भी अगर मैंने कोई सख्त बात कह दी हो तो माफी माँगे लेता हूँ।"

अपने पिता के इस व्यवहार के कारण दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था। इस बार उसके बोलने की बारी थी, "ददुआ, मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि एका-एक आप इस बुरी तरह अपनी मनुष्यता पर अपना अधिकार खो बैठेंगे। वह स्वयं-सेवक आपको पहचानता नहीं था, यही उसका और हम लोगों का अपराध था।" कुछ रुककर उसने फिर कहा, "और मेरे अतिथियों का जो अपमान हुआ है उसके लिए आपकी ओर से मैं उनसे माफी माँगे लेता हूँ। अब आप अंदर चलें, जिस काम के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं, वह महत्त्व का है।"

रामनाथ को बिना कुछ कहने का अवसर दिये ही उसने अपने साथियों से कहा, "आप लोग कार्रवाई जारी रखें मुझे अपने पिता जी से कुछ बातें करनी है, तब तक के लिए मैं क्षमा चाहूँगा।" और यह कहकर वह वहाँ से चल पड़ा।

पंडित रामनाथ तिवारी चुपचाप उठ खड़े हुए। उनकी शिष्टता और उनकी अहंमन्यता में उस समय एक भयानक द्वंद्व मचा हुआ था और उस द्वंद्व के कारण वे बेसुध-से हो रहे थे। दयानाथ के साथ रामनाथ और प्रभानाथ ने दयानाथ के शयनगृह में प्रवेश किया।

शयनगृह में दयानाथ की पत्नी राजेश्वरी देवी खादी की धोती पहने हुए तकली पर सूत कात रही थीं। श्वसुर को देखते ही वे उठ खड़ी हुईं और उन्होंने घूँघट काढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने रामनाथ के चरण छुए।

रामनाथ उस समय तक किसी हद तक सुव्यवस्थित हो गए थे। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "सदा सौभाग्यवती रहो, फलो-फूलो।"

राजेश्वरी देवी कमरे के बाहर चली गईं और बरामदे में कमरे के दरवाजे से लगकर खड़ी हो गईं। रामनाथ ने प्रभानाथ की ओर देखा; प्रभानाथ ने अपनी मुसकराहट दबाने का लाख प्रयत्न किया, पर रामनाथ ने उसकी मुसकराहट देख ही ली। कड़े स्वर में तिवारी जी ने कहा, "तुम जाकर अपनी भावज से बातचीत करो—यहाँ रहने की कोई जरूरत नहीं।"

प्रभानाथ की मुसकराहट का कारण था उसका कौतूहल। घर से वह इस आशा के साथ चला था कि वह अपने पिता और अपने बड़े भाई की मजेदार मुठभेड़ देखेगा। वह अपने पिता को जानता था, वह अपने बड़े भाई को भी अच्छी तरह जानता था। पिता पर उसकी ममता थी, बड़े भाई के प्रति उसकी श्रद्धा थी। दोनों ही चरित्रवान तथा अपने-अपने विश्वासों पर दृढ़ आदमी थे। दोनों में ही स्वामित्व का भाव प्रबल था, किसी से दबना दोनों में से एक ने भी नहीं जाना।

प्रभानाथ का मुँह उतर गया, एक मजेदार और दिलचस्प दृश्य को देखने से वह वंचित रह गया। सिर झुकाए हुए वह बाहर निकला। वहाँ उसने अपनी भावज को देखा। राजेश्वरी देवी ने होंठ पर उँगली लगाकर चुप रहने का इशारा किया, बेचारा प्रभानाथ वहाँ से भी निराश चल दिया। आँगन में वह पहुँचा—सामने रसोईघर में महाराज बाहर से आये हुए अतिथियों के लिए नाश्ता तैयार कर रहा था। प्रभानाथ को एकाएक याद हो आया कि उसे रामनाथ की आज्ञा से शाम की चाय छोड़कर ही चला आना पड़ा था। नौकर से एक कुरसी मँगवाकर उसने रसोईघर के सामने डलवा ली, और फिर बैठकर वह चाय पर जुट गया।

प्रभानाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। रामनाथ सोच रहे थे—किस प्रकार बात आरंभ की जाय और दयानाथ रामनाथ की बात की प्रतीक्षा कर रहा था।

रामनाथ ने बात आरंभ की, "तो देख रहा हूँ कि तुम खद्दर-पोश हो गये हो।"

कुछ देर तक अपनी बात का जवाब पाने की प्रतीक्षा के बाद रामनाथ ने

फिर कहा, "और सरगर्मी के साथ कांग्रेस का काम कर रहे हो।"

इस बार भी दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ का स्वर कड़ा हो गया, "बोलते क्यों नहीं ? क्या गूंगे हो गए हो ?"

"इसमें मेरे बोलने की क्या आवश्यकता, सब कुछ तो आप देख ही रहे हैं।" शांत भाव से दयानाथ ने कहा।

दयानाथ के शांत और दृढ़ स्वर ने रामनाथ को उत्तेजित कर दिया। "हां, सब कुछ देख रहा हूं और उससे भी अधिक सुन रहा हूं! जानते हो, तुम मेरे नाम को, मेरे कुल को कलंकित कर रहे हो!"

"मैंने तो इस सब में कलंक की कोई बात नहीं समझी—और न समझने को तैयार हूं!"

रामनाथ ने अपनी जेब से सरकारी पत्र निकालकर दयानाथ के सामने फेंकते हुए कहा, "इस पत्र को देखते हो ? इसके बारे में तुम्हें क्या कहना है ?"

दयानाथ ने पत्र पढ़ा। कुछ सोचकर उसने कहा, "सरकार पुत्र के कामों की जिम्मेदारी पिता पर कैसे रख सकती है और फिर उसने यही कैसे समझ लिया कि मेरी आत्मा पर आपका पूर्ण अधिकार है ?"

रामनाथ इस उत्तर से चौंक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से अपने पुत्र को देखा। दयानाथ की उम्र पैंतीस वर्ष की थी—वह कानपुर नगर के प्रमुख वकीलों में था। पर फिर भी रामनाथ की नजर में दयानाथ न पैंतीस वर्ष का आदमी था और न कानपुर का प्रमुख वकील था। रामनाथ की नजर में दयानाथ एक लड़का था—नका लड़का था—जो उनके सामने नंगा घूमा, जो उनकी टेढ़ी नजर के सामने दुबक जाता था, जिस पर उन्होंने हमेशा शासन ही किया था। अपने अधिकार की उपेक्षा पर पिता को एक धक्का-सा लगा। थोड़ी देर तक वे अवाक्, एकटक दयानाथ को देखते रहे।

और एकाएक मर्माहत पिता का स्थान अपमानित स्वामी ने ले लिया। रामनाथ तनकर खड़े हो गए। उनकी भृकुटियां खिंच गईं, उनके स्वर में ममता के स्थान पर स्वामित्व की कठोरता आ गई, "अगर सरकार ने यह समझा कि तुम्हारी आत्मा पर मेरा पूर्ण अधिकार है तो उसने गलती नहीं की। मैं अपने अधिकार को अच्छी तरह जानता हूं, यह याद रखना।"

बात अधिक न बढ़े, दयानाथ ने इसलिए कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने फिर कहा, "मैं तुमसे कहने आया हूं कि तुम कांग्रेस छोड़ दो। जो मार्ग तुमने अपनाया है वह गलत है, अकल्याणकारी है। तुम उस संस्था में शामिल हो रहे हो जो तुम्हें ही नष्ट कर देने पर तुली हुई है।"

"मुझे नष्ट कर देने पर तुली हुई है ?" दयानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"हां, तुम्हें—मुझे—हम सब लोगों को। इतनी बड़ी और ताकतवर ब्रिटिश सरकार को मिटाने की सोचने वाली संस्था हम जमींदारों को, हम रईसों को छोड़ देगी, यह समझना बहुत बड़ी मूर्खता है।"

दयानाथ ने कहा, "ददुआ, आप क्या कह रहे हैं ? हमारी लड़ाई तो विदेशी सरकार से है—यह लड़ाई स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए है। क्या जमींदार और क्या किसान—हम सब गुलाम हैं। और कांग्रेस हम सब गुलामों की संस्था है, जिसका उद्देश्य देश को विदेशियों के शासन से मुक्त करना है।"

उपेक्षा की मुसकराहट के साथ रामनाथ ने कहा, "तुमने इतना अध्ययन किया, तुमने वकालत पास की लेकिन तुम्हें अक्ल नहीं आई। यह याद रखना कि गुलामी गुलामी ही है, चाहे वह विदेशियों की हो, चाहे वह अपने देश वालों की हो। विदेशियों की गुलामी से लोगों को छुड़ाने की कोशिश करने वाली संस्था देशवासियों की गुलामी में लोगों को बँधे रहने देगी—क्या तुम्हें इस पर यकीन है ?"

"शायद नहीं !" दयानाथ ने कहा।

"शायद नहीं—नहीं; निश्चय नहीं।" रामनाथ हँस पड़े, "और इसीलिए मैं कहता हूँ कि कांग्रेस को छोड़ दो। हम जमींदारों की भलाई कांग्रेस का साथ देने में नहीं है।" यह कहकर रामनाथ बैठ गए। उनके मुख पर विजय का गर्व था, उनके हृदय में सफलता का विश्वास था।

पर रामनाथ की यह प्रसन्नता क्षणिक थी। अभी तक दयानाथ कुछ दबा-सा बात कर रहा था, अब उसने सामना किया। अभी तक वह अपने पिता से बात कर रहा था, अब उसने अपने विपक्षी से बात शुरू की। उसने कुछ थोड़े-से गंभीर स्वर में आरंभ किया, "ददुआ, बात सिद्धान्त की है और इसलिए मेरी बात पर आप बुरा न मानियेगा। मैं कांग्रेस का साथ दे रहा हूँ अपनी गुलामी तोड़ने के लिए। आपका कहना यह है कि दूसरों को गुलाम बनाए रखने के लिए मैं गुलाम बना रहूँ; और मैं अपनी गुलामी तोड़ने पर यदि दूसरे मेरी गुलामी से दूर होते हैं तो उसमें कोई हर्ज नहीं समझता। दूसरों को नष्ट करने के लिए स्वयं नष्ट होने में आपको विश्वास है, और आप चाहते हैं कि मैं भी इस बात पर विश्वास करूँ !"

रामनाथ ने अपने पुत्र को देखा और थोड़ी देर तक वे एकटक देखते रहे। फिर धीरे से उन्होंने कहा, "दूसरों को नष्ट करने के प्रयत्न में तुम अपने को नष्ट कर रहे हो, मैं नहीं। ब्रिटिश सरकार के शासन में तुम्हें कौन-सा दुख है ? कौन-सा अभाव है ? अच्छा खाते हो, अच्छा पहनते हो। जिन्दगी की सभी सहूलियतें तुम्हारे पास हैं। फिर गुलामी कैसी ? और अगर तुम अँगरेजों का शासन नापसद करते हो," रामनाथ का स्वर एकाएक प्रखर हो गया, "तो याद रखना, ये टुकड़-खोर शोहदे तुम्हारे सिर पर अपना पैर रखकर चलेंगे। गुलाम तो हमेशा रहोगे, गुलामी से बच सकना गैर-मुमकिन है। अभी तुम्हें हर तरह से आराम है, सिर्फ कानून की आज्ञा भर मानना है; और बाद में कानून की आज्ञा ही नहीं, इन नीच लोगों के घमंड की चक्की में तुम्हें पिसना पड़ेगा। तुम्हें ये तोड़

दूसरा परिच्छेद

रामनाथ के बाहर जाते ही राजेश्वरी देवी ने कमरे में प्रवेश किया। दयानाथ वैसा ही खड़ा था—मौन, बेसुध। वह क्या सोच रहा था, स्वयं वह यह न जानता था, उसकी आँखों के आगे था एक भयानक शून्य! एक के बाद एक विचार धुँधलेपन से उठकर सूनेपन में लीन हो जाते थे।

अंदर जाकर राजेश्वरी देवी दयानाथ की बगल में खड़ी हो गई। दयानाथ के कंधे पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "क्यों, क्या सोच रहे हो?"

दयानाथ चौंक पड़ा, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई आदमी एक दुखद सपना देखकर चौंक पड़ता हो। उन्होंने अपनी पत्नी को देखते हुए कहा, "कुछ नहीं—योंही···हाँ, चाय तैयार हो गई?"

"हो गई, न जाने कितनी देर हुई, नौकर शायद बाहर ले भी गया होगा। हाँ, तुम्हें यह पागलपन क्यों सवार हो गया?"

"कैसा पागलपन?" दयानाथ ने आश्चर्य से अपनी पत्नी को देखते हुए कहा।

"यही जो ददुआ से इतनी कड़ी बातें कह गए! वे कितने नाराज हो गए हैं!"

दयानाथ ने करुण स्वर में कहा, "हाँ, मुझे अफसोस है कि मुझे इतनी कड़ी बातें कहनी पड़ गई—क्या बताऊँ, मैं विवश हो गया था!"

"फिर अब क्या करोगे?"

"अब से क्या मतलब? मैं समझा नहीं!"

"यही जो ददुआ कह गए हैं कि चौबीस घंटे के अंदर कांग्रेस छोड़ दो।"

दयानाथ मुसकराया, "अब मैं क्या करूँगा? तो इसके माने क्या यह हैं कि तुम मुझे समझती नहीं?" कुछ रुककर दयानाथ ने फिर कहा, "अच्छा, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँगा?"

"मैं क्या जानूँ? मैं तो इतना जानती हूँ कि तुम्हें क्या करना चाहिए!"

"तो फिर वही बताओ!"

"अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए, उनसे क्षमा माँग लेनी चाहिए!"

"और अपनी आत्मा की पुकार की उपेक्षा करनी चाहिए, सत्य का गला घोंट लेना चाहिए, कर्तव्य से विमुख हो जाना चाहिए—यही सब करने को तुम मुझसे कह रही हो!" दयानाथ उठ खड़ा हुआ, वह जोर से हँस पड़ा, "पिता ही नहीं, मेरी पत्नी भी मुझे पाप का रास्ता दिखला रही है। मुझे अपना सहयोग, अपनी सहानुभूति, अपना साहस देने के स्थान पर मेरे सामने बाधा के रूप में उपस्थित हो रही है। यह सब विधि का विधान ही है!"

दयानाथ के मुख पर हाथ रखते हुए राजेश्वरी ने कहा, "ऐसा न कहो—हाथ जोड़ती हूँ! मुझे पाप न लगाओ! मैं तुम्हारे भले के लिए ही यह सब

कह रही हूँ !"

"अपनी भलाई-बुराई मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ !"

"कहाँ समझ रहे हो ? जानते हो, ददुआ वैसे भी उमा बाबू को ज्यादा मानते हैं। ताल्लुका का उत्तराधिकारी वे उमा बाबू को बना देंगे ! इसके बाद क्या होगा ?"

दयानाथ ने कुछ सोचा, "ठीक कहती हो ! उसके बाद मैं कंगाल हो जाऊँगा —तुम यह कहना चाहती हो न ! लेकिन मुझे गरीबी की कोई चिन्ता नहीं ! कोई भय नहीं !"

"और राजेश-व्रजेश ? उनके लिए क्यों नहीं सोचते ?"

"राजेश, व्रजेश और तुम—तुम भी ! हाँ, अगर तुम्हें इस गरीबी से डर लगता है, अगर तुम अपने लड़कों को अपाहिज, लुटेरा और ऐयाश बनाना चाहती हो तो तुम बड़े मजे में इन सबों के साथ ददुआ के यहाँ जा सकती हो—मैं इसमें जरा भी बाधा न डालूँगा।" यह कह दयानाथ कमरे से बाहर चला गया।

२

जिस समय दयानाथ बाहर वाले कमरे में लौटा, नौकर वहाँ बैठे लोगों के सामने चाय का सामान रख रहा था। मार्कंडेय ने मुसकराते हुए कहा, "क्यों याँ—चेहरा क्यों तमतमाया हुआ है ? ददुआ से लड़े या भाभी से ?"

मार्कंडेय दयानाथ का अभिन्न मित्र था और समवयस्क था। वह दयानाथ के साथ बड़ा हुआ था, पढ़ा था और खेला था—रामनाथ के खानदान में वह घर का आदमी समझा जाता था। मार्कंडेय मिश्र के पिता पंडित झगड़ू मिश्र बाना-पुर गांव में केवल चारपाई के साझेदार थे, और वैभव तथा संपदा में पंडित राम-नाथ तिवारी से कहीं नीचे थे। लेकिन मांझगांव का मिश्र होने के कारण वे अपने को चत्तू के तिवारी पंडित रामनाथ से अधिक कुलीन समझते थे और इसलिए वे कभी भी ताल्लुकेदार से नहीं दबे। शायद यही कारण था कि तिवारी जी और मिश्र जी में अधिक नहीं बनती थी।

पर दयानाथ और मार्कंडेय में बहुत अधिक घनिष्ठता थी और उनकी घनिष्ठता को उनके पिता पसंद भी करते थे। इन दोनों की घनिष्ठता से दो संभ्रांत कुलों की शत्रुता का अंत हो रहा था, इसको तिवारी जी और मिश्र जी अच्छी तरह जानते थे, और इस प्रकार प्रसन्न भी थे, यद्यपि स्वयं अपनी-अपनी अहंमन्यता और अकड़ से मजबूर होने के कारण दोनों ही अकसर मुंह-दर-मुंह एक-दूसरे से गाली-गलौज कर लेते थे। मार्कंडेय कानपुर में वकालत करता था।

मजदूर नेता ब्रह्मदत्त ने चाय का प्याला उठाते हुए कहा, "शायद दोनों से।"

दयानाथ ने बैठते हुए कहा, "हाँ, उन दोनों से लड़कर। और उससे भी अधिक अपने से, अपनी कायरता से लड़कर चला आ रहा हूँ !"

मीटिंग समाप्त हो गई और दयानाथ अपने कमरे में अकेला रह गया। दयानाथ के पास अब केवल बीस घंटे थे—दूसरे दिन शाम को छः बजे तक उसे अपना निर्णय दे देना था। वह अपने पिता को अच्छी तरह जानता था—उनके हठ को, उनकी दृढ़ता को, उनके स्वभाव को! दयानाथ के सामने एक महान् समस्या उपस्थित थी—ऐसी समस्या, जिस पर उनका सारा जीवन, सारा भविष्य अवलंबित था। यह उसकी साधना, नैतिकता और धार्मिक बल की परीक्षा का समय था। उसके सामने एक ओर तो थे—सुख, वैभव, निश्चिंतता, घर की शांति और संभवतः मन की भी शांति; और दूसरी ओर था—एक अनन्त द्वंद्व, परिस्थितियों से अनवरत युद्ध, हलचल, सत्य के मार्ग में अगणित बाधाओं का मुकाबला! लेकिन एक दूसरा पहलू भी था। पहले मार्ग में था निस्संदेह जीवन जहाँ एक प्रकार का भयानक सूनापन था, जहाँ पशुता और पाप मानवता को निर्जीव बनाकर छोड़ देते थे और दूसरे मार्ग में गरीबी और त्याग के साथ था एक मानसिक संतोष—अपनी आत्मा की शांति! दयानाथ को इन दोनों के बीच में बीस घंटे के अंदर ही एक को चुनना था, अपना अन्तिम निर्णय देना था। वह बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था। बीस घंटे का समय—और इतना महत्त्वपूर्ण निर्णय! दयानाथ निश्चेष्ट बैठा हुआ सोच रहा था।

उसके ध्यान को राजेश्वरी ने भंग किया। "क्यों जी, इस सड़न की गर्मी में बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? उफ! तुम भी कैसे आदमी हो! चलो, खाना खाकर लेटो चलकर!" और राजेश्वरी ने दयानाथ का हाथ पकड़कर उसे कुर्सी से उठाया।

दयानाथ उठ खड़ा हुआ। चुपचाप वह राजेश्वरी के पीछे-पीछे अपने बँगले की ऊपरवाली छत पर गया। उस समय भी गरम हवा चल रही थी। दयानाथ पलंग पर लेट गया—थका-सा! राजेश्वरी देवी ने पास बैठते हुए कहा, "खाना ले आऊँ! तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ भी तो नहीं!" मुसकराने का प्रयत्न करते हुए दयानाथ ने कहा, "चाय इतनी पी ली है कि अब भूख नहीं रही! तुम खा लो जाकर—मैं बहुत थका हूँ, सोऊँगा।"

"सिर्फ दो पूड़ियाँ दूध के साथ! तुम्हें खानी ही पड़ेंगी!" राजेश्वरी के स्वर में ममता से भरा आग्रह था।

"अच्छी बात है, ले आओ जाकर!"

राजेश्वरी देवी चली गई, दयानाथ फिर सोचने लगा। उसके पलंग के बगल में ही उसके दोनों लड़के राजेश और ब्रजेश सो रहे थे। दयानाथ ने उन्हें देखा, और उसने मन-ही-मन कहा, "मैं खुद तो इस वैभव को छोड़ रहा हूँ, पर क्या इन दो [illegible] को कंगाल बना देना उचित होगा? माना कि यह सुख-वैभव, यह

है। और राजेश्वरी!—राजेश्वरी भी निर्धनता से, कंगाली से, त्याग से घबराती है—राजेश्वरी भी!"

दयानाथ अपनी दृष्टि उन लड़कों से न हटा सका। चाँदनी छिटकी हुई थी, वे दोनों लड़के सपना देख रहे थे। दयानाथ एकटक उन दोनों लड़कों को देख रहा था और मानो उसके अंदर से ही किसी ने उससे कहा, 'लेकिन राजेश्वरी इन लड़कों के कारण ही तो निर्धनता से, इस त्याग से घबराती है। इनके भाग्य को, इनके अधिकार को, इनके वैभव को तुम कुचल रहे हो—तुम इन लड़कों के शत्रु हो! और राजेश्वरी इन लड़कों की जननी है। माता बच्चे की रक्षा करना चाहती है, उन्हें एक लुटेरे से बचाना चाहती है।'

दयानाथ मुसकराया। उसका शोक दूर हो गया था, मनोविज्ञान की एक दिलचस्प समस्या ने उसे सुलझा दिया था—थोड़े-से समय के लिए उसके अंदर वाला तार्किक जाग उठा था।

'और मैं?' दयानाथ की विचारधारा पलटी, 'क्या मैं राजेश्वरी का पति नहीं हूँ? क्या मेरे ऊपर उसकी ममता नहीं है? इन बच्चों को उसकी गोद में मैंने ही तो दिया—उसका जीवन मेरे जीवन से बिलकुल घुल-मिल गया है। अच्छा—पर उसकी ममता अधिक है, मुझ पर या इन बच्चों पर? राजेश्वरी किसका देगी—मेरा, या इन बच्चों का?'

बिजली के पंखे से जो हवा निकल रही थी, वह भी गरम थी। दयानाथ ने को बंद कर दिया। लौटकर वह लेटा नहीं, वह छत पर टहलने लगा। 'लेकिन यह प्रश्न ही क्यों? क्या मैं वास्तव में इन बच्चों का शत्रु हूँ? पिता होने के नाते क्या यह मेरा उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं इन बच्चों के लिए उचित मार्ग निर्धारित करूँ? मैं इन्हें इस वैभव से दूर कर रहा हूँ, इन्हें मनुष्य बना रहा हूँ, मैं इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहता हूँ। क्या इसमें किसी को आपत्ति हो सकती है?'

दयानाथ के इस तर्क पर किसी ने उसी के अंदर से प्रहार किया, 'तुम इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहते हो—तुम झूठ बोल रहे हो। क्या इस वैभव को छोड़ने की बात तुमने स्वयं कभी सोची है? अब जब तुम मजबूर हो रहे हो, तुम आत्म-छलना का सहारा ले रहे हो! तुम्हारे [illegible]

बाकी थे।

दयानाथ ने एक महीना पहले वकालत छोड़ दी थी। बैंक में उसकी कमाई के पाँच हजार रुपये थे। दयानाथ का मासिक खर्च पाँच सौ रुपया महीना था। इस हालत में पाँच हजार रुपए जमा से वह उसी हालत मे दस महीने तक काम चला सकता था। इसके बाद क्या होगा? दयानाथ की समझ मे न आ रहा था। उसे बँगला छोड़ देना चाहिए, उसे कार हटा देना चाहिए, उसे एक साधारण हैसियत के मनुष्य की तरह रहना चाहिए! इसी शहर में ऐसे भी मनुष्य हैं, जो बारह रुपया महीने में बीवी-बच्चों के साथ जिन्दगी बिताते हैं। पर नहीं! बारह रुपया महीने पर जीवित रहना!—उफ! वह तो पशु का जीवन है! नहीं, पचास रुपये में! यह भी असंभव है। सौ रुपये महीने?

हाँ, सौ रुपये महीने मे वह आराम से रह सकता था। पचीस रुपये महीने का मकान, पचीस रुपये महीने घर का खर्च! पंद्रह रुपये महीने में लड़कों की पढ़ाई, पंद्रह रुपये महीने मे कपड़े और मुतफर्रिक खर्च और बीस रुपये महीने जेब-खर्च। और नौकर? पत्नी को जेब-खर्च? मेहमानदारी? सवारी का किराया?—सौ रुपये महीना भी काफी नहीं है। मकान पचीस का नहीं, बीस का; मुतफर्रिक में पंद्रह नहीं, दस; और जेब-खर्च में बीस नहीं, दस। बीस रुपये महीने की बचत···

राजेश्वरी भोजन करके आ गई। उसने दयानाथ के पास जाकर कहा, "कब तक इस तरह टहलते रहोगे? चलो, सोओ भी! चिंता करने की क्या बात?"

दयानाथ ने चौंककर राजेश्वरी को देखा। राजेश्वरी ने फिर कहा, "भला यह भी कोई बात है? तुम अपनी तंदुरुस्ती बरबाद किए देते हो।"

दयानाथ ने करुण स्वर मे कहा, "देखो—मैं जो कुछ करने वाला हूँ, उससे तुम्हें तकलीफ होगी। शायद हम लोगों को यह बँगला छोड़ना पड़े, कार बेचनी पड़े!"

दयानाथ का हाथ पकड़कर खीचते हुए राजेश्वरी ने कहा, "मुझे जरा भी तकलीफ नहीं होगी। मुझको उसी मे सुख है जिसमें तुमको है। अरे, सुख-दुख दोनों ही सहने के लिए तो आदमी पैदा हुआ है।"

दयानाथ ने सतोष की गहरी साँस ली, "राजो—जो कुछ कह रहा हूँ, उसको करने के लिए मैं विवश हूँ।"

सुबह जब दयानाथ सोकर उठा, वह अपने मे एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का, साहस का अनुभव कर रहा था। दिन भर वह कांग्रेस का काम-काज करता रहा; शाम के समय करीब पाँच बजे वह मोटर पर बैठकर उन्नाव की ओर चल पड़ा।

४

जिस समय दयानाथ उन्नाव में अपने पिता के बँगले मे पहुँचा, उस समय

हैं। और राजेश्वरी ! —राजेश्वरी भी निर्धनता से, कंगाली से, त्याग से घबराती है—राजेश्वरी भी !"

दयानाथ अपनी दृष्टि उन लड़कों से न हटा सका। चाँदनी छिटकी हुई थी, वे दोनों लड़के सपना देख रहे थे। दयानाथ एकटक उन दोनों लड़कों को देख रहा था और मानो उसके अंदर से ही किसी ने उससे कहा, 'लेकिन राजेश्वरी इन लड़कों के कारण ही तो निर्धनता से, इस त्याग से घबराती है। इनके भाग्य को, इनके अधिकार को, इनके वैभव को तुम कुचल रहे हो—तुम इन लड़कों के शत्रु हो! और राजेश्वरी इन लड़कों की जननी है। माता बच्चे की रक्षा करना चाहती है, उन्हें एक लुटेरे से बचाना चाहती है।'

दयानाथ मुसकराया। उसका शोक दूर हो गया था, मनोविज्ञान की एक दिलचस्प समस्या ने उसे सुलझा दिया था—थोड़े-से समय के लिए उसके अंदर वाला तार्किक जाग उठा था।

'और मैं ?' दयानाथ की विचारधारा पलटी, 'क्या मैं राजेश्वरी का पति नहीं हूँ ? क्या मेरे ऊपर उसकी ममता नहीं है ? इन बच्चों को उसकी गोद में मैंने ही तो दिया—उसका जीवन मेरे जीवन से बिलकुल घुल-मिल गया है। अच्छा—किस पर उसकी ममता अधिक है, मुझ पर या इन बच्चों पर ? राजेश्वरी किसका साथ देगी—मेरा, या इन बच्चों का ?'

बिजली के पंखे से जो हवा निकल रही थी, वह भी गरम थी। दयानाथ ने पंखे को बंद कर दिया। लौटकर वह लेटा नहीं, वह छत पर टहलने लगा। 'लेकिन यह प्रश्न ही क्यों ? क्या मैं वास्तव में इन बच्चों का शत्रु हूँ ? पिता होने के नाते क्या यह मेरा उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं इन बच्चों के लिए उचित मार्ग निर्धारित करूँ ? मैं इन्हें इस वैभव से दूर कर रहा हूँ, इन्हें मनुष्य बना रहा हूँ, मैं इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहता हूँ। क्या इसमें किसी को आपत्ति हो सकती है ?'

दयानाथ के इस तर्क पर किसी ने उसी के अंदर से प्रहार किया, 'तुम इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहते हो—तुम झूठ बोल रहे हो। क्या इस वैभव को छोड़ने की बात तुमने स्वयं कभी सोची है ? अब जब तुम मजबूर हो रहे हो, तुम आत्म-छलना का सहारा ले रहे हो ! तुम्हारे बच्चे कार पर चढ़ते हैं, बँगले में रहते हैं, अच्छा पहनते हैं और अच्छा खाते हैं। वे कुँवर कहलाते हैं। वे अपने को साधारण जन-समुदाय से पृथक् समझते हैं। फिर तुम किस बल पर कहते हो कि तुम उनको उचित मार्ग पर ले जा रहे हो ?...'

इसी समय राजेश्वरी देवी थाली लेकर छत पर आ गई। दयानाथ ने मन-ही-मन राजेश्वरी को इस समय आ जाने पर धन्यवाद दिया, क्योंकि उसकी विचार-धारा उसे अब असह्य होने लगी थी।

दयानाथ ने खाना खाया, उसके बाद वह फिर टहलने लगा। पर उसके विचारों ने उसका साथ न छोड़ा—ग्यारह बज गए थे। अब केवल उन्नीस घंटे

वादी थे।

दयानाथ ने एक महीना पहले वकालत छोड़ दी थी। बैंक में उसकी कमाई के पाँच हजार रुपये थे। दयानाथ का मासिक खर्च पाँच सौ रुपया महीना था। इस हालत में पाँच हजार रुपए जमा से वह उसी हालत में दस महीने तक काम चला सकता था। इसके बाद क्या होगा? दयानाथ की समझ में न आ रहा था। उसे बँगला छोड़ देना चाहिए, उसे कार हटा देना चाहिए, उसे एक साधारण हैसियत के मनुष्य की तरह रहना चाहिए! इसी शहर में ऐसे भी मनुष्य हैं, जो बारह रुपया महीने में बीवी-बच्चों के साथ ज़िन्दगी बिताते हैं। पर नहीं! बारह रुपया महीने पर जीवित रहना!—उफ! वह तो पशु का जीवन है! नहीं, पचास रुपये में! यह भी असंभव है। सौ रुपये महीने?

हाँ, सौ रुपये महीने में वह आराम से रह सकता था। पचीस रुपये महीने का मकान, पचीस रुपये महीने घर का खर्च! पद्रह रुपये महीने में लड़कों की पढ़ाई, पंद्रह रुपये महीने में कपड़े और मुतफर्रिक खर्च और बीस रुपये महीने जेब-खर्च। और नौकर? पत्नी को जेब-खर्च? मेहमानदारी? सवारी का किराया?—सौ रुपये महीना भी काफी नहीं है। मकान पचीस का नहीं, बीस का; मुतफर्रिक में पंद्रह नहीं, दस; और जेब-खर्च में बीस नहीं, दस। बीस रुपये महीने की बचत···

राजेश्वरी भोजन करके आ गई। उसने दयानाथ के पास जाकर कहा, "कब तक इस तरह टहलते रहोगे? चलो, सोओ भी! चिंता करने की क्या बात?"

दयानाथ ने चौंककर राजेश्वरी को देखा। राजेश्वरी ने फिर कहा, "भला यह भी कोई बात है? तुम अपनी तंदुरुस्ती बरबाद किए देते हो।"

दयानाथ ने करुण स्वर में कहा, "देखो—मैं जो कुछ करने वाला हूँ, उससे तुम्हें तकलीफ होगी। शायद हम लोगों को यह बँगला छोड़ना पड़े, कार बेचनी पड़े!"

दयानाथ का हाथ पकड़कर खींचते हुए राजेश्वरी ने कहा, "मुझे जरा भी तकलीफ नहीं होगी। मुझको उसी में सुख है जिसमें तुमको है। अरे, सुख-दुख दोनों ही सहने के लिए तो आदमी पैदा हुआ है।"

दयानाथ ने संतोष की गहरी साँस ली, "राजो—जो कुछ कह रहा हूँ, उसको करने के लिए मैं विवश हूँ।"

सुबह जब दयानाथ सोकर उठा, वह अपने में एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का, साहस का अनुभव कर रहा था। दिन भर वह कांग्रेस का काम-काज करता रहा; शाम के समय करीब पाँच बजे वह मोटर पर बैठकर उन्नाव की ओर चल पड़ा।

४

जिस समय दयानाथ उन्नाव में अपने पिता के बँगले में

रामनाथ अदालत में बैठे हुए मुकदमा कर रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया।

ड्राइंगरूम में पहुँचकर प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा, "बड़के भइया! कल ददुआ बड़े नाराज थे। रात को उन्होंने खाना भी नहीं खाया। क्या बात थी?"

दयानाथ गंभीर हो गया। "प्रभा, ददुआ ने रात खाना नहीं खाया—इसका मुझे दुःख है। लेकिन वे बेकार ही मेरे ऊपर नाराज हो गए हैं। तुम्हीं बताओ, अगर मैं अपने विश्वासों पर अमल करूँ तो इसमें मेरा क्या दोष?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया; शायद दयानाथ ने प्रभानाथ के उत्तर की कोई आशा भी नहीं की थी, क्योंकि वह लगातार कहता गया, "मैंने माना कि ताल्लुकेदार का सबसे बड़ा लड़का और इस प्रकार ताल्लुका का उत्तराधिकारी होने के कारण सरकार यह नहीं चाहती कि मैं इस मूवमेंट में भाग लूँ; मैं यह भी मानता हूँ कि जमींदारों का हित ब्रिटिश गवर्नमेंट का साथ देने में है, जनता का साथ देने में नहीं, क्योंकि सरकार जमींदारों की पीठ पर हाथ रखे है, उनके अधिकारों की रक्षा करती है, उनकी ज्यादतियों की उपेक्षा करती है, उसकी पशुता पर आँखें बंद कर लेती है। लेकिन प्रभा! सोचो तो, हम जमींदार यह सब सुविधा, यह सब सुख, कितनी बड़ी कीमत देकर खरीद रहे हैं! क्या हमने अपनी [illegible] को शैतान के हाथों नहीं बेच दिया? क्या हमारे हृदयों में वह भावना [illegible]की बच रही है जिससे हम मनुष्य होने का दावा कर सकें? क्या हममें वह ज्ञान है जो हमें पशुता से ऊपर उठाता है?"

प्रभानाथ कुर्सी पर बैठा था और दयानाथ सोफा पर। प्रभानाथ कुर्सी से उठकर दयानाथ के पास सोफा पर बैठ गया। "मैं समझ रहा हूँ, बड़के भइया—सब कुछ समझ रहा हूँ। लेकिन सवाल यह है कि आप करेंगे क्या?"

दयानाथ मुसकराया, "करूँगा क्या? प्रभा! यह प्रश्न ही बेकार है। तुम देख ही रहे हो कि मैं क्या कर रहा हूँ। मैंने वकालत छोड़ दी है, कांग्रेस का काम मैंने पूरी तौर से अपने हाथ में लिया है। शायद कुछ ही दिन और मैं जेल के बाहर हूँ। मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ, प्रभा!"

प्रभानाथ ने कुछ सोचकर कहा, "बड़के भइया! जरा सोच लीजिए। क्षणिक आवेश में किसी भी काम को कर डालना उचित नहीं। आप इस ताल्लुका को ठुकराकर बहुत बड़ा त्याग करेंगे—मैं मानता हूँ, पर आप इस ताल्लुका के स्वामी रहकर इससे भी अधिक त्याग तथा उपयोगी काम कर सकते हैं—क्या आपने इस पर भी सोचा है? क्या आप उचित अवसर की प्रतीक्षा नहीं कर सकते?"

दयानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, प्रभा! मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ। पीछे हटना कायरता होगी..."

दयानाथ ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि रामनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। रामनाथ के आते ही दयानाथ और प्रभानाथ दोनों ही उठ खड़े हुए।

दयानाथ ने पिता के चरण छुए; आशीर्वाद देकर रामनाथ सोफ़ा
पर बैठ गए और दयानाथ तथा प्रभानाथ सामने कुर्सियों पर।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। रामनाथ गौर से दयानाथ के चेहरे को देख रहे थे, मानो वे बिना दयानाथ से सुने हुए ही अपने प्रश्न का उत्तर उसके हृदय से निकाल लेना चाहते हों। दयानाथ सिर झुकाए हुए जमीन पर देख रहा था, मानो वह अपने को कुछ क्षणों के बाद ही आने वाले तूफ़ान का मुकाबला करने के लिए तैयार कर रहा हो। प्रभानाथ उत्सुकता के साथ कभी अपने पिता को और कभी अपने बड़े भाई को देख लेता था।

रामनाथ ने इस मौन से ऊबकर बात आरंभ की, "हाँ, तो तुम मेरी बात का जवाब देने आए हो। तुमने क्या तय किया?"

"मैं अंतिम बार इस घर में अपना पैर रखने और अपने पिता के चरणों को धूल लेने आया हूँ!" *दयानाथ ने सिर झुकाए ही उत्तर दिया।*

"क्या कहा?" जैसे रामनाथ को जो कुछ उन्होंने सुना, उस पर विश्वास ही नहीं हुआ।

"मैंने तै कर लिया—पीछे फिरना कायरता है और मैं कायर नहीं हूँ।"

रामनाथ स्तब्ध-से अपने पुत्र को देखते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "हूँ! तुम कायर नहीं हो—यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा पुत्र कायर नहीं है, मुझे इस बात पर गर्व है। और मेरा यह वीर पुत्र अपने पिता से ही लड़ने पर तुला है, उस पर ही प्रहार करने को आमादा है! ठीक ही है! दुनिया में सब कुछ संभव है!"

बड़े करुण स्वर में दयानाथ ने कहा, "ददुआ, आप मेरी बात को गलत ढंग से समझ रहे हैं! एक बार मैंने एक संस्था को अपना लिया है, उसमें बहुत आगे बढ़ गया हूँ। *अब उससे हट आना, अपने साथियों को इस मौके पर छोड़ देना* कायरता का ही काम होगा। फिर मेरे साथी, साथी ही क्यों, सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी, वह यही कहेगी कि मैं डरकर इस लड़ाई से भाग रहा हूँ!"

रामनाथ मानो तैयार बैठे थे, "लेकिन तुम्हारी यह लड़ाई है किसके साथ? ब्रिटिश सरकार के साथ न! और यह ब्रिटिश सरकार ही क्या है, अगर हम जमींदार उसके साथ न हों। हम लोग इस गवर्नमेंट के अंग हैं। इस ब्रिटिश गवर्नमेंट पर प्रहार करने के माने होते हैं जमींदारों पर प्रहार करना—मेरे ऊपर प्रहार करना!"

दयानाथ ने केवल इतना कहा, "आप जो चाहे समझ सकते हैं, लेकिन मेरा खयाल तो ऐसा नहीं है।"

रामनाथ ने कुछ सोचकर कहा, "तो फिर तुमने अपना अंतिम निर्णय दे दिया है? *भविष्य पर और परिणाम पर अच्छी तरह सोच-समझकर?"*

"जी हाँ!"

"नहीं, मैं तुम्हें अड़तालीस घंटे का समय और दे रहा हूँ। इतना

रामनाथ अदालत में बैठे हुए मुकदमा कर रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया।

ड्राइंगरूम में पहुँचकर प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा, "बड़के भइया! कल दद्दुआ बड़े नाराज थे। रात को उन्होंने खाना भी नहीं खाया। क्या बात थी?"

दयानाथ गंभीर हो गया। "प्रभा, दद्दुआ ने रात खाना नहीं खाया—इसका मुझे दुःख है। लेकिन वे बेकार ही मेरे ऊपर नाराज हो गए हैं। तुम्हीं बताओ, अगर मैं अपने विश्वासों पर अमल करूँ तो इसमें मेरा क्या दोष?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया; शायद दयानाथ ने प्रभानाथ के उत्तर की कोई आशा भी नहीं की थी, क्योंकि वह लगातार कहता गया, "मैंने माना कि ताल्लुकेदार का सबसे बड़ा लड़का और इस प्रकार ताल्लुका का उत्तराधिकारी होने के कारण सरकार यह नहीं चाहती कि मैं इस मूवमेंट में भाग लूँ; मैं यह भी मानता हूँ कि जमींदारों का हित ब्रिटिश गवर्नमेंट का साथ देने में है, जनता का साथ देने में नहीं, क्योंकि सरकार जमींदारों की पीठ पर हाथ रखे है, उनके अधिकारों की रक्षा करती है, उनकी ज्यादतियों की उपेक्षा करती है, उसकी क्रूरता पर आँखें बंद कर लेती है। लेकिन प्रभा! सोचो तो, हम जमींदार यह सब सुविधा, यह सब सुख, कितनी बड़ी कीमत देकर खरीद रहे हैं! क्या हमने अपनी आत्मा को शैतान के हाथों नहीं बेच दिया? क्या हमारे हृदयों में वह भावना बाकी बच रही है जिससे हम मनुष्य होने का दावा कर सकें? क्या हममें वह ज्ञान है जो हमें पशुता से ऊपर उठाता है?"

प्रभानाथ कुर्सी पर बैठा था और दयानाथ सोफा पर। प्रभानाथ कुर्सी से उठकर दयानाथ के पास सोफा पर बैठ गया। "मैं समझ रहा हूँ, बड़के भइया—सब कुछ समझ रहा हूँ। लेकिन सवाल यह है कि आप करेंगे क्या?"

दयानाथ मुसकराया, "करूँगा क्या? प्रभा! यह प्रश्न ही बेकार है। तुम देख ही रहे हो कि मैं क्या कर रहा हूँ। मैंने वकालत छोड़ दी है, कांग्रेस का काम मैंने पूरी तौर से अपने हाथ में लिया है। शायद कुछ ही दिन और मैं जेल के बाहर हूँ। मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ, प्रभा!"

प्रभानाथ ने कुछ सोचकर कहा, "बड़के भइया! जरा सोच लीजिए। क्षणिक आवेश में किसी भी काम को कर डालना उचित नहीं। आप इस ताल्लुका को ठुकराकर बहुत बड़ा त्याग करेंगे—मैं मानता हूँ, पर आप इस ताल्लुका के स्वामी रहकर इससे भी अधिक त्याग तथा उपयोगी काम कर सकते हैं—क्या आपने इस पर भी सोचा है? क्या आप उचित अवसर की प्रतीक्षा नहीं कर सकते?"

दयानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, प्रभा! मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ। पीछे हटना कायरता होगी···"

दयानाथ ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि रामनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। रामनाथ के आते ही दयानाथ और प्रभानाथ दोनों ही उठ खड़े हुए।

दयानाथ ने पिता के चरण छुए; आशीर्वाद देकर रामनाथ सोफ़ा पर बैठ गए और दयानाथ तथा प्रभानाथ सामने कुर्सियों पर।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। रामनाथ गौर से दयानाथ के चेहरे को देख रहे थे, मानो वे बिना दयानाथ से सुने हुए ही अपने प्रश्न का उत्तर उसके हृदय से निकाल लेना चाहते हों। दयानाथ सिर झुकाए हुए जमीन पर देख रहा था, मानो वह अपने को कुछ क्षणों के बाद ही आने वाले तूफ़ान का मुकाबला करने के लिए तैयार कर रहा हो। प्रभानाथ उत्सुकता के साथ कभी अपने पिता को और कभी अपने बड़े भाई को देख लेता था।

रामनाथ ने इस मौन से ऊबकर बात आरंभ की, "हाँ, तो तुम मेरी बात का जवाब देने आए हो। तुमने क्या तय किया?"

"मैं अंतिम बार इस घर में अपना पैर रखने और अपने पिता के चरणों की धूल लेने आया हूँ!" दयानाथ ने सिर झुकाए ही उत्तर दिया।

"क्या कहा?" जैसे रामनाथ को जो कुछ उन्होंने सुना, उस पर विश्वास ही नहीं हुआ।

"मैंने तै कर लिया—पीछे फिरना कायरता है और मैं कायर नहीं हूँ।"

रामनाथ स्तब्ध-से अपने पुत्र को देखते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "हूँ! तुम कायर नहीं हो—यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा पुत्र कायर नहीं है, मुझे इस बात पर गर्व है। और मेरा यह वीर पुत्र अपने पिता से ही लड़ने पर तुला है, उस पर ही प्रहार करने को आमादा है! ठीक ही है! दुनिया में सब कुछ संभव है!"

बड़े करुण स्वर में दयानाथ ने कहा, "दद्दुआ, आप मेरी बात को गलत ढंग से समझ रहे हैं! एक बार मैंने एक संस्था को अपना लिया है, उसमें बहुत आगे बढ़ गया हूँ। अब उससे हट आना, अपने साथियों को इस मौके पर छोड़ देना कायरता का ही काम होगा। फिर मेरे साथी, साथी ही क्यों, सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी, वह यही कहेगी कि मैं डरकर इस लड़ाई से भाग रहा हूँ!"

रामनाथ मानो तैयार बैठे थे, "लेकिन तुम्हारी यह लड़ाई है किसके साथ? ब्रिटिश सरकार के साथ न! और यह ब्रिटिश सरकार ही क्या है, अगर हम जमींदार उसके साथ न हों। हम लोग इस गवर्नमेंट के अंग हैं। इस ब्रिटिश गवर्नमेंट पर प्रहार करने के माने होते हैं जमींदारों पर प्रहार करना—मेरे ऊपर प्रहार करना!"

दयानाथ ने केवल इतना कहा, "आप जो चाहे समझ सकते हैं, लेकिन मेरा खयाल तो ऐसा नहीं है।"

रामनाथ ने कुछ सोचकर कहा, "तो फिर तुमने अपना अंतिम निर्णय दे दिया है? भविष्य पर और परिणाम पर अच्छी तरह सोच-समझकर?"

"जी हाँ!"

"नहीं, मैं तुम्हें अड़तालीस घंटे का समय और दे रहा हूँ।

निर्णय करने के लिए चौबीस घंटे का समय काफी नहीं है, और खास तौर से उस समय जब तुम्हारा वह निर्णय मेरे साथ हो। तुम मुझे च्छी तरह जानते हो!" रामनाथ तनकर खड़े हो गए।

दयानाथ ने बैठे-ही-बैठे उत्तर दिया, "जी हाँ, मैं आपको अच्छी तरह से जानता हूँ। इतनी अच्छी तरह कि आप भी अपने को उतना ही जानते होंगे। और मुझे समय की कोई आवश्यकता नहीं; मैंने अपना निर्णय दे दिया और मैं मनुष्य हूँ। बात से फिरना, पीछे लौटना मैं नहीं जानता।"

रामनाथ घूम पड़े, "तो फिर अब मेरा निर्णय भी सुन लो। आज से जब तक मैं जीवित हूँ, तुम इस घर में अपना पैर न रख सकोगे। तुम्हारी बीबी और बच्चे जब चाहें आ सकते हैं, लेकिन तुम नहीं। रहीं तुम्हारे अधिकारों की बात—उस पर मैं विचार करूंगा। लेकिन इतना तै है कि मेरी जिंदगी भर तुम्हें पाँच सौ रुपया गुजारा मिलता रहेगा। हर महीने यह रुपया तुम्हारे घर पर पहुँच जाया करेगा। तुम्हें यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं। और जब यह रुपया पहुँचना बंद हो जाए, तब तुम समझ लेना कि मैं मर गया। तब तुम आ सकते हो!"

दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "आपकी आज्ञा शिरोधार्य! लेकिन यह पाँच सौ रुपया महीना गुजारे की बात—इसमें से एक पैसे की भी मुझे जरूरत नहीं। आप समझते हैं कि आप स्वामी हैं, आप दाता हैं, आप समर्थ हैं; और मैं हीन हूँ, गुलाम हूँ! असमर्थ हूँ! आप गलती करते हैं। मैं गरीबी में रह सकता हूँ बिना उफ़ किए। मुझे आपके रुपये की कोई आवश्यकता नहीं—वह आप अपने पास रखें!" यह कहकर उसने रामनाथ के पैर छुए और वह तेज़ी के साथ कमरे के बाहर चला गया।

तीसरा परिच्छे

रामनाथ जिस तरह खड़े थे, उसी तरह खड़े रह गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो गया—उनकी आंखों के आगे शून्य था। उनकी विचारधारा अचानक अस्पष्ट, धुंधली और स्तब्ध हो गई थी—वे पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चेष्ट खड़े थे।

और उनकी यह दशा उस समय तक रही, जब तक उन्हें दयानाथ की म की आवाज नहीं सुनाई दी। दयानाथ की मोटर की आवाज सुनकर वह ए चौंक उठे। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा, देखो वह जा रहा है। उसे बुला जल्दी बुलाओ!"

प्रभानाथ कमरे से बाहर दौड़ा। थोड़ी देर बाद वह लौट आया। कहा, "ददुआ, मैं जब पहुंचा, बड़के भइया की कार फाटक से बाहर निक

थी। मैंने बहुत पुकारा, लेकिन शायद उन्हें मेरी आवाज नहीं सुनाई दी।"

रामनाथ ने अधीरता से कहा, "प्रभा—बड़ी मोटर निकालकर जाओ और उसे रास्ते से वापस ले आओ! मुझे उससे अभी कुछ और जरूरी बातें करनी हैं! जल्दी करो!"

प्रभानाथ तेजी के साथ कमरे से बाहर निकला।

रामनाथ ने तनिक जोर से कहा, स्वयं अपने से, 'गया—मुझे छोड़कर, घर को छोड़कर, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद—सब कुछ छोड़कर! सिर्फ एक हठ—एक पागलपन! उफ! मेरा लड़का मुझसे ही लड़ने जा रहा है!' और वे कमरे में टहलने लगे।

उन्होंने फिर कहा, अबकी बार अधिक जोर से, एक-एक शब्द पर जोर देते हुए, 'सिर उठाकर, गर्व के साथ, रुपयों को ठुकराकर, ममता को तोड़कर! मुझसे लड़ने, मुझे मिटाने चल दिया! इतना घमंड, इतनी अहम्मन्यता—इतनी अहम्मन्यता, इतना घमंड!'

रामनाथ कमरे के बाहर निकल आए। प्रभानाथ कार को गैरेज से निकाल कर ला रहा था। रामनाथ ने आवाज दी, "प्रभा!"

प्रभा चौंक उठा। रामनाथ का स्वर, जो दो मिनट पहले करुण था और विवश था, वह एकाएक इतना कठोर कैसे हो गया? उसने मोटर पर बैठे-ही-बैठे कहा, "कहिए!"

"मोटर रख दो—तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं।" इसके बाद रामनाथ ने धीरे से गुरुता के भार से लदे हुए शब्दों में कहा, 'इतना घमंड! तो फिर भुगते—अच्छी तरह भुगते। वह समझता था कि मैं झुकूँगा!' और वे जोर से हँस पड़े। पर उनकी उस हँसी मे अप्राकृतिक कर्कशता थी, दबे हुए रुदन की अहम्मन्यता और अभिमान-मिश्रित प्रतिक्रिया थी।

प्रभा ने मोटर गैरेज मे रख दी, इसके बाद वह टहलने के लिए चला गया। रामनाथ बाहर मैदान में बैठ गए। उनके ताल्लुका के कर्मचारी उस दिन अपने कागजात लेकर आते थे। रामनाथ को घेरे हुए उनके सरबराकार और जिलेदार बैठे थे—मैनेजर उनसे कागजों पर दस्तखत करा रहा था। एक कागज को देखकर रामनाथ ने कहा, "इस आदमी ने लगान क्यों नहीं अदा किया?"

मैनेजर ने कहा, "यह आदमी जेल चला गया—लगान किससे वसूल करूँ?"

"जेल चला गया?—इसी कांग्रेस मे?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ! और भी कई काश्तकार गए हैं, लेकिन उनकी बीवी-बच्चों ने लगान अदा कर दिया है!"

"तो फिर इस पर बेदखली का मुकदमा क्यों नहीं दायर करते?"

"जी—इसलिए कि यह आदमी बराबर अपना लगान अदा करता रहा है। इस पर कभी बाकी नहीं हुई है—यह पहला ही मौका है! इसके ...ी-बच्चे भी

गाँव में नहीं है, नहीं तो वही लगान अदा कर देते। आदमी हैसियत का है।"

"हूँ!" रामनाथ ने उस कागज पर हुक्म लिखते हुए कहा, "इस आदमी पर बेदखली का मुकदमा दायर कर दो। मैं नहीं चाहता कि मेरे इलाके में ऐसे आदमी रहें जो बागी हों—जो लड़ने वाले हों! समझे! और इस तरह के जितने आदमी तुम्हें मिलें, मौका पाते ही उन्हें बेदखल कर दो!"

सरबराकार ने हाथ जोड़कर कहा, "सरकार! इस तरह के आदमी करीब-करीब सब-के-सब सरकश हैं। उन्हें दबाने में मुसीबत पड़ेगी—फौजदारी का अंदेशा है।"

"पुलिस की मदद लो—मैं कलक्टर से और कप्तान से कह दूँगा! जब चाहो, तब तुम्हें पुलिस की मदद मिल सकती है। बाकी कागजों को ठीक करके सुबह मेरे सामने पेश करना!" यह कहकर रामनाथ उठ खड़े हुए।

२

दूसरे दिन शाम के समय प्रभानाथ को तार से सूचना मिली कि वह फर्स्ट डिवीज़न में एम० ए० पास हो गया। तार लेकर वह सीधे अपने पिता के पास पहुँचा, तार उनके सामने रखते हुए उसने पिता के पैर छुए! प्रसन्न होकर रामनाथ ने प्रभानाथ को आशीर्वाद दिया। इसके बाद बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "अब इसके बाद तुम्हारा क्या इरादा है?"

"अभी कुछ सोचा नहीं! चाचाजी से बातचीत करके तै करूँगा।"

"चाचाजी! चाचाजी! श्यामू के पास दिमाग भी है जो सोचे-समझे! तुम क्या करना चाहते हो—मुझसे कहो?"

"चाचाजी का कहना तो है कि मैं कंपीटीशन इक्जामिनेशन में बैठूँ! इंपीरियल पुलिस में बैठने की तैयारी करने के लिए उन्होंने मुझसे कहा है।"

"और तुम क्या करना चाहते हो?"

"मैं तो यूनिवर्सिटी की सर्विस ज्यादा पसंद करता हूँ। फर्स्ट डिवीजन पाने के कारण मुझे अच्छी सर्विस पाने में ज्यादा मुसीबत न पड़ेगी और मेरे प्रोफेसर ने यह वादा भी किया है कि जब तक कोई जगह खाली नहीं होती तब तक वे मुझे रिसर्च-स्कॉलर की तरह यूनिवर्सिटी में रखेंगे।"

कुछ सोचकर रामनाथ ने कहा, "मैं कह नहीं सकता कि तुम नौकरी कर सकोगे या नहीं; मुझे तो उम्मीद कम ही मालूम होती है। अपने लड़कों को मैं जानता हूँ—सभी स्वामी हैं; गुलामी करने को कोई भी तैयार नहीं! और सर्विस!—वह कहीं की भी हो, गुलामी ही है! लेकिन बहुत संभव है, तुम्हारे चाचाजी का असर तुम पर पड़ा हो!"

प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "यह तो समय बतलाएगा! और रही गुलामी की बात—यहाँ गुलामी करने से कोई बचा नहीं है। फिर चिंता किस बात की?"

रामनाथ मुसकराए। "देख रहा हूँ मेरे सभी लड़के विद्वान् हो गए हैं···" और एकाएक उनकी मुसकराहट गायब हो गई। उन्हें दयानाथ की याद हो आई—कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, "प्रभा! यह विद्वता—ये सिद्धांत—ये सब-की-सब धोखे की चीजें हैं—यह याद रखना! इनके फेर में पड़कर मनुष्य अपनी वास्तविकता, जीवन की वास्तविकता—सभी कुछ खो बैठता है। ये सारे सिद्धांत—यह सारी बुद्धि!—यही हमारे विनाश के कारण हैं। प्रभा, इनसे डरना—इनसे दूर भागना!" और यह कहकर रामनाथ उठ खड़े हुए।

प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ! चाचाजी ने बुलाया है—आज ही सुबह उनकी चिट्ठी मिली है!"

"हूँ!" रामनाथ फिर बैठ गए, "तो फिर तुम कब जाना चाहते हो?"

"जब आप आज्ञा दें!"

रामनाथ थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे, फिर एकाएक वे उठ खड़े हुए, "जरा ठहरो—मैं अभी आता हूँ—तुमसे एक जरूरी काम है!" यह कहकर वे अंदर चले गए। उमानाथ का पत्र लिए हुए वे लौटे। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होंने कहा, "इसे पढ़ डालो!"

प्रभानाथ ने आदि से अंत तक पत्र को पढ लिया। उसने कहा, "जी हाँ!—क्या आज्ञा है?"

"उमानाथ को लेने के लिए किसी आदमी का जाना जरूरी है। तुम देख ही रहे हो कि मैं नहीं जा सकता, और दया—खैर, छोड़ो उसकी बात! उसी के कारण तो मेरी यह हालत है। श्यामू को शायद छुट्टी न मिले, अब रहे तुम!"

"तो क्या मुझे कलकत्ता जाना है?"

"हाँ, तुम्हीं को जाना पड़ेगा। उमा को आने में अभी करीब पंद्रह दिन का समय है। तुम कल फतेहपुर अपने चाचा के यहाँ चले जाओ, वहाँ दो दिन ठहरकर कलकत्ता चले जाना। कलकत्ता में इतनी गर्मी भी न होगी और इसलिए तुम वहाँ पंद्रह-बीस दिन मजे में घूम सकते हो।" रामनाथ मुसकराए, "एम० ए० पास कर लेने पर कुछ घूम लेना, सैर कर लेना, बेजा न होगा।"

प्रभानाथ ने अपनी प्रसन्नता को दबाते हुए कहा, "जैसी आज्ञा!"

"और तुम्हें कलकत्ता जाना है मेरी बुइक कार पर। नई कार खरीदने की बात कर ली है, बदले में यह पुरानी कार देनी है—इसे दे देना। और नई कार लेकर उस पर चले आना। कार के कागज-पत्र और रुपया तुम साथ लेते जाना।"

प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "भौजी जी से भी पूछ लूँ—शायद वह भी कलकत्ता जाना चाहें।"

"हाँ, तुमने ठीक कहा—पूछ लो!" पर एकाएक उन्होंने फिर कहा—"नहीं, अपनी भौजी को मत ले जाओ, उसका जाना ठीक न होगा!" —

"क्यों ?" प्रभानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिए कि उमा अभी विलायत से लौट रहा है। बिना प्रायश्चित्त करवाए उसे घर में ले लेने के मानी होंगे सामाजिक बहिष्कार। समझ गए !"

"जी हां।"

"और देखो, उमा के आने के साथ ही मुझको तार कर देना। इसके बाद तुम कलकत्ता में एक हफ्ता और ठहरकर यहां के लिए रवाना होना। साथ ही जब वहां से चलो, तब भी इत्तिला कर देना। इस बीच में मैं प्रायश्चित्त का इंतजाम कर रखूंगा।"

प्रभानाथ को दूसरे दिन सुबह उठकर चलने की तैयारियां करनी थीं। वह सीधा अपनी भावज—उमानाथ की पत्नी महालक्ष्मी के पास गया। महालक्ष्मी अपने लड़के अवधेश को सुलाकर अपने ससुर के गिलौरीदान में पान लगाकर रख रही थी। प्रभानाथ ने पहुंचते ही कहा, "भौजी, मिठाई खिलाओ, मिठाई !"

"वाह, मिठाई मैं क्यों खिलाऊं ? तुम पास हुए हो—तुम खिलाओ ! लेकिन बाबू जी, अकेले मिठाई खिलाकर ही नहीं छूटोगे—कुछ उपहार भी देना होगा !"

महालक्ष्मी के सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "अच्छी बात है भौजी—मैं तुम्हें उपहार दूंगा, ऐसा उपहार जिससे अधिक कीमती चीज तुम न पा सकोगी !"

"उंह—बड़े उपहार देने वाले !" मुसकराते हुए महालक्ष्मी ने कहा, और अपने देवर के सामने उसने पान की तश्तरी बढ़ा दी—"बाबूजी, आजकल मेरे साथ तुम खाना नहीं खाते—कुछ नाराज हो ?"

"बहुत ज्यादा—इसीलिए तो तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूं !" प्रभानाथ हंस पड़ा, "सच भौजी, सिर्फ तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूं !"

"सच बाबूजी—कलकत्ता जा रहे हो ?" महालक्ष्मी ने पूछा, "कब ?"

"कल फतेहपुर जाऊंगा—दो दिन रुककर कार में सीधा कलकत्ता के लिए रवाना ! समझीं ! मंझले भइया आ रहे हैं, उन्हें लेने के लिए ! अब तो खिलाओ मिठाई !"

महालक्ष्मी उठ खड़ी हुई; व्यग्रता से उसने कहा, "आ रहे हैं ? कब आ रहे हैं—बोलो बाबूजी—ददुआ ने तो मुझे नहीं बताया ! सच कह रहे हो ? बोलो बाबूजी, तुम्हें मेरी सौगंध है—सच कहो !"

प्रभानाथ ने कुर्सी पर पैर फैलाकर कहा, "तो तुमसे झूठ कहूंगा ? कह दिया न कि अपने पास होने की खुशी में मैं तुम्हारे लिए सबसे बड़ी सौगात लाऊंगा। भौजी, अब मिठाई की बात न टालो, निकालो रुपये !"

महालक्ष्मी ने आलमारी खोली और पांच गिन्नियां निकालीं। अपने देवर के हाथ में गिन्नियां रखते हुए उसने कहा, "बाबूजी, मुंह मीठा कर लेना !"

और प्रभानाथ ने देखा कि उसकी भावज की आँखो में आँसू भरे हैं।

प्रभानाथ ने उठते हुए कहा, "भौजी, तो मेरा सामान ठीक कर दो, कल शाम को चार बजे मैं यहाँ से चल दूँगा !"

– महालक्ष्मी ने जरा संकोच के साथ कहा, "बाबूजी, अगर मैं आप के साथ कलकत्ता चलूँ तो कोई हर्ज होगा ?"

"हाँ !" शांतभाव से प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "मैंने दद्दुआ से कहा था, और पहले वे राजी भी हो गए थे—लेकिन फिर एकाएक उन्होंने मना कर दिया ! मंझले भइया विलायत से आ रहे हैं न !"

महालक्ष्मी ने निराशा की एक ठंडी साँस ली, "जैसी आप लोगों की मर्जी !"

३

सुबह सात बजे पंडित रामनाथ तिवारी उन्नाव के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर डाबसन के बँगले मे पहुँचे। मिस्टर डाबसन तिवारीजी को बहुत मानते थे और इसका कारण यह था कि उन्नाव नगर के प्रमुख नागरिक होने के साथ-साथ पंडित रामनाथ तिवारी में चरित्र-बल था, व्यक्तित्व था। तिवारीजी की अवस्था पैंसठ वर्ष की थी और उनके बाल सन की तरह सफेद थे। वे इकहरे बदन के लम्बे और हृष्ट-पुष्ट आदमी थे—गोरे और खूबसूरत ! सिवा उनके सफेद बालों के, उनके शरीर पर बुढ़ापे का और कोई चिह्न न था। उनके बत्तीसो दाँत मौजूद थे, उनकी चाल में अकड़ थी, उनके मुख पर सौम्यता और गुरुता का विचित्र सम्मिश्रण था। तिवारीजी की आँखो में अहम्मन्यता की चमक थी, उनकी वाणी मे स्वामित्व की गंभीरता थी। तिवारीजी शिक्षित व्यक्ति थे और शिक्षित से कहीं अधिक सुसंस्कृत।

मिस्टर डाबसन जब कलक्टर होकर उन्नाव आये थे, उनसे नगर के प्रमुख [illegible] मिलने गए थे। सबो ने [illegible] कहा था, सबो [illegible] ोने उनके साथ [illegible] ा यह बराबरी वाला व्यवहार पसंद नहीं आया था, और अपनी नाराजगी को उन्होंने तिवारीजी पर उसी समय यह कहकर प्रकट कर दिया था, "पंडित रामनाथ ! जमींदारों की जो ज्यादतियाँ किसानों पर हो रही हैं, मेरा काम उन्हें रोकना है। तुम ताल्लुकेदारों और जमींदारों को मेरे शासनकाल मे सँभलकर रहना होगा।"

और तिवारीजी ने मिस्टर डाबसन को उसी समय उत्तर दिया था, "मिस्टर डाबसन ! आप डिप्टी कमिश्नर होकर आए हैं—लेकिन इसके ये माने नहीं कि आप हम लोगों से इस तरह की बातें करें। यह याद रखिएगा कि आप उस सरकार की नौकरी कर रहे हैं जो जमींदारों के बल पर कायम है। यह एक विडंबना ही है कि हम जमींदार और ताल्लुकेदार अपढ़ और कायर होने के

कारण अपने स्थान और अपनी महत्ता को गँवा बैठे हैं, नहीं तो आप हम लोगों के साथ किसी हालत में इस तरह से पेश न आ सकते जिस तरह पेश आ रहे हैं। आप यह समझ लें कि जमींदारों और ताल्लुकेदारों को अपना शत्रु बना लेना, सरकार के लिए आत्महत्या कर लेना होगा।"

उस डाँट का असर मिस्टर डावसन पर पड़ा, उन्होंने देखा कि उनके सामने वाला आदमी शरीफ है, स्वाभिमानी है। उस दिन से मिस्टर डावसन तिवारीजी का आदर करने लग गए। जिस समय चपरासी ने तिवारीजी का कार्ड मिस्टर डावसन को दिया, वे चाय पी रहे थे। उन्होंने चपरासी से तिवारीजी को डाइनिंग-रूम में ही बुलवा लिया।

मुसकराते हुए मिस्टर डावसन ने तिवारीजी से कहा, "गुडमार्निंग, राजा साहेब! आज बहुत सवेरे आ गए!"

"गुडमार्निंग, सर!" कहते हुए तिवारीजी एक खाली कुर्सी पर बैठ गए।

"आप मेरे यहाँ की चाय तो पीजिएगा नहीं—लीजिए, ये फल खाइए!" कहते हुए मिस्टर डावसन ने फ़लों की तश्तरी तिवारीजी के सामने बढ़ा दी, "क्यों, क्या बात है जो आप इतने गम्भीर हैं?"

"कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण बात करने आया हूं!" तिवारीजी ने कहा।

"कहिए!"

"मेरे पास परसों एक पत्र गया था जिसमें मेरे लड़के दयानाथ के कांग्रेस ज्वाइन कर लेने की बात लिखी थी।"

"अरे, हाँ···मुझे याद आ गया। कमिश्नर के डी० ओ० के आधार पर ही मैंने वह पत्र भिजवाया था। फिर?···क्या दयानाथ ने वाकई कांग्रेस ज्वाइन कर लिया है?"

"ज्वाइन ही नहीं कर लिया है, वह इस वक्त कांग्रेस का सेक्रेटरी भी है। वह इस मामले में बहुत आगे बढ़ गया है!"

"ऐसी बात है! फ़िर?" उत्सुकता से मिस्टर डावसन ने पूछा।

"मैं परसों शाम को उसके यहाँ गया था। मैंने उसको बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन सब बेकार! कल उसने मुझसे साफ़-साफ़ कह दिया कि वह कांग्रेस किसी हालत में नहीं छोड़ सकता, चाहे उसे घर-बार भले ही छोड़ना पड़े।"

"क्या आपने उसे कोई ऐसी धमकी दी थी?" मिस्टर डावसन ने गंभीर होकर पूछा।

"मैंने उसे धमकी नहीं दी, मैंने उससे तथ्य की और वास्तविकता की बात कही थी। देखिए, अगर यह कांग्रेस का मूवमेंट केवल गवर्नमेंट के ही खिलाफ़ होता तो मैं चुप रहता, लेकिन मैं देखता हूं कि हम जमींदारों का स्वार्थ गवर्नमेंट के साथ कुछ इस बुरी तरह बंध गया है कि गवर्नमेंट के खिलाफ़ कोई भी मूवमेंट जमींदारों के खिलाफ़ पड़ जाता है। ऐसी हालत में जब मेरा बड़ा लड़का रिप

सत का उत्तराधिकारी इस मूवमेंट में हिस्सा ले रहा है तब इसके माने ये हुए कि वह रियासत को, रियासत को ही नहीं, मुझको नष्ट करने पर तुला हुआ है। ऐसी हालत में उसे कोई अधिकार नहीं कि वह मेरे—अपने शत्रु के—साथ रहे।"

मिस्टर डावसन ने आश्चर्य के साथ अपने सामने बैठे हुए बूढ़े को देखा, फिर धीरे से उन्होंने कहा, "और अगर आज ब्रिटिश गवर्नमेंट आप जमींदारों का साथ छोड़कर जनता का हित करने पर तुल जाय?"

तिवारी जी ने तनकर उत्तर दिया, "तब मैं समझ लूंगा कि ब्रिटिश सरकार अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही है। मैं जानता हूँ कि हम जमींदार मिट जाएँगे लेकिन हमारे पहले ब्रिटिश गवर्नमेंट मिट जाएगी।"

मिस्टर डावसन मुसकराए, "आप शायद ठीक कहते हैं! लेकिन मैं व्यक्तिगत रूप से इतना जरूर कहूँगा कि यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती। राजा साहेब, कांग्रेस का इतना बड़ा मूवमेंट यह साबित कर रहा है कि जनता जाग रही है। यह साफ़ है कि लोग भूखों मर रहे हैं, लोग कंगाल हैं। यह सब किस लिए? इन लोगों को कौन भूखों मार रहा है? इन लोगों को कौन कंगाल बनाए है? हमें इस सवाल पर गौर करना ही पड़ेगा। और मैं समझता हूँ कि इनको भूखों मारने में और कंगाल बनाने में आप जमींदारों का बहुत बड़ा हाथ है!"

तिवारीजी तिलमिला उठे, "और जमीदारों से ज्यादा उन सरकारी अफसरों का हाथ है जो दो हजार रुपया महीना तनख्वाह पाते हैं, लम्बा भत्ता वसूल करते हैं; बीस साल की नौकरी के बाद जो नकद दस-पाँच लाख रुपया हिन्दुस्तान के बाहर विदेश ले जाते हैं। मिस्टर डावसन! जो रुपया जमींदारों को मिलता है, वह हिन्दुस्तान में ही तो रहता है, घूम-फिरकर वह जनता को तो मिलता है, लेकिन विदेश में जानेवाला रुपया हिन्दुस्तान की तबाही का कारण होता है।"

मिस्टर डावसन ने अपने सामने खड़े हुए चपरासी से कहा, 'पेशकार से बोलो कि कागजों पर दस्तखत मैं कचहरी में करूँगा। और जो मिलने आए उससे कह दो कि साहब को फ़ुरसत नहीं है—शाम के वक्त मुलाकात होगी।"

इतना कहकर मिस्टर डावसन सँभलकर बैठ गए, "क्या कहा आपने? जमीदारों को जो रुपया मिलता है, वह हिन्दुस्तान में रहता है? आप कितनी बड़ी गलती कर रहे हैं? थोड़े-से इने-गिने अंग्रेज अफसर हैं—वे कितना रुपया बाहर ले जा सकते हैं? ज्यादा नहीं—राजा साहेब, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ! और ये जमीदार! इनका अधिकांश रुपया विलायत में जाता है, मोटरों की कीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग विलास की कितनी चीजों में। आप जरा गौर करें—जितने राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार—रईस विलायत जाते हैं, वहाँ कितना खर्च करके लौटते हैं! दो लाख-चार लाख रुपया प्रति वर्ष पैदा करनेवाले, और उसमें से आधा, आधा विलायत में भेज देने वाले को हमारे दो हजार रुपये महीने पर आपत्ति क्यों हो रही है? और

राजा साहेब, आप यह भी याद रखें कि हम शासक हैं; हमने अपनी ताकत से, अनेक कष्ट सहकर, अपना खून बहाकर हिन्दुस्तान को जीता है, उसे बर्बरता से ऊपर उठाया है; हम हिन्दुस्तान का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

तिवारी जी चुपचाप थ। मिस्टर डावसन ने जो बात कह दी थी, उसमें सत्य था, उस सत्य की उपेक्षा तिवारीजी न कर सकते थे।

मिस्टर डावसन रुके नहीं, वे बातें करने ही बैठे थे। "राजा साहब! यह ब्रिटिश गवर्नमेंट इस गरीब हिन्दुस्तान से अधिक लाभ कर भी नहीं सकती। बहुत थोड़े-से अंग्रेज सरकारी नौकरियों में हैं और केवल उन्हीं की आजीविका चल रही है। और ये अंग्रेज संख्या में इतने कम हैं कि अगर हिन्दुस्तान में इनकी आजीविका चलना बंद हो जाय तो इंग्लैंड-वासियों को मालूम तक न होगा। फिर एक बात और आप याद रखें, हिन्दुस्तान के स्वाधीनता पा जाने के बाद अभी बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान को विदेशी विद्वानों की आवश्यकता पड़ेगी। यह तनख्वाह जो हिन्दुस्तान हम लोगों को दे रहा है, अभी कई साल तक हम विदेशियों को मिलती रहेगी।

"अब आती है व्यापार की बात! मैंने माना कि हिंदुस्तान के साथ व्यापार से इंग्लैंड को बहुत अधिक फायदा हुआ है, लेकिन यह फायदा किसी भी दूसरे देश को होता जो हिंदुस्तान के साथ व्यापार करता; और अब वह फ़ायदा दूसरे देशवालों को ही हो रहा है। जापान, जर्मनी, अमेरिका! ये देश अधिक लाभ उठा रहे हैं। यहाँ भी हमारा लाभ अधिक नहीं है। हिंदुस्तान इतना गरीब है कि यह मँहगा ब्रिटिश माल खरीद ही नहीं सकता, उसे सस्ता जापानी माल चाहिए। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि हिन्दुस्तान से इंग्लैंड को कोई व्यापारिक लाभ भी नहीं है। फिर यह सब क्यों? हम लोग जो अपने सिर पर यह मुसीबत उठाए हुए पशुता के पाप के भागी बन रहे हैं, यह सब क्यों?"

तिवारीजी मानो सपना देख रहे हों। उन्हें यकीन न हो रहा था कि एक अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर उनसे यह सब बातें कर सकता है! वे अवाक् बैठे हुए थे।

मिस्टर डावसन ने चाय का दूसरा प्याला बनाया; इसके बाद उन्होंने अपनी बात फिर आरम्भ की, "हिंदुस्तान में अंग्रेजों को केवल एक मोह है, वह है साम्राज्य का! इतना बड़ा मुल्क, जिसकी जनसंख्या तेंतीस करोड़ के ऊपर; लोग बहादुर और समझदार! इतना बड़ा मुल्क किसी भी साम्राज्य की बहुत बड़ी ताकत बन सकता है। आज संसार के अन्य राष्ट्र जो ब्रिटिश साम्राज्य से दबते हैं उसके सामने सिर नहीं उठा सकते, उसका प्रमुख कारण यह है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के पास हिंदुस्तान ऐसा मुल्क है। लेकिन यह भूखा-कंगाल और अपाहिज हिंदुस्तान कब तक हमारी ताकत बना रह सकेगा? ब्रिटिश सरकार भी अनुभव करने लग गई है कि अगर हालत अधिक दिनों तक ऐसी ही रही, तो हमें हिंदुस्तान से हाथ धोना पड़ेगा। हरेक चीज की हद होती है, निर्दयता की, उत्पीड़न की,

कुशासन की ! और हिंदुस्तान की हालत अब पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। इस पराकाष्ठा तक हिंदुस्तान की हालत पहुँचाने के लिए हम लोग विवश किए गए हैं, और हमे विवश करने वाले जमींदार ही हैं। शायद भविष्य में ब्रिटिश सरकार जमींदारों का साथ न दे सकेगी।"

तिवारीजी सुन रहे थे, समझ रहे थे। उन्होंने अपना सिर उठाया, सामने बैठे हुए मिस्टर डावसन मुसकरा रहे थे। गला साफ करते हुए तिवारीजी बोले,"आपने जो कुछ कहा मिस्टर डावसन, मैं मानता हूँ कि उसमें सत्य है; लेकिन केवल अर्ध-सत्य है। हिंदुस्तान से इंग्लैंड को और भी फायदे हैं जिन्हें आपने नहीं कहा। आप यह मानेंगे कि हिंदुस्तान के धन का बहुत बड़ा भाग इंग्लैंड उस रुपये के सूद में ले लिया करता है, जो उसने जबर्दस्ती हिंदुस्तान को कर्ज में दिया है। यह रकम अरबों तक पहुँच गई है, मिस्टर डावसन ! इंग्लैंड यह जानता है कि यह आर्थिक गुलामी हिंदुस्तान के लिए राजनीतिक गुलामी से कहीं अधिक घातक है। फिर आप कहते हैं कि हिंदुस्तान से इंग्लैंड को कोई व्यापारिक लाभ नहीं हो रहा है। यहाँ भी आपने केवल अर्ध-सत्य कहा है। इंग्लैंड के जहाज माल लाते हैं, ले जाते हैं। इंग्लैंड से काफी अधिक माल आता भी है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिंदुस्तान की व्यापारिक नीति इंग्लैंड ही निर्धारित करता है। अगर इंग्लैंड को हिंदुस्तान से कोई व्यापारिक लाभ नहीं है तो इंग्लैंड हिंदुस्तान के उद्योग-धंधों को क्यों नहीं पनपने देता ? हिंदुस्तानी माल का मुकाबला कीमत में इंग्लैंड का माल नहीं कर सकता। इंग्लैंड के मुकाबले में हिंदुस्तानी व्यवसाय तेजी के साथ उन्नति करता जा रहा है। और यहाँ इंग्लैंड ने हिंदुस्तान के मुकाबले जापान को सुविधाएँ देकर हिंदुस्तानी व्यवसाय को तोड़ने का प्रयत्न किया है। जापान को इंग्लैंड जब चाहे रोक सकता है, उसके प्यार को जब चाहे तोड़ सकता है, लेकिन हिंदुस्तान अगर खुद एक दफे जम गया, तब इंग्लैंड के लिए उसे तोड़ना असंभव हो जाएगा। इसीलिए इंग्लैंड हिंदुस्तान को लुटवा रहा है, ताकि यह देश हरदम अपाहिज ही बना रहे। और आपने ठीक कहा कि इंग्लैंड को हिंदुस्तान में मोह साम्राज्य के मामले में ही है, पर हिंदुस्तान को जन्म-जन्मांतर तक गुलाम बनाये रखने के लिए यह जरूरी है कि हिंदुस्तान के सामने हरदम ऐसी समस्याएँ रहें, जिनके ऊपर उठकर या जिनसे अलग होकर उसे अपनी गुलामी पर ध्यान देने की फुरसत ही न मिले ! संपन्न हिंदुस्तान अपनी सारी शक्तियाँ गुलामी से लड़ने में लगा सकता है, लेकिन गरीब हिंदुस्तान को पहले अपनी भूख से, गरीबी से लड़ना है; पीछे गुलामी की बात आती है, मिस्टर डावसन !"

मिस्टर डावसन इस बात का उत्तर देना चाहते थे, लेकिन रामनाथ ने उन्हें इशारे से रोक दिया, "और मैं आपकी बात का भी तथ्य जानता हूँ। जिस समय लोगों में अपनी भूख और गरीबी तथा गुलामी को एक रूप में देखने की क्षमता आ गई, उसी समय आप लोगों ने एक दूसरा रुख ले लिया। जिन साधनों से आपने लोगों को गरीब और अपाहिज बनाया, उनसे लोगों का ध्यान हटाने के

लिए आप बेवकूफ, अपढ़ तथा मूर्ख जमींदारों को सामने लाकर और उन्हें महत्त्व देकर हिंदुस्तान में गृह-कलह मचवा सकते हैं। नये-नये सवाल उठा लेना, हिंदू-मुसलमान; वर्णाश्रम-अछूत, किसान-ज़मींदार—ये सब छोटे-छोटे बिना महत्त्व के प्रश्न हैं। इनको महत्त्व देकर और लोगों की शक्तियों का इन बेकार की बातों पर अपव्यय करा के आप इस गुलामी की अवधि को लम्बा बनाना चाहते हैं। मैं मानता हूँ आपकी सूझ को—आपके दिमाग को! इसी से आप थोड़े-से आदमी इतने बड़े हिंदुस्तान पर निरंकुश शासन कर रहे हैं।' इतना कहकर पंडित रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

मिस्टर डावसन मुसकराए, "आप हमें गलत समझ रहे हैं! अच्छा जाने दीजिए इस बात को। आपने बताया नहीं कि किस प्रकार मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ?"

"इस बातचीत के बाद मुझे आप से सहायता की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती," रामनाथ ने भी मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "एक बहुत बड़ा सत्य जानकर मैं यहाँ से जा रहा हूँ। मैं आया था आपसे यह पूछने कि दयानाथ की विरासत किस तरह कटवाई जा सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि मैंने गलती की!"

"शायद आपने गलती ही की, क्योंकि विरासत का मामला डिप्टी कमिश्नर के हाथ में न होकर चीफ़ कोर्ट के हाथ में होता है।" और मिस्टर डावसन जोर से हँस पड़े।

४

पंडित रामनाथ तिवारी जिस समय डिप्टी कमिश्नर के यहाँ से लौटे, बहुत उद्विग्न थे। उन्होंने दयानाथ के साथ अन्याय किया, वे यह मानने को किसी भी हालत में तैयार न थे लेकिन फिर भी उनका मन भारी था। उनकी समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। दुनिया एकाएक बदल गई थी—वे अपने सामने एक अजीब तरह का अंधकार देख रहे थे। एक बहुत बड़ी रियासत का भार उनके कंधे पर लदा था, और वे अकेले थे। उनकी अहम्मन्यता, उनकी प्रभुता, उनका स्वामित्व!—इन सबों को एक धक्का लगा, और इस धक्के से वे स्तब्ध हो गये। आज से पहले उन्होंने दूसरे पहलू पर विचार ही न किया था।

वे अपने बँगले तक न पहुँच पाये थे कि एक बहुत बड़ा जुलूस उन्हें दिखाई दिया। रास्ता भीड़ से रुक गया था, इसलिए ड्राइवर को कार सड़क के एक किनारे रोक देनी पड़ी। वह कांग्रेस का जुलूस था। लोग तिरंगे झंडे लिए और तरह-तरह के नारे लगाते हुए चल रहे थे। कोई 'इन्क़िलाब जिंदाबाद' चिल्ला रहा था, कोई 'झंडा ऊँचा रहे हमारा!' गा रहा था।

साधारण परिस्थिति में तिवारीजी को अपनी कार का रुकना बुरा लगता, पर उस दिन उन्हें बुरा न लगा। अपने अंदर वाले द्वंद्व से वे इतने स्तब्ध और

विचलित थे कि उस जुलूस का निकलना उन्हें बुरा ल
पर अच्छा ही लगा। वे जुलूस देखने लगे। उन्होंने मन-ह
'ये निहत्थे आदमी ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं! क
मशीनगन! और ये सब कहाँ होंगे? कोई भी तो नज
ब्रिटिश सरकार बल का प्रयोग क्यों नहीं करती? इस
रोकती है?'

कुछ लोगों ने रामनाथ की ओर उँगली उठाकर कह
हाय!"

रामनाथ चुप रहे। उनको यह नहीं मालूम था कि टोडी बच्चा के अर्थ क्या होते हैं, पर जानते थे कि जो कुछ उनके संबंध में कहा गया है, वह उनके स्वाभिमान के विरुद्ध है, शायद उनको गाली भी दी गई हो। पर पंडित रामनाथ को उस समय यह गाली नहीं खली, वे एकटक जुलूस को देख रहे थे और सोच रहे थे, 'इतने अधिक आदमी! अगर इनके हाथ में शस्त्र होते! तो उन्नाव-जैसे छोटे कस्बे में इतने अधिक आदमी कांग्रेस के जुलूस के साथ हैं! तो क्या कांग्रेस पर लोगों की श्रद्धा वास्तव में इतनी अधिक हो गई है! ये लोग—ये गँवार—जिन्हें बोलने और बात करने की तमीज नहीं है, जो सोच नहीं सकते, समझ नहीं सकते; जिनमें नैतिकता और चरित्र का सर्वथा अभाव है, ये किसान और मजदूर—ये लोग इस जुलूस के साथ क्यों हैं? क्या ये जानते हैं, कि स्वाधीनता किसे कहते हैं? क्या ये जानते हैं कि अधिकार और स्वत्व के अर्थ क्या होते हैं?'

रामनाथ ने देखा कि छोटे-छोटे बच्चे गाना गाते चले जा रहे हैं। उन्होंने फिर सोचा, 'और ये बच्चे!'

वे मुसकराये, 'ये बच्चे भी तो जुलूस के साथ हैं। भला ये बच्चे क्या समझ सकते हैं? ये जो मस्तक ऊँचा किए हुए नारे लगाते चले जा रहे हैं—ये सुकुमार और भोले बच्चे? ये क्या जानें कि लड़ाई क्या है! इनमें कौन-सा जोश भर गया है? कौन-सा उन्माद इनकी नस-नस में समा गया है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं? इस जुलूस को बनाकर कौन-सी लड़ाई लड़ने की तैयारी कर रहे हैं? लड़ाई?'

रामनाथ हँस पड़े, 'लड़ाई! ब्रिटिश गवर्नमेंट से लड़ाई? एक मशीनगन—सिर्फ एक मशीनगन! हॉविट्ज़र, गैस, टैंक, टारपीडो, हवाई जहाज। जर्मनी के पास यह सब कुछ था। और इन हिन्दुस्तानियों के पास क्या है? बाँस में लगा हुआ एक झंडा, एक *'झंडा ऊँचा रहे हमारा'* वाला गाना, एक धरना! और इसके अलावा—कड़ाह में मिट्टी डालकर नमक बनाओ! बस, इसी बिरते पर ये लोग ब्रिटिश गवर्नमेंट से लड़ रहे हैं। आखिर इस सब से होता क्या है? ठीक ही है! अगर ब्रिटिश गवर्नमेंट बल का प्रयोग नहीं करती, तो इसमें बेजा ही क्या है? ये निहत्थे अपाहिज हिंदुस्तानी उसका बिगाड़ ही क्या सकते हैं? वे किसका क्या बिगाड़ सकते हैं? कुछ नहीं—किसी का कुछ नहीं—

अब जुलूस का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग रामनाथ के सामने आ गया ... के प्रमुख व्यापारी, वकील, डाक्टर आदि संभ्रांत आदमी पैदल खद्दर ...इ पहने चले जा रहे थे। रामनाथ ने उन्हें देखा—उनमें से कुछ लोगों को ...चाना भी, और एक क्षण के लिए वे अपनी आँखों पर विश्वास न कर सके। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'ये भी ! ये अमीर लखपति आदमी ! ये भी कांग्रेस के साथ शामिल हैं—शरीक हैं ! ये क्यों ? इन्हें कौन-सा कष्ट है ? कौन-सा दुख है ? ये लोग अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं ! तो फिर दयानाथ ही अकेला मूर्ख नहीं है; मूर्खों का एक बहुत बड़ा दल है, जो स्वयं नष्ट होने के लिए तेजी के साथ बढ़ा चला जा रहा है ! आखिर ये सब-के-सब चाहते क्या हैं ? स्वराज्य ? यह स्वराज्य है क्या चीज ? जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा जनता का शासन ! और जनता ? यह अपढ़, मूर्ख और कंगाल जनता ? किसी के भी बरगलाने में यह जनता आ सकती है। इसके माने यह हैं कि जो जितना ही मक्कार, चालाक और बेईमान होगा, वही इनका प्रतिनिधि बन सकेगा और इनका प्रतिनिधि बनकर शासन कर सकेगा ! इस स्वराज्य के यही अर्थ होंगे ! रूस, जर्मनी, इटली ! इन देशों में भी तो, जहाँ की जनता शिक्षित है, अपना हित-अहित समझ सकती है, यही हो रहा है ?

जुलूस निकल गया था और रास्ता साफ हो रहा था। ड्राइवर ने कार स्टार्ट की। रामनाथ ने अपने सामने देखा—वही सन्नाटा, वही निस्तब्धता ! उन्होंने ...र सोचा, 'लेकिन यह सब—यह सब ! इसमें है कुछ जरूर ! इस उन्माद में, इस पागलपन में, ऐसी कोई बात जरूर है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो अमीर-गरीब, बच्चे-बूढ़े, सभी पर अपना अधिकार जमाये हुए है, जिससे मैं डर रहा हूँ, डिप्टी कमिश्नर डर रहा है, यह विश्वविजयी और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार डर रही है ! आखिर यह क्या है ?—क्यों है ?'

५

शाम को चार बजे प्रभानाथ ने रामनाथ के पास जाकर कहा, "ददुआ ! अ... आज्ञा दीजिए !"

रामनाथ उस समय अपने कमरे में लेटे थे। उनकी उद्विग्नता वैसी-की-वै...ही थी—वे सोच रहे थे, दयानाथ के संबंध में। सुबह से जो कुछ हुआ, जो कु... उन्होंने देखा, उससे उन्हें कुछ ऐसा लगने लगा था, मानो उन्होंने दयानाथ के सं... में तनिक कड़ाई से काम लिया है। लेकिन फिर भी उनके अंदरवाला हठी स्वा... और शासक बराबर उनके अंदरवाले पिता से लड़ रहा था। वह दयानाथ... दोषित पोषित कर रहा था, और यह अपने अंदरवाला द्वंद्व उन्हें किसी हद... खल रहा था। प्रभानाथ की आवाज सुनकर वे चौंक उठे। उन्होंने पूछा, "... कहा ?" और वे उठकर बैठ गये।

"मैं फतेहपुर जा रहा हूँ !" प्रभानाथ ने कहा।

"अरे, हाँ !" यह कहकर उन्होंने कमरे के बाहर देखा, "अभी ! अभी तो बहुत तेज गरमी है…"

रामनाथ की बात काटते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कोई बात नहीं ! अगर अभी चलूँगा तो आठ बजे के करीब फतेहपुर पहुँचूँगा।"

"अच्छी बात है !" कहकर रामनाथ ने उसी समय श्यामनाथ के नाम एक पत्र लिखा। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होने कहा, "देखो, यह पत्र श्यामू को दे देना, और फतेहपुर मे दो दिन से अधिक मत रुकना। समझे !"

प्रभानाथ ने पत्र ले लिया, लेकिन वह चला नहीं। सिर झुकाए वह खड़ा रहा। रामनाथ ने पूछा, "क्या बात है—कुछ कहना है ?"

"जी !" प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "मैं कानपुर मे बड़के भइया के यहाँ दो घंटे के लिए जाना चाहता हूँ।"

"दया के यहाँ ? कुछ काम है ?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने कुछ देर चुप रहकर कहा, "नहीं—तुम उसके यहाँ नही जा सकोगे !"

प्रभानाथ ने अपना स्वर दृढ करते हुए कहा, "दद्दुआ, आप बड़के भइया के साथ ही नहीं, मेरे साथ भी अन्याय कर रहे हैं !"

रामनाथ ने चौंककर सिर उठाया, "क्या कहा ? मैं क्या कर रहा हूँ ?" उनका स्वर कर्कश था।

"अन्याय ! आपने बड़के भइया को बहुत बड़ा दंड दिया, एक बहुत छोटे-से अपराध पर—यदि उसे अपराध कहा जा सकता है, और आप मुझे दंड दे रहे हैं बिना अपराध के। यह अन्याय नहीं तो क्या है ?"

"मैं तुम्हें किस प्रकार दंड दे रहा हूँ ?" कड़ी निगाह से प्रभानाथ को देखते हुए रामनाथ ने पूछा।

प्रभानाथ ने अविचलित भाव से कहा, "आप मुझे बडके भइया के यहाँ जाने से रोकते हैं। आप मेरी भावना पर,, मेरे सुख पर, मेरी इच्छा पर अकारण ही नियंत्रण लगा रहे हैं। हम लोगों को बड़के भइया के यहाँ जाने से रोककर आप बडके भइया को कष्ट पहुँचाना चाहते हैं, लेकिन आप इस बात पर ध्यान नहीं देते कि उनके यहाँ न जाकर, उनसे न मिलकर मुझे भी कष्ट होगा।"

रामनाथ उठ खड़े हुए, "तुम दया के यहाँ नहीं जाओगे—समझे ! दया को मैंने—रामनाथ तिवारी ने दंड नहीं दिया है, दयानाथ को दंड दिया है इस कुल के कर्त्ता ने, इस कुल की ओर से ! जब तक मैं इस कुल का कर्त्ता हूँ, संचालक हूँ, तब तक मेरी प्रत्येक बात, मेरा प्रत्येक निर्णय, कुल का निर्णय है, उसके प्रत्येक सदस्य का निर्णय है। यह याद रखना कि आजवाला तुम्हारे पिता का अधिकार कल तुम्हारे बच्चों के साथ तुम्हारा अधिकार होगा।"

प्रभानाथ सिर झुकाए हुए चल दिया। मोटर पर सामान रखा जा चुका था।

कानपुर पहुँचकर प्रभा ने घड़ी देखी, उस समय पाँच बजे थे। लू उस समय भी तेजी के साथ चल रही थी। गंगा के पुल को पार करके प्रभानाथ ने कार रोक दी। थरमस से उसने पानी पिया, उसके बाद एक ठंडी साँस लेकर उसने चारों तरफ देखा। गहरा सन्नाटा था, इधर-उधर कोई आदमी नजर न आता था। प्रभानाथ ने कार दयानाथ के बँगले की तरफ मोड़ दी।

दयानाथ उस समय अपने बँगले में ही था। दयानाथ के कमरे में बैठा हुआ मार्कंडेय उससे उसके पिता के साथवाले निर्णय पर तथा उसके भावी जीवन के संबंध में बातचीत कर रहा था। प्रभानाथ ने दयानाथ के पैर छुए और मार्कंडेय को प्रणाम करके वह बैठ गया।

दयानाथ ने बातें बंद कर दीं। प्रभानाथ से उसने कहा, "कहो प्रभा! कैसे आ गए?"

"फतेहपुर जा रहा हूँ! वहाँ से दो दिन के बाद कलकत्ता जाना है।"

"कलकत्ता जाना है! क्यों?"

"मंझले भइया आ रहे हैं।"

"उमा आ रहा है! कब?

"आज के बीस दिन बाद! ददुआ ने मुझे रिसीव करने के लिए भेजा है।"

"तुम्हें भेजा है!" दयानाथ कुछ रुका, "ठीक है! वे जा नहीं सकते, काका जी को फुरसत नहीं है! और मैं!—मैं त्याज्य हूँ। कुल का शत्रु हूँ!"

दयानाथ हँस पड़ा—पर उसकी उस हँसी में एक अजीब तरह का रूखापन था। "प्रभा! ददुआ ने तुम्हें मेरे यहाँ आने की आज्ञा दे दी?"

"जी नहीं! उन्होंने मुझे आपके यहाँ आने से रोक दिया था।"

दयानाथ ने प्रभानाथ को गौर से देखा, "और तुम उनकी बात को काट कर चले आए! शायद तुमने अच्छा नहीं किया। तुम उन्हें अच्छी तरह जानते हो, फिर भी तुमने यह किया?"

प्रभा मुस्कराया, "जी हाँ, मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ! लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वे मेरी इच्छाओं पर, मेरी भावनाओं पर, मनमाना नियंत्रण नहीं लगा सकते! उनको कोई अधिकार नहीं कि वे मेरे बड़े भाई को मुझसे छुड़वा दें!"

मार्कंडेय अभी तक चुप बैठा था। इस बार उसने कहा, "प्रभा! तुम गलती करते हो। तुम जब तक उनके साथ हो, जब तक उनके और तुम्हारे हित-अहित एक हैं, तब तक उन्हें पूरा अधिकार है!"

दयानाथ ने मार्कंडेय को उत्तर दिया, "क्या कहा? तुम इस गुलामी के समर्थक हो? क्या तुम चाहते हो कि एक आदमी के पागलपन को दस आदमी अपनाकर अपना व्यक्तित्व नष्ट कर दें, उस एक आदमी के गुलाम बन जायें?"

मार्कंडेय मानो इस तर्क के लिए तैयार बैठा था, "हाँ, एक आदमी के पागलपन को दस आदमियों का अपना लेना, और शांतिपूर्वक उसी एक पागलपन को सत्य मानकर रहना अधिक श्रेयस्कर होगा बनिस्बत इसके कि दस आदमी अपना-अपना पागलपन लेकर लड़ें-झगड़ें और अपनी जिंदगी कलहपूर्ण बना लें।"

दयानाथ ने जरा गरम होकर कहा, "मार्कंडेय! अगर सत्य और औचित्य की कीमत अशान्ति है, तो मैं उस अशांति को उस शांति से कहीं अधिक अच्छी समझूँगा जो अपने विश्वास की, भावना की हत्या करके खरीदी जाती है।"

मार्कंडेय ने कहा- "दयानाथ, तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारा विश्वास तुम्हारा है! दुनिया का नहीं है। तुम्हारी भावना भी तुम्हारी है। दुनिया की नहीं है। तुम्हें यह स्मरण रखना पड़ेगा कि दुनिया में तुम्हारी ही भाँति हर एक आदमी का अपना निजी विश्वास है, अपनी निजी भावना है। और यही तुम्हारा निजी विश्वास और निजी भावना दूसरों की नजर में पागलपन है, क्योंकि दूसरों के विश्वास, दूसरों की भावनाएँ बिलकुल दूसरी हैं। और इसलिए तुम्हारी बात ही बेकार हो जाती है, क्योंकि जिस अधिकार को तुम माँग रहे हो, वही अधिकार तुम्हें दूसरों को भी देना पड़ेगा।"

यह तर्क-वितर्क प्रभानाथ को खल रहा था। एक तो उसे जाने की जल्दी थी, दूसरे यह तर्क उस पर ही केंद्रित था। उसने घड़ी देखते हुए कहा, "बड़के भइया, आप मुझे तो आज्ञा दें, क्योंकि मुझे फतेहपुर जाना है। भौजी से मिलकर वहीं से चला जाऊँगा।"

दयानाथ हँस पड़ा, "कैसे पागलों के बीच में आ पड़े हो। अरे हाँ, मैं तुम्हारे पास होने पर तुम्हें बधाई देना तो भूल ही गया था।"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। दयानाथ ने फिर कहा, "कलकत्ता जा रहे हो—अच्छा शहर है। जरा घूम ही आओगे। और चाचाजी से मेरा प्रणाम कह देना।"

"बहुत अच्छा।" कहकर प्रभानाथ अंदर जाने लगा। दयानाथ ने प्रभा के निकट आकर फिर कहा, "देखो, उमा से मेरी स्थिति समझा देना। बानापुर जाते समय, अगर वह अनुचित न समझे तो मुझसे मिल ले—अगर मैं उस समय तक जेल के बाहर रहा।"

प्रभा ने दयानाथ के चरण छुए और मार्कंडेय को प्रणाम किया। इसके बाद वह अन्दर चला गया। उसके जाते ही मार्कंडेय और दयानाथ फिर बातें करने लगे।

६

जिस समय प्रभानाथ फतेहपुर पहुँचा, पंडित श्यामनाथ तिवारी अपने बँगले में नहीं थे। वे क्लब में बैठे ब्रिज खेल रहे थे। नौकर से प्रभानाथ ने श्यामनाथ को अपने आने की सूचना दिलवाई। श्यामनाथ वैसे ही क्लब

घर चले आए।

पंडित श्यामनाथ तिवारी की अवस्था पचपन वर्ष की थी, पर वे पैंतालीस वर्ष से अधिक के न दिखते थे। वे फतेहपुर में सुपरिंटेंडेंट पुलिस थे। अपने बड़े भाई के समान ही लम्बे और स्वस्थ, पंडित श्यामनाथ तिवारी अपनी वीरता के लिए प्रांत-भर में प्रसिद्ध थे। बड़े-बड़े डाकू उनके नाम से थर-थर काँपते थे। पुलिस के कर्मचारी उनसे डरते थे।

श्यामनाथ तिवारी की पत्नी का स्वर्गवास उस समय हुआ, जिस समय उनकी अवस्था चालीस वर्ष की थी। दूसरा विवाह करने के लिए उन पर बहुत जोर डाले गए, पर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उस समय श्यामनाथ को देखकर कोई भी उनकी अवस्था तीस वर्ष से अधिक न कह सकता था; लेकिन वे चालीस वर्ष के हैं—इसे वे अच्छी तरह जानते थे। इसके अलावा एक तर्क उनके पास और था—वह यह कि पुलिस की नौकरी खतरे से खाली नहीं है, और एक नवयुवती को विधवा बनने के लिए अपने गले में मढ़ लेना वे अनुचित समझते थे। पर असली कारण दूसरा ही था। श्यामनाथ भावना-प्रधान आदमी थे, और उनका अपनी स्वर्गीया पत्नी के प्रति असीम प्रेम था।

श्यामनाथ तिवारी के कोई संतान न थी, पर रामनाथ तिवारी के तीन लड़के थे। रामनाथ के सब से छोटे लड़के प्रभानाथ को ही श्यामनाथ ने अपना लड़का मान लिया था; बिना गोद लिए हुए। श्यामनाथ अपने बड़े भाई को देवता की तरह मानते थे; रामनाथ का कथन उनके लिए वेदवाक्य के समान था, चाहे वह उनकी इच्छा के कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो। रामनाथ की भी श्यामनाथ के प्रति अगाध ममता थी।

श्यामनाथ के हाथ में प्रभानाथ ने पिता का पत्र रख दिया। पत्र को आदि से अंत तक पढ़कर श्यामनाथ के मुख पर एक विषाद की छाया घिर आई, "दया ने कांग्रेस ज्वाइन कर लिया! यह तो अच्छी बात नहीं।"

प्रभानाथ ने इस बात का उत्तर देना बेकार समझा।

श्यामनाथ कुछ देर तक सोचते रहे, फिर उन्होंने कहा, "फतेहपुर आते हुए तुम दया से मिले थे?"

"जी हाँ! यद्यपि दद्दुआ ने मुझे वहाँ जाने से रोक दिया था!"

"भइया ने तुम्हें भी दया के यहाँ जाने से रोका था!—यह क्यों?" कहते हुए श्यामनाथ ने अपना हाथ मेज पर पटक दिया। "भइया को यह कौन-सा पागलपन सूझा। क्या हम सब लोग दया को छोड़ दें? मैं कभी भी भइया का यह अन्याय नहीं बर्दाश्त कर सकता!"

प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "यह सब आप दद्दुआ से तै कर लें। लेकिन आप उनसे न कह दीजिएगा कि मैं बड़के भइया के यहाँ गया था!"

"उनसे क्या तै कर लूँ—खाक! अपनी जिद वे छोड़ेंगे नहीं। दया को घर से निकाल दिया। निकाल ही नहीं दिया, एक लाटसाहबी हुक्म जारी कर दिया

कि हम लोग सब-के-सब उससे अपना संबंध तोड़ लें ! कल ही मैं उन्नाव जाकर उनसे बातचीत करूँगा। इस तरह से कब तक चलता रहेगा !"

प्रभानाथ श्यामनाथ की कमज़ोरी को अच्छी तरह जानता था। उसने कहा, "बेकार आप गरम हो रहे हैं ! ददुआ के सामने तो आपके होश-हवास सब गायब हो जाते हैं !"

"चुप बदतमीज़ ! देखना—देख लेना—कल इतवार है। कल ही !"

"लेकिन मुझे तो कल रात ही कलकत्ता के लिए रवाना हो जाना है !"

"अरे, हाँ !—दो-चार दिन बाद चले जाना ! कोई हर्ज है !"

"नहीं, काकाजी—ददुआ ने क्या लिखा है ? आप तो अपनी सफ़ाई देकर अलग हो जाएँगे, बीतेगी मेरे सिर पर !"

श्यामनाथ ने पत्र एक बार फिर पढ़ा। मत्थे पर हाथ लगाते हुए उन्होंने कुछ सोचा, फिर धीरे से बोले, "अच्छी बात है। भइया का तो लाटसाहबी हुक्म चलता है। तो फिर कल न सही, मैं परसों जाऊँगा !"

चौथा परिच्छेद

हुगली नदी के किनारे कलकत्ता नगर अपने वैभव पर उन्नत-मस्तक खड़ा है। हुगली नदी को कलकत्ता के हिंदू गंगा कहकर उसमें बड़ी भक्ति के साथ स्नान करते हैं और अंग्रेज उसे समुद्र का एक हिस्सा मानकर उसमें छोटे-छोटे जहाज़ कलकत्ता तक ले जाते हैं।

जनसंख्या के अनुसार कलकत्ता ब्रिटिश-साम्राज्य का द्वितीय नगर है, और सन् १९१० तक उसे समस्त भारतवर्ष की राजधानी होने का श्रेय प्राप्त था। इसके साथ ही कलकत्ता का एक और भी ऐतिहासिक महत्त्व है, जिसे अधिकांश लोग उस नगर की चहल-पहल में तथा उसके वैभव के आगे भुला देते हैं। कलकत्ता ही हिंदुस्तान की गुलामी की पहली सीढ़ी है—अंग्रेजों ने कलकत्ता से ही हिन्दुस्तान को विजय किया है।

और शायद इसीलिए इस नगर में दानवता के साक्षात् दर्शन होते हैं। एक अनियंत्रित हाहाकार उस महानगर में प्रत्येक क्षण सुन पड़ेगा, करोड़पति व्यापारियों के अंदरवाली पशुता के दर्शन यहाँ की वेश्याओं में, कंगालों में और परदेश से पैसा कमाने के लिए आए हुए नित्य ही आत्महत्या करनेवाले या विवश भूखों मर जानेवाले बेकारों में हो सकते हैं। ऐश के सभी सामान इस नगर में मौजूद हैं, और यह ऐश मनुष्य मानवता का गला घोंटकर कर रहा है। इस नगर में शांति नहीं है, इस नगर में सहानुभूति नहीं है, यहाँ जो कुछ है, वह धन का पिशाच है और उस पिशाच से गुलाम बनने की प्रबल अभिलाषा है।

और यह धन पाने की अभिलाषा !

यह इस नगर का ही नहीं, यह आज की दुनिया का, आज की संस्कृति का, आज की सभ्यता का, सबसे बड़ा अभिशाप है। यह अभिशाप इस नगर में अपने महान् वीभत्स और नग्न रूप में प्रदर्शित है। कोई इस बात को नहीं सोचता कि किस उपाय से यह धन प्राप्त किया जाता है, इस बात पर सोचने का किसी के पास समय भी तो नहीं है। हर समय एक आवाज़—'पैसा !' चोरी, डकैती, झूठ, दगाबाज़ी, हत्या ! अपना शरीर बेचकर, अपनी आत्मा बेचकर, अपनी मनुष्यता बेचकर ! धन ही अस्तित्व है, धन ही स्वामी है, धन ही परमेश्वर है !

यह धन की नृशंसता इस नगर को एक भयानक अभिशाप बनकर घेरे है। रोज़ सुबह कंगालों का झुंड उस दिन जीवित रहने की चिंता को लेकर निकलता है; दर-दर की ठोकरें खाते हुए, आशीर्वाद बाँटते हुए वह उस नगर के चक्कर लगाता है। उसके सामने संपन्न आदमी हँसते हुए और अठखेलियाँ करते हुए निकलते हैं, और वह उन लोगों को देखता है। पर वह उन पर ईर्ष्या नहीं करता; वह उनकी जय मनाता है, उनके सामने नाक रगड़ता है। उसे अपने जीवित रहने के अधिकार का पता नहीं—वह लुटेरों की कृपा पर ही अपने जीवन को निर्भर समझता है। और रात के समय मैदानों में, सड़कों पर, नालियों पर, जहाँ भी जगह मिल जाय, पड़ रहता है—सुबह जीवित उठकर कुत्तों की जिंदगी बिताने के लिए, या रात में ही भूख और ठंड से मर जाने के लिए।

रोज सुबह कुलियों का झुंड अपने काम पर जाता है, दिन भर वह मशीनों नीचे पिसता है—भावनाहीन, चेतनाहीन ! और रोज शाम को वह लौटता —थका-माँदा, टूटा हुआ ! इसके बाद रात ! थकावट से चूर आदमी का या तो ताड़ी अथवा सड़ी शराब पीकर बीबी-बच्चों को उत्पीड़ित करना; या फिर सड़ा-बासी, रूखा-सूखा खाकर पेट भरना और मुरदे की तरह एक संकरी और गन्दी कोठरी में, जिसमें चार या पाँच आदमी रहते हैं, एक कोने में लुढ़क जाना ! यही उसका नित्य का जीवन है।

रोज सुबह क्लर्कों का झुंड बच्चों के रुदन के बीच में उठता है, अपने सिर पर दिन भर की गुलामी के कार्यक्रम को लिए हुए। दफ्तर जाना है, साहेब का मुकाबला करना है, उसकी गालियाँ सुननी हैं, ठोकरें खानी हैं। और रोज शाम के समय वह चिंतित और अशांत लौटता है। लंबी गृहस्थी के भार से उसका मस्तक झुका हुआ है, बच्चों को गुलामी के लिए तैयार करने के लिए उन्हें शिक्षा देनी है। माता, विधवा दादी, बहन और न जाने कितने आश्रित उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—उसकी नौकरी की, उसकी कमाई की खैर मना रहे हैं।

और इसके बाद ! इसके बाद आते हैं छोटे-मोटे दूकानदार जो सुबह से शाम तक पशु की तरह अपनी दूकान के खूँटे में बँधकर पैसा पैदा करते हैं। और पैसा पैदा करने के लिए मानो उनकी यह मेहनत अकेले काफ़ी नहीं होती; उन्हें झूठ, फ़रेब, दगाबाजी का अवलंबन लेना होता है।

और फिर इसके बाद ! लंबे-लंबे व्यापारी और पूँजीपति,
जिनका एकमात्र उद्देश्य है पैसा पैदा करना, दुनिया को लूटना, मनुष्यों को भूखों मारना। रुपया पैदा करने के लिए ये सब कुछ कर सकते हैं, इनके पास न धर्म है, न ईमान है। इनकी शक्ति है इनका साहस—खुलकर खेलना। इस पर कोई बंधन नहीं है, इनके लिए कोई नियम नहीं।

ये वेश्याएँ, ये शराबखाने, ये थियेटर, ये सिनेमा, ये घुड़दौड़ और कितने ही ऐसे सामान इन्हीं लोगों की कृपा के फल हैं, इन्हीं लोगों को प्रसन्न करने के लिए कलकत्ता का जन-समुदाय नरक का जीवन व्यतीत कर रहा है, इन्हीं लोगों की दानवता को तुष्ट करने के लिए मनुष्य ने अपने को पशु से भी गया-बीता बना लिया है।

२

युक्त-प्रांत से कलकत्ता जानेवाले रईस और ताल्लुकेदार अक्सर चौरंगी के मशहूर प्रिंसेज होटल में ठहरा करते हैं। प्रभानाथ ने उन्नाव से ही उस होटल में दो कमरों का एक सेट रिजर्व करा लिया था। अपनी पुरानी कार देकर उसने नई कार भी खरीद ली। अब उसके सामने चहल-पहल से भरा विराट् कलकत्ता नगर था और उसके सामने उसकी छः सिलेंडर की नई ब्युक कार थी।

चौथे दिन प्रभानाथ लैंसडाउन रोड पर अपनी कार लिए जा रहा था—लेक की तरफ घूमने के लिए। गाड़ी की स्पीड काफी धीमी थी, प्रभानाथ अपने विचारों में मग्न था। प्रभानाथ को कलकत्ता अच्छा नहीं लगा था, कृत्रिमता के उस विशाल नगर में स्वच्छंद वातावरण में पले हुए नवयुवक का मानो दम घुट रहा था। जिस उल्लास और उत्साह को लेकर वह चला था, चार दिन में ही वह ठंडा पड़ गया था। कलकत्ता की दानवता ने उस भोले नवयुवक की आत्मा पर एक प्रहार-सा किया। उसे कलकत्ता के अनियंत्रित हाहाकार से अरुचि हो रही थी—वह सोच रहा था।

उसने कार एक सूनी गली में मोड़ दी। भवानीपुर के उस हिस्से में उसे एक प्रकार की शांति-सी मिली। वह थोड़ी दूर ही गया होगा कि उसे पिस्तौल की एक आवाज सुनाई पड़ी। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी। प्रभानाथ अपने विचारों से चौंक उठा। जिस ओर से आवाजें आईं, उसने उस ओर देखा। वह एक मकान का पिछवाड़ा था, जिसका सामना लैंसडाउन रोड पर था।

और उसने देखा कि उसकी मोटर के सामने करीब पाँच गज की दूरी पर एक युवती पिस्तौल ताने खड़ी है। कार की स्पीड वैसे भी तेज न थी—प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती ने झपटकर कार की बाईं ओर वाला दरवाजा खोला और वह प्रभानाथ के बगल में बैठ गई। उसके दाहिने हाथवाली पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों से लगी थी।

"तेजी के साथ चलो—एकदम ! पुलिस पीछे है।" भर्राए हुए गले से युवती ने कहा।

पिस्तौल की आवाजें फिर हुईं, प्रभानाथ ने कार तेज कर दी। कार तेजी के साथ चली जा रही थी और युवती का पिस्तौल प्रभानाथ की पसलियों में चुभ रहा था। प्रभानाथ ने कनखियों से युवती की ओर देखा। वह करीब बीस या बाईस वर्ष की बंगाली युवती थी और उसके मुख पर कठोरता थी। उसकी आँखें नीले चश्मे से ढकी थीं, और ढलती हुई संध्या के अंधकार में प्रभानाथ उन आँखों को देख न पा रहा था। पर उसे यह विश्वास हो गया था कि वे आँखें बड़ी-बड़ी हैं और प्रकाशवान हैं। युवती मंझोले कद की थी और दुबली थी; उसका रंग गेहुँआ था और वह कुरूप न थी, तो सुंदर भी नहीं थी। प्रभानाथ तेजी से गाड़ी चलाए जा रहा था; अब वह बालीगंज लेक के करीब पहुँच गया था। धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि युवती का हाथ कुछ शिथिल होने लगा है। स्टियरिंग ह्वील उसके दाहिने हाथ में था, एक झटके के साथ उसने अपने बाएँ हाथ से युवती का हाथ पकड़कर ऐंठ दिया। पिस्तौल युवती के हाथ से छूट पड़ी। पिस्तौल उठाकर प्रभानाथ ने अपनी जेब में रख ली, मुसकराते हुए उसने युवती से कहा, "कहिए ! अब आप क्या चाहती हैं ?"

युवती अपने विचारों में मग्न थी; संभवत: वह उस कांड पर ही सोच रही थी जिससे वह बचकर आई थी। इसी कारण उसका हाथ ढीला पड़ गया था। प्रभानाथ के इस साहस के काम की उसने कल्पना न की थी और इसलिए तैयार भी न थी। और प्रभानाथ ने इतनी शीघ्रता से यह सब किया था कि वह स्तब्ध तथा विमूढ़ रह गई। उसने प्रभानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, पर प्रभानाथ की बात का कोई उत्तर न दिया।

इस बार प्रभानाथ ने अंग्रेजी में कहा, "मैंने आपसे पूछा कि अब आपके क्या इरादे हैं ! आप शायद क्रांतिकारी हैं !"

युवती ने भी अंग्रेजी में उत्तर दिया, "आप जो चाहें अनुमान कर सकते हैं !"

प्रभानाथ मुसकराया, "एक तो क्रांतिकारी होना ही बहुत बड़ा अपराध है, फिर क्रांतिकारी होकर असावधानी करना, यह उससे भी बड़ा अपराध है !"

युवती चुपचाप प्रभानाथ को एकटक देख रही थी। प्रभानाथ ने फिर कहा, "और हर एक शांतिप्रिय, राजभक्त और नेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपराधी को पुलिस के हवाले कर दे !"

युवती ने प्रभानाथ की ओर से मुंह फेर लिया। उसने केवल इतना कहा, "हाँ, हर एक शांतिप्रिय, राजभक्त, कायर गुलाम का यह कर्तव्य है कि वह विदेशी सरकार की सहायता करे !"

प्रभानाथ हँस पड़ा। "खूब कहा ! शाबास ! लेकिन इससे मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिला। मैंने आपसे पूछा कि आपके क्या इरादे हैं ? मेरी कार

में इतना पेट्रोल नहीं कि मैं इस कलकत्ता नगर का चक्कर लगाता फिरूँ और फिर इस नगर से मैं भली-भाँति परिचित भी नहीं हूँ !"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप बैठी थी।

प्रभानाथ ने फिर कहा, "बोलिए न ! आप कहाँ चलेंगी ?"

"आप मुझे पुलिस-स्टेशन ले चलना चाहते हैं न ! वहीं चलिए !" युवती ने कहा।

प्रभानाथ मुसकराया, "जाने भी दीजिए—सरकार को एहसानमन्द बनाने की अभी मुझे कोई जरूरत नहीं ! घर में एक नहीं, दो-दो आदमी यह काम बड़ी खूबी के साथ कर रहे हैं।"

युवती ने आश्चर्य से प्रभानाथ को देखा, "क्या कहा ? मैं समझी नहीं !"

"यही कि मेरे पिता और मेरे काका यह काम कर रहे हैं। घर में दो राज-भक्त जरूरत से ज्यादा हैं।"

इस बार युवती ने गौर से प्रभानाथ को देखा। लंबा और गोरा-सा खूब-सूरत नवयुवक—मुख पर तेज। आँखों में चमक, चौड़ा सीना और बातचीत में एक लापरवाही की अजीब मस्ती ! युवती कुछ क्षणों के लिए अपनी बगल में बैठे हुए नवयुवक को देखती रही।

प्रभानाथ युवती को न देख रहा था, फिर भी उसे उसकी दृष्टि का पता था। कार उस समय तक लेक का एक चक्कर लगा चुकी थी। उसने फिर कहा, "तो फिर आपने बतलाया नहीं कि मैं आपको कहाँ पहुँचा दूँ ? जिस काम को मुझे जबरदस्ती अपने ऊपर लेना पड़ा है, अब उसे प्रसन्नतापूर्वक पूरा भी कर देना चाहता हूँ !"

युवती एकाएक काँप उठी। अभी तक वह शांत थी, अब एकाएक उसे उस खतरे की याद हो आई, जिससे वह निकलकर आई थी। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "मुझे···मुझे श्यामबाजार···नहीं—नहीं, श्यामबाजार में हीं ले चलिए !"

प्रभानाथ ने अपनी कार रसा रोड से श्यामबाजार की तरफ मोड़ दी ! उसने फिर पूछा, "क्या उस घर में और भी लोग थे ?"

"हाँ, दो और ! लेकिन पुलिस के आते ही एक निकल भागा था, और दूसरे के मत्थे पर दो गोलियाँ लगीं। उफ़ ! ···"युवती काँप रही थी।

प्रभानाथ ने फिर कोई बात न की, वह कुछ सोचने लगा। [illegible] पास पहुँचकर उसने फिर कहा, "क्या पुलिस आपको पहचानती है ?"

"शायद नहीं !"

"फिर उसने उस मकान पर छापा क्यों मारा ?"

"मैं ठीक नहीं कह सकती। शायद उस मकान पर उनका [illegible]"

"क्यों ? वह मकान किसका है ?"

"किराए का। हम लोगों की वहाँ बैठक भर हुआ [illegible]

हथियार भी वहीं रहते थे लेकिन वहाँ रहता कोई नहीं था।"

"यह बात है!" कहकर प्रभानाथ मौन हो गया।

श्यामबाजार के पास पहुँचकर प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करते हुए कहा, "देखिए, आप यहीं कहीं उतर जाइए—शायद मेरा आपका मकान देखना उचित न होगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि आपको बचानेवाला अभी तक आपका पूरा पता नहीं जानता।" यह कहकर प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती कार से उतरी नहीं। प्रभानाथ ने फिर कहा, "देखिए, मैं आपका नाम नहीं जानता, आपका पता नहीं जानता, और मैं आपका नाम और पता पूछूंगा भी नहीं। मुझे आपके साहस पर आश्चर्य है, आपके प्रति मुझमें एक प्रकार का आदर का भाव जाग उठा है। लेकिन अगर आपको मेरी किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़े, ऐसी सहायता जो मैं बिना जोखिम में पड़े कर सकता हूँ, तो आप मुझसे सहर्ष ले सकती हैं!" यह कहकर प्रभानाथ ने अपने पर्स से अपना कार्ड निकालकर युवती को दे दिया। उसके कार्ड पर उसका कलकत्ता वाला पता लिखा था।

युवती ने कार्ड ले लिया और प्रभानाथ की ओर कृतज्ञता से देखा। वह कार से उतर पड़ी, उसने प्रभानाथ को आदरपूर्वक नमस्कार किया और वह चल दी।

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आयी। उसने युवती को बुलाकर अपनी जेब की तरफ इशारा किया, "और यह! क्या इसकी आपको कोई आवश्यकता पड़ेगी?"

"इस भीड़ में इसे किस तरह ले जाऊँगी?" युवती के स्वर में एक प्रकार की अनिश्चितता थी।

"और शायद अभी इसका आपके पास होना खतरनाक भी साबित हो! खैर, मेरे पास यह आपकी अमानत है, जब जी चाहे ले लीजिएगा।"

२

युवती को श्यामबाजार में उतारकर प्रभानाथ अपने होटल में लौट आया। होटल में पहुँचकर उसने देखा कि अभी केवल साढ़े आठ बजे हैं। बिजली का पंखा खोलकर वह एक आरामकुर्सी पर बैठ गया, और सोचने लगा। वह धीरे-धीरे उस नाटक की महत्ता का अनुभव करने लगा, जिसके अभिनय में एक आकस्मिक परन्तु प्रमुख अभिनय करके लौटा था। उसने मन-ही-मन पूछा, 'लेकिन क्या यही अंत है?'

और एकाएक उस युवती की शक्ल, जिसे उसने पूरी तरह देखा भी न था, उसकी आँखों के आगे नाच उठी। वह दुबला-पतला शरीर, लंबा और निस्तेज मुख, बड़ी-बड़ी चमकती हुई आँखें! वह युवती सुंदरी न थी, प्रभानाथ ने इस विषय में अपना निर्णय मन-ही-मन दे दिया था; पर वह कुरूप है—वह यह किसी

हालत में स्वीकार न कर सकता था। और उस युवती का स्वर! अजीब तरह का, कुछ फटा हुआ, कुछ दृढ़ और कुछ मीठा! आखिर वह युवती कौन थी? प्रभानाथ ने सुन रखा था कि बंगाल में क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा दल है, और उस दल में स्त्रियाँ भी हैं। उसने पढ़ा था कि वे स्त्रियाँ भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर काम कर रही हैं। पर उसने कभी गंभीरता-पूर्वक इस बात पर न सोचा था, सोचने की शायद उसे जरूरत ही नहीं पड़ी थी। उसके कुल और समाज में स्त्रियाँ कोमल, परतंत्र तथा विवश होती थीं; वे ममता की मूर्ति थीं, उनकी मुसकराहट में करुणा थी, उनके जीवन में त्याग था। और प्रयाग के सभ्य समाज के एक अंग में उसने देखा था कि स्त्री विलासिता और वासना की प्रतिमूर्ति है। वह नाचती है, गाती है, लुभाती है और अपने इस कृत्रिम स्वर्ग में लोगों को डुबाकर वह नरक दिखला देती है। 'स्त्री के उस रूप को' जिसे उसने उस दिन देखा था, पहले कभी न जाना था।

प्रभानाथ ने पढ़ा था कि स्त्री शक्ति है, वह दुर्गा है, वह काली है। पर उसने केवल पढ़ा भर था, उस दिन उसने काली के साक्षात् दर्शन भी किए। यह करुणा और विलासिता की मूर्ति नारी—यह प्राणों पर खेलने कैसे निकल आई?

और किसी ने प्रभानाथ के अंदर से कहा, 'इसमें आश्चर्य ही क्या है? नारी मिटना जानती है, मरना जानती है।'

प्रभानाथ मुसकराया, 'नारी मिटना जानती है, मरना जानती है, पर वह मारना कब से जान गई है? दूसरों के खून से हाथ रँगना, पिस्तौल लेकर बाहर निकल आना—उफ!'

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आई, जो उसकी जेब में पड़ा था। वह उठा, खूँटी पर टँगे कोट की जेब से उसने पिस्तौल निकाली, पिस्तौल को उसने गौर से देखा। वह एक सस्ते मेल की जापानी पिस्तौल थी, छः कारतूस उसमें मौजूद थे।

प्रभानाथ ने अभी तक कीमती और अच्छी पिस्तौलें ही देखी थीं। उसके पिता के पास तीन पिस्तौलें थीं—ताल्लुकेदार होने के कारण पंडित रामनाथ तिवारी को लाइसेंस की जरूरत नहीं थी। उसके पास भी एक पिस्तौल थी, लेकिन उसे लाइसेंस लेना पड़ा था। उसकी पिस्तौल कोल्ट थी—कीमती और निशाने की पक्की! प्रभानाथ ने उलट-पुलटकर उस पिस्तौल को देखा, फिर धीरे से उसने उस पिस्तौल को अपने ड्राअर में बंद कर दिया। उसके पास जो लाइसेंस था, उसके अनुसार वह बंगाल में अपनी पिस्तौल नहीं ला सकता था।

उस रात प्रभानाथ का सिनेमा जाने का प्रोग्राम था, उसने टिकट मँगवा लिया था। वह उठा, लेकिन उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैरों में बल नहीं है, उसके शरीर में बल नहीं, उसके प्राणों में बल नहीं। एक अजीब तरह की थकावट उसमें भर गई है।

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सोकर उठा। रातभर वह सपने देखता रहा, और वे सपने सुखद न थे।

सुबह की चाय उसने अपने कमरे में ही मँगा ली। नौकर जिस समय चाय की ट्रे लाया, उसके हाथ में एक कागज का टुकड़ा था, जिस पर अंग्रेजी में लिखा था—'वीणा मुकर्जी'।

प्रभानाथ के सामने रातवाली बंगाली युवती की तसवीर आ गई। तो उस स्त्री का नाम वीणा मुकर्जी था! नौकर ने कहा, "सरकार! क्या हुक्म है?"

"यहीं भेज दो, और साथ में एक ट्रे चाय और!"

नौकर चला गया। थोड़ी देर बाद वीणा ने प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश किया, पर वह अकेली न थी। उसके साथ एक और स्त्री थी। इन दोनों के कमरे में प्रवेश करते ही प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, "आइए—नमस्कार!" कहकर उन दोनों का उसने स्वागत किया।

"नमस्कार!" कहकर दोनों युवतियाँ कुर्सियों पर बैठ गईं।

वीणा ने अपने साथ वाली युवती की ओर इशारा करते हुए, "ये मेरी सखी प्रतिमा दे हैं। और ये हैं मिस्टर प्रभानाथ, जिनकी बातें हम कर रही थीं!"

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" प्रतिमा ने कहा।

"मुझे भी आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई।" प्रभानाथ ने उत्तर दिया। इसके बाद उसने गौर से प्रतिमा को देखा। साँवला-सा लंबा मुख, गाल पिचके हुए, आँखें धँसी हुई और उन आँखों पर मोटे-मोटे काँचोंवाला चश्मा। मँझोले कद की दुबली-सी स्त्री थी। उसके मुख पर कठोरता थी, उसकी आँखों में कठोरता थी, उसके शरीर में कठोरता थी, उसके स्वर में कठोरता थी—उसके व्यक्तित्व में कठोरता थी।

प्रभानाथ ने प्रतिमा से अपनी आँखें हटाकर वीणा को देखा—दोनों में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों में ही कठोरता थी, दोनों में ही पुरुषत्व था। अन्तर केवल इतना था कि वीणा इन दोनों में अधिक अच्छी दीखती थी, वीणा की आँखों में कठोरता होते हुए भी चमक थी, तरलता थी। वीणा के मुखवाली कठोरता में निहित एक प्रकार की कोमलता थी जो कभी-कभी उभर आती थी। उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण था, जिसे प्रभानाथ समझ न पा रहा था। वीणा के स्वर में भी कृत्रिम कठोरता के अंदर सरसता थी—भावना थी।

नौकर चाय की एक और ट्रे लाकर रख गया। प्रभानाथ ने मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "मैं अभी चाय पीने बैठा ही था कि आप लोग आ गईं। आप लोग भी चाय पीजिएगा न!" कुछ रुककर उसने फिर कहा, "और आप लोगों के मौजूद रहते मैं अपने हाथ से चाय तैयार करूँ, यह तो ठीक न होगा!"

प्रतिमा ने उत्तर दिया, "क्यों?—इसलिए कि यह सब काम अभी तक

स्त्री करती आई है; आप लोगों के लिए स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन है !" और मानो अपनी इस कटुता पर वह स्वयं जोर से हँस पड़ी।

लेकिन वीणा ने चाय तैयार कर दी। उसने एक प्याला प्रभानाथ को दिया।

वीणा के हाथ से चाय का प्याला लेते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आपने गलत नहीं कहा; स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन ही नहीं है, वह स्वयं सुख है !"

"स्त्री सुख है या उसका शरीर सुख है, उसकी सुंदरता सुख है ? स्त्री का रूप उससे छीन लो, उसकी मोहिनी उससे छीन लो, और फिर ? फिर वही स्त्री तुम्हारे वास्ते नरक बन जायगी !" प्रतिमा के स्वर में एक अजीब तरह की कर्कशता थी।

प्रतिमा के इस कथन से, उसके स्वर की कर्कशता से प्रभानाथ सहम-सा गया। उसने एक बार फिर गौर से प्रतिमा को देखा और वह घबरा गया। अचानक उसका ध्यान प्रतिमा की उम्र पर गया, उसकी अवस्था करीब पचीस वर्ष की थी। एकाएक उसके मन में यह प्रश्न उठा, 'क्या ये दोनों युवतियाँ अभी तक अविवाहित हैं और अगर अविवाहित हैं तो क्यों ? और अगर नहीं हैं तो ये इतनी स्वतंत्र किस प्रकार हैं ?'

प्रभानाथ ने प्रतिमा की उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उसके पास कोई अच्छा उत्तर था भी नहीं। वह चुपचाप चाय पीने लगा। प्रतिमा भी चुपचाप चाय पी रही थी। यह मौन वीणा को किसी हद तक अप्रिय लग रहा था; पर वह भी मौन रहने को विवश थी। चाय समाप्त हो गई। प्रभानाथ ने अपना प्याला रखते हुए कहा, "तो फिर !"

इस 'तो फिर !' के अंदर वाले प्रश्न को प्रतिमा समझी; वीणा नहीं। प्रतिमा ने कहा, "हम लोग अपनी पिस्तौल वापस लेने आई हैं और साथ ही आपको आपके साहस पर बधाई देने आई हैं।"

प्रभानाथ मुसकराया, "मेरे साहस पर आप लोग मुझे बधाई देने आई हैं ? धन्यवाद ! पर मैं समझता हूँ कि बधाई मुझे देनी चाहिए, आपको नहीं। आप लोग स्त्री होकर प्राणों का खेल खेल रही हैं !"

प्रतिमा पर प्रभानाथ की मुसकराहट का कोई असर नहीं पड़ा। उसी गंभीरता और शुष्कता के साथ उसने कहा, "यह इसलिए कि हमारे देश के नवयुवक नपुंसक और कायर हैं; न उनमें साहस है और न उनमें स्वाभिमान है !"

"शायद आप ठीक कहती हैं।" प्रभानाथ इस संबंध में अधिक तर्क नहीं करना चाहता था।

थोड़ी देर तक फिर मौन छाया रहा। प्रभानाथ ने कुछ देर पहले तर्क-वितर्क को दबा दिया था, लेकिन उससे रहा न गया। उसके अंदरवाली [illegible] उसके अंदरवाला कौतूहल और उसके अंदरवाला मानव जानना चाह[illegible]

हो रहा है और क्यों हो रहा है। उस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा,
"आखिर यह सब क्यों ? आप लोगों ने जो मार्ग अपनाया है, उससे
क्या ? क्या वास्तव में आप समझती हैं कि इस मार्ग पर चलकर आप लोग
कर सकेंगी—आप लोगों को कोई सफलता मिलेगी ?"

इस बार वीणा के बोलने की बारी थी, "हम लोग कुछ कर सकेंगी या नहीं,
को जानने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं। अंत को किसने जाना है—कोई
तला सकता है ? फिर अंत की चिंता ही क्यों की जाय ?"

इस उत्तर से प्रभानाथ सकपका गया। अजीब तरह की स्त्री थी वह, जिसने
ह उत्तर दिया था, और अजीब तरह का उसका तर्क था। फिर भी उसने कहा,
"मैं मानता हूँ कि अंत को कोई नहीं जान सका है, पर उसकी कल्पना तो की जा
सकती है। कल्पना करने के लिए ही तो यह बुद्धि हमें मिलती है।"

"लेकिन तुम्हारी यह कल्पना सही है या गलत है—इसका निर्णय कौन
करेगा ? तुम जिस वातावरण में रह रहे हो, जिस तरह की शिक्षा तुम पा रहे हो,
जिस दृष्टिकोण को तुम्हारे सामने पेश किया जा रहा है, उस सब का असर तुम्हारी
कल्पना पर पड़ता है या नहीं ?" वीणा ने पूछा।

प्रभानाथ ने देखा कि वे स्त्रियां, जिनसे वह बातें कर रहा है, काफ़ी आगे
बढ़ी हुई हैं; फिर भी अपनी पराजय, और खास तौर से स्त्रियों के हाथ से, उसे
स्वीकार न थी। उसने कहा, "पर वास्तविकता के प्रति अंधा होना भी तो
अच्छा नहीं है। हमें वास्तविकता को देखना ही पड़ेगा। इस इतनी बड़ी ब्रिटिश
सरकार को, जिसके पास बड़े-बड़े विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं, थोड़े से
नौजवान, जिनके पास निशाने के पक्के हथियार तक नहीं हैं, किस प्रकार के बल
से हरा सकेंगे ? आप एक आदमी को मार देंगी, लेकिन इससे क्या ? और जिस
आदमी को आप मार देंगी, बहुत संभव है, वह बेचारा उतने बड़े दंड का भागी
भी न हो जो आप उसे देंगी। फिर यह सरकार एक आदमी की जान का बदला
दस आदमियों की जान से लेगी, महज अपनी शान, अपना गौरव कायम रखने के
लिए।"

वीणा हंस पड़ी, "हां, आप ठीक कहते हैं। वास्तविकता को भुलाना ठीक
नहीं। और मैं तो केवल एक वास्तविकता जानती हूं; वह यह कि हम सब
गुलाम हैं—पशुओं से गये-बीते हैं। गुलाम को अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं;
उसकी जिंदगी दूसरों के वास्ते है। उस जिंदगी से फ़ायदा ही क्या ? दस नहीं
अगर सौ, बल्कि हजार आदमी मारे जायं, तो मुझे खुशी होगी। मैं समझूंगी कि
दुनिया में हजार गुलामों की कमी हुई।"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा। भावना के आवेश में उसने वह
भयानक बात कह डाली थी, लेकिन उस बात में रक्त को जमा देनेवाली
भयानकता के साथ उससे अधिक ठंडा और कुरूप सत्य था। वह एकटक वीणा
को देखता रहा।

प्रतिभा प्रभानाथ की यह मुद्रा देखकर मुसकराई, "बहुत संभव है, आपको हमारी बातें कुछ विचित्र-सी लगें, आप हमारी बातों से सहमत न हों। आपको बहलाने के लिए दुनिया में बहुत-कुछ है। सुख-वैभव, उल्लास-विलास, सभी कुछ! लेकिन हमारे सामने सत्य है, महाकुरूप सत्य! हमारे सामने भूख, बेकारी, अपमान और पशुता का जीवन है। हम लोग लाख कोशिश करने पर भी अंधे नहीं बन सकते!"

प्रभानाथ कह उठा, "मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, जरा भी नहीं समझ पा रहा हूँ! मैंने कभी इस पहलू पर सोचा ही नहीं!" और वह उठ खड़ा हुआ। ड्राअर से पिस्तौल निकालकर उसने सामने मेज पर रख दी। उसने कहा, "लीजिए!"

वीणा ने पिस्तौल उठाकर अपने झोले में डाल ली। एकाएक उसे खयाल हो आया कि जो कुछ बातें अभी हुईं, उनसे बहुत संभव है कि प्रभानाथ के दिल को आघात पहुँचा हो। उसने मुसकराते हुए कहा, "हम लोगों की बात का बुरा न मानिएगा—जो कुछ हमने कहा, आवेश में आकर कहा; आपको दुखाने के लिए जरा भी नहीं!"

प्रभानाथ को भी मुसकराना पड़ा, "नहीं, नहीं—मैंने एक नया दृष्टिकोण देखा, जो शायद ठीक हो। आप नि.सकोच रहें, मुझे बुरी लगने के स्थान पर यह बातचीत अच्छी ही लगी।"

प्रतिभा और वीणा उठ खड़ी हुईं। वीणा ने चलते हुए कहा, "क्या फिर कभी हम लोग आपके यहाँ आ सकती हैं? आप अभी कितने दिन और कलकत्ता रहिएगा?"

"मैं कह नहीं सकता, लेकिन अभी कम-से-कम पंद्रह दिन तो यहाँ रहना ही होगा; और रही आप लोगों के आने की बात, वह मैं आपसे कभी-कभी आ जाने के लिए कहना ही चाहता था, लेकिन संकोचवश कह नहीं सका।"

५

वे दोनों युवतियाँ चली गईं और प्रभानाथ अकेला रह गया। अब उसका मन भारी न था, उसके शरीर में स्फूर्ति थी, उसकी विचारधारा में हलचल थी। उसने एक नई दुनिया देखी, एक नया दृष्टिकोण देखा। वह उठ खड़ा हुआ।

फोन करने के लिए वह नीचे उतरा। फोन करनेवाले कमरे में पहुँचकर उसने देखा कि एक दुबला-सा बंगाली युवक वहाँ के बंगाली क्लर्क से बातें कर रहा है। बंगाली क्लर्क ने कहा, "नहीं, अब मेरे पास रुपया नहीं है। अभी-अभी दस दिन पहले तुम पाँच रुपये ले गए थे, वही वापस नहीं मिले। मैं कहाँ से दूँ?"

उस युवक ने कहा, "सिर्फ दो रुपये! माँ की हालत बहुत खराब है। सवा रुपया दवा के लिए और बारह आने पथ्य के लिए। बड़ी दया होग ~~आपका

सब रुपया अदा कर दूंगा।"

उस बंगाली क्लर्क ने उस युवक की ओर बड़ी विवशता की दृष्टि से देखते हुए कहा, "नहीं सोमेन, मेरे पास कुल बारह आने हैं। भला चालीस रुपये महीने की नौकरी करके और कलकत्ता में रहकर मैं बचा ही क्या सकता हूँ ?"

प्रभानाथ ने उस युवक को देखा। एक मोटी और मैली धोती, और एक कुरता। उसके पैरों के चप्पल जवाब देने लगे थे। पर शक्ल से वह पढ़ा-लिखा मालूम होता था। प्रभानाथ ने क्लर्क के पास जाकर कहा, "माफ़ कीजिएगा—क्या बात है ?"

प्रभानाथ की इस दख़लंदाजी पर उस समय उस बंगाली क्लर्क न बुरा नहीं माना। उसने एक ठंडी सांस लेते हुए कहा, "क्या बतलाऊँ—यह मेरा दूर का भतीजा है, एम० ए० पास है। लेकिन इससे क्या ? एक पैसा नहीं पैदा करता, दर-दर की ठोकरें खा रहा है।"

उस नवयुवक की आँखों में आंसू थे। उसने कहा, "इसमें मेरा क्या दोष है ? मेरे भाग्य का दोष है। कहीं भी तो नौकरी नहीं मिलती, बीस-पचीस की भी नहीं।" प्रभानाथ की ओर देखते हुए उसने कहा, "आप ही बतलाइए, नौकरी करने के लिए मैं तैयार हूँ, दिन-भर इस शहर की धूल फाँकता हूँ, चक्कर लगाता हूँ, लेकिन नौकरी नहीं मिलती !"

"फिर ?" प्रभानाथ ने पूछा।

क्लर्क ने कहा, "और मैं चालीस रुपया महीना पा रहा हूँ—पत्नी, चार बच्चे, और एक विधवा बहन ! भला बताइए, मैं किस तरह से जिंदा हूँ—यह मैं ही जानता हूँ। और इसकी माँ बीमार है—वह भूखों मर रही है। माँ के लिए दवा नहीं है। हे भगवान् !" यह कहकर उसने अपनी जेब से बारह आने निकालकर सोमेन के आगे रख दिए, "ले जाओ, केवल इतना ही है।"

सोमेन ने बारह आने पैसों को एक बार देखा। ऐसा मालूम होता था कि वह उन्हीं बारह आने पैसों को ले लेगा। पर उसने एकाएक अपने को रोका—उसने एक ठंडी सांस ली और वहाँ से चल दिया।

प्रभानाथ ने टेलीफोन नहीं किया, लपककर उसने दरवाज़े से निकलते हुए सोमेन को पकड़ लिया। उसने कहा, "देखो, एक परदेसी की थोड़ी-सी सहायता पर बुरा न मानना !" यह कहकर उसने पाँच रुपए का एक नोट सोमेन के हाथ में रख दिया।

और उसने देखा कि सोमेन की आँखों में आँसू भरे हैं।

प्रभानाथ तेज़ी से अपने कमरे में लौट आया। उसने कपड़े पहने और वह निकल पड़ा। उसने अपनी कार नहीं ली। अभी तक उसने कलकत्ता को एक दूसरी ही नज़र से देखा था। अभी तक वह विलासी की हैसियत से घूमा था; ऊँची इमारतें उसने देखी थीं, थियेटर उसने देखे थे, सिनेमा उसने देखे थे। बड़े-

बड़े होटलों में उसने खाना खाया था, गाना सुनते हुए, नाच देखते हुए। और उसने समझा था कि वह कलकत्ता अच्छी तरह से देख रहा है।

आज वह पैदल निकल पड़ा, कलकत्ता का शरीर देखने के लिए नहीं, कलकत्ता की आत्मा देखने के लिए। वह धरमतल्ला पहुँचा। दफ़्तरों का समय हो चुका था, इसलिए वहाँ उतनी भीड़ न थी जितनी वह शाम के समय देखा करता था। और उसने वहाँ भिखमंगों का जमाव देखा। एक—दो—तीन—चार··· अरे, इन भिखमंगों की संख्या की कोई सीमा नहीं! एक ओर से आते हैं, दूसरी ओर चले जाते हैं—बूढ़े, अपाहिज, कोढ़ी!

धरमतल्ला से वह चला चितपुर रोड की ओर। और उसने तंग गलियों को देखा जिनमें से बड़ी बदबू आ रही थी। करोड़पति व्यापारी की दूकान के सामने बैठा कराह रहा था कोढ़ियों का मुहताज जन-समुदाय। वह और आगे बढ़ा।

अब वह बड़ा बाजार पहुँच गया था—कलकत्ता के लखपतियों और करोड़पतियों के मुहल्ले में। एकाएक वह चौंक उठा; उसने मुड़कर देखा, दाहिनी ओर हैरीसन रोड पर रिक्शावाला चिल्ला रहा था, 'दो सवारियाँ और चार पैसे! डेढ़ मील रिक्शा खींचनी पड़ी है।' और प्रभानाथ ने देखा कि वह रिक्शावाला दुबला-सा अधेड़ आदमी है, जिसके शरीर पर माँस नहीं है। उसके सामने दो मारवाड़ी खड़े थे—हरएक का वजन ढाई मन से कम न होगा। एक ने कहा, "चार पैसे दे दिए हैं—ठीक है। जाओ। मुकदमा दायर करो जाकर!"

लोग एक तरफ़ से आते थे और दूसरी तरफ़ चले जाते थे। रिक्शावाला रो रहा था और गालियाँ दे रहा था। किसी को फ़ुरसत नहीं थी कि वह उस रिक्शावाले की फरियाद सुने। दोनों मारवाड़ी चल पड़े। तब तक प्रभानाथ ने बढ़कर एक का हाथ पकड़ा, "क्यों जी, तुम्हें शरम नहीं आती!" उसने दृढ़ता के साथ कहा।

जिस मारवाड़ी का हाथ पकड़ा था, उसने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "तुम कौन हो? छोड़ो मेरा हाथ!" और उसने झटका दिया। लेकिन उसको ऐसा मालूम हुआ कि उसका हाथ फौलाद के शिकंजे में जकड़ा हुआ है।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं कोई भी हूँ, इससे तुम्हें मतलब नहीं। मैं सिर्फ़ यह कहता हूँ कि क्या इस रिक्शावाले की मेहनत सिर्फ़ एक आना ही है?"

दूसरे मारवाड़ी ने कहा, "जाओ बाबू—अपना काम देखो जाकर!"

जिस ढंग से और जिस स्वर में यह बात कही गई थी, उससे प्रभानाथ को बुरा लगना स्वाभाविक ही था। उसने उससे डाँटकर कहा, "चुप रहो!" और फिर वह रिक्शावाले की ओर मुड़ा, "क्यों जी, तुम्हारी मजदूरी कितनी होती है?"

"सरकार! मिलना तो मुझे चार आना चाहिए, लेकिन दो आने, दस पैसे, जितना भी मिल जाय, ले लेता हूँ। आखिर पेट तो भरना ही पड़ता है!"

प्रभानाथ ने उस मारवाड़ी से, जिसका हाथ वह पकड़े हुए था, कहा, "एक आना और इस रिक्शावाले को देना होगा।"

भीड़ इकट्ठी हो रही थी और लोग आपस में टीका-टिप्पणी कर रहे थे। उस मारवाड़ी ने, जो मुक्त था, आँखें तरेरते हुए कहा, "अगर हम न दें तो!"

प्रभानाथ ने हाथ को कसते हुए कहा, "तो का सवाल ही नहीं उठता। एक आना देना ही पड़ेगा।"

मारवाड़ी दर्द से कराह उठा। उसने अपने साथी से कहा, "अरे, दो भी एक आना पैसा।"

लोगों की सहानुभूति उस समय तक रिक्शावाले की तरफ नहीं जो कि वास्तव में पीड़ित और गरीब था, बल्कि प्रभानाथ की तरफ़ हो गई थी, क्योंकि प्रभानाथ उस दृश्य का प्रमुख अभिनेता था। कुछ लोग कह उठे, "अब मिला सेर को सवा सेर! बच्चू की अक्ल दुरुस्त हो गई!"

उस समय तक दूसरे मारवाड़ी ने जेब से इकन्नी निकालकर रिक्शावाले के सामने फेंक दी थी।

प्रभानाथ वहाँ से चल दिया।

अब प्रभानाथ बागबाजार की ओर बढ़ा, नगर की गंदगी को पार करते हुए। उस समय दोपहर के बारह बज रहे थे, पर प्रभानाथ को भूख न मालूम हो रही थी। धूप काफ़ी तेज थी, पर प्रभानाथ को गरमी भी न मालूम हो रही थी। वह चल रहा था, सब कुछ देखता हुआ, सब कुछ सुनता हुआ! उसके मन में कोई विचार न था, वह कोई तर्क न कर रहा था। यही देखना-सुनना उसका सारा विचार था, उसका सारा तर्क था।

जिस समय प्रभानाथ होटल लौटा, चार बज चुके थे। वह बुरी तरह थका हुआ था।

६

उस दिन के बाद तीन दिन तक प्रभानाथ होटल के बाहर न निकला। दिन-भर वह अपने कमरे में लेटा रहता था। एकाएक उसकी विचारधारा पर, उसके दृष्टिकोण पर, उसके अस्तित्व पर एक भयानक प्रहार हुआ था—ऐसा प्रहार, जिसके लिए वह जरा भी तैयार न था। वह विश्वास न कर सकता था उन घटनाओं पर, जो दो दिन के अन्दर ही जाड़े की बरफ़ से लदी हुई उत्तरी हवा की भाँति उसके अंदरवाली हरीतिमा को झुलसाती हुई, उजाड़ती हुई निकल गई।

वीणा, प्रतिमा, वह बंगाली युवक जिसका नाम सोमेन था—और वह रिक्शा-वाला। इनमें से हरएक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व लिए हुए था, हरएक व्यक्ति

हिंदुस्तान की ही नहीं, मानवता की दुरवस्था पर प्रकाश डाल रहा
था, हरएक व्यक्ति प्रभानाथ की सोई हुई चेतना पर प्रहार कर रहा था। होटल का खाना, होटल का सुख! ये सब पाशविक हँसी हँस रहे थे, मानवता का उपहास कर रहे थे। और इसी पाशविकता के वातावरण में प्रभानाथ की आत्मा मनुष्यता का मनन कर रही थी, उसको समझने की कोशिश कर रही थी, उसको अपनाने का संकल्प कर रही थी।

चौथे दिन सुबह के समय जब प्रभानाथ चाय पीने के लिए खानेवाले कमरे में गया, वहाँ के बंगाली क्लर्क ने उसके पास जाकर दबी जबान में कहा, "कुँवर साहब! उस दिन आपने मेरे जिस भतीजे को देखा था न, कल रात गले में फाँसी लगाकर उसने आत्महत्या कर ली!"

प्रभानाथ के हाथवाला चाय का प्याला छूट गया, "क्या कहा? आत्महत्या कर ली?"

"जी हाँ!" अपनी आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं को हाथ से पोंछते हुए उसने कहा, "उसकी माँ का परसों देहांत हो गया। अत्येष्टि-क्रिया के लिए भी प्रबंध करने को उसके पास पैसा न था। हम लोगों ने किसी प्रकार सब कुछ किया। और कल! —कल सुबह न जाने क्यों वह अजीब तरह की बातें करने लगा था। कहता था कि माँ को एक दिन को भी सुख-शांति वह नहीं दे सका। माँ ने उसे पढ़ाने-लिखाने में अपना गहना-कपड़ा सब बेच दिया था और उसका लड़का उसकी दवा-इलाज तक न कर सका!"

प्रभानाथ ने ठंडी साँस भरकर कहा, "फिर?"

"हम लोगों ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर सब बेकार! मुझे तो यहाँ हाजिरी बजानी थी; और आज सुबह मालूम हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली। हे भगवान्!"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, उससे चाय नहीं पी गई। वह अपने कमरे में लौट आया और लेट गया। पर उससे लेटे भी न रहा गया। उसकी आत्मा छटपटा रही थी। क्या यह सबकुछ सच था या एक भयानक दर्दनाक सपना? वह उठ पड़ा; उसने घड़ी देखी—ग्यारह बजे थे।

कपड़े पहनकर वह पैदल ही घूमने निकल पड़ा। अभी वह बहुत दूर भी न गया था कि उसने देखा—सामने एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है। वह भीड़ की ओर बढ़ा—कौतूहलवश! भीड़ चीरता हुआ वह आगे पहुँचा और उसने देखा कि एक रिक्शावाला जमीन पर पड़ा है और उसके मुँह से खून निकल रहा है। लोग आते हैं—उसे देखते हैं और चले जाते हैं। कोई कुछ कहता नहीं, करता नहीं। प्रभानाथ ने और बढ़कर रिक्शावाले की शक्ल देखी और वह चीख उठा—'अरे!' यह वही रिक्शावाला था, जिसे प्रभानाथ ने कुछ दिन पहले मारवाड़ी से इकन्नी दिलवाई थी। प्रभानाथ वहाँ खड़ा न रह सका—वह एकदम से चल पड़ा।

उसे एक टैक्सी दिखाई दी—वह उसी में बैठ गया। टैक्सीवाले ने पूछा—"कहाँ ?"

"जहाँ जी चाहे !" प्रभानाथ ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

टैक्सीवाले ने एक बार प्रभानाथ को गौर से देखा, यह अन्दाजने की कोशिश करते हुए कि बाबूजी कितने पिये हुए हैं और बाबूजी की हैसियत क्या है ? पर उसका शक जाता रहा। न बाबू पिये हुए थे और न बाबू की हैसियत कम थी। उसने कार चौरंगी रोड पर मोड़ दी। रास्ते में उसने कहा, "क्या कलकत्ता पहली मरतबा आये हैं ?"

"हाँ !" प्रभानाथ ने मानो उस प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया।

"तभी ! अच्छा तो कलकत्ता की खास-खास जगहें देखेंगे ?" यह कहते हुए कार म्यूजियम के सामने रोक दी, "बाबूजी, यह म्यूजियम है !"

"देख चुका हूँ। बढ़े चलो !"

टैक्सी आगे बढ़ी। विक्टोरिया मेमोरियल के पास पहुँचकर टैक्सीवाले ने टैक्सी धीमी करते हुए कहा, "बाबूजी, यह विक्टोरिया मेमोरियल है।"

"बढ़े चलो—देख चुका हूँ !"

टैक्सी अब अलीपुर में चली जा रही थी। ड्राइवर ने पूछा, "चिड़ियाघर देख चुके हैं, बाबू साहब ?"

"हाँ, अच्छी तरह से !"

टैक्सीवाला झल्लाया। उसने कहा, "और बाबू साहब—टैक्सी का मीटर देख रहे हैं ?"

मीटर पर पाँच रुपये आठ आने आ गए थे। प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "हाँ, मीटर भी देख रहा हूँ ! अच्छा, अब मोड़ दो !"

होटल पहुँचने पर उसे सूचना मिली कि एक स्त्री उसका एक घंटे से इंतजार कर रही है। प्रभानाथ ने कमरे में पहुँचकर वीणा को बुलवाया। वीणा आज बहुत उदास थी। उसे बिठलाते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कहिए ! मेरे बड़े भाग। मैं तो समझता था कि शायद अब आपके दर्शन न होंगे !···आज आप इतनी उदास क्यों हैं ? अरे, आप तो रो रही हैं।"

वीणा ने धीमे स्वर में कहा, "मिस्टर प्रभानाथ! प्रतिभा मुझसे बिछुड़ गई!"

"प्रतिभा आपसे बिछुड़ गई !—मैं समझा नहीं !"

"एक मकान में, जहाँ हम तीस आदमी थे, पुलिस ने छापा मारा। उस सम प्रतिभा अपनी पिस्तौल लिए हुए पुलिसवालों को रोके रही और बाकी आद निकल गए। इसके बाद प्रतिभा गिरफ्तार हो गई !"

"गिरफ्तार हो गई—यह तो बुरा हुआ !"

"नहीं, मिस्टर प्रभानाथ—अभी कुछ और आगे है। पुलिस के हाथ में पड़ अपनी इज्जत खोना, मुखबिर बनाये जाने के लिए असह्य यातनाएँ सहन

मिस्टर प्रमानाथ—आप नहीं जानते, यह कितना भयानक है !
प्रतिमा इसके लिए तैयार न थी।"

प्रभा एकटक वीणा को देख रहा था, "फिर ?"

"फिर प्रतिमा ने वही किया जो उसकी परिस्थिति में पड़े हुए किसी भी समझदार आदमी को करना चाहिए था। उसके पास पोटैशियम साइनाइड था। उस भयानक विष की एक खुराक ने ही प्रतिमा को इस सब से मुक्त कर दिया।"

प्रभानाथ चुपचाप बैठा था; वीणा की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

कुछ देर तक दोनों मौन बैठे रहे। प्रभानाथ के लिए यह मौन असह्य हो गया। उसने उठते हुए कहा, "यह सब हो गया ! उफ !"

"क्या कहा ?" वीणा ने पूछा।

"कुछ नहीं ! सोच रहा था कि एक दिन का भी ठिकाना नहीं ! चारों तरफ देखता हूँ और मालूम होता है कि हर चीज अनिश्चित है।"

वीणा मुसकराई—एक अजीब करुण और विषादमय मुसकराहट थी उसकी, "इतना सोचने से फायदा ही क्या ? हमारा सोचना हमारी सहायता कब कर सकता है ?"

और वीणा की यह मुसकराहट एक तरह से प्रभानाथ के हृदय में घुस गई। उसने कहा, "एक बात पूछूंगा, सही-सही उत्तर दीजिएगा !"

"पूछिए !"

"आपने खाना खाया है या नहीं ?"

कुछ सोचकर वीणा ने कहा, "खाना तो मैंने नहीं खाया। भूख नहीं लगी। सुबह चाय पी ली थी।"

"और मैंने भी नहीं खाया। मैं आपके खाने का भी आर्डर दिये देता हूँ।"

खाना खा चुकने के बाद प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "चलिए, थोड़ा-सा घूम आएँ। फिर आप जहाँ कहिएगा, वहाँ आपको उतार दूँगा।"

आज कई दिन बाद प्रभानाथ ने अपनी कार निकाली। उस समय न जाने क्यों उसके हृदय में एक नई उमंग आ गई थी। यह प्रसन्न था। उसकी बगल में वीणा बैठी थी, ठीक उसी तरह जिस तरह वह उस दिन बैठी थी, जिस दिन उसने वीणा को बचाया था। उसने वीणा से पूछा, "क्या आप कलकत्ता की रहनेवाली हैं ?"

"जी नहीं—मैं चटगाँव की हूँ। कलकत्ता में मैं पढ़ रही हूँ।"

प्रभा मुसकराया, "किस क्लास में ?"

"इस वर्ष एम० ए० पास किया है। आगे क्या करूंगी—मैं नहीं जानती।"

"और मैंने भी इस वर्ष एम०एस-सी० पास किया है। और आगे क्या करूंगा, मैं भी नहीं जानता," यह कहकर प्रभानाथ अपनी ही बात पर हँस पड़ा।

"जानने से न कोई लाभ है, न जानने की कोई आवश्यकता है। आ[illegible]

जानती थी कि आगे उसे क्या करना पड़ेगा !" वीणा ने करुण स्वर में कहा।

"क्या प्रतिभा आपकी रिश्तेदार थी ?"

"नहीं, वह कायस्थ थी, मैं ब्राह्मण हूँ। लेकिन इससे क्या ? वह मेरी अभिन्न साथिन थी, मेरी बहन की तरह थी।" वीणा ने कुछ रुककर फिर कहा, "हम लोग साथ रही हैं, साथ पढ़ी हैं और साथ ही हम लोगों ने काम आरम्भ किया। पर अब !...अब वह मेरा साथ छोड़ गई ! हे भगवान् ! मुझे अकेली छोड़ गई, एकदम अकेली छोड़ गई !"

प्रभानाथ चुपचाप वीणा की बात सुन रहा था, अंदर-ही-अंदर वह सोच रहा था, बड़ी तेजी के साथ ! वह एक विचित्र दुनिया में आ पड़ा था—उस दुनिया के अस्तित्व पर उसका विश्वास करने का जी न चाहता था, लेकिन वह विश्वास करने को मजबूर था। उसने कहा, "कौन किसके साथ रहा है ? प्रतिभा ने अपना काम किया और उसने अपना जीवन सार्थक कर लिया। शायद वह उन अनगिनती लोगों से कहीं ऊँची थी, कहीं भाग्यवान थी जो सुख-वैभव का अकर्मण्यता-मय जीवन बिताकर पशु की मौत मर जाते हैं !"

प्रभानाथ ने यह बात वीणा को सान्त्वना देने को कही थी, पर बात समाप्त होने के बाद उसने यह अनुभव किया कि उसने अपने अंदर निहित एक बहुत बड़े सत्य को ढूंढ निकाला। जो बात उसने कह दी थी, वह उसकी थी, उसके अन्दर वाली मानवता का एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था। और प्रभानाथ को इस पर आश्चर्य हुआ।

"शायद आप ठीक कहते हैं। पर इस समय मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ, कुछ भी नहीं !"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। प्रभानाथ ड्राइव कर रहा था, और उसके मुख पर एक दृढ़ता थी—एक अजीब तरह की चमक उसकी आँखों में थी। एकाएक वह अपनी इस अस्पष्ट और धुंधली विचारधारा से जाग पड़ा, उसने चौंककर वीणा की ओर देखा। और वीणा बैठी थी, शांत—करुण—दयनीय !

प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि आप कहाँ रहती हैं ? चलिए आपके घर पर चलूँ !"

कुछ सोचकर वीणा ने कहा, "शायद आपका मेरे मकान में जाना उचित न होगा। बहुत संभव है कि वहाँ हमारे दल के कुछ लोग इकट्ठा हों और आप उनसे मिलना न चाहें।"

"बहुत संभव है ये मुझसे न मिलना चाहें !" प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "एक अजनबी आदमी—उसका आप लोगों का समुदाय किस प्रकार भरोसा कर सकता है !"

वीणा ने तनिक जोर देकर कहा, "चलिए, आप जरूर चलिए ! ये लोग आप पर भरोसा करें या न करें, पर मैं आप पर भरोसा कर सकती हूँ, कर ही

नहीं सकती, करती हूँ। मैं जानती हूँ कि आप मनुष्य हैं और जब
मैं भरोसा करती हूँ, तब उन्हें भी भरोसा करना होगा।"

"आपको अपने ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" हँसते हुए प्रभानाथ ने कहा।

"आप गलत कहते हैं; मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" वीणा ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया।

'प्रभानाथ ने इस बार वीणा को गौर से देखा; नारी—असहाय और निर्बल! दूसरों पर भरोसा करनेवाली और विश्वास करनेवाली नारी! वीणा सिर झुकाए बैठी थी; उसके मुख पर वही दृढ़ता थी, वही कठोरता थी! पर उस कठोरता और उस दृढ़ता के भीतर छिपी हुई नारी ने ही कहा था, 'मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है।'

प्रभानाथ ने कहा, "तो फिर चलिए—मैं चलता हूँ!"

७

जिस मकान में वीणा रहती थी, वह एक गली में था। मकान छोटा-सा और गंदा-सा था। सड़क पर ही प्रभानाथ को रोककर वीणा ने कहा, "आप थोड़ी देर ठहरिए, मैं आती हूँ।"

करीब पाँच मिनट बाद वीणा लौटी, उसने कहा, "आइए!"

जिस कमरे में वीणा प्रभानाथ को ले गई, वह दुमंजिले पर था। उस समय उस कमरे मे तीन युवक बैठे थे। वीणा के साथ प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश करते ही वे तीनों युवक उठ खड़े हुए। उनमें से एक ने अंग्रेजी में कहा, "आपका स्वागत है!"

प्रभानाथ ने कमरे को अच्छी तरह देखा। वह काफी बड़ा कमरा था, लेकिन उसमे थोड़ा सा सामान था। दो टीन के छोटे-छोटे ट्रंक, दो खूटियाँ जिन पर दो धोतियाँ लटक रही थीं, कुछ किताबें जो उन ट्रंकों पर रखी थीं या बिस्तरों पर बिखरी पड़ी थीं, और दो बिस्तरे जो फर्श पर अगल-बगल बिछे थे और जिन पर वे तीनों युवक बैठे थे। इसके बाद प्रभानाथ ने उन तीनों युवकों को देखा। प्रभानाथ को खड़ा देखकर वीणा ने कहा, "मेरे यहाँ कुर्सी तो कोई नहीं है, आप जमीन पर बैठने का कष्ट करें।"

प्रभानाथ लज्जित-सा जमीन पर बैठ गया।

प्रभानाथ जिस युवक के सामने बैठा था, वह लंबा-सा और गठे बदन का था। उसका रंग किसी हद तक साँवला कहा जा सकता था, लेकिन वह कुरूप न था। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। उसका नाम अपूर्व गंगोली था, पर उसके साथी उसे बड़दा कहते थे। अपूर्व ने एम॰ एस-सी॰ पास किया था और कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे वह रिसर्च-स्कॉलर रह चुका था। उसका प्रमुख विषय था केमिस्ट्री, और वह उन दिनों एक [illegible] फर्म में

नौकरी कर रहा था।

बड़दा की दाहिनी तरफ दूसरा युवक था। वह भी लंबा था, पर वह दुबला और गोरा था। उसकी आंखों पर चश्मा लगा था और उसके कपड़ों से मालूम होता था कि उसके संबंधियों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। वह विश्वविद्यालय में एम० ए० का विद्यार्थी था और उसकी अवस्था लगभग इक्कीस वर्ष की रही होगी। उसका नाम था अविनाश घोष।

बड़दा की बायीं ओर वाला युवक काला था और किसी हद तक कुरूप कहा जा सकता था। उसके कपड़े मैले और मोटे थे। उसकी अवस्था लगभग चौबीस वर्ष रही होगी और उसका नाम हरिपद मलिक था। पर उसके साथी उसे महाजन कहते थे। हरिपद को देखनेवाला इस बात की कल्पना भी न कर सकता था कि इस युवक ने अपने दल के संचालन में करीब-दस हजार रुपये अपने घर से दिए हैं।

वीणा भी एक कोने में बैठ गई। बड़दा से उसने कहा, "यही श्रीयुत प्रभानाथ हैं जिनका जिक्र अभी मैंने आपसे किया था।"

बड़दा ने प्रभानाथ को गौर से देखा, मानो वह प्रभानाथ के हृदय की तह तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा हो। थोड़ी देर तक वह इस प्रकार प्रभानाथ को एकटक देखता रहा, इसके बाद उसने कहा, "आपने हमारे एक सदस्य की जो
६ की, उसके लिए हम लोग आपको धन्यवाद देते हैं!" इसके बाद उसने
से कहा, "वीणा! तुम्हें यह मकान छोड़ना पड़ेगा। इस मकान में तुम्हारा
ना खतरनाक है—समझी!"

"और अगर मैं यह मकान न छोड़ूं? वीणा ने पूछा।

"इसका सवाल ही नहीं उठता। प्रतिमा के मकान का पता पुलिस लगा रही है।"

प्रभानाथ के मन में एकाएक प्रश्न उठा, "क्या यह दूसरा बिछौना प्रतिभा का है? क्या प्रतिभा वीणा के साथ ही रहती थी?"

और उसके इस प्रश्न का उत्तर, अविनाश के उस प्रश्न ने जो वीणा से किया गया था, दे दिया, "तुमने प्रतिभा के पहचान की सब चीजें नष्ट कर दीं?"

"नहीं। थोड़ी-सी जरूर नष्ट की हैं, लेकिन थोड़ी-सी नहीं कीं!"

"थोड़ी-सी क्यों नहीं नष्ट कीं? क्या तुम हम लोगों का विनाश चाहती हो?" अविनाश ने तेज़ी के साथ पूछा।

"मैं तुम लोगों पर आंच न आने दूंगी—इतना विश्वास रखो! पर वे चीजें—नहीं, मैं अपनी सखी की यादगार को कभी भी नष्ट न करूंगी। तुम लोगों के संबंध की कोई चीज इस कमरे में नहीं है!" वीणा ने करुण-भाव से कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। जिस स्वर में वीणा ने यह बात कही थी, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि उन चीजों को नष्ट करने में वीणा की भावना

वीणा सिहर उठी। उसने केवल इतना कहा, "आप जो जी चाहे करें, पर यह न उपहास का विषय है, न अवसर है।" यह कहकर वह उठी। उसने प्रतिभा का ट्रंक प्रतिभा के विस्तर में लपेटकर हरिपद के हवाले किया। उस समय उसकी आँखें तरल थीं, बड़ी कोशिश से वह अपने फूट पड़ने वाले रुदन को सँभाले थी।

इतने ही में एक और युवक ने कमरे में प्रवेश किया। वह युवक विचलित था। आते ही उसने कहा, "पुलिस को प्रतिभा के मकान का शायद पता लग गया है—मुझे अभी-अभी यह सूचना मिली है। बहुत संभव है, आज ही इस मकान पर पुलिस का धावा हो!" इतना कहकर वह तेजी से चला गया।

इतना सुनते ही वे तीनों युवक भी उठ खड़े हुए। हरिपद ने पुलिंदा बगल में दबाया। उसने कहा, "वीणा, अपना सामान सँभालो; और यहाँ से अभी, इसी समय चल दो। मैं तो रवाना हुआ।"

"लेकिन मैं कहाँ जाऊँ? इस समय—रात में?"

अपूर्व ने उन दोनों युवकों से कहा, "आप लोग चलें, मुझे वीणा का तो प्रबंध करना ही होगा।" यह कहकर वह कमरे में बिखरे हुए सामान को बटोरने लगा।

सब लोग चले गये। अपूर्व, वीणा और प्रभा रह गये। अपूर्व ने कहा, 'वीणा; तुम मेरे यहाँ चल सकती हो, लेकिन तुम जानती ही हो, मेरे पास सिर्फ एक कमरा है! खैर—मैं रात किसी मित्र के यहाँ काट लूँगा!"

वीणा ने प्रभानाथ की ओर देखा।

प्रभानाथ अभी तक मौन यह सब देख रहा था, अब उसने कहा, 'नहीं, आपका रात के समय किसी होटल में रहना ठीक होगा। आप मेरे होटल में चलकर रह सकती हैं, मैंने दो कमरे ले रखे हैं!"

अपूर्व ने संतोष की एक गहरी साँस ली। "इससे अच्छा और क्या होगा! केवल एक प्रश्न है, मिस्टर प्रभानाथ! हम लोगों के संपर्क में इतना अधिक आकर आप अपने को खतरे में डाल रहे हैं!"

वीणा का सामान उस समय तक अपूर्व ने लपेट लिया था। उस सामान को उठाते हुए प्रभानाथ ने कहा, "इस खतरे पर विचार करने का अभी मेरे पास समय नहीं है!"

८

प्रभानाथ के साथ वीणा प्रिंसेज़ होटल में आ गई। होटल के दरबान को प्रभानाथ के साथ एक स्त्री को देखकर आश्चर्य हुआ, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। रईसों और ताल्लुकेदारों का रात के समय किसी स्त्री के साथ होटल में वापस लौटना दरबान के लिए बहुत साधारण-सी बात थी। वह केवल मुसकरा दिया। लेकिन प्रभा की तीव्र दृष्टि और गंभीर मुद्रा देखकर वह सहम गया—

और उसके सामने से हट गया।

वीणा जिस कमरे में ठहरी थी,-उसका रास्ता प्रभानाथ के कमरे मे से होकर था। वीणा ने कमरे में पलंग के नीचे अपना असबाब रख दिया, स्तंभित-सी उसने अपने चारों ओर देखा।

वह कमरा काफी बड़ा था, और अच्छी तरह से सजा हुआ था। वीणा कुछ देर तक मौन खड़ी रही, इसके बाद वह पलंग पर निर्जीव की तरह गिर पड़ी। प्रभानाथ के और वीणा के कमरे के बीच का दरवाजा बन्द था, लेकिन वीणा प्रभानाथ के पैरों की चाप साफ़-साफ़ सुन रही थी। प्रभानाथ बड़ी व्यग्रता के साथ अपने कमरे में टहल रहा था।

वीणा कुछ देर तक मौन लेटी रही, वह अपने हृदय की धड़कन को शात कर रही थी। करीब दस मिनट तक वह न कुछ सोच सकी, न समझ सकी; वह केवल इतना अनुभव कर सकी कि वह अजीब दुनिया में आ पड़ी है—एकदम अनोखी, एकदम अज्ञात! उसने एक बार फिर उस कमरे को गौर से देखा और वह सिर से पैर तक सिहर उठी। उसने अपने को उस कमरे मे, जहाँ का प्रत्येक कण उसके लिए अनजान, अपरिचित और नया था, अकेला, एकदम अकेला, पाया। वह चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने दरवाजा खोला—और उसने देखा कि वह प्रभानाथ के कमरे में प्रभानाथ के सामने खड़ी हुई है।

दरवाज़ा खुलने की आवाज सुनकर प्रभानाथ टहलते-टहलते रुक गया था। वीणा को अपने सामने खड़ी देखकर उसने मुसकराने का प्रयत्न किया, "क्यों, क्या बात है?"

वीणा ने प्रभानाथ के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, एकटक वह प्रभानाथ को देख रही थी, चित्रलिखित-सी और भूली-सी! एक नये और अनजाने वातावरण में वह अचानक आ पड़ी थी—उस वातावरण को वह समझ न पा रही थी, अपना नहीं पा रही थी।

वीणा को इस प्रकार अपनी ओर एकटक देखते देखकर प्रभानाथ हँस पड़ा। उसने कहा, "क्या बात है? आप इस प्रकार मुझे देख क्यों रही हैं?"

वीणा प्रभानाथ के निकट जाकर खड़ी हो गई। उसने कुछ रुककर बहुत धीमे स्वर में कहा, "आप मनुष्य हैं या देवता?" और उसकी आँखों मे आँसू भरे थे।

प्रभानाथ का हाथ वीणा के मस्तक पर चला गया। उसने कहा, "न मैं देवता हूँ, न मनुष्य! मैं केवल पशु हूं; और सोच रहा हूँ कि क्या आप लोगों के सम्पर्क में आकर मानवता का रूप देख सकूंगा?"

"और मैं कहती हूँ कि हम लोगों के सम्पर्क में आकर आप अपने को बहुत बड़े खतरे मे डाल रहे हैं। हम लोग प्राणों का खेल रहे हैं; किसी भी समय हमारा शरीर गोलियों से छलनी हो सकता है, हमारा गला फाँसी के फंदे में फँस सकता है, किसी भी समय हमारा टिमटिमाता हुआ जीवन-प्रदीप बुझ सकता है!" वीणा ने प्रभानाथ की आँखों से अपनी आँखें मिलाते हुए कहा।

प्रभानाथ का स्वर गंभीर हो गया, "हाँ, मैं जानता हूँ! और मैं यह भी जानता हूँ कि कोई भी मनुष्य अमर नहीं है; मृत्यु का कोई विधान नहीं, नियम नहीं और अवधि नहीं। वह कभी भी आ सकती है—उस पर मनुष्य का कोई भी वश नहीं! फिर भय कैसा?"

कुछ देर तक दोनों एकटक एक-दूसरे को देखते रहे। दोनों एक-दूसरे के पास खड़े हुए थे, इतने पास कि एक-दूसरे की साँस एक-दूसरे को लग रही थी। वीणा प्रभानाथ के और पास आ गई, इतने पास कि दोनों का शरीर स्पर्श कर गया। उसने कहा, "क्या आप सच कह रहे हैं?—कहिए—बताइए—यह सब आप क्यों कर रहे हैं? आप हम लोगों के सम्पर्क में न आइए—आप अपने को खतरे में न डालिए!"

प्रभानाथ मुसकराया, "क्यों नहीं! अगर मैं तुम्हारे दल में शामिल भी हो जाऊँ, तो इसमें तुम्हें क्या आपत्ति हो सकती है!"

वीणा ने बहुत धीमे से कहा, "आप नहीं समझ पा रहे हैं! नहीं, आप न आइए—आप न आइए! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ!"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा।

और वीणा अब पागल की तरह कह रही थी, "नहीं, मरने के लिए मैं हूँ—और सब हैं। लेकिन आप! आप के मरने का अभी समय नहीं है। आप अगर विपत्ति में पड जाएँगे तो मैं नहीं रह सकूँगी—नहीं रह सकूँगी!..."

एकाएक वीणा चौंक उठी। वह क्या कह रही है, क्यों कह रही है? लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। वह घूम पड़ी, तेजी के साथ वह अपने कमरे में भाग गई और उसने भीतर से कमरे का दरवाजा बंद कर लिया।

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सोकर उठा। उसी दिन उमानाथ को कलकत्ता आना था। पिछले दिन उसे सूचना मिल चुकी थी।

वीणा अंदरवाले कमरे में ही थी। वह रातवाली घटना से लज्जित-सी थी। प्रभानाथ ने द्वार खटखटाया और वीणा ने द्वार खोल दिया। उस समय आठ बजे थे। दोनों ने साथ बैठकर चाय पी। चाय पीते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आज मेरे भाई आने वाले हैं!"

"आज ही?" वीणा ने पूछा।

"हाँ, दस बजे के करीब उनका जहाज आ जायगा।"

"अच्छी बात है। मैं अभी जा रही हूँ—कोई मकान अपने लिए ठीक कर लूंगी।"

चाय पीकर प्रभानाथ डॉक्स की तरफ़ उमानाथ को रिसीव करने के लिए रवाना हुआ और वीणा मकान ढूंढने के लिए शहर की ओर।

"हलो, प्रभा !" उमानाथ ने प्रभानाथ से हाथ मिलाते हुए कहा, "कौन-कौन मुझे रिसीव करने आया है ?"

पाँचवाँ परिच्छेद

"अकेला मैं !

"अकेले तुम ! चलो, यह अच्छा हुआ !" उमानाथ ने कुछ रुककर कहा, 'बात यह है कि मेरी बीबी भी साथ में आई है—वह अभी स्टीमर मे ही है। मैं साथ इसलिए नहीं लाया कि कहीं ददुआ, काकाजी या बड़के भइया न आये हो !" उमानाथ के मुख पर अब मुसकराहट आ गई थी, "खैर, अब चिंता की कोई बात नहीं—उसे भी मैं साथ ही लिये आता हूँ !" यह कहकर उमानाथ फिर से जहाज के अंदर चला गया और प्रभानाथ उमानाथ को आश्चर्य से देखता रह गया।

करीब पंद्रह मिनट बाद उमानाथ एक स्त्री के साथ वापस आया। वह स्त्री प्रोशियन थी और उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। वह सुंदरी कही जा सकती थी; उसकी आँखें गहरी नीली थीं और उनमे चमक थी, उसका चेहरा लंबा और कठोर और बाल छोटे-छोटे तथा अस्त-व्यस्त थे। उमानाथ उस स्त्री के साथ आकर प्रभानाथ के सामने खड़ा हो गया—"प्रभा, यह मेरी पत्नी हिल्डा है—और हिल्डा, यह मेरे भाई प्रभानाथ !"

हिल्डा ने अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन प्रभानाथ वैसा ही खड़ा रहा। उसका सारा शरीर सुन्न-सा पड़ गया था; उसका जी न हो रहा था कि वह अपनी आँखों और अपने कानों पर विश्वास करे। उसने कहा, "तो क्या आपने जर्मनी में एक विवाह और कर लिया ?"

उमानाथ हँस पड़ा, "देख तो रहे हो—मेरी पत्नी मेरे साथ है। लेकिन प्रभा, तुम एकदम सन्नाटे मे कैसे आ गये ?"

प्रभानाथ ने अपने अंदरवाले उमड़ते हुए रुदन को दबाते हुए कहा, "और यह जानती हैं कि आप विवाहित हैं ?"

"हाँ ! यह भी जानती है कि मैंने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार विवाह नही किया, वह मेरे गले मे जबरदस्ती मढ दी गई है। मैं उससे प्रेम नही करता, कर भी नहीं सकता; वह मेरे लिए त्याज्य है !" और यह कहकर उसने हिल्डा से अंग्रेजी में कहा, "हिल्डा —मेरा भाई जानना चाहता है कि क्या तुम्हें यह मालूम था कि हिंदुस्तान में मेरा विवाह हो चुका है और मेरी पत्नी वहाँ मौजूद है !"

हिल्डा ने प्रभानाथ से अंग्रेजी में कहा, "हाँ, हाँ—उमा ने सब बात मुझे बतला दी थी—कितना भला आदमी है यह तुम्हारा भाई !" और यह कहकर उसने वहीं उमानाथ को चूम लिया।

प्रभानाथ ने अपनी आँखें फेर लीं—उमानाथ हँस पड़ा। उसने प्रभानाथ से कहा, "अच्छा, चलो, यह न तो बात करने की जगह है और न समय है !"

प्रभानाथ स्टियरिंग ह्वील पर बैठा और उमानाथ उसकी बगल में। हिल्डा पीछे की सीट पर बैठी थी।

उमानाथ ने पूछा, "क्यों प्रभा, ददुआ के न आने का कारण तो मैं समझ सकता हूँ कि वह कहीं आते-जाते नहीं, और काकाजी के भी न आने का, क्योंकि उन्हें छुट्टी न मिली होगी। लेकिन बड़के भइया क्यों नहीं आये, यह ताज्जुब की बात है!"

प्रभानाथ ने अनमने भाव से कहा, "बड़के भइया को ददुआ ने घर से अलग कर दिया है।"

"क्या कहा ?" उमानाथ चौंक उठा, "बड़के भइया को ददुआ ने घर से अलग कर दिया! यह क्यों ?"

"बड़के भइया कांग्रेसमैन हो गये हैं!"

"तो इसमें बुरा ही क्या है? "

"बुरा-भला तो ददुआ जानें।"

"समझा!" उमानाथ मुसकराया, "तो फिर मैं अकेला नहीं हूँ, बड़के भइया भी मेरे साथ हैं।"

"क्या कहा आपने!—क्या आप भी कांग्रेसमैन हैं?"

"नहीं—इतना बड़ा बेवकूफ नहीं हूँ कि कांग्रेस-वांग्रेस के चक्कर में पड़ूँ।" उमानाथ हँस पड़ा, फिर कुछ गंभीर होकर उसने कहा, "देखो प्रभा—किसी को बतलाना नहीं! मैं बड़के भइया से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, कहीं अधिक उपयोगी, कहीं अधिक सार्थक काम कर रहा हूँ। मैं समाजवादी हूँ।"

प्रभानाथ ने उमानाथ की बात ध्यान से सुनी, लेकिन उसने उस पर कुछ कहा नहीं। उसने केवल एक बार अपने भाई की ओर गौर से देखा।

"क्यों ? इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो? जानते हो, मेरी पत्नी भी समाजवादी है। प्रभा, इस युग की उलझनों की एकमात्र सुलझन है समाजवाद। मैं जहाँ से आ रहा हूँ, जिस वातावरण में मैं रहा हूँ, वहाँ मैंने जीवन का संघर्ष देखा है और मैंने उस पर मनन किया है!"

कार इस समय तक होटल के सामने पहुँच गई थी। प्रभानाथ ने कार रोकते हुए कहा, "लीजिए, हम लोग पहुँच गये।"

सब लोग कार से उतरकर ऊपर गये। प्रभानाथ ने खाने का ऑर्डर किया। फिर वह अपने भाई के पास आकर बैठ गया। हिल्डा ने अपना सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट उमानाथ को दी, फिर उसने सिगरेट-केस प्रभानाथ की तरफ बढ़ाया।

प्रभानाथ ने ग्लानि से अपना मुँह फेरते हुए कहा, "धन्यवाद! मैं सिगरेट नहीं पीता।"

"अच्छा करते हो!" उमानाथ ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "क्या बतलाऊँ, यार प्रभा! मैं इन लोगों के चक्कर में पड़कर न जाने क्या-क्या पीना सीख गया।

हूँ, और पीना इतना बुरा भी नहीं है जितना कुछ लोगों ने समझ रखा है। फिर भी मैं तुम्हें पीने की सलाह न दूँगा, अगर बिना पिये मस्त रह सको तो इससे बढ़कर कोई बात नहीं।"

प्रभानाथ चुप बैठा सोच रहा था। उसके सामने बैठा था उसका बड़ा भाई उमानाथ, जिसे वह लड़कपन से बहुत अधिक मानता रहा था, जिससे उसके पिता को और उसके परिवार को बड़ी-बड़ी आशाएँ थी, जिनकी उसकी देवी के तुल्य भाभी घर में उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा कर रही थी। और उस भाई की बगल में बैठी थी एक जर्मन-स्त्री, जो उमानाथ की पत्नी बनकर उसके घर में भयानक अभिशाप के रूप में, उसकी भाभी के लिए साकार वैधव्य बनकर आई थी। और यह स्त्री उमानाथ से उम्र में बड़ी थी।

इतने में वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। वीणा के कमरे में आते ही सब लोग चौंक पड़े। प्रभानाथ ने खड़े होकर वीणा से कहा, "वीणा! ये मेरे भाई मिस्टर उमानाथ हैं और—ये मेरे भाई की दूसरी पत्नी श्रीमती हिल्डा तिवारी हैं··· और···" इस बार उसने उमानाथ की ओर घूमकर कहा, "ये मेरी मित्र कुमारी वीणा मुकर्जी हैं।"

वीणा ने नमस्कार किया और उमानाथ और हिल्डा ने नमस्कार का उत्तर दिया। वीणा कुर्सी पर बैठ गई।

थोड़ी देर ठहरकर वीणा ने प्रभानाथ से कहा, "मैंने अपने वाले मकान ले लिया है। अपना सामान लेने आई हूँ, नीचे रिक्शा खड़ा है।"

"अरे, रिक्शा क्यों लेती आई? मैं अपनी कार से आपको पहुँचा दूँगा। और अब आप खाना खाकर ही यहाँ से जा पाइयेगा!" प्रभानाथ ने दरवाजे की ओर बढ़ते हुए कहा, "रिक्शा विदा करके मैं अभी आता हूँ।"

प्रभानाथ बाहर चला गया। थोड़ी देर तक उमानाथ वीणा को ध्यानपूर्वक देखता रहा, फिर इसके बाद उसने मुसकराते हुए वीणा से पूछा, "आपसे प्रभानाथ की कितने दिन की दोस्ती है?"

उमानाथ के इस प्रश्न से, और उससे भी अधिक उमानाथ की मुसकराहट से वीणा तिलमिला उठी। शुष्क स्वर में उसने कहा, "पता नहीं कि मुझसे यह प्रश्न करने का आपको कितना अधिकार है? आप सभ्य समाज के आदमी हैं, देश-विदेश घूमे हैं, आपको साधारण शिष्टाचार का तो पता होना चाहिए!"

"अरे, आप तो नाराज हो गई!" उमानाथ को अपनी गलती महसूस हुई या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह कहता गया, "देखिए—मेरी बातों का बुरा मानकर आप गलती करेंगी, क्योंकि जिसे आप सब लोग शिष्टाचार कहते हैं, उस पर मैं जरा भी विश्वास नहीं करता। मैं क्यों—हम आजकल के प्रगतिशील लोग जरा भी विश्वास नहीं करते। दुनिया के आदमियों ने अपना जीवन कितना कृत्रिम बना लिया है, इसी शिष्टाचार, इन्हीं झूठे और आडम्बर-पूर्ण आचार और विचार के कारण!" उमानाथ ने हिल्डा की ओर संकेत किया,

"देखिए, ये हैं मेरी पत्नी हिल्डा! आप कोई भी बात इनसे पूछिए, यह आपको बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट उत्तर देंगी। और कर मैंने तो आपसे एक बहुत सादा-सा प्रश्न किया था। मेरी मंशा जरा भी आपके हृदय को दुखाने की न थी।"

उस उत्तर से वीणा हतप्रभ-सी हो गई, उसे अपने अकारण क्रोध पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा, "प्रभानाथजी से मेरा करीब पंद्रह-सोलह दिन का परिचय है।"

"इतने ही दिनों में इतना घनिष्ठ परिचय हो गया? देख रहा हूँ हिन्दुस्तान बड़ी तेज़ी के साथ तरक्की कर रहा है—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" इस बार वह अपनी पत्नी की ओर घूमा, "हिल्डा—सुना तुमने! यहाँ की हालत इतनी बुरी नहीं है जितना मैं समझे हुए था।"

और उसी समय प्रभानाथ कमरे में आ गया। वीणा से उसने कहा, "रिक्शा-वाले को मैंने विदा कर दिया!"

२

जिस समय प्रभानाथ वीणा को उसके नये मकान में पहुँचाकर लौटा, वह उदास था। वह स्वयं इस बात को न जानता था कि वह क्यों उदास है। उस समय वह अपने कमरे में अकेला था। हिल्डा और उमानाथ कलकत्ता घूमने के लिए निकल पड़े थे।

वह जाकर कुर्सी पर बैठ गया—और उसने अपने चारों ओर देखा; एक भयानक सूनापन उसके कमरे में व्याप्त था, और कमरे का वह भयानक सन्नाटा मानो बरबस उसके प्राणों में भरा जा रहा था।

उसका भाई! कितनी आशा और उत्साह के साथ वह उसका स्वागत करने आया था! और सारा उत्साह ठंडा पड़ गया था। लेकिन उसके सूनेपन का कारण शायद कुछ दूसरा ही था।

एक रात—केवल एक रात उसके आश्रय में रहकर वीणा चली गई थी और उस एक बात में उसने अपनी जिन्दगी को पूरी तरह से भरी-पूरी देखा था केवल एक रात—विश्वास, प्रेम और श्रद्धा से (वह भी एक अनजान, असुन्द विजातीय लड़की की) भरी एक हुई रात। बस वही उसके सामने थी— सपनेवाली रात! और वह लड़की भी चली गई—हठात्!

न जाने कितनी देर तक मौन, विचारमग्न, अस्थिर और चंचल प्रभान बैठा रहा। एकाएक उसका ध्यान टूटा; उसकी तन्मयता भंग हुई एक तेज़ सुरीली आवाज़ से तथा उसके साथ ही उठनेवाले एक हँसी के ठहाके से। हि और उमानाथ घूमकर आ गये थे। हिल्डा ने अंग्रेजी में कहा, "अरे! य बिलकुल एक दार्शनिक की तरह ध्यानमग्न है!" और उमानाथ ने हँसकर ज दिया, "प्रेम की गंभीरता और दार्शनिक की विचारशीलता के ऊपरी ल

में अधिक भेद नहीं है।"

प्रभानाथ चौंककर उठ खड़ा हुआ—आँख मलते हुए, मानो वह नींद से जागा हो; कमरे में बिजली का प्रकाश फैला हुआ था, और उसी समय घड़ी ने टन-टन कर के आठ बजाये। उसने कहा, "आप लोग आ गये? न जाने कब से मैं आप लोगों का इन्तजार कर रहा हूँ।"

उमानाथ ने बैठते हुए कहा, "हाँ, जरा देर हो गई। क्यों, प्रभा, तुम आज इतने उदास क्यों हो?"

प्रभानाथ ने बात टालते हुए कहा, "कहाँ उदास हूँ, ऐसे ही थोड़ा-सा थक गया हूँ।"

उमानाथ ने यह भाँप लिया कि प्रभानाथ उसकी बात टाल रहा है। कुछ रुककर उसने कहा, "वह लड़की, जो तुम्हारे साथ ठहरी थी, मैं उसका परिचय नहीं जानना चाहता, लेकिन इतना कह सकता हूँ कि वह काफी तेज और समझदार है; बहुत संभव है वह नेक भी हो, लेकिन उसमें मैंने कोई और चीज ऐसी नहीं देखी जो तुम्हारे हृदय में भावुकता उत्पन्न कर सके, तुम्हें इतना अस्थिर और चंचल बना सके!"

"मैं उसके कारण इतना अस्थिर और चंचल नहीं हूँ, मँझले भइया—आप इतना विश्वास रखें!"

"तो फिर क्यों?"

"मैं आपके कारण इतना अस्थिर और चंचल हूँ—केवल आपके कारण!" प्रभानाथ ने हिल्डा की ओर देखते हुए कहा।

"मेरे कारण तुम्हें तनिक भी चिंतित न होना चाहिए—न तो इसकी कोई जरूरत है और न इसका तुम्हें अधिकार है—समझे! मेरे साथ सत्य है, तर्क है, सिद्धांत है!" उमानाथ हिल्डा की ओर देखकर मुसकराया।

"पता नहीं आपके इस सत्य, तर्क और सिद्धांत को स्वीकार करने के लिए ददुआ कहाँ तक तैयार होंगे—मैं यही सोच रहा था!" इस बार प्रभानाथ के मुसकराने की बारी थी।

"ददुआ! अरे, हाँ," उमानाथ ने अपना सिर खुजलाते हुए कहा, "हाँ, उनका तो विरोध होगा—मैं यह जानता हूँ! पर अभी फिलहाल विरोध की गुंजाइश नहीं है। अभी तो मुझे यहाँ पैर जमाना है, काम करने के लिए!"

"विरोध की गुंजाइश नहीं है? आप क्या कर रहे हैं? आपकी नयी पत्नी आपके साथ है, और फिर भी आप इस तरह की बातें कर रहे हैं!"

उमानाथ हँस पड़ा, "ओह—अब समझा! तो तुम्हें यहाँ हिल्डा की मौजूदगी के कारण चिंता हो रही है। तो फिर एक बात मैं तुम्हें और बतला दूँ—हिल्डा हिंदुस्तान में रहेगी नहीं; वह केवल एक सप्ताह के लिए मेरे साथ आई है। असल में यह दुनिया का एक चक्कर लगाने निकली है; इसके बाद वह जर्मनी वापस चली जाएगी।"

प्रभानाथ ने संतोष की गहरी साँस लेते हुए कहा, "तो फिर ठीक है ! लेकिन क्या आप अभी यहाँ एक सप्ताह रुकिएगा ?"

"रुकना पड़ेगा—बिना रुके काम भी तो नहीं चलता ! हिल्डा अकेली कलकत्ता कैसी देखेगी ? इसके ज्यादा एक लम्बे समय के लिए उसे मुझसे अलग होना है—ऐसी हालत में हम दोनों अधिक-से-अधिक एक साथ ही रहना चाहेंगे।"

इसी समय होटल के नौकर ने कमरे में आकर प्रभानाथ को एक कार्ड दिया। उस पर लिखा था—"टी० मारीसन—उमानाथ से मिलने के लिए !" कार्ड प्रभानाथ ने उमानाथ को दे दिया।

कार्ड देखकर उमानाथ नौकर के साथ कमरे से बाहर चला गया।

करीब पांच मिनट के बाद उमानाथ एक अंग्रेज युवक के साथ अंदर आया। वह अंग्रेज एक लंबा-सा आदमी था, गठे बदन का और हंसमुख। उसके कपड़े अस्त-व्यस्त, मैले और पुराने थे। कमरे में आते ही उसने कहा, "नमस्कार, कामरेड्स !" और बिना किसी शिष्टाचार के वह कुर्सी पर बैठ गया। उमानाथ ने उससे प्रभानाथ और हिल्डा का परिचय कराया।

"हिल्डा क्रैमर तो नहीं, जिनका नाम बर्लिन कम्युनिस्ट पार्टी की सेक्रेटरी की हैसियत से अकसर सुना है ?" मारीसन ने हिल्डा के सामने झुकते हुए कहा।

मुसकराते हुए हिल्डा ने उत्तर दिया, "हां, वही हिल्डा क्रैमर और अब हिल्डा तिवारी !"

प्रभानाथ ने इस बार बड़े आश्चर्य से हिल्डा को देखा। वह स्वल्प-भाषिणी स्त्री, जो उसके सामने इतनी शांत और गंभीर बैठी थी, क्या वह कभी एक बहुत जबर्दस्त संस्था की सेक्रेटरी रही होगी ? और एकाएक उसे वीणा की याद हो आई, पिछली रातवाली वीणा की, जिसने भावावेश में प्रभानाथ से न जाने क्या-क्या कह डाला था ! वह वीणा भी कितनी शान्त, कितनी सौम्य और कितनी सरल है ! पर वह भी तो खुलकर प्राणों से खेल रही है !

प्रभानाथ और अधिक वीणा के संबंध में न सोच सका। मारीसन एक मजेदार कहानी सुना रहा था, "तो कामरेड उमानाथ मुझे परसों से इत्तिला मिल गई थी कि तुम्हारा जहाज कब आ रहा है, और सुबह के वक्त ही तुम्हें रिसीव करने के लिए जाने का प्रोग्राम बना लिया था। लेकिन तुम्हें पता नहीं, यहाँ की सी० आई० डी० बुरी तरह मेरे पीछे पड़ी है—कामरेड, क्या बतलाऊँ, दम मारने की फुरसत नहीं मिलती। तो बड़ी मुश्किल से कहीं दोपहर को उन्हें चकमा दे सका। सीधे डॉक्स पहुँचा। मालूम हुआ तुम होटल चले गए। वहाँ से तुम्हारे होटल का पता लिया। इधर आ रहा था कि फिर वही इंस्पेक्टर, जिसे मैं चकमा देकर आया था, मिल गया। अब फिर मुसीबत पड़ी। तो शाम के वक्त पिक्चर्स की तरफ की ठानी। ग्लोब का टिकट खरीदा। खेल शुरू होने के पाँच मिनट बाद ही मैं बाहर निकला। देखा कि हजरत एक पान की दूकान पर खड़े बीड़ी सुलगा रहे हैं। बस एक टैक्सी पर बैठकर मैं वहाँ से गायब हुआ…"

"और वह ?" हिल्डा ने हँसते हुए पूछा।

"मुझे ढूँढ रहा होगा। लेकिन ढूँढने दो। जब लौटूँगा, तब मेरे मकान के सामने चहलकदमी करता हुआ मिलेगा।" कुछ रुककर उसने कहा, "कामरेड तिवारी, मैं तुम्हारे वास्ते ही अभी तक यहाँ रुका हूँ। कहा कि पुलिस की नजरों में मैं बेतरह चढ़ गया हूँ और इसलिए मेरा रहना असंभव हो गया है। हिंदुस्तान का चार्ज तुम्हें देना है!"

"हाँ—हाँ! अब तो मैं आ ही गया हूँ? लेकिन यहाँ की हालत मुझे समझनी होगी। और एक बात मुझे और स्पष्ट कर देनी होगी—मैं पार्टी का हेड-क्वार्टर यहाँ से यू० पी० की तरफ ले जाना पसंद करूँगा!"

"जैसी तुम्हारी मर्जी हो, करो। इसमें न मुझे कोई एतराज हो सकता है और न इंटरनेशनल को ही हो सकता है।"

३

उमानाथ को कलकत्ता आये एक सप्ताह से अधिक हो गया। हिल्डा को स्टीमर पर चढ़ाकर जब उमानाथ के साथ प्रभानाथ लौटा, उस समय दोपहर हो गई थी। रास्ते में प्रभानाथ ने उमानाथ से पूछा, "अब घर कब चलिएगा?"

"कल सुबह चार बजे! मुझे अब कलकत्ता में रुकने की कोई जरूरत नहीं; सिर्फ कामरेड मारीसन से मिल लेना है। बहुत संभव है, वह भी हमारे साथ चलें।"

"कामरेड मारीसन! क्या वे उन्नाव चलेंगे?"

"नहीं जी—कामरेड मारीसन को मैं कानपुर में छोड़ दूँगा। मुझे अपना हेड-क्वार्टर कानपुर बनाना है—वे कुछ थोड़ी-सी मेरी मदद ही करेंगे।"

शाम के समय उमानाथ मारीसन से मिलने चला गया।

प्रभानाथ अकेला रह गया। इधर तीन-चार दिन से वह वीणा से न मिला था। सुबह उसे कानपुर के लिए रवाना होना था—वीणा से उसका मिल लेना जरूरी था। वह वीणा के मकान की ओर चल पड़ा।

उस समय दिन ढल चुका था और सड़कों पर बिजली का प्रकाश होना आरंभ हो गया था। प्रभानाथ ने कोई सवारी नहीं ली, वह पैदल चल रहा था। वीणा के मकान के सामने वह रुका। उसे साहस न हो रहा था कि वह मकान के अंदर प्रवेश करे—वह जानता था कि उसका कलकत्ता से जाना वीणा को अच्छा न लगेगा। उसे भी अपना जाना खुद अच्छा न लग रहा था। उसी समय उसे सुनाई पड़ा, "प्रभा बाबू!"

प्रभानाथ ने देखा कि वीणा मुसकराती हुई उसकी ओर बढ़ रही है। वीणा ने उसके पास आकर कहा, "मैं अभी आपके ही यहाँ जाने को निकली हूँ, यह देखने के लिए कि आप अभी कलकत्ता में हैं या नहीं। देखिए, इधर कई दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए।"

"और अगर मैं कलकत्ता से चला गया होता?" प्रभानाथ ने न जाने

यह प्रश्न पूछ लिया।

वीणा ने वैसे ही उत्तर दिया, "तो मैं समझती कि मेरी साधना में बल नहीं है!" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, "आप चले कैसे जाते—बिना मुझसे मिले हुए और मुझे अपना आशीर्वाद दिये हुए!"

इस बार वीणा की आँखें प्रभानाथ की आँखों से मिल गई, वीणा का स्वर कुछ करुण हो गया। उसने कहा, "आप आये क्यों नहीं? मैंने आपकी कितनी प्रतीक्षा की। तीन दिन तक मैं घर के बाहर नहीं निकली हूँ—इसलिए कि कहीं आप आकर निराश न चले जायँ। और आज—आज मुझसे न रहा गया। आज मैं अपने से विवश हो गई और आपको ढूंढने के लिए निकल पड़ी। मैं जानना चाहती थी कि मेरी भावना, मेरी तपस्या—यह सब झूठ तो नहीं है!"

प्रभानाथ के सारे शरीर में पुलक का प्रकंप भर गया, वीणा से यह सब सुनकर—अपनी विजय पर! वीणा का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने कहा, "चलो, कुछ घूम आएँ! कल सुबह मैं जा रहा हूँ; आज विदा की रात है! चलो, थोड़ा-सा हँस-बोल लें, फिर न जाने कब मिलना हो!"

"क्या कहा? कल आप जा रहे हैं?" वीणा को जैसे काठ मार गया, "इतनी जल्दी!"

प्रभानाथ ने टैक्सीवाले को, जो पास ही खड़ा था, इशारा किया। टैक्सी आ गई। वीणा को टैक्सी पर बिठलाकर उसकी बगल में बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कलकत्ता आये हुए काफी दिन हो गये, अब तो लौटना ही है और फिर यहाँ मेरी क्या आवश्यकता है? मुझे वहाँ जाकर काम करना आरंभ कर देना है!"

टैक्सी चली जा रही थी और वीणा कह रही थी, "मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आपके हाथ जोड़ता हूँ, आप इस काम में न पड़ें। आप नहीं जानते कि आप मृत्यु के साथ खेलने को अग्रसर हो रहे हैं!"

"मैं जानता हूँ! तुम भी तो मृत्यु के साथ खेल रही हो!" प्रभानाथ मुसकराया।

"मुझे खेलने दीजिए, मुझे मरने दीजिए! लेकिन आप"—वीणा की आँखों में आँसू आ गए थे, उसकी आवाज काँप रही थी, "लेकिन आप इधर मत बढ़िए। मैं जानती हूँ कि आप वीर हैं, साहसी हैं! लेकिन फिर भी आप नहीं समझ रहे हैं!"

"मैं सब समझ रहा हूँ, सब जानता हूँ, वीणा!" प्रभानाथ कुछ रुका, "जीवन की न जाने कितनी धाराएँ हैं, न जाने कितनी गतियाँ हैं। जिस धारा में मैं बह रहा हूँ, जिस गति को मैंने अपनाया है, वह खतरे से खाली नहीं है—मैंने माना, लेकिन खतरे से खाली है क्या? मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता, कितनी ही सावधानी के साथ कोई क्यों न रहे! पैदल चलते हुए हम मोटर से कुचल सकते हैं, रेल में सफ़र करते हुए रेल लड़ सकती है। हम मकान की सीढ़ी से फिसल सकते हैं, घर में आग लग सकती है, भूकंप के धक्के से मकान गिर

सकता है और हम दब सकते हैं ! कौन-सी ऐसी जगह है, जहाँ मृत्यु न हो ? तो फिर इस मृत्यु से भय कैसा ? और फिर जिस धारा को मैंने अपनाया है, उसमें अनिश्चितता है, हलचल है, स्पंदन है और साथ ही कर्तव्य-पालन करने का संतोष भी है !"

वीणा प्रभानाथ की बात में निहित अहंमन्यता को नहीं देख सकी, प्रभानाथ के आग के साथ खेलने के शौक़ को नहीं पहचान सकी; वह देख सकी केवल अपना आदर्श; और उसने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया। प्रभानाथ का हाथ वीणा की ग्रीवा पर पड़ा, इसके बाद वीणा ने अनुभव किया कि एक पुष्ट और शक्तिशाली हाथ ने उसके सिर को तनिक ऊँचा किया। और फिर एक सुंदर मुख उसके मुख से मिलने को झुका। इसके आगे वीणा कुछ न देख सकी, उसकी आँखें बंद थीं। हाँ, उसने अधरों के पराग का अधरों पर और श्वासों के सौरभ का श्वासों में अनुभव अवश्य किया—बेसुध-सी, अर्ध-चेतना की अवस्था में !

जिस समय वीणा घर लौटी, बारह बज चुके थे। एक विचित्र मादकता और पुलक का आलस्य उसके नेत्रों में, उसके सारे शरीर में, उसके प्राणों में भरा हुआ था। उसके कान में प्रभानाथ के अंतिम शब्द गूँज रहे थे, "वीणा ! तुम्हें मेरे साथ काम करने के लिए आना पड़ेगा। एक महीने के अंदर ही मैं तुम्हें बुला लूँगा !"

छठा परिच्छेद

प्रभानाथ के साथ मारीसन और उमानाथ कानपुर पहुँच गए। ग्रांड ट्रंक रोड से कानपुर नगर में प्रवेश करते हुए उमानाथ ने कहा, "प्रभा ! सीधे बड़के भइया के यहाँ चलो। कामरेड मारीसन जब तक कानपुर में हैं, तब तब बड़के भइया के मेहमान होकर रहेंगे। तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

दयानाथ के बँगले की तरफ कार मोड़ते हुए प्रभानाथ ने कहा, "वहीं चल रहा हूँ। लेकिन जहाँ तक बड़के भइया के घर पर मिलने की बात है, वहाँ मैं अभी कुछ कह नहीं सकता।"

"क्यों, क्या बात है ?" उमानाथ ने पूछा।

"जब मैं कलकत्ता जा रहा था तब उन्होंने मुझसे कहा था कि वे कभी भी जेल जा सकते हैं।" कुछ रुककर प्रभानाथ ने फिर कहा, "अगर बड़के भइया अभी तक जेल न गए हों तो बड़ा अच्छा हो ! आपसे मिलने के लिए वे कितने उत्सुक थे !" कार इस समय तक मेस्टन रोड पर आ गई थी।

मेस्टन रोड पर बड़ी भीड़ थी, कार को रुक जाना पड़ा। सामने से कांग्रेस

यह प्रश्न पूछ लिया।

वीणा ने वैसे ही उत्तर दिया, "तो मैं समझती कि मेरी साधना में बल नहीं है!" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, "आप चले कैसे जाते—बिना मुझसे मिले हुए और मुझे अपना आशीर्वाद दिये हुए!"

इस बार वीणा की आँखें प्रभानाथ की आँखों से मिल गईं, वीणा का स्वर कुछ करुण हो गया। उसने कहा, "आप आये क्यों नहीं? मैंने आपकी कितनी प्रतीक्षा की। तीन दिन तक मैं घर के बाहर नहीं निकली हूँ—इसलिए कि कहीं आप आकर निराश न चले जायँ। और आज—आज मुझसे न रहा गया। आज मैं अपने से विवश हो गई और आपको ढूंढने के लिए निकल पड़ी। मैं जानना चाहती थी कि मेरी भावना, मेरी तपस्या—यह सब झूठ तो नहीं है!"

प्रभानाथ के सारे शरीर में पुलक का प्रकंप भर गया, वीणा से यह सब सुनकर—अपनी विजय पर! वीणा का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने कहा, "चलो, कुछ घूम आएँ! कल सुबह मैं जा रहा हूँ; आज विदा की रात है! चलो, थोड़ा-सा हँस-बोल लें, फिर न जाने कब मिलना हो!"

"क्या कहा? कल आप जा रहे हैं?" वीणा को जैसे काठ मार गया, "इतनी जल्दी!"

प्रभानाथ ने टैक्सीवाले को, जो पास ही खड़ा था, इशारा किया। टैक्सी आ गई। वीणा को टैक्सी पर बिठलाकर उसकी बगल में बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कलकत्ता आये हुए काफी दिन हो गये, अब तो लौटना ही है और फिर यहाँ मेरी क्या आवश्यकता है? मुझे वहाँ जाकर काम करना आरंभ कर देना है!"

टैक्सी चली जा रही थी और वीणा कह रही थी, "मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आपके हाथ जोड़ती हूँ, आप इस काम में न पड़ें। आप नहीं जानते कि आप मृत्यु के साथ खेलने को अग्रसर हो रहे हैं!"

"मैं जानता हूँ! तुम भी तो मृत्यु के साथ खेल रही हो!" प्रभानाथ मुसकराया।

"मुझे खेलने दीजिए, मुझे मरने दीजिए! लेकिन आप"—वीणा की आँखों में आँसू आ गए थे, उसकी आवाज काँप रही थी, "लेकिन आप इधर मत बढ़िए। मैं जानती हूँ कि आप वीर हैं, साहसी हैं! लेकिन फिर भी आप नहीं समझ रहे हैं!"

"मैं सब समझ रहा हूँ, सब जानता हूँ, वीणा!" प्रभानाथ कुछ रुका, "जीवन की न जाने कितनी धाराएँ हैं, न जाने कितनी गतियाँ हैं। जिस धारा में मैं बह रहा हूँ, जिस गति को मैंने अपनाया है, वह खतरे से खाली नहीं है—मैंने माना, लेकिन खतरे से खाली है क्या? मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता, कितनी ही सावधानी के साथ कोई क्यों न रहे! पैदल चलते हुए हम मोटर से कुचल सकते हैं, रेल में सफ़र करते हुए रेल लड़ सकती है। हम मकान की सीढ़ी से फिसल सकते हैं, घर में आग लग सकती है, भूकंप के धक्के से मकान गिर

सकता है और हम दब सकते हैं! कौन-सी ऐसी जगह है, जहाँ मृत्यु न हो? तो फिर इस मृत्यु से भय कैसा? और फिर जिस धारा को मैंने अपनाया है, उसमें अनिश्चितता है, हलचल है, स्पंदन है और साथ ही कर्तव्य-पालन करने का संतोष भी है!"

वीणा प्रभानाथ की बात में निहित अहंमन्यता को नहीं देख सकी, प्रभानाथ के आग के साथ खेलने के शौक को नहीं पहचान सकी; वह देख सकी केवल अपना आदर्श; और उसने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया। प्रभानाथ का हाथ वीणा की ग्रीवा पर पड़ा, इसके बाद वीणा ने अनुभव किया कि एक पुष्ट और शक्तिशाली हाथ ने उसके सिर को तनिक ऊँचा किया। और फिर एक सुंदर मुख उसके मुख से मिलने को झुका। इसके आगे वीणा कुछ न देख सकी, उसकी आँखें बंद थीं। हाँ, उसने अधरों के पराग का अधरों पर और श्वासों के सौरभ का श्वासों में अनुभव अवश्य किया—बेसुध-सी, अर्ध-चेतना की अवस्था में!

जिस समय वीणा घर लौटी, बारह बज चुके थे। एक विचित्र मादकता और पुलक का आलस्य उसके नेत्रों में, उसके सारे शरीर में, उसके प्राणों में भरा हुआ था। उसके कान में प्रभानाथ के अंतिम शब्द गूँज रहे थे, "वीणा! तुम्हें मेरे साथ काम करने के लिए आना पड़ेगा। एक महीने के अंदर ही मैं तुम्हें बुला लूँगा!"

छठा परिच्छेद

प्रभानाथ के साथ मारीसन और उमानाथ कानपुर पहुँच गए। ग्रांड ट्रंक रोड से कानपुर नगर में प्रवेश करते हुए उमानाथ ने कहा, "प्रभा! सीधे बड़के भइया के यहाँ चलो। कामरेड मारीसन जब तक कानपुर में हैं, तब तक बड़के भइया के मेहमान होकर रहेंगे। तुम्हारा क्या खयाल है?"

दयानाथ के बँगले की तरफ कार मोडते हुए प्रभानाथ ने कहा, "वहीं चल रहा हूँ। लेकिन जहाँ तक बड़के भइया के घर पर ठहरने की बात है, वहाँ मैं अभी कुछ कह नहीं सकता।"

"क्यों, क्या बात है?" उमानाथ ने पूछा।

"जब मैं कलकत्ता जा रहा था तब उन्होंने मुझसे कहा था कि वे कभी भी जेल जा सकते हैं।" कुछ रुककर प्रभानाथ ने फिर कहा, "अगर बड़के भइया अभी तक जेल न गए हों तो बड़ा अच्छा हो! आपसे मिलने के लिए वे कितने उत्सुक थे!" कार इस समय तक मेस्टन रोड पर आ गई थी।

मेस्टन रोड पर बड़ी भीड़ थी, कार को रुक जाना पड़ा। सामने से कांग्रेस

का एक जुलूस आ रहा था, और जुलूस में सब से आगे थे दयानाथ।

दयानाथ के गले में गजरे लटक रहे थे, उनके मस्तक पर तिलक था, और उनके हाथ में था तिरंगा झंडा। पीछे-पीछे जन-समुदाय महात्मा जी की जय, भारतमाता की जय, कांग्रेस की जय तथा दयानाथ की जय के नारे लगाता हुआ चल रहा था। अगल-बगल की पटरियों पर लोग खड़े तमाशा देख रहे थे।

उमानाथ ने कहा, "अरे, ये तो बड़के भइया हैं। इसके माने हैं कि अभी तक जेल के अंदर नहीं पहुंचे!"

"अंदर पहुंचने की तैयारी है!" किसी ने मुसकराते हुए कहा। उमानाथ और प्रभानाथ ने देखा कि मार्कंडेय कार के पास खड़ा हुआ मुसकरा रहा है। मार्कंडेय ने फिर कहा, 'स्वागत है, उमानाथ! मजे में तो रहे? और देख रहे हो न! ठीक बलि-वेदी के बकरे की तरह दयानाथ को लोग लिए चल रहे हैं ब्रिटिश-सरकार की भेंट चढ़ाने के लिए! गजरों से लादकर, उनकी आरती उतारकर, उनकी जयजयकार करके यह जन-समुदाय दयानाथ को जेल की तरफ लिये जा रहा है।"

"मैं समझा नहीं, मार्कंडेय भइया! यह जुलूस तो जेल की तरफ नहीं जा रहा है।" उमानाथ ने कहा।

"हां, यह जुलूस जेल की तरफ नहीं जा रहा है, लेकिन दयानाथ जेल की तरफ जा रहे हैं। जानते हो? दयानाथ कानपुर के डिक्टेटर बनाए गए हैं, और डिक्टेटर बनने के माने होते हैं दूसरे ही दिन जेल में ठूंस दिया जाना। कल या परसों दयानाथ गिरफ्तार कर लिए जायंगे, और फिर उसके बाद कोई दूसरा डिक्टेटर नियुक्त होगा। शायद वे लोग मुझको ही नियुक्त करें। और इस प्रकार यह लड़ाई चल रही है।" मार्कंडेय हंस पड़ा।

उमानाथ भी हंस पड़ा, "लड़ाई तो दिलचस्प मालूम होती है। लेकिन मैं यह जरूर कह सकता हूं कि यह लड़ाई हिंदुस्तान को ही शोभा दे सकती है। लड़ते जाइये यह लड़ाई, देखें, आप लोग कब तक लड़ते हैं।"

जुलूस इस समय तक निकल गया था। प्रभानाथ ने कार स्टार्ट करते हुए कहा, "मार्कंडेय भइया, चलिए, हमारे यहां चल रहे हैं न।"

मार्कंडेय ने जाते हुए जुलूस पर एक नजर डाली, "नहीं, जुलूस के साथ चला हूं तो उसके साथ अंत तक रहना भी चाहिए। अभी एक घंटे में मैं दयानाथ के साथ तुम्हारे यहां आता हूं।" यह कहकर मार्कंडेय चला गया।

जिस समय मोटर ने दयानाथ के बंगले के कंपाउंड में प्रवेश किया, राजेश्वरीदेवी बरामदे में चिंताग्रस्त बैठी कुछ सोच रही थीं। दयानाथ सज धजकर जुलूस के साथ गये थे। दयानाथ को पहला तिलक उन्होंने लगाया था, पहली आरती उन्होंने उतारी थी, पहली माला उन्होंने पहनाई थी और हंसते हुए दयानाथ को राजेश्वरी ने विदा दी थी; लेकिन इस आदर, सम्मान औ

साथ-साथ अपनी उस वीरता के अंदर निहित व्यंग्य को भली-भाँति समझती थी। यह माला पहनाना, तिलक लगाना, आरती उतारना और फिर हँसते हुए विदा देना—यह सब-का-सब ऊपरी दिखावा था, केवल आत्मछलना थी। अंदर-ही-अंदर राजेश्वरी के प्राण रो रहे थे। जो कुछ उसने किया, वह लोकाचार को निभाने के लिए, और शायद इससे भी अधिक इसलिए कि दयानाथ को इसमें प्रसन्नता हो, दयानाथ उसे कायर या निर्बल न समझ बैठें; और यह सब कर लेने के बाद जब जुलूस उनके बँगले से बाहर हो गया तो राजेश्वरी ने एक भयानक सूनेपन का अनुभव किया। एक ठंडी साँस लेकर उसने राजेश और ब्रजेश को देखा। दोनों बच्चे कितने प्रसन्न थे! वे बाग में खेल रहे थे। राजेश—आठ साल का राजेश—गा रहा था, 'झंडा ऊँचा रहे हमारा।' और छः साल का ब्रजेश बीच-बीच में चिल्ला उठता था, 'इन्क़िलाब ज़िंदाबाद!'—'महात्मा गांधी की जय!'—'भारतमाता की जय!'

उन बच्चों को क्या मालूम कि उनके पिता जेलखाने के लिए इतना सज-धजकर उस लंबे जुलूस के साथ गए हैं। वे प्रसन्न थे—एक मेला देखकर और राजेश्वरी बरामदे में बैठी हुई उन भोले बच्चों को देख रही थी, उनके तथा अपने भविष्य पर सोच रही थी।

पति की अनुपस्थिति में ये बच्चे ही उसके साथ रहेंगे और ये बच्चे पूछेंगे कि बाबूजी कहाँ हैं? ये बच्चे रोएँगे! और राजेश्वरी ने फिर से उन दोनों बच्चों की ओर देखा। बच्चों के साथ-साथ उसकी दृष्टि बँगले के बगीचे पर पड़ी, और वहाँ से हटकर बँगले पर! 'क्या इस बँगले में अकेले इन बच्चों के साथ रहना ठीक होगा?—उसके परिवार की देख-भाल कौन करेगा?' और एकाएक उसे घर की याद हो आयी—अपने घर की? उन्नाव में उसके ससुर, उसके देवर, उसकी देवरानी—सभी कोई हैं; और वे सब चाहते हैं कि वह अपने बच्चों के साथ उन्नाव जाकर रहे। 'लेकिन मेरा वहाँ जाना असंभव है! बात यहाँ तक पहुँच गई है, इनको उन्होंने त्याग दिया और मुझे वे बुलाते हैं।' राजेश्वरी मुसकराई, 'मानो मैं इनसे अलग हूँ। मानो वे बच्चे इनके नहीं हैं।' नहीं, इस बँगले को छोड़कर वह नहीं जायगी। अकेली रहेगी—वह एक वीर की पत्नी है, वह वीर बनेगी। यह उसकी तपस्या का काल है!

एकाएक राजेश्वरी की विचारधारा टूट गई, कार की आवाज़ सुनकर। राजेश्वरी बँगले के अंदर चली गई। सुखिया महरी से उसने कहा, 'देखो कौन आया है?'

सुखिया घर के बाहर निकलने भी न पाई थी कि प्रभानाथ और उमानाथ ने घर में प्रवेश किया। प्रभानाथ ने अपनी भावज के पैर छुए और उमानाथ ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा, 'हलो भौजी—हाऊ डू यू डू? अरे, भूल गया—नमस्कार! अच्छी तरह तो रहीं!'

"अरे उमा बाबू!" आश्चर्य से राजेश्वरी ने कहा, 'कब आए! आइए, बैठिए।"

"अभी-अभी कलकत्ता से कार में चला आ रहा हूं!" राजेश्वरी के साथ कमरे में चलते हुए उमानाथ ने कहा, "रास्ते में बड़के भइया को भी देखा! बड़े ठाठ से जा रहे थे। उन्होंने मेरी तरफ नजर भी नहीं डाली, अपनी जयजयकार के नारे सुनने में मग्न थे। वड़े आदमी हो गए हैं न!" उमानाथ खिलखिलाकर हंस पड़ा, "भौजी, यह क्या स्वांग बना रखा है उन्होंने—आपने उन्हें रोका क्यों नहीं?"

राजेश्वरी अपने देवर के हंसमुख स्वभाव को भली-भांति जानती थी। उसने कहा, "बाबू, यह स्वांग है, या क्या है, यह मैं क्या जानूं? मैं तो स्त्री ठहरी, बिना पढ़ी-लिखी मूरख! और तुम्हारे भइया काफी समझदार हैं। जो कुछ करते हैं, सोच-विचार कर करते हैं और गलत नहीं करते। आखिर देश का काम है! मैं क्यों उन्हें रोककर पाप की भागी बनती?"

उमानाथ मुसकराया, "आप भी पूरी तौर से बड़के भइया के रंग में रंग गई हैं, भौजी! लेकिन यह सब निरा पागलपन है—मैं कहता हूं, कांग्रेस गलत रास्ते पर है!"

"अच्छा-अच्छा! पहले मुंह-हाथ धो लो और कपड़े बदल डालो—एकदम भूत बने हो!" हंसते हुए राजेश्वरी ने कहा, "फिर जितना तर्क-वितर्क करना हो, वह अपने बड़े भइया से कर लेना—वह आते ही होंगे!" यह कहकर राजेश्वरीदेवी ने सुखिया को सब इंतजाम कर देने का आदेश दिया और खुद रसोईघर में नाश्ता बनाने चली गई।

२

प्रभानाथ और उमानाथ जिस समय मुंह-हाथ धोकर बाथरूम के बाहर निकले, नाश्ता तैयार हो गया था। उमानाथ ने कहा, "भौजी, मेरे साथ मेरे एक दोस्त भी हैं—नाश्ता आप बाहर भिजवा दें। और चलिए, मैं अपने दोस्त से आपको इंट्रोड्यूस भी करवा दूं—बड़े मजेदार आदमी हैं!"

राजेश्वरी ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा। राजेश्वरी की इस मुद्रा को देखकर प्रभानाथ हंस पड़ा। उसने उमानाथ से कहा, "मंझले भइया, अब आप यूरोप में नहीं हैं, हिंदुस्तान में हैं। यह आप मत भूल जाया करिए।"

"अरे, हां।" अपनी गलती महसूस करते हुए उमानाथ ने कहा, "मैं भूल ही गया था कि मैं इस वहशी मुल्क में आ गया हूं। अच्छा तो भौजीजी, प्रभा को आप यहीं नाश्ता करा दीजिए और मेरा तथा मेरे दोस्त का नाश्ता बाहर भिजवा दीजिए।" यह कहकर उमानाथ बाहरवाले कमरे की ओर चल दिया।

जिस समय उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुंचा, कामरेड मारीसन सोफा पर लेटे हुए एक गाना गा रहे थे। उमानाथ के पहुंचते ही उन्होंने कहा, "कामरेड उमानाथ, बड़ी देर लगा दी। अब बतलाओ कि मेरे ठहरने का इंतजाम कहां होगा?"

"पहले चाय तो पी लो, फिर बातचीत होगी।" उमानाथ ने उत्तर दिया, "उस समय तक मेरे भाई भी लौट आयेंगे।"

दोनों कामरेड चाय पर जुट गए। चाय समाप्त कर लेने के बाद उमानाथ ने मारीसन से कहा, "कामरेड, तुम्हारी उम्र क्या होगी ?"

कुछ सोचकर और कुछ हिसाब लगाकर कामरेड मारीसन ने बतलाया, "अट्ठाईस वर्ष, सात महीने, उन्नीस दिन !"

थोड़ी देर चुप रहकर उमानाथ ने फिर पूछा, "कामरेड, अगर बुरा न मानो तो मैं पूछूंगा कि तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं ?"

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है ?" मारीसन ने जम्हाई लेते हुए कहा, "नहीं कामरेड, विवाह करने की बात कभी सोची ही नहीं ; और सोचता भी कैसे ? यहां तो हर समय इस बात की चिंता रही कि जिंदा रहने के लिए रुपया कैसे पैदा करूँ। और फिर इस पवित्र सिद्धांत की सेवा में लग गया।"

उमानाथ मुसकराया, "हां, कामरेड ! मैं समझता हूँ कि तुम्हारी जैसी परिस्थिति में पड़े हुए आदमी के लिए विवाह करना उचित न था। लेकिन अब तो परिस्थिति बदल गई है—अब तुम विवाह कर सकते हो !"

"शादी तो कर सकता हूँ, कामरेड !" कुछ खिन्न-सा होकर मारीसन ने कहा, "लेकिन क्या बताऊँ, हिम्मत नहीं पड़ती। न जाने बीबी के साथ कैसी निपटे। और तुम जानते ही हो कि आजकल की औरतें काफी बढ़ी-चढ़ी होती हैं। बजाय इसके कि वे पुरुष की सेवा करें, वे पुरुषों से सेवा कराना चाहती हैं।"

"और अगर तुम्हें ऐसी बीवी मिल जाय जो तुम्हारी सेवा करे, सेवा ही नहीं, बल्कि तुम्हारी दिन-रात पूजा करे, और इसके साथ जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाय, उसमें पेट भर ले तो ?"

कामरेड मारीसन ने कामरेड उमानाथ को विस्फारित नयनों से देखा, "कामरेड उमानाथ ! क्यों बेकार की बातें करते हो ! मेरा वक्त ज्यादा कीमती है—और मजाक करने के मूड में मैं कतई नहीं हूँ !"

"नहीं, कामरेड ! यह बेकार की बात नहीं है, और न मैं मजाक ही कर रहा हूँ। मैं सचमुच पूछ रहा हूँ कि अगर तुम्हें ऐसी स्त्री मिल जाय तो ?"

"तो ऐसी स्त्री या तो बूढ़ी और गजंमद होगी, या फिर महाकुरूप होगी। और मैं बूढ़ी या कुरूप स्त्री से कभी शादी नहीं कर सकता।"

"अरे, न बूढ़ी, न कुरूप, बल्कि जवान और बला की खूबसूरत !"

"सच !" कामरेड मारीसन ने अब उठकर बैठते हुए उत्सुकता के साथ पूछा, "क्या वास्तव में ऐसी स्त्री मिल सकती है ? मुझे विश्वास नहीं होता ! कामरेड उमानाथ, तुम सच कह रहे हो ?"

"हां, कामरेड मारीसन, अगर शादी करना चाहते हो तो तुम्हें ऐसी स्त्री मिल सकती है।"

"और तुम्हारा यह कहना है कि वह देवता की तरह मुझे पूजेगी ?"

"हाँ !"

"और रूखा-सूखा जो कुछ मिल जाय, उसे खाकर खुश रहेगी ?"

"हाँ।"

"और शराब तो नहीं पीती, सिगरेट तो नहीं पीती, डांस की शौकीन तो नहीं है, खेल-तमाशों में ज्यादा दिलचस्पी तो नहीं लेती ?

"बिलकुल नहीं।"

"और तुम्हारा कहना है कि खूबसूरत है ?"

"बिलकुल परी की तरह।"

कामरेड मारीसन अब उठ खड़े हुए; लपककर उन्होंने कामरेड उमानाथ से हाथ मिलाया, "अच्छा कामरेड उमानाथ, ऐसी स्त्री से मैं शादी करने को तैयार हूँ। लेकिन एक सवाल मैं और करूंगा—वह स्त्री कौन है ?"

उमानाथ ने थोड़ी देर तक यह सोचा कि कामरेड मारीसन से सारी स्थिति स्पष्ट कर दी जाय या नहीं; और उन्होंने तै कर लिया कि आखिर स्थिति तो स्पष्ट करनी ही पड़ेगी, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों; लिहाजा जल्दी-से-जल्दी स्थिति क्यों न स्पष्ट कर दी जाय। उन्होंने धीरे से कहा, "देखो कामरेड—अभी यह बात किसी से कहना मत ! बात यह कि मेरी पहली पत्नी में ये सब गुण मौजूद हैं। और चूंकि मैं उससे प्रेम नहीं करता—नहीं, ऐसी बात नहीं है, जब यहां से गया था तब तो प्रेम करता था, लेकिन बाद में हिल्डा से प्रेम करने लगा और उससे शादी भी कर ली ; इसलिए मैं समझता हूँ कि मुझे अपनी पहली पत्नी को तलाक दे देना चाहिए और औरत वह नेक है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि जब वह खाली हो जाय तो तुम उससे शादी कर लो !"

उमानाथ ने अपनी बात खत्म की ही थी कि उन्हें हँसी के ठहाके की एक आवाज सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा कि मार्कंडेय हँसता हुआ कमरे में प्रवेश कर रहा है। मार्कंडेय ने उमानाथ के पास आकर कहा, "उमा, तुम शायद भूल गए हो, इसलिए मैं तुम्हें याद दिलाए देता हूँ कि हिंदुओं में तलाक नहीं होता, तलाक हिंदू-ला के अनुसार निषिद्ध है।"

कामरेड मारीसन ने चौंककर कहा, "क्या कहते हो ? क्या हिंदुओं में डाइवोर्स नहीं होता ? मैं किसी भी हालत में यह मानने को तैयार नहीं। मेरे बैरा रामदीन की औरत ने एक दूसरे आदमी से शादी कर ली थी और वहाँ तो तलाक हो गया था ?"

"अपने बैरा की बात छोड़िए। वह शूद्र रहा होगा; और शूद्रों पर पूरी तौर से—खास तौर से शादी-विवाह के मामलों में हिंदू-ला लागू नहीं होता। हिंदू-ला सवर्ण हिंदुओं पर ही लागू होता है।"

इस बार उमानाथ के बोलने की बारी थी। उसने कहा, "मार्कंडेय भइया, आपसे एक प्रार्थना है, आप मेरे विवाह की बात किसी पर प्रकट न कीजिएगा—इसका आप मुझे वचन दे दें। देखिए, अभी आते ही मैं यह सब झगड़ा-फसाद नहीं

मचाना चाहता, आप बड़के भइया से भी यह सब मत कहिएगा।
मैं खुद समय आने पर यह प्रकट कर दूंगा।"

मार्कंडेय ने उमानाथ का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "उमा, मैं वचन देता हूँ कि मैं यह बात किसी से न कहूँगा! मुझे अफसोस है कि यह बात मेरे कान में पड़ गई, और इससे भी अधिक अफसोस इस बात का है कि तुम, जितना मैंने समझा था, उससे अधिक मूर्ख निकले।" मार्कंडेय मुसकरा पड़ा। मार्कंडेय अब कुर्सी पर बैठ गया था। उसने गौर से कामरेड मारीसन को देखते हुए उमानाथ से फिर कहा, "और अपने इन साथी का परिचय तुमने मुझसे अभी तक नहीं कराया, यद्यपि हम दोनों में बातचीत हो गई है।" मार्कंडेय इस बार मारीसन से बोला, "मेरा नाम मार्कंडेय मिश्र है—मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ!"

"मार्कंडेय मिश्र! अनुप्रास-युक्त नाम है मिस्टर मार्कंडेय मिश्र और मेरा नाम है कामरेड मारीसन। मैं कम्युनिस्ट हूँ; कामरेड उमानाथ के साथ उत्तर भारत में घूमने का इरादा है!"

"कामरेड मारीसन! ये मिस्टर मिश्र पक्के बुर्जुआ है—यह मैं आपको बतला दूं, और बुर्जुआ होने के साथ किसी हद तक सिनिक भी हैं। आप जरा इनसे होशियार रहियेगा—ये कांग्रेसमैन हैं।" उमानाथ ने मुसकराते हुए कामरेड मारीसन को आगाह किया।

"ऐसी बात है!" मारीसन अब मार्कंडेय की ओर घूमा, "हाँ, देख रहा हूँ आप खादी पहनते हैं, आप राष्ट्रीयता को माननेवाले हैं; और राष्ट्रीयता पर विश्वास करने वाला आदमी मानव-समाज का घोर शत्रु होता है। मानवता में यह भेद, यह श्रेणी-विभाजन, यह विषमता! तुम हिंदुस्तानी हो, तुम हिंदू हो, तुम ब्राह्मण हो! और इन सब बातों के फेर में पड़कर तुम यह भूल जाते हो कि तुम मनुष्य हो।"

मार्कंडेय ने मारीसन को गौर से देखा। "आप जो कुछ कह रहे हैं, वह नई बात नहीं है। मैंने इसे बहुत सुना है, बहुत पढ़ा है—और आप जानते हैं, मैं इन बातों को क्या समझता हूँ?—अंतर्राष्ट्रीयता का प्रलाप!"

"आप इसे प्रलाप कह सकते हैं। आपके पास शब्द हैं, आपके पास जबान है। लेकिन यह अमिट और अक्षय सत्य है। तुम किस बात के लिए लड़ रहे हो? तुम क्या चाहते हो? तुम कहोगे—स्वतन्त्रता। और मैं पूछता हूँ कि तुम्हारी यह स्वतन्त्रता क्या बला है? जिस स्वतन्त्रता के लिए तुम लड़ रहे हो, क्या उसे पा जाने पर जनता के साथ होनेवाला यह उत्पीड़न बंद हो जायगा? आज करीब डेढ़ सौ वर्ष ही तो हुए हैं तुम हिंदुस्तानियों को गुलाम हुए। उसके पहले क्या था? मनुष्य का मनुष्य पर अत्याचार, रक्त-शोषण, निर्बल को गुलाम बनाना—गुलाम ही नहीं, उसे पशु बना देना। तुम कुछ थोड़े-से आदमी, जो समाज के नेता हो, जो समाज के श्रेष्ठ अंग होने का दम भरते हो; तुम स्वतन्त्रता पाना चाहते हो, निरीह और बेजुबान जनता को और भयानक गुलाम बनाने के लिए! तुम गुलामी से

छूटना चाहते हो दूसरों को अपनी गुलामी की चक्की में पीसने के लिए।"

कुछ रुककर कामरेड मारीसन ने फिर कहा, "ब्रिटिश सरकार पूंजीवादी है—तुम पूंजीवादी हो। सरकार शक्तिशाली है। तुम शक्तिहीन हो। अंग्रेज मौज करते हैं, मलाई और माल वे ले जाते हैं। तुम्हें बचा-खुचा मिलता है। और इसीलिए तुम लड़ते हो। यह मलाई और माल तुम पाना चाहते हो। लेकिन यह मूक और उत्पीड़ित जन-समुदाय, जिसे भिखारी बनाकर यह माल मारा जा रहा है, कब तुमने इस पर ध्यान दिया? नहीं मिस्टर मिश्र, वह लड़ाई गलत है, बेकार है! इस लड़ाई में मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि जन-समुदाय को आगे आना चाहिए। उन्हें डटकर मोरचा लेना चाहिए तुम लोगों से—तुम शोषण करनेवालों से···'

मारीसन रुक गए। इसी समय दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। उमानाथ की ओर बढ़ते हुए दयानाथ ने कहा, "तो तुम लौट आये! तुम्हारा स्वागत! ठीक मौके पर तुम आ गए हो, उमा! अगर दो-एक दिन की और देर हो जाती तो छः महीने के लिए मैं तुम्हें न देख पाता!"

"यह मेरे मित्र कामरेड मारीसन हैं—और ये मेरे बड़े भाई श्री दयानाथ तिवारी हैं!" उमानाथ ने अपने बड़े भाई और कामरेड मारीसन का परिचय कराते हुए कहा, "भइया, कामरेड मारीसन को मैं उत्तर भारत घुमाने लेता आया हूँ!"

पर मानो दयानाथ ने मारीसन पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। उनकी विचारधारा किसी दूसरी ओर थी, "और प्रभा कहां है?" दयानाथ ने पूछा।

"अरे हां! प्रभा कहां है?" उमानाथ ने कमरे में चारों ओर देखते हुए कहा, "वह तो अंदर से आया ही नहीं! मालूम होता है उसने लंबी तानी!" कुछ रुककर उमानाथ ने फिर कहा, "बैठिए न! यह क्या स्वांग आपने बना रखा है! और ये फूलों के गजरे, जो आपकी गर्दन पर झूल रहे हैं, निकालिए इन्हें और बाहर भिजवा दीजिए!"

"बाहर जाकर तुम्हारी शैतानी और बढ़ गई है!" दयानाथ हँस पड़ा। गजरों को मेज पर रखते हुए उसने कहा, "देख रहा हूँ कि तुम ददुआ से बढ़कर ही निकलोगे!"

उमानाथ भी हँस पड़ा, "मेरे घर में कम किसी से कोई नहीं है। बड़के भइया, आप अपने को ही क्या समझते हैं? जो कुछ मैंने आपके संबंध में सुना है, और जो कुछ मैं देख रहा हूँ, उससे मैं कह सकता हूँ कि आप बहुत आगे बढ़े हुए हैं।" फिर धीरे से उसने कहा, "बड़के भइया, ददुआ को अभी पता नहीं कि मैं क्या हूँ, आपको भी पता नहीं! लेकिन मैं इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे आप लोग अपने से पीछे न पाइयेगा।"

दयानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "देख रहा हूँ, विलायत से तुम विलायत

की सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा भी साथ लेते आए हो।
तीस साल के अंदर ही तुमने अपनी सारी हिंदुस्तानियत अपने से निकाल फेंकी। इस परिवर्तन पर मैं तुम्हें बधाई नहीं दे सकता।"

इसी समय बाहर कुछ हलचल-सी मालूम हुई। नौकर ने आकर इत्तिला दी कि कुछ सिपाहियों के साथ पुलिस सब-इंस्पेक्टर बाहर खड़े हैं।

५

दयानाथ उठ खड़े हुए, "देख रहा हूँ कि हम लोगों का अनुमान गलत था। गिरफ्तारी कल न होकर आज ही होगी। अच्छा, मैं भीतर हो लूं।" और उन्होंने नौकर से कहा, "थानेदार साहब को यहीं बुलाकर बिठलाओ, मैं अभी आता हूँ।"

राजेश्वरीदेवी राजेश और ब्रजेश को खाना खिला रही थीं। दयानाथ को देखते ही वे उठ खड़ी हुईं। बाहर कोलाहल बढ़ता ही जाता था। पुलिसवालों को देखकर जनता की भीड़ बंगले के बाहर एकत्रित हो रही थी। राजेश्वरी ने दयानाथ से पूछा, "यह शोर कैसा है?"

"शायद मेरी गिरफ्तारी का वारंट आया है; इसी समय जाना पड़ेगा।" मुसकराते हुए दयानाथ ने कहा।

राजेश्वरी सुन्न-सी रह गईं। उसके मुँह से शब्द न निकला, एकटक वह दयानाथ को देख रही थीं।

बाहर के कोलाहल में प्रभानाथ की नींद टूट गई, "क्या बात है?" कहते हुए वह कमरे से बाहर निकला और उसने देखा कि उसकी भावज राजेश्वरी रुआँसी-सी खड़ी है और उसके सामने ही खड़ा हुआ दयानाथ मुसकरा रहा है।

"आप आ गए, बड़के भइया! लेकिन यह शोर कैसा?" प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा।

"हाँ, मैं आ गया, और मुझे लेने के लिए पुलिस भी आ गई है—बाहर खड़ी है। प्रभा, तुम अपनी भावज को सँभालो—उससे कहो, वीर बनो, यह कायरता का समय नहीं है।"

राजेश्वरी ने साहस किया, "मैं कायर नहीं हूँ। लेकिन—लेकिन···"

राजेश और ब्रजेश खाना छोड़कर उठ आए थे और अपने पिता के आस-पास खड़े थे। दयानाथ ने दोनों बच्चों को प्यार किया, फिर पत्नी के मस्तक पर हाथ रखकर उन्होंने कुछ ममता-भरे, कुछ स्नेह-युक्त और कुछ गंभीर स्वर में कहा, "राजेश्वरी! यह मेरी तीर्थ-यात्रा है! अविचलित भाव से, अपनी शुभ-कामनाओं के साथ मुझे विदा दो। साहस करो और धैर्य धारण करो!"

राजेश्वरी ने अपने पति को इस बार पूरी नजर से देखा—और उसके सामने खड़ा था लंबा हृष्ट-पुष्ट, गौर वर्ण का एक वीर, हिमालय की भाँति मेघमाला की भाँति गंभीर! कितना तेजवान, सुन्दर, साहसी और उसका पति! उसका अंतर प्रसन्नता से भर गया, उसकी छाः

उठी। दौड़कर वह रसोईघर से दही-अक्षत ले आई। उसने अपने पति
का तिलक किया और फिर बड़ी भक्ति के साथ उसने पति के
[चर]ण छुए।

प्रभानाथ के साथ दयानाथ बाहर निकला। थानेदार भूपसिंह दयानाथ के
[इन्]तजार में ड्राइंग-रूम में बैठे हुए उमानाथ से बातें कर रहे थे। जिस समय
[द]यानाथ ड्राइंग-रूम में आया, उमानाथ थानेदार भूपसिंह की बात का समर्थन
कर रहा था, "जी हाँ, यह तो आपका फर्ज है। भला हिंदुस्तानी कभी नमक-
[ह]रामी कर सकते हैं? हिंदुस्तानी सिपाहियों ने लार्ड क्लाइव और उनके साथियों
को चावल खिलाया और खुद माड़ पीकर लड़े—हिंदुस्तान में अंग्रेजों का राज्य
कायम कराने के लिए; सन् '५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के समय सिक्खों ने न जाने
कितने हिंदुस्तानी बागियों को पेड़ों पर लटका दिया। सब से बड़ा पाप है
नमकहरामी!"

थानेदार भूपसिंह की समझ में न आ रहा था कि उनकी तारीफ की जा रही
है या उनका मजाक उड़ाया जा रहा है; लेकिन अपनी नेकनीयती और भलाई
का सबूत देने की गरज से उन्होंने कहा, "क्या बताऊं, कुंवर साहब! दिल से
मैं महात्मा गांधी का बड़ा भारी भक्त हूं! लेकिन नौकरी कर रहा हूं! लंबी
गृहस्थी है..."

भूपसिंह की बात बीच में ही काटकर उमानाथ ने कहा, "और आप अपने
बीवी-बच्चों को फांसी पर लटकाने को कतई तैयार नहीं। और एक दफे आप
उन्हें फांसी पर लटकाने को तुल भी जाएं तो भला वे कब मानने लगे। लंबी
गृहस्थी चलाने के लिए लंबा खर्च भी चाहिए, और यह लंबा खर्च निकालने के
लिए लंबी रकम की भी जरूरत होती है और इस लंबी रकम के लिए लंबा झूठ,
लंबी दगाबाजी, लंबी रिश्वत, इन सब का सहारा लेना होता है।"

थानेदार भूपसिंह मुंह बाये हुए उमानाथ की बात सुन रहे थे। ऐसे मुंहफट,
मुंह पर गाली सुनानेवाले आदमी से उन्हें अभी तक वास्ता न पड़ा था; लेकिन
साथ ही उमानाथ भूपसिंह पर पूरी तरह से हावी हो गया। दयानाथ यह बात-
चीत सुनकर मुसकराया, उसने भूपसिंह के पास आकर कहा, "थानेदार साहब!
मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूं!"

दयानाथ को सामने खड़ा देखकर भूपसिंह की जान में जान आई। उठक[र]
उन्होंने दयानाथ को सलाम किया, "मुझे अफसोस है कि आपकी गिरफ्तारी क[ा]
वारंट मुझे सौंपा गया है?"

"इसमें अफसोस की क्या बात है? मैं तैयार हूं, आप अपना फर्ज अ[दा]
कीजिए!"

"नहीं पंडितजी—इसमें जल्दी की कोई जरूरत नहीं। आपको जो-जो क[ाम]
करना हो, कर लें। और अगर आप कहें तो मैं कल आऊं!" भूपसिंह
कहा।

दयानाथ ने उत्तर, दिया "नहीं थानेदार साहब, इतनी तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं। जैसा कल वैसा आज! चलिए, मैं तैयार हूँ।"

दयानाथ को विदा करके प्रभानाथ और उमानाथ अपनी भावज के पास अंदर चले गए। जब तक दयानाथ नहीं गए, राजेश्वरी साहसपूर्वक खड़ी रही; पर उनके जाते ही वह एकाएक फूट पड़ी। राजेश और ब्रजेश भी रो रहे थे, अपने पिता के जाने पर नहीं—उन्हें शायद यह पता भी न था कि उनके पिता जेल गए हैं—बल्कि अपनी माता के रोने पर। उमानाथ ने कहा, "भौजी! यह क्या हो रहा है? छी-छी! कहीं इस तरह से धीरज खोया जाता है! बड़के भइया अगर यह जान गए तो उन्हें कितना दुख होगा!"

राजेश्वरी ने आँखें पोंछकर सामने देखा, उसके दोनों देवर उसके आगे खड़े थे। सबसे नजदीकी, उसके निजी! उसे कुछ ढाढस हुआ। उसने कहा, "बाबूजी! अकेली हूँ, क्या करूँगी! कुछ समझ में नहीं आता।"

"क्यों, अकेली क्यों हो? हम लोग तो हैं! कल सुबह हम लोग उन्नाव जा रहे हैं। तैयारी कीजिए। आपका घर-द्वार सभी कुछ तो है!" उमानाथ ने कहा।

"नहीं बाबूजी! मेरा घर-द्वार कुछ नहीं है! वह सब तो उसी दिन छूट गया, जिस दिन उन्होंने इस रास्ते पर कदम रखा। मैं और ये दोनों बच्चे! बस हम लोग अकेले और सामने सारी दुनिया! ददुआ ने तो हम लोगों को अलग कर दिया है!"

इस बार प्रभानाथ के बोलने की बारी थी, "भौजी जी! ददुआ ने आप लोगों को कब अलग किया है! बड़के भइया से उन्होंने मेरे सामने साफ-साफ शब्दों में कहा था कि आप लोग, आप और राजेश-ब्रजेश जब चाहें, घर में आ सकती हैं। आपको हमारे साथ चलना पड़ेगा, यहाँ अकेली कैसे रहियेगा!"

एकाएक राजेश्वरी देवी तनकर खड़ी हो गईं, "इन्हें अलग कर दिया और हम लोग सिर-आँखों पर! प्रभा बाबू! आप क्या समझकर यह कह रहे हैं? आप समझते हैं कि जिस घर में ये कलंकित, अपमानित और निरादृत हैं, जहाँ ये त्याज्य हैं, उस घर में मैं पैर रखूँगी! भूखों मर जाऊँगी, भीख माँग लूँगी, मजूरी कर लूँगी, लेकिन उन्नाव में पैर न रखूँगी! इतना आप समझ लीजिए!"

उमानाथ ने ताली पीटते हुए कहा, "वेल सेड, भौजी जी! चाहिए भी यही! ददुआ को भी जरा पता लग जाय कि उनकी अहमन्यता को एक स्त्री तक कुचल सकती है! लेकिन भौजी जी, आपका खर्च कैसे चलेगा, हमारे सामने यह सवाल है। और अगर आप मानें तो एक बात मैं आप से कहूँ!"

"बाबूजी, मानने लायक बात होगी तो मैं जरूर मानूँगी।"

उमानाथ ने अपना पर्स निकाला, "अगर हम लोग आपको आपके खर्चे लिए इस समय कुछ रुपया दें तो आप उसे स्वीकार करने से इनकार न करें—

और हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि यह रुपया हम लोग अपनी जेबखर्च से देंगे—ददुआ से न माँगेंगे।"

और इसके पहले कि राजेश्वरी कुछ कहे, उमानाथ ने अपना पर्स खाली र दिया। लेकिन उसके पर्स में सिर्फ दस-दस रुपए के सोलह नोट निकले। अरे! मैं भूल गया था; कलकत्ता में बहुत अधिक खर्च हो गया था! प्रभा, ज़्ारा तुम्हारे पास कितना रुपया है?"

प्रभानाथ ने भी अपना पर्स खाली किया, और उसके पास पाँच सौ रुपये थे।

राजेश्वरी ने कहा, "बाबूजी, रहने दीजिए! अभी तो मेरे पास रुपया है। ाब जरूरत होगी माँग लूँगी!

"अरे! जब आपको जरूरत पड़े तब हमारे पास रुपया निकले या न निकले—कौन जानता है। रखिए भी इसे।"

दूसरे दिन सुबह मारीसन को एक होटल में टिकाकर प्रभानाथ के साथ उमानाथ ने अपने घर को प्रस्थान किया।

सातवाँ परिच्छेद

तमाखू फांकते हुए पंडित परमानंद सुकुल ने आवाज लगाई, "काहे हो वाजपेयीजी, कितना विलंब है?"

पंडित बैजनाथ वाजपेयी ने अपना हाथ रोका। सामने सिल पर भाँग के गोले को, जिसे वे एक घंटे से पीस रहे थे, देखकर उनके मुख पर संतोष की मुसकराहट आई। उन्होंने उत्तर दिया, "बस सुकुलजी, तैयार है।"

परमानंद सुकुल ने अपने सामने बैठे हुए नीलकंठ अवस्थी से कहा, "सो महाराज, कबौं बिलाइतिहन का प्रायश्चित भा है कि आजै होई?"

बात यद्यपि नीलकंठ अवस्थी से कही गई थी, पर उत्तर मन्नू दुबे ने दिया, "न कबौं भा है और न आज होई। हम लोग आन कनौजिया और ऊगा खटकुल। ई भ्रष्टाचार हमरी यहाँ नाहीं चल सकत है, यू विश्वास राखो!

गणपति अग्निहोत्री से, जो अभी तक बैजनाथ वाजपेयी के सिल-लोढ़े को देख रहे थे, अब न रहा गया; खखारकर बोले, "ई आय बैसवाड़ा, कनौजियन का गढ़! हम लोग जो कुछ कर देव, वह शास्त्र-संमत। हाँ, पंचन की राय अलबत्ता चाही!"

अलगू दीक्षित ने गर्व से अपना मस्तक ऊंचा करके कहा, "ई मा कौनो सक है! हम जो कर देई ऊ का कौनो काट नहीं सकत है। तौन महाराज इहै लिए हम कहा कि जो कुछ कीन जाय, तो जरा सोच-समझ कै कीन जाय!"

तब तक बैजनाथ वाजपेयी ने आवाज लगाई, "अच्छा! एक दफा बोलो

विजया-भवानी की जय ! तौन पहले छानि लेव तव शास्त्रार्थ कीन्हेव !"

ये प्रमुख सभ्य-गण बानापुर में पंडित रामनाथ तिवारी के अतिथि होकर आए थे। सुबह दस बजे के करीब उमानाथ मोटर से आनेवाला था; और तिवारी जी ने अपने लड़के के प्रायश्चित्त का विधान करवाया था। इस प्रायश्चित्त में योग देने के लिए आस-पास के कनौजिया जाति के सरपंच आमंत्रित किये गए थे।

जिस समय भाँग छन रही थी, झगड़ू मिश्र भी आ पहुँचे। भाँग छानकर सरपंच फिर बैठे, अभी केवल आठ बजे थे।

पंडित परमानद सुकुल ने पंडित झगड़ू मिश्र के सामने चूना-तमाखू से भरी अपनी हथेली फैलाते हुए कहा, "लेव मिसिरजी सुरती ! हाँ, तौन तिवारीजी केर बिटवा जर्मनी माँ पढ़ि के लौट रहा है—है न ऐस बात !"

झगड़ू मिश्र ने एक चुटकी तमाखू लेते हुए उत्तर दिया, "हाँ-हाँ ! तमाम दुनिया छान के आवा है, तीन साल विलायत मे रहा है—मजाक है !"

"तो फिर तुरुकनौ के देस माँ गा होई ?" मन्नू दुबे ने एक कुटिल मुसकराहट के साथ पूछा।

मन्नू दुबे की मुसकराहट की कुटिलता को झगड़ू मिश्र नहीं समझ सके, सीधे-सादे उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, काहे नाहीं। तुरुकनौ के देस माँ घूमा है। हम कहा नाहीं कि दुनिया घूम के आय रहा है !"

परमानंद सुकुल ने अब बम का गोला फेंका, "तो काहे हो मिसिरजी, तुरकन के देस माँ तुरकन के हाथ का भोजनौ कीन्हिस होई ! और फिर तुरकन के देस माँ खाद्य-अखाद्य सबै चलत है।"

पंडित परमानंद के इस प्रश्न से पंडित झगड़ू मिश्र भड़क उठे। अब उनकी समझ मे आया कि मन्नू दुबे और परमानंद सुकुल का मतलब क्या है। पंडित मन्नू दुबे और परमानंद सुकुल अपनी कुलीनता, अपने अभिमान और अपने कटु-स्वभाव के लिए बैसवाड़े में प्रसिद्ध थे। अगर ये दोनों कुलीन कनौजिया किसी से दबते थे, तो पंडित रामनाथ तिवारी से या पंडित झगड़ू मिश्र से। पंडित रामनाथ तिवारी से इसलिए, कि वे ताल्लुकेदार थे, शिक्षित थे और चरित्रवान् थे; और पंडित झगड़ू मिश्र से इसलिए, कि वे सेर के सवा सेर थे। अब उन्हें मौका मिला था कि वे पंडित रामनाथ तिवारी पर हावी हो सकें; और झगड़ू ने इन दोनों के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ लिया। झगड़ू ने एक बार दोनों को कड़ी नजर से देखा, फिर उन्होंने अपने स्वर को और भी कठोर बनाते हुए कहा, "षटकुल के लिए कौनो चीज अखाद्य नाहीं—यू समझ राख्यो !"

बैजनाथ वाजपेयी, जो छटांक भर भाँग का गोला चढ़ाकर आँख मूँदे गड़-गप्प बैठे थे, झगड़ू के इस कड़े स्वर से चौंक उठे। आँखें खोलकर उन्होंने कहा, "ठीक है मिसिरजी ! हम लोग स्पर्श-मात्र से अखाद्य का खाद्य, अशुद्ध का ... बनाय सकित है ! कृपा बनी रहे मरघट-निवासी बम भोलानाथ की। हो ...

एक दफे फिर बोलो विजया भवानी की जय !"

लेकिन बैजनाथ वाजपेयी का यह वाक्य फीका रहा। यह अवसर हँसी का नहीं था, बातों ने उग्र रूप धारण करना प्रारंभ कर दिया था।

नीलकंठ अवस्थी इन उपस्थित सज्जनों में सब से अधिक विद्वान् समझे जाते थे, क्योंकि काशी में उन्होंने पाँच वर्ष तक वैद्यक पढ़ी थी और वहाँ से यह कहते हुए लौटे थे कि परीक्षाफल को योग्यता की कसौटी बनाना सबसे बड़ी मूर्खता है। एक बार खखारकर और अति गंभीर मुद्रा बनाकर अवस्थीजी ने कहा, "शास्त्र का विधान जो है शो तोड़ना मनुष्य के लिए वर्जित है। वाजपेयीजी, हम जो कुछ कर सकते हैं, वह शास्त्र के विधान से और जो है शो, जो कुछ नहीं कर सकते, वह भी शास्त्र के विधान से !"

गणपति अग्निहोत्री और नीलकंठ अवस्थी में एक जमीन के पीछे पुरानी अदावत चली आती थी। अभी तक तो वे मौन दर्शक की भाँति बैठे बातचीत का रस ले रहे थे, पर अब उनसे न रहा गया। उन्होंने कुछ अजीब तरह से मुँह बनाकर कहा, "अवस्थीजी, तुम्हें यह सास्तर की बात करब सोभा नाहीं देत। पाँच बरस कासी माँ रहिके भाड़ तो झोंकत रहेव—नापास हुई के लौट आएव!"

परमानंद सुकुल नीलकंठ अवस्थी के बहनोई थे। साले का यह अपमान उन्हें अखर गया। कड़क कर उन्होंने कहा, "गणपति पंडित, जरा जबान सम्हाल के बात कीन्हेव, नाहीं तो जीभ काढ़ि लेब !"

गणपति सकपकाए, लेकिन झगड़ू ने गणपति को सहारा दिया, क्योंकि गणपति का अपमान परमानंद सुकुल द्वारा हुआ था। उन्होंने तनकर कहा, "कौन सार ऐसा है जो गणपति पर हाथ लगावे—ज़रा देखी तो ! और गणपति कही, फिर कही, एक माँ नाहीं हजार माँ कही !"

मन्नू दुबे ने अपनी लाठी संभालते हुए कहा, "मिसिरजी, तिवारीजी की कोठी माँ बैठि के ई बातें भले करि लेव, बाहर निकसि के करौ तो हम बताई !" यह कहकर मन्नू ने परमानंद को गर्व से देखा। परमानंद को सहारा मिला। लाठी लेकर वे खड़े हो गए, "तो फिर मिसिरजी, हम देखी तुम्हार और गणपति की मर्दानगी। एक दफा ई फिर वह बात निकारैं जबान से; और अगर इहाँ खून-खराबा न हुई गा तो हम बाह्मन नाहीं चमार !"

झगड़ू मिश्र के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती थी। उन्होंने भी अपनी लाठी संभालते हुए गणपति से कहा, "गणपति पंडित ! फिर से कहो, और फिर जेहिक हमार मर्दानगी देखै का होय, आवै हमारे सामने !"

गणपति को इसमें तो कोई आपत्ति नहीं थी कि झगड़ू मिश्र में तथा परमानंद सुकुल एवं मन्नू दुबे में चले; उन्हें इनकी लड़ाई देखने की इच्छा भी थी पर इस मामले में उन्हें शक था कि पहला वार झगड़ू पर होगा या उन पर होगा संभावना यही थी कि पहला वार उन्हीं पर हो, और अपने ऊपर पहला हाथ प में उन्हें बड़ी आपत्ति थी। इसलिए उन्होंने झगड़ू का आश्वासन होते हुए

मौन रहना ही उचित समझा।

कुछ देर तक गणपति का इंतजार करने के बाद झगड़ू ने जरा जोर से कहा, "काहे हो गणपति पंडित! गूँगे हुई गए हो का? कहो ना—देखी ई लोग का बिगाड़े लेत हैं!"

लेकिन गणपति लड़ाई-झगड़े के बीच में पड़ने को जरा भी तैयार नहीं नजर आए।

झुँझलाकर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूं का सार! अच्छा तो सुनो परमानंद और मन्नू! हम कहित है नीलकंठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी माँ भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय, वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुबे और परमानंद शुकुल दोनों खड़े हुए। झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बचाव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिनवाली फौजदारी शायद भगवान् को मंजूर न थी, क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की, वैसे ही पंडित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों, क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारीजी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करै का है।"

रामनाथ तिवारी ने गंभीरतापूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजिएगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानंद ने कहा, "तिवारीजी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिए, बैठिए चलकर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पंडित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पंडित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भली-भाँति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँचकर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हॉर्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे।

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिंदुस्तान मे, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की

प्रथा है ?"

"हां, प्रभा ! तुम निश्चित रहो। मैं जानता हूं कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है !" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हां, लेकिन कहीं यह न भूल जाइएगा कि ददुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं !" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देखकर उसने कहा, "हलो, झगड़ू काका ? प्रणाम। आप अच्छी तरह तो हैं !"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गद्‌गद हो गए। "आशीर्वाद, मँझले कुंवर। बहुत दिनन बाद आए हो। तौन दुनिया घूम के अब ई दिहात माँ आ रहे हो···" और यह न समझ पाकर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा ! घर के प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा !" यह कहकर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित सभ्यगण के सामने पहुंचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय था कि क्या उमानाथ के प्रायश्चित्त करने से रामनाथ तिवारी का कुल अपनी मर्यादा कायम रख सकेगा या नहीं। पर इन लोगों के पहुंचते ही विवाद बंद हो गया। रामनाथ तिवारी ने बैठते हुए कहा, "तो मिश्रजी, फिर प्रायश्चित्त की सब तैयारी पूरी है न ?"

झगड़ू ने एक बार सभ्यगणों पर निगाह डाली, फिर वे बोले, "हां तिवारी-जी, सब कुछ तैयार है।"

मन्नू दुबे ने, जो प्रायश्चित्त-विरोधी दल के नेता थे, साहस किया, "तिवारी-जी, हम कन्नौजियन माँ बिलइतिहन का न कबौं प्रायश्चित्त भा है, और न आज होई ! हम सब पंचन की तो राय कुछ ऐसी है ?"

रामनाथ तिवारी ने अपने संमुख बैठे हुए लोगों को एक बार आश्चर्यपूर्वक ध्यान से देखकर कहा, "दुबेजी, आपके साथ जो-जो पंच शामिल हों, वे स्वयं यह बात कहें; मौन का अर्थ स्वीकृति समझा जायगा !"

अब परमानंद सुकुल ने कहा, "हम लोग सब हैं। अपने कुल और समाज की मर्यादा भला यहाँ को छोड़ सकत है ?"

"हाँ, ठीकै तो है !" पंडित नीलकंठ अवस्थी ने परमानंद का साथ दिया, "भला हम लोग कबौं शास्त्र के बाहर जाय सकित है ? कुल और समाज की मर्यादा सबके ऊपर है।"

झगड़ू मिश्र से अब न रहा गया, उन्होंने नीलकंठ की आंख-से-आंख मिलाकर

कहा, "काहे हो अवस्थीजी, जब तुम्हारी रांड़ भौजाई घर से निकरि गई, तब कुल की मर्यादा कहाँ गई रहै ?"

"कहा कहेव, मिसिरजी !" परमानंद ने लाठी उठाते हुए कहा, "जरा एक दफा फिर तो ई बात बोलो !"

झगड़ू के हाथ में भी लाठी तन गई थी। वे बोलना ही चाहते थे, कि रामनाथ तिवारी ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें रोका, "इस बात से यहाँ कोई मतलब नहीं ! सवाल यह है कि इस प्रायश्चित्त में कौन-कौन शरीक हैं ?"

"हम तैयार !" बैजनाथ वाजपेयी ने कहा।

"हम तैयार ! अलगू दीक्षित ने कहा।

"हम तैयार !", गणपति अग्निहोत्री ने कहा।

"लेकिन मैं नहीं तैयार !" उमानाथ जो मौन खड़ा यह कांड देख रहा था, बोल उठा, "यह सब स्वाँग आप ही को मुबारक रहे, ददुआ। ये कुत्तों से भी गए-बीते आदमी हमारे घर में आकर हमारा ही अपमान करें और आप सब कुछ चुपचाप देखते रहें, चुपचाप सुनते रहें ! मुझे आप पर आश्चर्य हो रहा है !"

झगड़ू मिश्र ने गर्व से उमानाथ की ओर देखा, "शाबाश—मंझले कुँवर—ठीक कहेव ! चलो तिवारीजी, प्रायश्चित्त की कौनो आवश्यकता नाहीं, आगे चल के दीख जाई !"

लेकिन कुत्ते से अपनी तुलना परमानंद सुकुल और मन्नू दुबे को बहुत अखरी! मन्नू दुबे ने उठते हुए कहा, "लड़िकऊ—यू याद राखेव ! घर माँ अतिथि बुलाय के उनका अपमान करब सबसे बड़ा पाप आय ! तुम्हार कुल-का-कुल नष्ट हुइ जाई—आज ब्राह्मण के मुख से यू वाक्य निकरा है, और ई का फल मिली।"

३

महालक्ष्मी ने प्रमानाथ के उतरते हुए चेहरे को देखकर पूछा, "क्यों, क्या बात है, बाबूजी ! कुशल तो है ? वह कहाँ हैं ?"

अपनी गंभीरता और उदासी को छिपाने का विफल प्रयत्न करते हुए प्रमानाथ ने कहा, "यों ही, रास्ते की थकावट है, भौजीजी ! मझले भइया का ददुआ प्रायश्चित्त कराने ले गए हैं, अभी आते ही होंगे।"

प्रमानाथ के इस उत्तर से महालक्ष्मी को संतोष नहीं हुआ। वह अपने देवर के स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी, इतनी थकावट से प्रमानाथ उदास होनेवाला नहीं था। एक भावी आशंका उसके हृदय में समा गई, उसका मन बैठ-सा गया। प्रमानाथ अपनी भौजी के पास ठहरा नहीं, सीधे वह अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर तक महालक्ष्मी उदास खड़ी दरवाजे की ओर देखती रही, इसके बाद उसे पैरों की आहट सुनाई दी। उसने देखा कि उसके ससुर के साथ उसके पति आ रहे हैं। उसने घूँघट काढ़ लिया और वह कमरे के अंदर चली गई।

उमानाथ को उसके कमरे के द्वार पर छोड़ते हुए रामनाथ ने कहा, "अच्छा, तुम थके हुए होगे। जाओ, आराम करो जाकर।" और रामनाथ तिवारी चले गए।

उमानाथ ने अपने कमरे में प्रवेश किया। एक वार उसने अपने चारों तरफ देखा, धुंधला अतीत उसकी दृष्टि के सामने स्पष्ट होने लगा। महालक्ष्मी एक कोने में मौन खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी आगे बढ़कर आएं—उसको अपने भुजपाश में आवद्ध कर लें। वह करीव वीस सेकंड इसी तरह खड़ी रही, पर उमानाथ आगे नहीं बढ़ा। ये वीस सेकंड महालक्ष्मी को वीस मिनट, वीस घंटे, वीस वर्ष—नहीं, वीस युग से भी अधिक लगे।

अव उससे अधिक प्रतीक्षा न की गई; विकल, अस्त-व्यस्त वह बढ़ी और अपने स्वामी, अपने देवता के चरणों पर रोती हुई गिर पड़ी।

लेकिन उसका यह सुख भी अधिक देर तक न रह सका। उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "यह क्या मजाक हो रहा है? उठो भी, आखिर यह सव जंगलीपन क्या तुम लोग नहीं छोड़ सकतीं?" और यह कहकर उमानाथ दो कदम पीछे हट गया।

महालक्ष्मी के हृदय में धक्का-सा लगा। दो वर्ष तक वह जिसके नाम की माला जपती रही, जिस देवता की प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित करके आँसुओं से नहलाती रही, जिसे श्वासों का संगीत सुनाती रही, वही देवता उसकी पूजा का, उसकी भावना का निरादर कर रहा था, तिरस्कार कर रहा था।

हित नत-मस्तक उपेक्षिता-सी वह उठ खड़ी हुई। उसने एक वार उमानाथ को से देखा, उसने पहचानने की कोशिश की कि उसके सामने उसके स्वामी ही हैं या और कोई है! और उसने देखा कि उसको धोखा नहीं हुआ। वही उमानाथ—सुन्दर, स्वस्थ, लापरवाही की मस्ती से भरा हुआ। उसके सामने खड़ा था वह उमानाथ, जिस पर उसे गर्व था, जिसको पति-रूप में पाकर उसने अपना जीवन धन्य समझा था।

और एकाएक महालक्ष्मी की दृष्टि उमानाथ के शरीर को चीरती हुई उसकी आत्मा तक पहुँच गई। उसने उमानाथ की आत्मा में एक अजीव तरह का धुंधलापन देखा। उसने देखा कि उसके स्वामी के हृदय का स्पंदन मंद तथा शिथिल पड़ गया है—वह सिहर उठी।

उमानाथ एक कुर्सी पर बैठ गया और कौतूहल के साथ महालक्ष्मी को देखने लगा। वह महालक्ष्मी की उस करुणा से भरी हुई दृष्टि को न समझ सका। उसने मुसकराते हुए कहा, "कहो! तुम अच्छी तरह तो रहीं?"

"जी हाँ—आपके आशीर्वाद से।" महालक्ष्मी ने धीमे से कहा।

"लेकिन तुमने मुझसे कुछ नहीं पूछा! खैर, मैं स्वयं वतलाए देता हूँ कि मैं अच्छी तरह रहा। मैंने दुनिया देखी है; वड़ी मजेदार जगह है। मुझे अफसोस है कि तुम मेरे साथ नहीं चलीं!..."

उमानाथ कुछ और कहता, लेकिन महालक्ष्मी को अपनी तरफ एक विचित्र प्रकार से देखते देखकर वह रुक गया। उमानाथ महालक्ष्मी की उस दृष्टि को तो नहीं समझ सका, उस दृष्टि में तीव्र करुणा से भरी हुई ममता को तो वह नहीं पहचान सका, लेकिन इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि उस दृष्टि में कुछ अनोखापन है, ऐसी कोई चीज है, जिससे वह परिचित नहीं है, जो उसके लिए नई है, एक पहेली के रूप में है।

उमानाथ ने बात बदली, "अच्छा, जानती हो कि मैं थका हुआ हूँ। नहाने का इंतजाम करवा दो, कपड़े बदल डालूँ!"

४

शाम के चार बजे श्यामनाथ की कार रामनाथ की कोठी के सामने रुकी। रामनाथ तिवारी उस समय सो रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया। "अरे प्रभा! तो तुम आ गए? उमा भी साथ आया है न!" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"लेकिन तुम फतहपुर क्यों नहीं ठहरे!" श्यामनाथ ने जरा कड़े स्वर में पूछा।

"मुझे यहाँ आने की जल्दी थी—और ददुआ ने सीधे यहाँ आने को कहा था।"

"ददुआ ने कहा था! तो ददुआ सब कुछ हैं और मैं कुछ नहीं; जो कुछ वह कहें, वही हो! मैं कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता!" श्यामनाथ ने मेज पर हाथ पटकते हुए कहा।

श्यामनाथ ने इतनी जोर से हाथ पटका था कि उसकी आवाज से पंडित रामनाथ तिवारी की, जो बगलवाले कमरे में ही लेटे थे, नींद टूट गई। उन्होंने वहीं से आवाज दी, "अरे ओ लखन के बच्चे! देख तो यह शोर कौन कर रहा है?"

"सरकार छुटके राजा आए हैं!" लखना ने उत्तर दिया।

"श्यामू आया है? कब?' पलंग पर उठकर बैठते हुए रामनाथ ने कहा, "उसे यहाँ भेज दो!"

श्यामनाथ ने जाकर अपने बड़े भाई के चरण छुए।

"आशीर्वाद!" रामनाथ ने कहा, "यहाँ, इतनी धूप में कैसे आए! कोई खास बात है?"

"जी हाँ!" दबी जबान श्यामनाथ ने कहा।

थोड़ी देर तक रामनाथ श्यामनाथ की बात की प्रतीक्षा करते रहे, पर श्यामनाथ को साहस न हो रहा था कि वे अपनी बात कहें। कुछ झुँझलाकर रामनाथ ने कहा, "कहो न क्या कहना है?"

"कल दया गिरफ्तार हो गया!"

"दया गिरफ्तार हो गया !" रामनाथ चौंक उठे, पर उन्होंने वैसे ही अपने को सँभाल लिया। कुछ देर वे सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "तो फिर क्या करूं! जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा भी ! जानते हो श्यामू, डिप्टी कमिश्नर ने मुझे पहले ही आगाह किया था, और उनका पत्र पाकर मैंने दया से कांग्रेस छोड़ देने को भी कहा था। लेकिन उसने घर से अलग होना—हम लोगों से छूट जाना पसंद किया, लेकिन कांग्रेस छोड़ना मंजूर न था।"

"वह तो जो कुछ होना था, हो गया। अब सवाल हमारे सामने यह है कि उसकी पैरवी करके किस प्रकार उसे जेल जाने से बचाया जाय !" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी पैरवी करने की, उसे बचाने की सोचने की कोई आवश्यकता नहीं।" उग्र स्वर में रामनाथ ने कहा, "मैंने उसे घर से अलग कर दिया है, मेरे लिए वह मर चुका है—उसका कोई अस्तित्व नहीं !"

"उसका कोई अस्तित्व न सही, लेकिन उसके बीवी-बच्चे तो हैं। वे लोग हमारे ही कुल के हैं। दुनिया क्या कहेगी ?"

"दुनिया की मुझे परवाह नहीं, दुनिया को खुश रखने के लिए अपने विश्वास को तोड़ा जाय, अपने सिद्धांत से गिरा जाय, कमजोरी दिखाई जाय। श्यामू, मैं इस पर विश्वास नहीं करता। मुझे ताज्जुब तो यह है कि मुझे अच्छी तरह जानते हुए तुमने यह बात मुझसे कैसे कही !"

श्यामनाथ निरुत्तर रह गए। घर से न जाने वे क्या-क्या सोचकर चले थे, लेकिन रामनाथ के सामने पहुँचते ही उनके सारे मनसूबे, सब विचार प्रखर सूर्य के सामने बरफ की तरह गलकर बह गये। कुछ देर तक वे मौन और उदास बैठे रहे, उन्होंने एक ठंडी साँस लेकर कहा, "जैसी आपकी इच्छा ! लेकिन बड़ी बहू राजेश-ब्रजेश का तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"हाँ !" कुछ सोचकर रामनाथ ने कहा, "उनका प्रबंध करना ही पड़ेगा। कल ही मैं उमा या प्रभा को कानपुर भेजूंगा, उन्हें यहाँ ले आने के लिए।"

"कल क्यों, आज क्यों नहीं ? आप जानते ही हैं कि वे लोग वहाँ अकेले हैं।"

"ठीक कहते हो !" रामनाथ ने आवाज दी, "अबे ओ लखना—छुटके भइया को यहाँ भेज दे !"

प्रभानाथ अभी तक बगल के कमरे में ही बैठा था। लखना के कहने की बिना प्रतीक्षा किये हुए ही वह रामनाथ के कमरे में दाखिल हुआ।

"तुम्हें मालूम है कि दया गिरफ्तार हो गया ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें अभी कानपुर जाकर अपनी भावज तथा राजेश-ब्रजेश को साथ लाना पड़ेगा। समझे !"

"मेरा वहाँ जाना बेकार है, क्योंकि भौजीजी यहाँ आने को बिलकुल तैयार नहीं हैं। मैंने आज सुबह ही उनसे चलने को कहा था।"

"क्या तुम दया के यहाँ गये थे ?"

"जी हाँ ! मंझले भइया से वे मिलना चाहते थे। कल उनकी गिरफ्तारी के समय हम लोग वहीं मौजूद थे।" प्रभानाथ ने साहस के साथ कहा, "और जब हम लोगों ने भौजीजी से यहाँ आने को कहा, तो उन्होंने यह कहकर कि वे भीख माँगकर गुलामी करके वहीं रहेंगी, लेकिन यहाँ पैर न रखेंगी, इनकार कर दिया।"

"बात यहाँ तक पहुँच गई है !" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर देखा।

"यह तो आप ही समझिए। जहाँ तक मेरी समझ है, मैं तो यही कहूँगा कि बड़ी बहू ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। स्त्री की महत्ता इसी में है कि वह अपने पति के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिला दे, सुख-दुःख में वह पति का साथ दे।"

"लेकिन वह मेरे घर की बहू है—मेरे घर की !" दाँत पीसते हुए रामनाथ ने कहा, "मेरे घर की बहू इस तरह हालत में रहकर मेरे कुल को कलंकित नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती !"

"तो फिर आप ही को कानपुर जाना पड़ेगा, दद्दुआ !" प्रभानाथ ने कहा।

"हाँ, मैं कानपुर जाऊँगा—अभी चल रहा हूँ। प्रभा, मोटर तैयार करवाओ। और तुम्हें भी मेरे साथ अभी चलना पड़ेगा।"

"चलना तो मैं भी चाहता हूँ !" दबी जबान से श्यामनाथ ने कहा, "और अगर आप अनुचित न समझें तो मैं एक बार दया से जेल में मिलकर कोशिश करूँ !"

"किस बात की कोशिश ?" रामनाथ ने पूछा।

"कि वह कांग्रेस से अलग हो जाय !"

"लेकिन इससे फायदा ?"

"इससे फायदा यह होगा कि उसके इस आश्वासन से मैं दया को जेल जाने से बचवा सकता हूँ !" श्यामनाथ ने उत्तर दिया।

"तो इसके माने यह हुए कि वह सरकार से एक प्रकार से माफी माँगे ! " रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा, "नहीं, श्यामू !" एक रूखी मुसकराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गई, "माफी माँगे—इतना ऊपर चढ़कर अब वह अपने को एकदम गिरावे ! दया इसके लिए कभी भी तैयार न होगा ! और अगर एक बार वह माफी माँगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूँगा। नहीं—श्यामू, यह बेकार की बात है। हाँ, अगर तुम कानपुर चलना चाहते हो, तो चलो। लेकिन तुम अभी उमा से नहीं मिले हो—तुम यहीं रुको !"

५

जिस समय रामनाथ तिवारी की कार दयानाथ के बंगले में पहुँची, सूर्यास्त हो रहा था। राजेश और ब्रजेश बरामदे में बैठे हुए मार्कंडेय के साथ खेल रहे थे। रामनाथ को देखते ही दोनों लड़के 'दद्दुआ आये ! दद्दुआ आये !' कहते

"दया गिरफ्तार हो गया !" रामनाथ चौंक उठे, पर उन्होंने वैसे ही अपने को सँभाल लिया। कुछ देर वे सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "तो फिर क्या करूँ ! जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा भी ! जानते हो श्यामू, डिप्टी कमिश्नर ने मुझे पहले ही आगाह किया था, और उनका पत्र पाकर मैंने दया से कांग्रेस छोड़ देने को भी कहा था। लेकिन उसने घर से अलग होना— हम लोगों से छूट जाना पसंद किया, लेकिन कांग्रेस छोड़ना मंजूर न था।"

"वह तो जो कुछ होना था, हो गया। अब सवाल हमारे सामने यह है कि उसकी पैरवी करके किस प्रकार उसे जेल जाने से बचाया जाय !" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी पैरवी करने की, उसे बचाने की सोचने की कोई आवश्यकता नहीं।" रूखे स्वर में रामनाथ ने कहा, "मैंने उसे घर से अलग कर दिया है, मेरे लिए वह मर चुका है—उसका कोई अस्तित्व नहीं !"

"उसका कोई अस्तित्व न सही, लेकिन उसके बीवी-बच्चे तो हैं। वे लोग हमारे ही कुल के हैं। दुनिया क्या कहेगी ?"

"दुनिया की मुझे परवाह नहीं, दुनिया को खुश रखने के लिए अपने विश्वास को तोड़ा जाय, अपने सिद्धांत से गिरा जाय, कमजोरी दिखाई जाय। श्यामू, मैं इस पर विश्वास नहीं करता। मुझे ताज्जुब तो यह है कि मुझे अच्छी तरह जानते हुए तुमने यह बात मुझसे कैसे कही !"

श्यामनाथ निरुत्तर रह गए। घर से न जाने वे क्या-क्या सोचकर चले थे, लेकिन रामनाथ के सामने पहुँचते ही उनके सारे मनसूबे, सब विचार प्रखर सूर्य के सामने बरफ की तरह गलकर बह गये। कुछ देर तक वे मौन और उदास बैठे रहे, उन्होंने एक ठंडी साँस लेकर कहा, "जैसी आपकी इच्छा ! लेकिन बड़ी बहू राजेश-ब्रजेश का तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"हाँ !" कुछ सोचकर रामनाथ ने कहा, "उनका प्रबंध करना ही पड़ेगा। कल ही मैं उमा या प्रभा को कानपुर भेजूँगा, उन्हें यहाँ ले आने के लिए।"

"कल क्यों, आज क्यों नहीं ? आप जानते ही हैं कि वे लोग वहाँ अकेले हैं।"

"ठीक कहते हो !" रामनाथ ने आवाज दी, "अबे ओ लखना—छुटके भइया को यहाँ भेज दे !"

प्रभानाथ अभी तक बगल के कमरे में ही बैठा था। लखना के कहने की बिना प्रतीक्षा किये हुए ही वह रामनाथ के कमरे में दाखिल हुआ।

"तुम्हें मालूम है कि दया गिरफ्तार हो गया ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें अभी कानपुर जाकर अपनी भावज तथा राजेश-ब्रजेश को साथ लाना पड़ेगा। समझे !"

"मेरा वहाँ जाना बेकार है, क्योंकि भौजीजी यहाँ आने को बिलकुल तैयार नहीं हैं। मैंने आज सुबह ही उनसे चलने को कहा था।"

"क्या तुम दया के यहाँ गये थे ?"

"जी हाँ! मंझले भइया से वे मिलना चाहते थे। कल उनकी गिरफ्तारी के समय हम लोग वहाँ मौजूद थे।" प्रभानाथ ने साहस के साथ कहा, "और जब हम लोगों ने भौजीजी से यहाँ आने को कहा, तो उन्होंने यह कहकर कि वे भीख माँगकर गुलामी करके वहाँ रहेंगी, लेकिन यहाँ पैर न रखेंगी, इनकार कर दिया।"

"बात यहाँ तक पहुँच गई है!" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर देखा।

"यह तो आप ही समझिए। जहाँ तक मेरी समझ है, मैं तो यही कहूँगा कि बड़ी बहू ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। स्त्री की महत्ता इसी में है कि वह अपने पति के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिला दे, सुख-दुःख में वह पति का साथ दे।"

"लेकिन वह मेरे घर की बहू है—मेरे घर की!" दाँत पीसते हुए रामनाथ ने कहा, "मेरे घर की बहू इस तंगी हालत में रहकर मेरे कुल को कलंकित नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती!"

"तो फिर आप ही को कानपुर जाना पड़ेगा, दद्दुआ!" प्रभानाथ ने कहा।

"हाँ, मैं कानपुर जाऊँगा—अभी चल रहा हूँ। प्रभा, मोटर तैयार करवाओ। और तुम्हें भी मेरे साथ अभी चलना पड़ेगा।"

"चलना तो मैं भी चाहता हूँ!" दबी जबान में श्यामनाथ ने कहा, "और अगर आप अनुचित न समझें तो मैं एक बार दया से जेल में मिलकर कोशिश करूँ!"

"किस बात की कोशिश?" रामनाथ ने पूछा।

"कि वह कांग्रेस से अलग हो जाय!"

"लेकिन इससे फायदा?"

"इससे फायदा यह होगा कि उसके इस आश्वासन से मैं दया को जेल जाने से बचवा सकता हूँ!" श्यामनाथ ने उत्तर दिया।

"तो इसके माने यह हुए कि वह सरकार से एक प्रकार से माफी माँगे!" रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा, "नहीं, श्यामू!" एक रूखी मुसकराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गई, "माफी माँगे—इतना ऊपर चढ़कर अब वह अपने को एकदम गिरावे! दया इसके लिए कभी भी तैयार न होगा! और अगर एक बार वह माफी माँगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूँगा। नहीं—श्यामू, यह बेकार की बात है। हाँ, अगर तुम कानपुर चलना चाहते हो, तो चलो। लेकिन तुम अभी रमा से नहीं मिले हो—तुम यहीं रुको!"

५

जिस समय रामनाथ तिवारी की कार दयानाथ के बँगले में पहुँची, [illegible] हो रहा था। राजेश और ब्रजेश बरामदे में बैठे हुए मार्कंडेय के साथ [illegible] थे। रामनाथ को देखते ही दोनों लड़के 'दद्दुआ आये! दद्दुआ [illegible]

हुए अपने बाबा के पास दौड़े। मार्कंडेय ने उठकर रामनाथ को प्रणाम किया।

आशीर्वाद देकर रामनाथ बरामदे में ही बैठ गये। प्रभानाथ से उन्होंने कहा, "अपनी भावज से जाकर कहो कि मैं उसे कानपुर ले चलने आया हूँ। वह चलने की तैयारी कर ले—अभी एक घंटे में उसे चलना है!"

प्रभानाथ अंदर चला गया।

मार्कंडेय के कपड़ों पर नजर डालते हुए रामनाथ ने कहा, "तो तुम भी खद्दर-पोश हो गये हो!"

"जी हाँ!" मार्कंडेय ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"और दया के क्या हाल हैं?"

"उन्हें आज छः महीने की सजा हो गई।"

"इतनी जल्दी! कल रात को गिरफ्तारी और सुबह सजा!"

"जी हाँ! इसमें ताज्जुब की बात ही क्या है," मार्कंडेय ने कहा, "गवर्नमेंट जानती है कि हम लोग जेल जाने के लिए ही गिरफ्तार होते हैं, और हम जानते हैं कि हमें जेल जाना ही है। इन मुकदमों को आपने देखा नहीं—बड़े दिलचस्प होते हैं। न कोई नियम, न कोई विधान! सीधा-सादा कार्यक्रम! उन्हें सजा देनी है और हमें कोई पैरवी नहीं करनी। पाँच मिनट में पूरी कार्रवाई खत्म हो जाती है।"

रामनाथ ने एक तीव्र नजर मार्कंडेय पर डाली, पर मार्कंडेय पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। अपनी गंभीरता वह अधिक देर तक न बनाये रख सका, खिलखिलाकर वह हँस पड़ा, "ददुआ, आप आश्चर्य न करें! हम लोग इसी तरह लड़ते हैं। यह एक अनोखी किस्म की लड़ाई है, जिसे दुनिया नहीं समझ पाती; ब्रिटिश गवर्नमेंट नहीं समझ पाती, हम स्वयं नहीं समझ पाते। पर इतना मैं जानता हूँ कि सारी दुनिया इस लड़ाई पर हैरान है। दुनिया के लोग लड़ते हैं मारने के लिए, हत्या करने के लिए; और हम लड़ते हैं मरने के लिए, तकलीफ उठाने के लिए! हमारे पास ऐसा अस्त्र है, जिसे साम्राज्यवाद की बड़ी-से-बड़ी हिंसा भी नहीं काट सकती।"

मार्कंडेय की बातों में रामनाथ तिवारी को दिलचस्पी आने लगी थी। उन्होंने पूछा, "और वह अस्त्र क्या है?"

"अहिंसा!" मार्कंडेय ने कहा और कुछ रुककर उसने फिर आरंभ किया, "और ददुआ, अहिंसा के माने हैं मानवता! बली वह है जो बड़ा-से-बड़ा कष्ट उठा सके, बिना उफ़ किये, हँसते हुए; जिसके पास आत्मा का बल है। और आप शायद पूछें कि वह आत्मा का बल क्या है? आत्मा का बल है—प्रेम, दया, त्याग। दूसरों को उत्पीड़ित तो सभी करते हैं, लेकिन वास्तव में आदमी वह है, जो दूसरों को सुख दे सके और दूसरों को दुःखी बनाने के बजाय दूसरों के दुःख को बंटा सके।"

अब रामनाथ के अपने दृष्टिकोण पेश करने की बारी थी। उन्होंने कहा, "मार्कंडेय, तुमने जो कुछ कहा, उसमें एक बहुत बड़ी गलती कर गये। तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि जीवन में सुख प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य अपने लिए, अपने सुख के लिए, जीवित रहता है। जिस समय हम खुद-ब-खुद दुख को अपनाते हैं, हम प्राकृतिक नियम की अवहेलना करते हैं। और प्राकृतिक नियम की अवहेलना वर्जित है। जीवन का नियम क्या है? समर्थ की असमर्थ पर विजय! अनादि-काल से समर्थ असमर्थ पर शासन करता आया है और अनंत-काल तक शासन करता रहेगा! इसको तुम रोक कब सकते हो? भगवान ने दुनिया में दो चीज़ें सम नहीं बनाईं; सभी जगह विषमता है। सभी जगह अच्छे-बुरे, ऊँचे-नीचे, सबल-निर्बल का भेद है! और यही भेद प्राकृतिक है। याद रखना, निर्बल सबल का आहार रहा है। तुम अहिंसा की दुहाई देते हो, लेकिन यह अहिंसा है क्या? यह अहिंसा निर्बल की अपने को धोखा देने की प्रवृत्ति है! तुम हिंसा इसलिए नहीं करते कि तुम हिंसा करने के काबिल नहीं, तुम स्वयं हिंसा के शिकार हो और कमज़ोर हो। पर तुम सबल को अहिंसा पर विश्वास नहीं दिला सकते! यह अहिंसा आत्म-छलना से भरा सिद्धांत है, जो तुम्हें जरा भी ऊँचे नहीं उठा सकता, जो तुम्हारी नपुंसकता का द्योतक है!"

मार्कंडेय मुसकराया, "दद्दा, आपने जो कुछ कहा, वह बहुत पुराना सिद्धांत है। पर हम लोग बहुत आगे बढ़ चुके हैं। हम लोगों का कहना है कि हिंसा पशुता की प्रवृत्ति है, मानवता की नहीं; और मनुष्य पशुता को छोड़कर मानवता का पूर्ण विकास कर रहा है। मैं मानता हूँ कि हममें अभी पशुता बाकी है, लेकिन क्या हम उस पशुता को अपनाए ही रहें या उसे छोड़कर मानव बनें? पशु असमर्थ है और इसलिए वह हिंसा की शरण लेता है, पर मनुष्य समर्थ है! उसके पास बुद्धि नाम का अमोघ अस्त्र है और इस बुद्धि के बल से वह सारी प्रकृति का स्वामी है। मनुष्य खेती करता है, अन्न उपजाता है। जहाँ पानी नहीं है, वहाँ वह कुआँ खोदकर पानी निकालता है। जहाँ नदियाँ नहीं हैं, वहाँ वह नहर काटकर सिंचाई करता है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है और धीरे-धीरे वह प्रकृति के अनंत रहस्यों को सुलझाता चला जा रहा है। पर उसके विकास में एक बात बाकी है, वह अपनी पाशविक हिंसा को अभी तक नहीं छोड़ सका है। अपने हित को वह अपना सत्य तो मानता है, लेकिन दूसरों के हित की, जो मानवता का सत्य है, वह अभी तक उपेक्षा करता रहा है। हममें दया, प्रेम, त्याग—ये सब प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। इन प्रवृत्तियों को विकसित करके अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना—यही अहिंसा है!"

रामनाथ तिवारी हँस पड़े, उनकी उस कटु हँसी में उपेक्षा थी, व्यंग्य था। उन्होंने कहा, "अपने हित को मानवता का हित बना देना, अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना! बातें बड़ी सुन्दर हैं और मजेदार हैं। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या तुम यह सब करते हो? एक बात याद

रखना, तुम बने हो अपनी प्रवृत्तियों से, तुम शासित हो अपनी भावनाओं से! तुम्हारी ये प्रवृत्तियाँ और ये भावनाएँ तुम्हें कर्म करने को प्रेरित करती हैं, अन्यथा कर्म असंभव है। प्रत्येक कर्म के पीछे एक प्रेरणा है, और वह प्रेरणा तुम्हारी भावना की है। मार्कंडेय, भावना ही मनुष्य का जीवन है, भावना ही प्राकृतिक है, भावना ही सत्य है और नित्य है! भावनाओं के मामले में मनुष्य विवश है। और यही विवशता, इस विवशता के कारण प्राणि-मात्र में विषमता संसृति का नियम है। तुम सब एक-सा बनने की कोशिश करो, एक ही ढंग से सोचना चाहो; लेकिन यह कभी भी संभव नहीं। मैं कहता हूँ कि तुम लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं कर सकते···"

रामनाथ तिवारी ने अपनी बात समाप्त भी नहीं की कि प्रभानाथ आ पहुँचा। रामनाथ ने अपनी बात वहीं रोक दी। प्रभानाथ से उन्होंने पूछा, "कहो!"

धीमे स्वर में प्रभानाथ ने कहा, "भौजीजी यहाँ से जाने को राजी नहीं हैं!"

"तुमने उनसे यह बतलाया कि मैं स्वयं आया हूँ, और यह मेरी आज्ञा है?"

"जी हाँ! और उनका कहना है कि उनको आज्ञा देनेवाला केवल एक व्यक्ति है—बड़के भइया!"

पंडित रामनाथ तिवारी ने अपना होंठ चबाते हुए मार्कंडेय की ओर देखा, वह गंभीर बैठा था। "ठीक है! उनके पतिव्रत धर्म पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। चलो, जरा मैं भी उस देवी की बातें सुनकर अपना जीवन सार्थक और सफल कर लूँ!"

रामनाथ तिवारी प्रभानाथ के साथ अंदर के आँगन में पहुँचे। उन्होंने जोर से कहा, "प्रभा! बहू से कहो कि उसे अभी-अभी बोनापुर चलना है। यहाँ अकेली कैसे रहेगी—यहाँ उसका कौन है? वह किस पर अवलंबित रहेगी?"

और राजेश्वरी ने इतनी जोर से कहा कि रामनाथ तिवारी सुन लें, "बाबू-जी! ददुआ से कह दीजिए कि बानापुर में भी तो मेरा कोई नहीं है!"

"और हम लोग क्या मर गये?" रामनाथ चिल्ला उठे।

"नहीं! लेकिन आप लोगों ने उन्हें घर से तो अलग कर दिया है, उनको बानापुर जाने तक का अधिकार नहीं है। मैं उन्हीं की पत्नी तो हूँ! मैं आप सब लोगों की जो कुछ होती हूँ, उन्हीं के कारण तो होती हूँ। जब वे आप द्वारा त्याज्य हैं तब भला मैं कैसे आपकी हो सकती हूँ या आपके साथ चल सकती हूँ? जिस घर में मेरे स्वामी का अपमान और निरादर हो वहाँ मैं आदर पाऊँ, वहाँ मैं सुख से रहूँ, यह मेरे लिए लज्जा की बात होगी!" राजेश्वरी ने दृढ़ता के साथ कहा।

राजेश्वरी का एक-एक शब्द रामनाथ के हृदय में शूल की भाँति चुभ रहा

था। राजेश्वरी के कथन के सार की वे उपेक्षा नहीं कर सकते थे। फिर भी एक बार उन्होंने प्रयत्न किया, "अच्छी बात है। लेकिन राजेश और व्रजेश मेरे साथ जाएँगे...समझो!"

पर उनका यह वार भी खाली गया, "अगर आप चाहते हैं तो इन्हें ले जा सकते हैं। मैं जानती हूँ कि इन पर आपका पूरा अधिकार है। पर माता की ममता को इन बच्चों से छीनकर आप इनका उपकार करने के स्थान पर अपकार ही करेंगे!" शांत भाव से राजेश्वरी ने कहा।

रामनाथ तिवारी अपनी इस पराजय से तिलमिला उठे। उन्होंने कहा, "मैंने समझा था कि सदगृहिणी और उच्चकुल की लड़की अपने पति को सुबुद्धि देने में सहायक होती है; अपना, अपने पति का, अपने बच्चों का हिताहित पहचानती है!"

और मानो राजेश्वरी के पास उत्तर तैयार था, "मैं तो यह जानती हूँ कि स्त्री मूक तथा निरीह होती है। उसके पास निजी इच्छा नाम की कोई वस्तु नहीं!" और इतना कहकर वह चुप हो गई।

६

घर से निकलकर रामनाथ तिवारी सीधे अपनी कार में बैठ गये, उन्होंने मार्कंडेय की ओर देखा तक नहीं। प्रभानाथ से उन्होंने कहा, "एकदम चलो! ये लोग भुगतने पर तुले हैं, तो फिर भुगतें! विनाश काले विपरीत बुद्धि:!"

रामनाथ का हृदय कह रहा था कि वे पराजित हुए और बुरी तरह पराजित हुए! पर उनकी अहम्मन्यता उस पराजय को स्वीकार करने के लिए जरा भी तैयार न थी। उनकी इस अहम्मन्यता के क्रोध ने उनके हृदय की करुणा को दबा अवश्य दिया था, लेकिन उस करुणा को मिटा न सका था। रामनाथ का हृदय भारी था, उनके अंदर एक अशांति की ज्वाला जल रही थी। उन्होंने दयानाथ को घर से निकाल दिया था, उन्होंने दयानाथ का अपमान किया था केवल अपनी अहम्मन्यता को तुष्ट करने के लिए—बिना भविष्य पर सोचे-समझे!

और आज उन्होंने अपने उस कार्य का परिणाम देखा, जिसे क्षणिक आवेश में आकर उन्होंने कर डाला था। उन्हें अपने ही ऊपर क्रोध आ रहा था, लेकिन उनकी अहम्मन्यता उनके उस क्रोध को अपने ऊपर से हटाकर दूसरों को उसका लक्ष्य बना रही थी। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'उस औरत की इतनी हिम्मत कि वह मुझसे जबान लड़ाए, मुझसे!—अपने पति के पिता से!'

कार चली जा रही थी। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा! तुमने सब कुछ देखा है, सब कुछ सुना है। दया एक बार मेरा अपमान करके मुझसे क्षमा पा सकता है—वह मेरा लड़का है। लेकिन यह औरत! यह करके कभी भी क्षमा नहीं पा सकती—यह याद रखना!"

"लेकिन भौजीजी ने तो आपका कोई अपमान नहीं किया

प्रभानाथ ने कहा, "उन्होंने जो कुछ किया, वह अपना कर्तव्य समझकर किया।" फिर उसने कुछ रुककर कहा, "और ददुआ, एक बात मैं भी कह दूँ। अगर वे आपके साथ चली आतीं तो वे मेरी नजर में गिर जातीं!"

"चुप रहो!" रामनाथ चिल्ला उठे।—"तुम भी! तुम सब मेरी उपेक्षा करने पर, मेरा विरोध करने पर तुल गये हो!"

कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, "मालूम होता है, सब कुछ एकदम बदल गया!"

बानापुर पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि श्यामनाथ और उमानाथ शाम के समय शिकार के लिए चले गये थे और अभी तक वापस नहीं आये।

तिवारीजी बैठकर सोचने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि वे एक नयी दुनिया में आ पड़े हैं—ऐसी दुनिया में, जिसकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। 'पुराना युग बदल रहा है, तेजी के साथ!' उन्होंने सुना था; पर उन्होंने यह कभी न सोचा था कि वह पुराना युग है क्या, और न उन्होंने कभी इस बात की कल्पना की थी कि पुराने युग के बदलने के बाद आनेवाला नया युग कैसा होगा! उनके सामने उनकी रियासत थी, उनकी बेजुबान, पशु से भी गई-बीती रिआया थी और उनकी अहम्मन्यता से मुक्त उनका विशाल वैभव था। उनका मस्तक गर्व से ऊंचा था, स्वामित्व की गुरुता से युक्त उनका अस्तित्व उनके लिए सत्य था और नित्य था। रामनाथ को इस बात का अभिमान था कि उनमें झूठ, बेईमानी आदि अवगुण न थे, और जब वे दुनिया की इन छोटी-छोटी कमजोरियों को देखते थे, उनकी छाती गर्व से फूल उठती थी। उन्हें धर्म पर विश्वास था, उन्हें ईश्वर पर विश्वास था। लोग तिवारीजी को मानते थे, उनका आदर करते थे। 'तिवारीजी की बात में तथ्य है, तिवारीजी के निर्णय में न्याय है!' चारों तरफ इस बात की चर्चा थी।

तिवारीजी जोर से कह उठे, 'लोग कहते हैं कि मेरे निर्णय में न्याय है! क्या इस बार मेरा निर्णय गलत हुआ है?'

और तिवारीजी अभी तक जो कुछ हुआ था, उस पर बड़ी तेजी के साथ अवलोकन कर गये। उसके बाद उनकी अहम्मन्यता ने दृढ़ता के साथ कहा, 'कभी नहीं, मेरा निर्णय गलत हो ही नहीं सकता!'

'फिर यह सब क्यों? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर में ही हो रहा है—मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों?' रामनाथ के अंदरवाले बुद्धिवादी तार्किक ने उनकी अहम्मन्यता पर शंका की।

तिवारीजी ने फिर कहा, 'यह क्यों? यह सब कुछ बदल कैसे गया? एकदम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ! दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू! मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गई? बोलने की ही नहीं, जबान लड़ाने

की ! और प्रभा ! वह भी मुझसे कहता है कि मैं गलती कर रहा हूँ ! क्या वास्तव में मैं गलती कर रहा हूँ ?'

'शायद !' तिवारीजी ने ही उत्तर दिया। उन्हें सुबह की घटना याद हो आई जब एकत्रित कनौजिया-मंडल ने प्रायश्चित्त के विरुद्ध अपना निर्णय दिया था। 'सुबह मैंने ही तो प्रायश्चित्त का विधान रचाया था ! यह प्रायश्चित्त क्यों ? क्योंकि हमारे समाज में प्रायश्चित्त की प्रथा प्रचलित है। समाज की रूढ़ियाँ बुरी तरह से हमारे ऊपर लदी हैं—मुझ पर भी ! और अगर उन लोगों ने प्रायश्चित्त का विरोध किया तो उसमें भी उनका कोई दोष न था। वे सब-के-सब पुराने रूढ़िवादी युग के हैं। और उनके साथ उमानाथ ने भी उस प्रायश्चित्त का विरोध किया। क्यों ? इसलिए कि वह नये युग का है ! नये युग की विचार-धारा को अपनाकर वह आ रहा है !'

'और मैं ?' तिवारीजी ने अपने से पूछा, 'मैं भी नये युग का हूँ ! जिसे लोग पढ़कर, सीखकर अपनाने की कोशिश कर रहे हैं, उसे मैं स्वयं अपने-आप, अपनी प्रेरणा द्वारा, अपने अनुभवों द्वारा अपना चुका हूँ ! मैं नये युग का हूँ, लोग चाहे मानें या न मानें ! फिर यह सब जो देख-सुन रहा हूँ, यह सब क्या है ? क्या यही नया युग है ?' तिवारीजी को उस कांग्रेस के जुलूस की याद हो आई, जो उन्होंने करीब एक महीना पहले देखा था।

'दयानाथ और उसकी पत्नी ! प्रभानाथ, मार्कंडेय, लाला रामकिशोर ! ये लोग भी तो अपने को नये युग का प्रतिनिधि कहते हैं ! तो फिर यह नया युग है क्या ? आत्म-छलना, बेवकूफी, हिताहित के प्रति घोर अज्ञानमयी उपेक्षा !'

और एकाएक तिवारीजी की विचारधारा टूट गई उमानाथ की आवाज से। वह श्यामनाथ से कह रहा था, 'अरे काका ! जिसे आप शिष्टता कहते हैं, वह ढोंग है। जिसे आप सभ्यता या तहज़ीब कहते हैं, वह मनुष्य की पराजय का खोखलापन है। जिसे आप धर्म और विश्वास कहते हैं, वह आपके अंदरवाली गुलामी की प्रवृत्ति है !'

'बात यहाँ तक पहुँच चुकी है ! युग की नवीनता, देख रहा हूँ, सीमाओं को एक बार तोड़ डालने पर तुल गई है !' रामनाथ तिवारी ने मुसकराते हुए मन-ही-मन कहा और वे उठ खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि बरामदे में चचा-भतीजे आमने-सामने बैठे बातचीत कर रहे हैं और उनके सामने शरबत के गिलास हैं।

७

पंडित श्यामनाथ तिवारी अपने भतीजे के ज्ञान के भंडार को देखकर अवाक् बैठे थे और उमानाथ कहता जा रहा था, "काका ! मैं तो यह मानता हूँ कि जितने धर्म हैं, जितने नियम हैं, जितने देवी-देवता हैं, जितने परमेश्वर उन सबका निर्माण हमने किया है, हमने, यानी मनुष्य ने ! और

प्रभानाथ ने कहा, "उन्होंने जो कुछ किया, वह अपना कर्तव्य समझकर किया।" फिर उसने कुछ रुककर कहा, "और ददुआ, एक बात मैं भी कह दूं। अगर वे आपके साथ चली आतीं तो वे मेरी नजर में गिर जातीं!"

"चुप रहो!" रामनाथ चिल्ला उठे।—"तुम भी! तुम सब मेरी उपेक्षा करने पर, मेरा विरोध करने पर तुल गये हो!"

कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, "मालूम होता है, सब कुछ एकदम बदल गया!"

बानापुर पहुंचने पर उन्हें मालूम हुआ कि श्यामनाथ और उमानाथ शाम के समय शिकार के लिए चले गये थे और अभी तक वापस नहीं आये।

तिवारीजी बैठकर सोचने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि वे एक नयी दुनिया में आ पड़े हैं—ऐसी दुनिया में, जिसकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। 'पुराना युग बदल रहा है, तेजी के साथ!' उन्होंने सुना था; पर उन्होंने यह कभी न सोचा था कि वह पुराना युग है क्या, और न उन्होंने कभी इस बात की कल्पना की थी कि पुराने युग के बदलने के बाद आनेवाला नया युग कैसा होगा! उनके सामने उनकी रियासत थी, उनकी बेजुबान, पशु से भी गई-बीती रिआया थी और उनकी अहम्मन्यता से युक्त उनका विशाल वैभव था। उनका मस्तक गर्व से ऊंचा था, स्वामित्व की गुरुता से युक्त उनका अस्तित्व उनके लिए सत्य था और नित्य था। रामनाथ को इस बात का अभिमान था कि उनमें झूठ, बेईमानी आदि अवगुण न थे, और जब वे दुनिया की इन छोटी-छोटी कमजोरियों को देखते थे, उनकी छाती गर्व से फूल उठती थी। उन्हें धर्म पर विश्वास था, उन्हें ईश्वर पर विश्वास था। लोग तिवारीजी को मानते थे, उनका आदर करते थे। 'तिवारीजी की बात में तथ्य है, तिवारीजी के निर्णय में न्याय है!' चारों तरफ इस बात की चर्चा थी।

तिवारीजी जोर से कह उठे, 'लोग कहते हैं कि मेरे निर्णय में न्याय है! क्या इस बार मेरा निर्णय गलत हुआ है?'

और तिवारीजी अभी तक जो कुछ हुआ था, उस पर बड़ी तेजी के साथ अवलोकन कर गये। उसके बाद उनकी अहम्मन्यता ने दृढ़ता के साथ कहा, 'कभी नहीं, मेरा निर्णय गलत हो ही नहीं सकता!'

'फिर यह सब क्यों? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर में ही हो रहा है—मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों?' रामनाथ के अंदरवाले बुद्धिवादी तार्किक ने उनकी अहम्मन्यता पर शंका की।

तिवारीजी ने फिर कहा, 'यह क्यों? यह सब कुछ बदल कैसे गया? एकदम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूं! दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू! मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गई? बोलने की ही नहीं, जबान लड़ाने

की ! और प्रभा ! वह भी मुझसे कहता है कि मैं गलती कर रहा हूँ ! क्या वास्तव मे मैं गलती कर रहा हूँ ?'

'शायद !' तिवारीजी ने ही उत्तर दिया। उन्हें सुबह की घटना याद हो आई जब एकत्रित कनौजिया-मंडल ने प्रायश्चित्त के विरुद्ध अपना निर्णय दिया था। 'सुबह मैंने ही तो प्रायश्चित्त का विधान रचाया था ! यह प्रायश्चित्त क्यों ? क्योंकि हमारे समाज मे प्रायश्चित्त की प्रथा प्रचलित है। समाज की रूढ़ियाँ बुरी तरह से हमारे ऊपर लदी हैं—मुझ पर भी ! और अगर उन लोगों ने प्रायश्चित्त का विरोध किया तो उसमे भी उनका कोई दोष न था। वे सब-के-सब पुराने रूढ़िवादी युग के हैं। और उनके साथ उमानाथ ने भी उस प्रायश्चित्त का विरोध किया। क्यों ? इसलिए कि वह नये युग का है ! नये युग की विचार-धारा को अपनाकर वह आ रहा है !'

'और मैं ?' तिवारीजी ने अपने से पूछा, 'मैं भी नये युग का हूँ ! जिसे लोग पढ़कर, सीखकर अपनाने की कोशिश कर रहे हैं, उसे मैं स्वयं अपने-आप, अपनी प्रेरणा द्वारा, अपने अनुभवों द्वारा अपना चुका हूँ ! मैं नये युग का हूँ, लोग चाहे मानें या न मानें ! फिर यह सब जो देख-सुन रहा हूँ, यह सब क्या है ? क्या यही नया युग है ?' तिवारीजी को उस कांग्रेस के जुलूस की याद हो आई, जो उन्होंने करीब एक महीना पहले देखा था।

'दयानाथ और उसकी पत्नी ! प्रभानाथ, मार्कंडेय, लाला रामकिशोर ! ये लोग भी तो अपने को नये युग का प्रतिनिधि कहते हैं ! तो फिर यह नया युग है क्या ? आत्म-छलना, बेवकूफी, हिताहित के प्रति घोर अज्ञानमयी उपेक्षा !'

और एकाएक तिवारीजी की विचारधारा टूट गई उमानाथ की आवाज मे। वह श्यामनाथ से कह रहा था, 'अरे काका ! जिसे आप शिष्टता कहते हैं, वह ढोंग है। जिसे आप सभ्यता या तहजीब कहते हैं, वह मनुष्य की पराजय का खोखलापन है। जिसे आप धर्म और विश्वास कहते हैं, वह आपके अंदरवाली गुलामी की प्रवृत्ति है !'

'बात यहाँ तक पहुँच चुकी है ! युग की नवीनता, देख रहा हूँ, सीमाओं को एक बार तोड़ डालने पर तुल गई है !' रामनाथ तिवारी ने मुसकराते हुए मन-ही-मन कहा और वे उठ खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि बरामदे में चचा-भतीजे आमने-सामने बैठे बातचीत कर रहे हैं और उनके सामने शरबत के गिलास हैं।

७

पंडित श्यामनाथ तिवारी अपने भतीजे के ज्ञान के भंडार को देखकर अवाक् बैठे थे और उमानाथ कहता जा रहा था, "काका ! मैं तो यह मानता हूँ कि जितने धर्म हैं, जितने नियम हैं, जितने देवी-देवता हैं, जितने परमेश्वर हैं, —उन सबका निर्माण हमने किया है, हमने, यानी मनुष्य ने ! और अब हम

खुद अपनी बनाई हुई चीजों के गुलाम बन गये हैं, सब समझते हुए, सब जानते हुए। हम इस बुरी तरह अपने बिछाये हुए जाल में क्यों फस गये ? आप जानते हैं, काकाजी ?"

मुंह बाये हुए पंडित श्यामनाथ तिवारी यह सब सुन रहे थे और न समझते हुए भी समझने की कोशिश कर रहे थे तथा बीच-बीच में सिर हिला देते थे। उमानाथ का यह प्रश्न सुनकर चौंक उठे, फिर भी अपने को संभालते हुए उन्होंने कहा, "इसलिए कि कहीं कोई जाल नहीं था, और अगर था भी तो हमने उसे देखा ही नहीं और साथ ही हमने उस जाल को बिछाया भी नहीं था !"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं तो आपकी शक्ल देखकर ही जान गया था कि जो कुछ मैंने कहा है, उसे आप जरा भी नहीं समझे ! काकाजी, एक बात मैं आपको बतला दूं ! हम सब आदमी हैं, सब में एक ही तरह का खून बह रहा है, सब को एक ही तरह की भूख लगती है, एक ही तरह की प्यास लगती है। सभी हँसते हैं, सभी रोते हैं। फिर मनुष्य-मनुष्य में यह भेदभाव क्यों ? आपने कभी इसे समझने की कोशिश की है ?"

सिर हिलाते हुए श्यामनाथ ने कहा, "इसे समझने की तो कोशिश कभी नहीं की; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सवाल ही मेरे सामने कभी नहीं उठा। पता नहीं क्यों ! देखो उमा, मैं अपने काम-काज में इतना फँसा रहता हूँ कि मुझे सोचने-विचारने की फुरसत ही नहीं मिलती। हाँ, बड़के भइया शायद इस मामले में कुछ बता सकें।"

उमानाथ हँस पड़ा, "ददुआ की बात छोड़िये। देखिये काकाजी, आपको मैं एक बात बतलाता हूँ। लेकिन अपने तक ही रखियेगा, किसी से कहियेगा नहीं। वह यह कि आप ठीक तरह से सोच सकते हैं, लेकिन आपको सोचने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती, या फिर आप इतने ज्यादा आलसी हैं कि सोचना ही नहीं चाहते। और ददुआ के पास सोचने की फुरसत है, और वे सोचते भी हैं, लेकिन वे ठीक तौर से सोच नहीं सकते !"

अपनी तारीफ सुनकर श्यामनाथ का मुख प्रसन्नता से खिल गया। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "क्या बताऊं, उमा···अब आगे···"

लेकिन श्यामनाथ कहते-कहते रुक गये और उनकी मुसकराहट गायब हो गई। सामने पंडित रामनाथ तिवारी खड़े हुए दोनों को गौर से देख रहे थे। श्यामनाथ हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए और श्यामनाथ को उठते हुए देखकर उमानाथ भी खड़ा हो गया। रामनाथ ने दोनों को बैठने का इशारा करते हुए उमानाथ से कहा, "हाँ, तो तुम अभी कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता ! है न ऐसी बात ?"

श्यामनाथ ने उमानाथ को बचाने की कोशिश की, "नहीं, बड़के भइया ! बात यह थी···"

बीच में ही श्यामनाथ की बात को काटते हुए रामनाथ ने कहा, "चुप रहो,

श्यामू—झूठ बोलने की कोशिश मत करो! जब तुमसे कुछ पूछूँ, तब बात करना! हाँ तो उमा, तुम कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता। ताज्जुब की बात यह है कि अभी-अभी कुछ देर पहले मैं भी अपने से यही सवाल कर रहा था कि मैं ठीक तौर से सोच रहा हूँ! जानते हो! दया की दुलहिन ने यहाँ आने से इनकार कर दिया!"

श्यामनाथ और उमानाथ दोनों ही मौन रहे। कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "उसने इनकार कर दिया यह कहकर कि मेरा उस पर अधिकार नहीं। उसने मेरी उपेक्षा ही नहीं की, उसने मुझे अपना शत्रु समझ लिया है। और मैं सोच रहा हूँ कि क्या कभी उस औरत से मेरी शत्रुता की कोई बात तक उठ सकती है! फिर भी देख रहा हूँ कि वह मुझे अपना दुश्मन समझ बैठी है। यही नहीं; उसने, उस औरत ने मेरे कुल से, मेरे घर से अपना संबंध तोड़ लिया है। देखते हो श्यामू! दुनिया कितनी बदल गई है!"

"तो फिर अब क्या करना होगा?" दबी जबान से श्यामनाथ ने पूछा।

"अब क्या करना होगा! सवाल मेरे सामने है। लेकिन कुछ समझ में नहीं आता। मैं जानता हूँ कि दया के पास अधिक रुपये नहीं थे। अगर वह जेल के बाहर होता और वकालत करता होता तो मुझे कोई चिंता नहीं थी। लेकिन वह जेल में है; उसे आज छः महीने की सजा हो गई है। मुझे उसकी बीवी की चिंता है, उसकी बीवी से बढ़कर राजेन्द्र-ब्रजेन्द्र की चिंता है। उनका लंबा खर्च कैसे चलेगा? जब दया यहाँ से गया था, तब मैंने कहा था कि मैं पाँच सौ रुपया महीना बराबर उसके गुजारे के लिए भेजता रहूँगा। लेकिन, अपनी अकड़ में उसने यह पाँच सौ रुपया महीना लेने से इनकार कर दिया।"

"तो अब आप यह पाँच सौ रुपया महीना उनके घर में भिजवा दें। दया की अनुपस्थिति में आपका कर्तव्य है कि आप उनके स्त्री-बच्चों का भरण-पोषण करें। क्यों उमा, ठीक है न!" श्यामनाथ तिवारी ने अपनी बातों के समर्थन के लिए उमानाथ की तरफ देखा।

पर उमानाथ से समर्थन पाने के स्थान पर उनके मुख पर एक हलकी-सी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट को देखकर श्यामनाथ तिवारी को क्रोध आ गया। इस क्रोध के आवेश में वे आगे कह गये, "और अगर आप नहीं भेजना चाहते हैं तो मैं अपने पास से उनके घर में यह रुपया भेज दिया करूँगा।"

"तुम निरे बेवकूफ ही रहे!" रामनाथ ने तिरस्कारपूर्वक अपने छोटे भाई को देखते हुए कहा।

८

दूसरे दिन सुबह चार बजे पंडित श्यामनाथ तिवारी ने बंदूक उठाई। उमानाथ को जगाकर उन्होंने कहा, "अगर शिकार खेलना चाहते हो तो अभी निकल चलो, आठ बजे तक लौट आयेंगे।"

प्रयत्न करते हुए कहा, "अच्छा उमा ! अबकी तुम्हारी गोली चलाने की बारी है; देखें तुम कितने बड़े शिकारी हो !"

उमानाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा, "मैं जानता हूँ काका, कि आप अधिक देर तक गुस्सा नहीं कर सकते। आदमी आप खूब हैं; सीधे-सादे ! लेकिन आप सोचते क्यों नहीं ? मशीन की तरह आप काम करते हैं, और इसका नतीजा यह होता है कि दूसरे लोग आपकी नेकी और भलाई का दुरुपयोग करते हैं। इससे आप दुनिया का भला नहीं कर पाते। काका, अगर आप मेरी सलाह मानें, तो मैं आपसे कहूँगा कि आप जरा थोड़ा-सा पढ़ा करें, और पढ़ने के बाद उस पर सोचा करें। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप वास्तव में दुनिया का भला कर सकेंगे। जो जीवन आप आजकल अपनाये हुए हैं, उससे न आप अपना भला कर पाते हैं और न दूसरों का।"

"तो क्या पढ़ने से सोचने-विचारने में तबीयत लग जायगी ?" गंभीरतापूर्वक श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ, जरूर लगेगी। और आपको पता लग जायगा कि जिस रास्ते पर आप चल रहे हैं, वह सही है या गलत। दुनिया मे अनेक विचार हैं, अनेक मत हैं; इन सब को आप देखें, इन पर आप मनन करें। इसमें हर्ज ही क्या है ? और इसके बाद आप खुद निर्णय कर लें। काका, हम हिंदुस्तानियों की हालत इसलिए खराब है कि हम सोचना-समझना जरा भी नहीं चाहते, बराबर पुरानी लकीर के फकीर बने रहते हैं। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें सोचने-समझने की आदत डालनी चाहिए।"

उमानाथ के इस लंबे व्याख्यान ने पंडित श्यामनाथ तिवारी पर असर जरूर किया। उन्होंने कहा, "ठीक कहते हो उमा, मैं अवश्य पढ़ा करूँगा, पढ़ने के लिए फुरसत निकालूँगा। लेकिन मेरे सामने एक मुसीबत है, मुझे यही नहीं मालूम कि पढ़ा क्या जाय ! रामायण और गीता—ये तो अपने यहाँ की खास-खास किताबें हैं और इन्हें मैं पढ़ चुका हूँ और अंग्रेजी की किताबों में दो-एक उपन्यास पढ़े हैं। रोज 'लीडर' पढ़ लेता हूँ और कभी-कभी 'इलस्ट्रेटेड वीकली' भी देख लेता हूँ। इसके अलावा और क्या पढ़ा जाय, यह तुम्हें बताना होगा। और बतलाना ही नहीं, तुम्हें वे किताबें भी मेरे लिए मँगवा देनी होंगी।"

"यह मंजूर !" उमानाथ ने उत्तर दिया।

आठ बजे दोनों शिकारी वापस लौटे, थके हुए। पंडित रामनाथ तिवारी इन दोनों का इंतजार कर रहे थे। पंडित रामनाथ तिवारी उदास थे, रात भर उन्हें नींद न आई थी। अपने अंदरवाले द्वंद्व से पीड़ित और मर्माहत—वे रात-भर करवटें बदलते रहे। सुबह जब उन्होंने उमानाथ को बुलवाया तब उन्हें मालूम हुआ कि उमानाथ श्यामनाथ के साथ शिकार खेलने निकल गया है। इसी बीच में पंडित झगड़ू मिश्र श्यामनाथ के आने की खबर पाकर उनसे मिलने के लिए आ गये थे। तिवारी जी और झगड़ू मिश्र—दोनों एक दूसरे से दस कदम

ा६ की दूरी पर चुपचाप बैठे थे; दोनों में से कोई भी एक-दूसरे से बात आरंभ करने को तैयार न था।

श्यामनाथ को देखते ही झगड़ू ने आवाज लगाई, "कहो हो श्यामू! न जाने ब से हम तुम्हार इंतजार कर रहे हन! अच्छी तरह तो रह्यो!"

श्यामनाथ तिवारी और झगड़ू मिश्र लड़कपन के दोस्त थे। दोनों ही मस्त, ोनों ही खेल-कूद और लड़ाई-झगड़े में तत्पर! परिस्थितियों की अनुकूलता तथा तिकूलता से श्यामनाथ तिवारी सुपरिटेंडेंट पुलिस हो गये थे और झगड़ू को अपनी जमींदारी का भी कुछ हिस्सा बेचना पड़ा था।

श्यामनाथ तिवारी झगड़ू की आवाज सुनते ही प्रसन्नता से खिल गये। वे झगड़ू से मिलने के लिए बढ़े ही थे कि उनकी नजर पंडित रामनाथ पर पड़ी और वैसे ही वह रुक गये। रामनाथ तिवारी ने श्यामनाथ को अपनी ओर आते देख-कर मुसकराते हुए कहा, "श्यामू! झगड़ू तुम्हारा बहुत देर से इंतजार कर रहे हैं, उनसे मिलकर मेरे पास आना। मुझे आज शाम को ही उन्नाव जाना है।"

९

"बात मभले कुंवर कड़ी कहि दीन्हिन, इतना तो माने का पड़ी," झगड़ू मिश्र ने तमाखू फांकते हुए प्रायश्चित्त वाले दिन के प्रसंग पर कहा, "मुदा जो कुछ कहिन, उहिमां फरक रत्ती भर नहीं।"

जरा चिंतित होकर पंडित श्यामनाथ तिवारी ने कहा, "खैर, वह तो ठीक है, लेकिन मैं जानता हूं परमानंद सुकुल और मन्नू दुबे को! हम लोगों से बदला लेने की पूरी कोशिश करेंगे। बहुत संभव है, वे हमें जाति से बाहर करने में भी सफल हो जायें!"

"अरे जो तुम लोगन का जात से बाहर करि सके उहिका देखन का है। हम आज कहे देत हन कि अगर तुम लोग जात मां न चलो तो हमार नाम झगड़ू मिसर नाहीं। का बताई श्यामू! हमरे पास तो रुपया नाहीं, नहीं तो हमहूं मारकंडे का विलायत भेजित! हां सुन्यो! मारकंडे भी सुराजी बन गये, गांधी बाबा के भगत!" झगड़ू ने मुसकराते हुए कहा।

"क्या कहा?" चौंककर श्यामनाथ ने पूछा, "और तुमने मना नहीं किया?"

"का बताई श्यामू! वहो बड़ा हुइगा, पढ़-लिख के वकालत कर रहा है, समझदार है। हम भला उहिका का मन करित!" कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "और श्यामू—एक बात और है। हमरी समझ मां गांधी बाबा गलत र्भ नाहीं करत हैं। कांग्रेस हम पंचन की भलाई के लिए तो बनी है।"

पंडित श्यामनाथ तिवारी ने आश्चर्य से झगड़ू मिश्र की ओर देखा—फि उन्हें याद आया कि वे सुपरिटेंडेंट पुलिस हैं। उन्होंने जरा तनकर कहा, "झगड़ मेरा अनुभव तो यह है कि कांग्रेस में ज्यादातर शोहदे और लफंगे ही हैं; अ

मुझे ताज्जुब हो रहा है कि तुम्हारी सहानुभूति कांग्रेस के साथ है।"

झगड़ू मुसकराये, "ईमाँ ताज्जुब की कौन बात है ? इतना तो निश्चय है कि किसान लोग दुखन मरत हैं, और हम ही लोग जो छुटरवा जमींदार कहावत हन, हमरी दसा कौन अच्छी है।"

इसी समय उमानाथ इन लोगों के बीच में आ गया। झगड़ू के उमानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "प्रणाम, झगड़ू काका। कल तो आपसे बातचीत हो नहीं हो सकी।"

झगड़ू ने प्रसन्न मन कहा, "आशीर्वाद, मझले कुँवर! अबहीं हम तुम्हरे विसे माँ श्यामू से बतियात रहे रहन। तौन कल तुम सुनाएन तो बड़ी घरो-घरो!"

उमानाथ को कल की बात से कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने कहा, "झगड़ू काका, परसों मार्कंडेय भइया से कानपुर में मुलाकात हुई थी। पूरी तरह से कांग्रेस के रंग में रंगे हुए थे। कह रहे थे कि जल्दी ही जेल जानेवाले हैं।"

झगड़ू चौंक उठे। मार्कंडेय के कांग्रेसमैन बन जाने पर तो उन्हें आपत्ति नहीं थी, लेकिन मार्कंडेय के जेल जाने पर उन्हें आपत्ति जरूर थी। उन्होंने चिंतित होकर पूछा, "का कह्यो ? जेल जाय वाला है! देखी कैसे जात है जेल! यू कबौ न होई! जो बात हमरे कुल माँ कबहूँ नाहीं भई ऊ भला अब कैसे हुइ सकत है ?"

उमानाथ हँस पड़ा, "और हमारे कुल में भी तो कभी कोई जेल नहीं गया। लेकिन बड़के भइया को कल सजा हो गई!"

"का कह्यो ?" झगड़ू चौंक उठे, "बड़के कुँवर गिरफ्तार हुइ गये! और तिवारी चुप बैठे रहे ?"

"नहीं, चुप तो नहीं रहे! उन्होंने बड़के भइया को सीधे अपने घर [illegible] बाहर किया।" उमानाथ ने कहा, "लेकिन झगड़ू काका, दउआ को [illegible] उन्होंने बड़के भइया को घर से अलग कर दिया, तो इससे क्या! हम [illegible] ही बड़के भइया को छोड़ देंगे! क्यों काका, क्या राय है आपकी ?" उमानाथ ने श्यामनाथ से पूछा।

कुछ सोचकर पंडित श्यामनाथ तिवारी ने कहा, "बात तो दउआ ने ठीक किया है कि हम लोग उसका मुंह न देखें, लेकिन घर का लड़का ही है। शरीर का कोई अंग अगर बेकार हो जाय, तो उसे काट तो नहीं दिया जाता।"

झगड़ू मिश्र ने कहा, "का बात कह्यो श्यामू! जितनी तुम माँ अकल है, अगर उसकी आधी हूँ अकल तिवारीजी माँ होत तो उइ आदमी नहीं [illegible] जात!" और यह कहकर झगड़ू अपनी बात पर जोर से हँस पड़े, और तब हँसते रहे जब तक अचानक उन्हें मार्कंडेय की याद नहीं हो आई। मार्कंडेय याद आते ही झगड़ू एकाएक गंभीर हो गये। कुछ चुप रहकर उन्होंने श्यामू से कहा, "श्यामू! मार्कंडेय का कोनो तरा से जेल जायँ से रोकै चाही।

"आप लोग क्यों पत्थर पर सिर पटकना चाहते हैं ?" उमानाथ ने कहा, "झगड़ू काका ! अगर आप समझते हैं कि मार्कंडेय भइया को जेल जाने से रोक सकेंगे तो आप गलती करते हैं।"

उमानाथ की बात झगड़ू को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने खंखारकर कहा, "का कह्यो मझले कुंवर ? मार्कंडेय हमार बात न मानी ! तो फिर तुम हमका अबहीं तक चीन्हेव नाहीं !"

"तो फिर आपको जल्दी करनी चाहिए। कोई ठिकाना नहीं कि मार्कंडेय भइया कब गिरफ्तार हो जायें। कौन जाने कि वे अभी जेल के बाहर हैं या नहीं।"

"ऐस बात है ?" झगड़ू चौंककर उठ खड़े हुए, "तो फिर आजै जाय का पड़ी।"

"मैं भी आज शाम को चल रहा हूँ ! मेरे साथ मोटर पर चले चलना !" श्यामनाथ तिवारी ने झगड़ू से कहा।

आठवाँ परिच्छेद

श्यामनाथ ने अपने बड़े भाई से कहा, "अगर आप कहें तो एक दफे मैं भी कानपुर जाकर दया की दुलहिन को समझाने की कोशिश करूँ ! आखिर इस हालत में उसका वहाँ रहना तो ठीक नहीं !"

रामनाथ ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया, "तो तुम समझ रहे हो कि तुम्हारे समझाने का उस पर कोई असर पड़ेगा ?—ऐसी हालत में तुम गलती कर रहे हो !" कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, "लेकिन मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं, कुल की प्रतिष्ठा और मान के लिए कोई भी प्रयत्न अनुचित नहीं है। तुम जा सकते हो और अगर चाहो तो साथ में उमा को भी लेते जाओ, एक से दो अच्छे होते हैं।"

सब लोग दोपहर को ही बानापुर से उन्नाव पहुँच गये थे। यह बातचीत उन्नाव में शाम के समय हुई थी। उस समय झगड़ू मिश्र भाँग पीस रहे थे और अपने सामने बैठे हुए उमानाथ से विजया भवानी का गुण-गान कर रहे थे। "सो मझले कुँवर ! एक दिन बमभोलानाथ शंकरजी को विजया नाहीं मिली, सो हुइगे उदास। कहूँ उनकेर जी न लाग, और समाधीओ माँ उनकेर जी न लाग। सो माता पारवती जब देखिन बमभोलानाथ केर ई हाल, तो उन्हें भई चिंता। चारों तरफ गन दौड़े, दूत दौड़े, कार्तिक दौड़े, गनेश दौड़े, ब्रह्मांड का कोना-कोना छान डाला गा। लेकिन विजया भवानी का तो सूझा मजाक, ऐसी गायब भईं कि उनकेर पता जो न लाग सो न लाग। अब खुद रवाना भईं माता पारवती

विजया भवानी का ढूंढन। बिचारी बिना खाये-पिये मारी-मारी फिरीं, सात लोक, चौदह भुवन, आकाश-पाताल सब जगह गईं लेकिन जो विजया भवानी न मिलीं सो न मिलीं।

"अब सुनो शंकरजी का हाल ! हाल-बेहाल ! अबहीं तक तो शंकरजी रहे दुखी, अब चढ़ा उन्हें क्रोध। तो मझले कुँवर ! महादेवजी के हाथ फड़के, पैर फड़के, त्रिशूल फड़का ! और ब्रह्मांड में मच गई त्राहि-त्राहि। सुर दौड़े, असुर दौड़ें, ब्रह्मा दौड़े, विष्णु दौड़े ; लेकिन विजया भवानी जो न पसीजीं सो न पसीजीं।'

उमानाथ ने अपनी हँसी को दबाते हुए कहा—"तो झगड़ू काका, प्रलय क्यों नहीं हुआ ?"

झुंझलाकर झगड़ू बोले, "बात न काटो मझले कुँवर, पहिले पूरी कथा सुनि लेव ! तौन तब चला नादिया। बड़े-बड़े सींग, लम्बी पूँछ, लाल-लाल आँखी। अपने स्वामी का दुखी देखि के चढ़ि आवा वहिका क्रोध ! तौन नादिया शुरू कर दीन्हिस चरब घास-पात। उजड़ गये वन-उपवन नन्दन कानन। अब देखो तौन एक जंगल के एक घूरा माँ विजया भवानी छिपी मुसकाय रही रहैं। ई जितने गन, दूत, कातिक, गनेस, ब्रह्मा, विष्णु—भला ई बिचारे कब सोच सकत रहैं कि विजया भवानी घूरा मे छिपी हुई हैं। तौन जो नादिया फुफकार भरिस सो विजया-भवानी के परान सूख गये। हाथ जोड़ सन्मुख उपस्थित भईं। बस नादिया विजया का पूँछ माँ लपेट के उठाय लीन्हिस सींग पै और ले आवा महादेवबाबा के पास!"

"तब तो महादेवजी नादिया से बड़े प्रसन्न हुए होंगे !" उमानाथ ने कहा।

"अरे, कुछ न पूछो मझले कुँवर ! शंकरजी वैसे ही बरदान दीन्हिन कि जो नर विजया का सेवन करी, वह का नादिया की गति प्राप्त होई !"

"तो इसके माने हैं कि भाँग पीनेवाले बैल होते हैं !" और उमानाथ ज़ोर से हँस पड़ा।

लेकिन दुर्भाग्यवश यह मजाक झगड़ू की समझ मे तब आया जब वे लोटे की भाँग का पहला आधा हिस्सा गले के नीचे उतार चुके थे और शेष भाँग को गले के नीचे उतारने के क्रम मे थे। यह निश्चय करके कि उमानाथ को इस बदतमीज़ी का जवाब पूरी तरह से विजया को गले के नीचे उतारकर दिया जायगा, झगड़ू ने भाँग पीने की रफ्तार मे तेजी कर दी और जब खाली लोटा उन्होंने अपनी आँखों के आगे से हटाया तब उन्हें अपने सामने पंडित श्यामनाथ तिवारी दिखाई पड़े।

श्यामनाथ उमानाथ से कह रहे थे, "एक घंटे के अंदर ही कानपुर चलना है, और तुम्हें साथ लेकर। एक दफे मैं भी दया की दुलहिन को समझाना चाहता हूँ। और सुनो झगड़ू, तुम मार्कंडेय के यहाँ चलना चाहते हो न ! तो मेरे साथ मेरी मोटर पर चले चलो !"

दूसरे लोटे की ओर, जिसमें भाँग अभी रखी थी, इशारा करते हुए झगड़ू

ने कहा, "यह ठीक कह्यो। अच्छा, तो विजया तैयार है, छान लेव न।"

श्यामनाथ तिवारी ने एक बार लोटे में रखी भांग के गहरे रंग को देखा, फिर उन्होंने उमानाथ की तरफ नज़र डाली। उमानाथ ने बढ़ावा दिया, "हाँ, काका, छान लीजिए न! संकोच की क्या बात है?"

"तो फिर लाओ, थोड़ी-सी पी ही लूं!" और पौन लोटा भांग आंख बंद करके एक साँस में चढ़ा गये।

श्यामनाथ के जाने के बाद झगड़ू उमानाथ की ओर घूमे। उमानाथ ने जो उनका मजाक उड़ाया था, वह इस समय तक वे भूल गये थे। उन्होंने लोटे में बची हुई भांग की ओर इशारा करते हुए कहा, "मझले कुंवर! तो फिर तुमहूँ शंकरजी का परसाद स्वीकार करो!"

"नहीं झगड़ू, काका! यह भांग का नशा सबसे खराब। नशा ही करना है तो नशों का राजा मौजूद है—शराब।"

"का कह्यो? शराब!" झगड़ू ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा, "काहे हो मझले कुंवर! का तुम विलायत माँ जायके सराबौ पियन लागेव?"

"हाँ, काका—लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? नशा है, चाहे वह भांग हो, चाहे अफीम हो, चाहे शराब हो! अगर शराब का भोग देवी पर लग सकता है, तो मनुष्य भी शराब पी सकता है। इसमें आपको क्या आपत्ति?"

"अरे, देवी-देवता की बात मत चलाओ! ऊ समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं; और हम ठहरेन मनई। तौन वेद-शास्त्र माँ शराब निषिद्ध है। मझले कुंवर—हमरी एक बात मानो—तुम शराब छोड़ देव!"

उमानाथ झगड़ू की बात का उत्तर देने ही वाला था कि नौकर ने आकर कहा, "सरकार, मोटर तैयार है। छोटे राजा आप लोग का बुलाय रहे हैं।"

२

जिस समय श्यामनाथ की कार मार्कंडेय के मकान के सामने रुकी, मार्कंडेय श्रद्धानंद पार्क में कांग्रेस की सार्वजनिक सभा का सभापतित्व कर रहा था। यह सूचना मार्कंडेय के नौकर ने झगड़ू को दी। झगड़ू कार से उतरने लगे, लेकिन उमानाथ ने उन्हें यह कहकर कार पर फिर से बिठला लिया, "चलिए झगड़ू काका, हम आपको श्रद्धानंद पार्क में उतार दें, है ही कितनी दूर! मैं भी चलता हूँ। काका! आप न चलियेगा, लेकिन हम लोगों को फाटक पर उतार दीजिएगा!"

श्यामनाथ तिवारी ने हिचकिचाते हुए कहा, "वहां जाकर क्या करोगे?"

"देखिए काका! मैंने आज तक कांग्रेस की कोई भी मीटिंग नहीं देखी; और फिर इस मीटिंग के सभापति मार्कंडेय भइया हैं। साथ ही झगड़ू काका भी देख लेंगे कि मार्कंडेय भइया कितने बड़े आदमी हो गये हैं!"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गये। श्रद्धानंद पार्क के पास झगड़ और उमानाथ कार से उतर गये। श्यामनाथ के जाने के बाद इन दोनों ने श्रद्धानंद पार्क मे प्रवेश किया।

श्रद्धानंद पार्क ठसाठस भरा था, लोगों में अजीब उत्साह था। जिस समय ये लोग पार्क के अंदर पहुँचे, मार्कंडेय व्याख्यान दे रहे थे। मार्कंडेय क्या कह रहा था, यह तो ये लोग नहीं सुन सकते थे, क्योंकि ये लोग बहुत पीछे खड़े थे, पर जनता के उत्साह, बीच-बीच में उठनेवाली तालियों की गड़गड़ाहट, पर सर्वत्र फैली हुई शांति से उमानाथ और झगड़ दोनों ही समझ गये कि मार्कंडेय की वक्तृता का असर जनता पर पूरी तरह से पड़ रहा है।

सभा समाप्त हो गई। झगड़ के साथ उमानाथ मार्कंडेय की ओर बढ़ा। कांग्रेस के स्वयंसेवकों का समूह मार्कंडेय को घेरे खड़ा था। उमानाथ कोट-पैंट और टाई पहने था, उसका हैट उसके हाथ मे था। एक स्वयंसेवक ने उमानाथ को देखकर कहा, "यह बंदर कहाँ से छूट आया है?"

दूसरे स्वयंसेवक ने उमानाथ से कहा, "आपको शर्म नहीं आती कि आप यह हैट-टाई पहने हुए हैं!"

तीसरे स्वयंसेवक ने उमानाथ के हाथ से हैट छीन ली और चौथे ने अपने सिर की गांधी टोपी उमानाथ के सिर पर रख दी।

मार्कंडेय मुसकराता हुआ यह सब देख रहा था। उमानाथ ने गांधी टोपी अपने सिर से उतारकर जमीन पर फेंकते हुए कहा, "अगर तुम इस टोपी से ही स्वराज्य लेना चाहते हो तो तुम लोग बहुत बड़े बेवकूफ हो!" और यह कहकर उसने गांधी टोपी अपने पैरों के नीचे कुचल दी।

गांधी टोपी का यह अपमान उन स्वयंसेवकों को बहुत बुरा लगा। उन लोगों ने उमानाथ को चारों तरफ से घेर लिया, और हिंसा की भावना उनके मुखों पर आ गई। मार्कंडेय ने देखा कि मामला अब बढ़नेवाला है; उस घेरे को चीरकर वह आगे बढ़ा, "कहो जी उमा! कब आये?" यह कहकर जमीन पर पड़ी हुई गांधी टोपी उसने उठा ली।

यह देखकर कि उमानाथ मार्कंडेय का परिचित है, स्वयंसेवकगण वहाँ से हट गये। स्वयंसेवकों के हटते ही मार्कंडेय की नजर झगड़ पर पड़ी, जो एक कोने में खड़े आश्चर्य के साथ यह तमाशा देख रहे थे। वैसे ही मार्कंडेय ने कहा, "अरे बप्पा! आपौ?"

झगड़ ने मार्कंडेय की ओर घूमकर कहा, "हाँ, अब ही भइने कुँवर और श्यामू के साथ मोटर पर आय रहे हन! तुम्हारा गुन सुन के चले आएन!"

३

मार्कंडेय का मकान मेस्टन रोड पर श्रद्धानंद पार्क से करीब सौ गज दूरी पर था। मकान पर पहुँचकर झगड़ ने मार्कंडेय से कहा, "तुम सुन माँ

मैं बड़े-बड़े कुलीन और धर्म-ध्वज ब्राह्मणों को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि विलायत में बने हुए केक और बिस्कुट वे बड़े शौक से खाते हैं। और साथ ही बप्पा, अगर जेल में मुझे दूसरी जाति वालों के हाथ का अन्न खाना पड़ेगा, तो वह आपद्धर्म होगा। आपद्धर्म शास्त्रोक्त है!"

उमानाथ मार्कंडेय के समझाने की विधि तथा झगड़ू के समझने की विधि पर दंग रह गया। उसने कहा, "हाँ, झगड़ू काका! मार्कंडेय भइया बहुत ठीक कहते हैं।"

झगड़ू ने ठंडी साँस भरकर कहा, "कहत तो ठीकै है—लेकिन का बताई मझले कुँवर, हमार मन नाहीं गवाही देत है। तौन मार्कंडे, तुम अब बड़े हुइ गए हो, पढ़े-लिखे हो, समझदार हो—जैस तुम ठीक समझो, वैस करो।"

यह बात हो ही रही थी कि बाहर से आवाज सुनाई पड़ी, "मिस्टर मार्कंडेय मिश्र हैं?"

नौकर सब-इन्स्पेक्टर गंगाराम को अपने साथ उसी कमरे में ले आया। सब-इन्स्पेक्टर ने आते ही मार्कंडेय के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा दिया। मार्कंडेय ने लिफ़ाफ़ा खोलकर पत्र पढ़ा, वह पत्र मार्कंडेय को चौबीस घंटे के अंदर कानपुर छोड़ देने का नोटिस था। मार्कंडेय ने गंगाराम से कहा, "तो आप कल इसी वक्त आ जाइयेगा, मैं तैयार रहूँगा।"

"आप तैयार रहेंगे?—मैं समझा नहीं!" गंगाराम ने पूछा।

"यही कि गवर्नमेंट मुझे गिरफ्तार करना चाहती है, और मैं गिरफ्तार होने के लिए तैयार हूँ। क्या आप समझते हैं कि मैं कानपुर छोड़कर चला जाऊँगा?"

सिर झुकाकर सब-इन्स्पेक्टर ने कहा, "समझ गया! अच्छा, अब इजाजत दीजिए!"

गंगाराम के जाने के बाद मार्कंडेय ने झगड़ू से कहा, "आप आ गये, बप्पा! यह अच्छा हुआ। कल शाम के समय मेरी गिरफ्तारी होगी, आप कल तक यहीं रहियेगा!"

झगड़ू ने आश्चर्य से मार्कंडेय को देखा, "और ई चौबीस घंटा पहले बताय गए कि तुम्हार गिरफ्तारी होई। काहे मार्कंडे, अगर ई बीच मा तुम कानपुर से चले जाव तो ई तुम्हें कैसे गिरफ्तार करिहैं?"

उमानाथ हँस पड़ा, "वाह, झगड़ू काका! आप इतना भी नहीं समझे? पुलिस तो यह चाहती ही है कि मार्कंडेय भइया शहर छोड़ के चले जायें। अगर ये कानपुर छोड़कर चले जायें तो पुलिस इन्हें हरगिज गिरफ्तार न करेगी।"

"काहे हो, मार्कंडे?" झगड़ू ने पूछा।

"हाँ, बप्पा! यह लिफ़ाफ़ा जो मुझे अभी मिला है, इसमें लिखा है कि मैं चौबीस घंटे के अंदर शहर छोड़ दूँ, नहीं तो सरकार मुझे गिरफ्तार कर लेगी।"

"तो काहे नाहीं गाँव चले चलत हो?" झगड़ू ने कहा।

"और दुनिया यह कहे कि मैं कायर हूँ—सरकार यह कहे कि कांग्रेस में डरपोक आदमी भरे हैं !"

झगड़ू की समझ में यह सब न आ रहा था। उन्होंने कुछ झल्लाकर कहा, "तो फिर जो तुम्हारे जी में आवै वह करो; हम तुमको रोक थोड़े रहे हन !"

"मैं जानता हूँ, नप्पा ! आप मुझसे कभी भी गलत बात करने को न कहेंगे। अभी तक जो कुछ आपने किया है या मुझसे करने के लिए कहा है, वह मेरे हित के लिए !" मार्कंडेय ने अपने बूढ़े पिता की ओर प्रेमपूर्वक देखते हुए कहा।

उमानाथ आश्चर्य के साथ इन पिता-पुत्र को देख रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ! जो कुछ उसे झगड़ू के संबंध में ज्ञात था, उससे वह उस दृश्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। उसने अपने सामने बैठे हुए ठेठ गँवार को देखा, झुर्रियों से भरा हुआ कठोर मुख, और उस मुख पर जीवन के भयानक संघर्ष तथा चिंताओं का और पग-पग पर सामने आने वाली असफलताओं तथा विवशताओं का लंबा इतिहास ! और इन सबों की तह में एक सहृदय मानव जिसका भलाई पर विश्वास, दूसरों के हित के प्रति जिसमें आंतरिक इच्छा ; जिसमें स्वार्थ-परार्थ, अच्छा-बुरा, सही-गलत, इन सबका विवेचन ! और उस बूढ़े के सामने बैठा हुआ था उसका जवान पुत्र, जिसके मुख पर दृढ़ता, होंठों पर मुसकराहट, आँखों में तेज और वाणी में विश्वास ! और उसने देखा कि पुत्र पिता पर शासन कर रहा है, बुद्धि भावना को संचालित कर रही है, विद्या अविद्या पर विजय पा रही है। थोड़ी देर तक उमानाथ चित्रलिखित-सा इन दोनों को देखता रहा। उसने एक ठंडी साँस ली, "अच्छा झगड़ू काका, तो मैं चलता हूँ !"

उमानाथ जब दयानाथ के बँगले में पहुँचा, पंडित श्यामनाथ तिवारी मुँह हाथ धोकर ड्राइंग-रूम में डटे हुए जलपान कर रहे थे। उनके सामने उस दि‍न का दैनिक पत्र 'लीडर' खुला रखा था और वे उसे भी साथ-साथ पढ़ते जाते थे श्यामनाथ के पास बैठते हुए उमानाथ ने कहा, "वाह काका, मेरा तो इंतजार क लिया होता !" और उमानाथ श्यामनाथ के नाश्ते पर जुट गया।

नाश्ता कर लेने के बाद श्यामनाथ उमानाथ की ओर मुखातिब हुए, "उमा अब अपनी भावज से बात करो जाकर ! मेरी तरफ से उसे समझा देना कि द दुआ की बात भूल जाय और अपनी जिद पर न अड़कर हमारे साथ घर चले

उमानाथ अपनी भावज के पास पहुँचा, "भौजीजी, काका आपको मन आये हैं और मध्यस्थ बनने के लिए मैं आया हूँ। इसीलिए मैं आपके सम उपस्थित हुआ हूँ !"

राजेश्वरी ने मुसकराते हुए कहा, "अच्छा, पहले नहा-धोकर कपड़े बद फिर चाय पियो और फिर जो कहना हो, वह कहना।"

"आप इसकी चिंता न करें—नहा-धोकर और कपड़े बदलकर मैं उन्नाव

चला हूँ, नाश्ता मैं काका के साथ कर चुका हूँ; अब बातचीत करना बाकी है!"

"अच्छी बात है, बाबूजी! सो कह डालिए क्या कहना है!"

"काका का कहना है कि आपको जिद न करनी चाहिए और घर चलना चाहिए!"

"इसमें जिद की क्या बात है बाबूजी, अगर मेरा घर होता तो मैं जरूर चलती! आप काकाजी से कह दीजिए जाकर!" राजेश्वरी ने कहा।

उमानाथ ने दूसरी बात नहीं की, वह सीधे श्यामनाथ के पास पहुँचा, "भौजीजी कहती हैं कि उनका घर ही नहीं है और आप—यानी हम लोग उनके कोई नहीं हैं।"

श्यामनाथ ने कहा, 'हूँ!' और वे उठ खड़े हुए। उमानाथ का हाथ पकड़कर वे आँगन में पहुँचे और उन्होंने जोर से उमानाथ से कहा, "उमा! दुलहिन से कह दो कि बड़के भइया ने गलती की! दया को घर से निकल जाने की बात उन्होंने क्रोध के आवेश में कही थी और उसके लिए मैं बड़के भइया की ओर से माफी माँग रहा हूँ। अब उससे कह दो कि वह चले।"

लेकिन श्यामनाथ ने जो कुछ कहा, उसे चौपट कर दिया उमानाथ ने, "काका! मुझे पता नहीं कि ददुआ माफी माँगने के लिए या अपनी गलती मंजूर करने को तैयार हैं या नहीं, लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ, वे नहीं हैं?"

और उसी समय राजेश्वरी की आवाज सुनाई दी, "बाबूजी! काकाजी से कह दीजिए कि जो कुछ कर सकते हैं वह वे कर सकते हैं जो कृष्ण-मंदिर में हैं, एक उन्हीं की बात मैं मान सकती हूँ!"

श्यामनाथ सिर झुकाए हुए वापस चले आए। उन्हें उमानाथ पर क्रोध आ रहा था। ड्राइंग-रूम में आकर उन्होंने उमानाथ से कहा, "तुम्हें यह सब कहने की क्या जरूरत थी?"

"इसलिए कि किसी को धोखा देना मैं ठीक नहीं समझता।"

"तो अब किया क्या जाय?" बेबसी से श्यामनाथ ने पूछा। उमानाथ ने उनकी बात का कोई जवाब न दिया। और थोड़ी देर सोचने के बाद मानो उन्हें प्रकाश की रेखा दिखाई दी; वे कह उठे, "आ गया समझ में! कल मैं जेल में दया से मिलूँगा।"

४

दूसरे दिन पंडित श्यामनाथ को दयानाथ से इण्टरव्यू करने के लिए रवाना करके उमानाथ कामरेड मारीसन की तलाश में निकला। कामरेड मारीसन उस समय अपने होटल में ही थे। उमानाथ ने कामरेड मारीसन का [illegible] खटाया, क्योंकि वह अंदर से बंद था। भीतर से आवाज आई, "मु[illegible] नहीं है, फिर आना!"

इस बार उमानाथ ने दरवाजा खटखटाने के साथ अपने गले का भी प्रयोग किया, "कामरेड, मैं हूँ उमानाथ—दरवाजा खोलो !"

उनकी आवाज़ ने जादू का-सा असर किया। "ओह कामरेड तिवारी !" कहते हुए कामरेड मारीसन ने दरवाजा खोला, "माफ़ करना ! मैं समझा कि कोई और होगा। भला मुझे क्या मालूम था कि इतनी जल्दी चले आओगे ?"

उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ कमरे में घुसा। उसने देखा कि कमरे के अन्दर एक और आदमी सिर से पैर तक खद्दर के कपड़े पहने बैठा है। सामने मेज़ पर कानपुर शहर का एक नक्शा फैला हुआ है। कामरेड मारीसन ने परिचय कराया, "कानपुर के सबसे बड़े लेबर-लीडर कामरेड ब्रह्मदत्त ! और इंटरनेशनल के प्रतिनिधि कामरेड तिवारी ! कामरेड ब्रह्मदत्त ! हिंदुस्तान का आरगनाइजेशन अब कामरेड तिवारी करेंगे, क्योंकि मैं इंग्लैंड वापस जा रहा हूँ।"

कामरेड ब्रह्मदत्त ने कामरेड तिवारी को हाथ जोड़कर हिंदुस्तानी ढंग से अभिवादन किया।

"अभी हम लोग कानपुर के मिल एरिया पर बातचीत कर रहे थे। कामरेड तिवारी, तुम्हारी क्या राय है ? इस वक्त जब कि सत्याग्रह जोरों के साथ चल रहा है, कामरेड ब्रह्मदत्त का कहना है कि मिलों में हड़तालें करा दी जायँ; और जो कुछ कारण इन्होंने दिए हैं, वे बेजा भी नहीं हैं।"

"वे कारण क्या हैं ?" उमानाथ ने बैठते हुए पूछा।

"बतलाइये, कामरेड ब्रह्मदत्त !" कामरेड मारीसन ने कहा।

ब्रह्मदत्त ने गला साफ करके कहना आरंभ किया, "पहला कारण यह है कि विदेशी बहिष्कार के कारण स्वदेशी मिलों को बहुत ज्यादा फ़ायदा हो रहा है। ये मिल-मालिक हड़ताल के कारण मिलों का बंद होना गवारा नहीं कर सकते, क्योंकि इसमें इन लोगों का बहुत बड़ा नुकसान हो जायगा। इसके अलावा बहुत-से मिल-मालिक खुद कांग्रेस का साथ दे रहे हैं। हम दुनिया को बतला सकेंगे कि ये मिल-मालिक कितने पानी में हैं—ये अव्वल नम्बर के स्वार्थी हैं !"

उमानाथ ने गौर से ब्रह्मदत्त को देखा, उसकी तेज नजर के आगे ब्रह्मदत्त थोड़ा-सा निष्प्रभ हो गया।

उमानाथ ने कहा, "मौका तो अच्छा है, लेकिन हमारे सामने सवाल यह है कि इस समय हड़ताल का असर इस मूवमेंट पर कैसा पड़ेगा ?"

ब्रह्मदत्त ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "जी···मेरा खयाल तो यह है कि कुछ भी असर हो, हमारे लिए, यानी मजदूरों के लिए, वह असर अच्छा ही होगा और हमें तो देखना यह है कि हमारा—यानी मजदूरों का, और हमारी पार्टी का फ़ायदा किस बात में है।"

"आप ठीक कहते हैं !" उमानाथ ने बात को वहीं रोकते हुए कहा, "लेकिन इस बात पर अच्छी तरह से गौर कर लेना पड़ेगा। हाँ, मुझे एक

और पूछनी है, कानपुर में आपके अलावा और लेबर-लीडर हैं ?
मैं उन लोगों से मिलकर उन लोगों की भी राय ले लेना उचित
समझूँगा।"

उमानाथ का यह रुख ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा। कामरेड मारीसन को वह इस समय तक बहुत कुछ समझा चुका था और कामरेड मारीसन समझ भी चुके थे; इसलिए कामरेड तिवारी का बीच में पड़ पड़ना उसे अखर गया। उसने कहा, "जी···मेरे अलावा दो-चार आदमी और हैं, लेकिन उन पर सब मजदूरों का पूरा विश्वास नहीं और इसलिए उनकी राय का कोई मूल्य नहीं।"

"समझ गया। तो आपसे मैं फिर कभी फुरसत में बात करूँगा; अभी इस समय मुझे कामरेड मारीसन से कुछ खास बातें करनी हैं। आप शाम को सात बजे यहीं मिलिएगा।" उमानाथ ने शुष्क भाव से ब्रह्मदत्त से कहा।

ब्रह्मदत्त के जाने के बाद उमानाथ ने कामरेड मारीसन से कहा, "तुम्हारा यह लेबर-लीडर काफी बड़ा बदमाश भी मालूम होता है। अगर ऐसे लोगों के हाथ में हमारा आरगेनाइज़ेशन है, तो ख़ैरियत नहीं!"

"क्यों? इस आदमी में खराबी क्या है? अच्छा काम करनेवाला है, स्ट्राइक-ग्रुप के लिए हरदम तैयार रहता है और मजदूरों पर इसका पूरी तौर से प्रभाव भी है! अगर आप यह भी मान लें कि यह अक्ल में आपके मुकाबिले का नहीं है, तो इसमें उसका क्या कसूर?"

उमानाथ हँस पड़ा, "तुम गलती करते हो, कामरेड मारीसन! यह आदमी अक्ल में तुमसे या मुझसे कहीं ज्यादा है, लेकिन इसके साथ मुसीबत यह है कि इसकी बुद्धि रचनात्मक न बनकर विनाशात्मक ढंग पर विश्वास करती है और इस तरह से हमारे सिद्धांत को और हमारे ध्येय को मिट्टी में मिला रही है। मुझे अपने विरोधियों से डर नहीं है, मुझे डर है इस तरह के कार्यकर्ताओं से। ख़ैर, छोड़ो भी इन बातों को; इन लोगों के साथ मैं निपट लूँगा। लो, तुम्हारे साथ कैसी बीती?"

"क्या बतलाऊँ, कामरेड तिवारी! तुम तो मुझे छोड़कर चल दिए और मैं अकेला रह गया। अब कामरेड, एक तो मेरा कपड़ा और दूसरे यहाँ की भाषा हिन्दुस्तानी का बहुत थोड़ा-सा ज्ञान। फिर देश में अंग्रेज़ों के प्रति घृणा का भाव! शहर में जो निकला तो लोग मेरे पीछे हो लिए। मेरा तमाशा बना डाला इन लोगों ने। जैसे-तैसे कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पहुँचा और मुझे यह ब्रह्मदत्त मिल गया। फिर क्या, मौज से दिन-रात इसके साथ घूमा करता हूँ।"

"अर्दली तुमने बेजा नहीं चुना, है भी इस काबिल कि गाइड का काम करे, इससे ज्यादा इसकी वक़त नहीं। ख़ैर, यह तो टला, अब चलो मेरे यहाँ; अपने चाचा से तुम्हें मिलाऊँ। लेकिन एक बात बतला दूँ, तुम उन पर कहीं यह न जाहिर कर देना कि तुम कम्युनिस्ट हो। वे सुपरिंटेंडेंट पुलिस हैं।"

"ऐसी बात है! तुम्हारा खानदान तो बड़ा दिलचस्प मालूम ह—।"

कामरेड मारीसन ने कहा, "तुम्हारे यहाँ जरा सँभलकर रहना होगा !"

"इसमें क्या शक है ! अभी तुम मेरे पिता से नहीं मिले। अजीव तरह के आदमी हैं। अगर उनका वश चले, तो हरएक समाजवादी की खाल खिचवाकर भुस भरवा दें।"

"तो मैं बड़े ख़तरनाक आदमियों के बीच में आ पड़ा हूँ !" कामरेड मारीसन ने गंभीर मुद्रा बनाते हुए कहा।

उमानाथ हँस पड़ा, "डर गए ! अरे, एक बात और बतला दूँ ! ये जितने आदमी हैं—हम लोग शुरू से लेकर आख़िर तक—सब-के-सब बहुत बड़े कायर हैं। अगर कायर न होते तो भला ये लोग गुलामी करते होते ? और इतने बड़े कायर होते हुए भी ये लोग जरा-जरा-सी बातों पर लड़ पड़ते हैं, हत्या कर डालते हैं, फाँसी चढ़ जाते हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, कामरेड तिवारी !"

"हाँ ! और इसका कारण सुनकर तुम्हारा ताज्जुब दूर हो जायगा। हम हिंदुस्तानियों में पशुता पूरी तरह भरी हुई है। इसी पशुता से प्रेरित होकर हम सब यह कर डालते हैं। लेकिन जब मनुष्यता प्रदर्शित करनी होती है, जब साहस की आवश्यकता होती है तभी हम हिंदुस्तानी अपने को बहुत गिरा हुआ पाते हैं।"

कामरेड मारीसन उठ खड़े हुए, "अच्छा चलो, तुम्हारे ही यहाँ चलता हूँ। लेकिन कामरेड ! लोगों को मैंने देखा है, उनके संपर्क में आया हूँ; और मैं जरा भी विश्वास करने को तैयार नहीं हूँ कि हिंदुस्तानी इतने खूँख़्वार हैं।"

"यह इसलिए कामरेड कि तुमने हिंदुस्तान में शहर ही देखे हैं और शहरों के रहनेवाले जानवर पालतू हैं; उनके दाँत और नाख़ून हमारी सभ्यता ने तोड़ दिये हैं !" उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ चलते हुए कहा।

५

पंडित श्यामनाथ तिवारी को दयानाथ से मुलाकात करने के लिए जरा भी तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। जेल के अधिकारी दयानाथ को और उसके कुल को जानते थे। दयानाथ को 'ए' क्लास मिला था; और जेलर ने दयानाथ को जेल का सबसे अच्छा कमरा और उसके साथ ही विशेष फर्नीचर तथा अन्य सुविधाएँ दे रखी थीं। श्यामनाथ तिवारी दयानाथ के कमरे में पहुँचा दिए गए।

श्यामनाथ को देखते ही दयानाथ ने उनके चरण छुए। "अरे काका, आप !"

"हाँ—तुमसे मिलने चला आया !"

"आपको मेरे कारण यहाँ आने का कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। वैसे आपको यहाँ आने की कोई आवश्यकता तो नहीं थी।"

श्यामनाथ ने दयानाथ को देखा, मुख पर मुसकराहट और नेत्रों में चमक। वह अपने घर के ही कपड़े पहने था। श्यामनाथ ने धीमे स्वर में कहा, "दया !

मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं, इसलिए आया हूँ। मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम···"

श्यामनाथ की बात बीच में ही काटकर दयानाथ ने कहा, "बेकार है, काका! यहाँ आकर अब मैं माफी माँगूंगा, या सरकार से कांग्रेस से अलग हो जाने का वादा करूँगा, इसकी कल्पना करना ही मेरे साथ, मेरी आत्मा के साथ, मेरी मनुष्यता के साथ अन्याय करना है।"

"नहीं दया, मैं इसके लिए नहीं आया हूँ। मुझे तुम्हारे घर की बाबत कुछ बात करनी है।"

"कहिए!"

"देखो, बात यह है कि बड़ी बहू कानपुर में अकेली है।"

"अकेली तो नहीं काका, राजेश और ब्रजेश उसके साथ हैं।"

"अरे मेरा मतलब उससे है जो उसकी देख-भाल कर सके।"

"इसकी आप चिंता न करें, काका! वह स्वयं अपनी देख-भाल करने काबिल है। फिर उसके साथ भगवान हैं।"

"दया! इस तरह की ऊटपटाँग बातें करने से क्या फायदा? मेरे कहने का मतलब यह है कि बड़ी बहू कानपुर में बिलकुल अकेली है। बड़के भइया उसे बानापुर ले चलने के लिए तुम्हारे यहाँ गए थे, लेकिन बड़ी बहू ने बानापुर जाने से इनकार कर दिया!"

"दद्दुआ खुद आए थे—और उसने इनकार कर दिया!" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा। कुछ देर तक वह चुपचाप सोचता रहा, फिर उसके होठों पर एक हलकी मुसकराहट आई, "मुझे इसकी उम्मीद न थी! भगवान को धन्यवाद कि उसमें इतनी बुद्धि तो आ गई!" अब वह श्यामनाथ से बोला, "काका—देखिये, मैं कुल का त्याज्य हूँ, मुझे बानापुर जाने का अधिकार नहीं। अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि आप लोगों को मेरे घर में, मेरे बीवी-बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों?"

श्यामनाथ सन्नाटे में आ गये। दयानाथ में, उस दयानाथ में, जिसमें इतना संयम था, इतनी शिष्टता थी, जो इतना शांत था, इतना गंभीर था; उसमें इतनी कटुता कैसे आ गई? उन्होंने कहा, "दया! तुम कैसी बातें कर रहे हो?"

"बिलकुल ठीक कह रहा हूँ, काका! मैं गिरफ्तार हुआ, मुझे सजा हुई; लेकिन आप लोगों को मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं थी! दद्दुआ चाहते हैं कि मैं उनका गुलाम बनकर रहूँ! आखिर यह क्यों? वे हरेक आदमी को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। और मैं? मैं गुलामी के खिलाफ लड़ रहा हूँ। कहीं भी तो हम दोनों में समता नहीं है; न हम दोनों एक दृष्टिकोण से देख सकते हैं, न हम दोनों एक तरह से समझ सकते हैं। फिर मैं पूछ रहा हूँ कि उन्हें मेरी पत्नी में और बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों? आप लोग अमीर हैं, आप लोग दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को मिटाकर खुद मो[illegible]

में विश्वास करते हैं। और मैं!—मैं उन लोगों में हूँ, जो स्वयं मिटने में विश्वास करते हैं।"

श्यामनाथ को अनुभव हो रहा था कि दयानाथ का दिमाग कुछ खराब हो गया है; घबराये हुए वे अपने भतीजे को देख रहे थे, "दया! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम इस तरह की बातें मत करो।"

"तो आप क्या कहना चाहते हैं?"

"मैं बड़ी बहू के विषय में कहना चाहता हूँ कि वह कानपुर में कैसे रहेगी, बिलकुल अकेली! राजेश और व्रजेश का भी तो खयाल करना पड़ेगा।"

"तो आप बतलाइए कि मैं क्या करूँ? दुनिया में मेरे भी तो कोई नहीं है, और इसका मुझे दुःख नहीं—जरा भी दुःख नहीं। पशुता के बंधन से छूटकर मुझे प्रसन्नता ही हुई।"

श्यामनाथ तिवारी तिलमिला उठे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका सगा भतीजा दयानाथ उनके मुँह पर ही उन्हें पशु बता रहा है। पर श्यामनाथ तिवारी जानते थे कि दयानाथ के साथ रामनाथ तिवारी ने बहुत बड़ा अन्याय किया है; और इसलिए वे अनुभव करते थे कि दयानाथ का कटुता स्वाभाविक है। श्यामनाथ की मनुष्यता ने उनके क्रोध पर विजय पाई, उन्होंने बहुत करुण स्वर में कहा, "दया! जितना भला-बुरा कहना चाहो, कह लो, बड़ी-से-बड़ी गाली सुनने को मैं तैयार हूँ। इसलिए कि तुम मेरे भतीजे हो, मेरे खानदान के हो। तुम जानते हो मुझे और मेरे स्वभाव को, लेकिन क्या करूँ, मैं विवश हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है और इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे उस अन्याय पर दुःख है और मैं तुमसे माफ़ी माँगता हूँ।"

अपने काका की बात से दयानाथ लज्जित हो गया, उसका क्रोध गल गया, "नहीं काका—ऐसी बात आप न कहें, इसमें आपका कोई दोष नहीं। लेकिन आप ही बतलाइए, मैं क्या करूँ? आपकी क्या आज्ञा है?"

"बहू का कहना है कि वह बिना तुम्हारी आज्ञा के बानापुर नहीं जा सकती। मैं चाहता हूँ कि तुम उसे बानापुर जाने की इजाज़त दे दो।"

"काका! एक बात मैं आपसे कहूँगा। फिर इस विश्वास के साथ कि आप मुझे अनुचित बात करने को न कहेंगे आप जो कुछ कहिएगा, वही मैं करूँगा। दद्दुआ ने मुझसे कहा है कि उनके जीवित रहते मैं बानापुर में पैर नहीं रख सकता। आप दद्दुआ को जानते हैं, उनके हठ को जानते हैं, उनके निर्णय को जानते हैं। अब सवाल यह है कि जब मैं एकदम त्याज्य हूँ तो मेरी पत्नी किस प्रकार वहाँ स्वीकृत हो सकेगी?"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गये, "ठीक कहते हो! लेकिन हो क्या?"

"कुछ नहीं, जैसे चल रहा है, चलता रहेगा।"

श्यामनाथ निराश लौट आये।

जिस समय श्यामनाथ घर लौटे, बारह बज चुके थे। उनके मन की थकावट

उनके शरीर में व्याप्त हो गई थी—वे बहुत अधिक चिंतित थे।
ड्राइंग-रूम में वे बिजली का पंखा खोलकर बैठ गए—उन्हें कुछ अच्छा न लग रहा था। बात इतनी बढ़ सकती है—उन्होंने यह न सोचा था। आज जेल में दयानाथ से बात करके, उसकी कटुता को देखकर उनकी समझ में आया कि जो कुछ हुआ, वह बहुत असाधारण बात थी। राजेश और ब्रजेश उसी कमरे में खेल रहे थे। राजेश को उन्होंने अपनी गोद में बिठलाकर पूछा, "राजेश! तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं?"

"किशन-मंदिल में!" गर्व के साथ ब्रजेश ने जो थोड़ी दूर पर बैठा एक किताब के पन्नों को फाड़कर, नाव बना रहा था, जवाब दिया।

"मेरे साथ चलोगे?" श्यामनाथ ने फिर पूछा।

"हाँ, बाबा! आपकी मोटर पर चलेंगे!" राजेश ने कहा, 'जब से बाबूजी किशन-मंदिल में गये, तब से माँ ने मोटर बंद करवा दी। कहती हैं पैसा नहीं है—और मोटर चलती है पेट्रोल से, और पेट्रोल खरीदने के लिए पैसा चाहिए। बाबा! माँ झूठ-मूठ कहती हैं। उनके पास रुपया है, लेकिन कहती हैं कि रुपया नहीं है। जब पिताजी थे, तब रोज घुमाने ले जाते थे। और अब···" राजेश कहते-कहते रुक गया।

श्यामनाथ राजेश की बातें ध्यान से सुन रहे थे। राजेश की भोली बातों में कितनी करुणा थी, कितनी विवशता थी! राजेश को अपनी गोद से उतारते हुए श्यामनाथ ने कहा, "अच्छा राजेश, आज तुम मेरी मोटर पर घूमने चलना।"

"औल बाबा, मैं—मैं भी चलूँदा!—ऊँ—ऊँ!" ब्रजेश ने वहीं से आवाज लगाई।

श्यामनाथ ने बढ़कर ब्रजेश को गोद में उठा लिया, "हाँ, तुम भी! तुम भी चलोगे!"

"औल बाबा, माँ!—माँ भी चलेंदी न!" खुश होकर ब्रजेश ने पूछा।

इसी समय उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ कमरे में प्रवेश किया।

६

कामरेड मारीसन की शक्ल देखते ही राजेश और ब्रजेश कमरे से रवाना हो गए। उमानाथ ने बढ़कर श्यामनाथ से कहा, "काका! ये मेरे दोस्त मिस्टर मारीसन हैं, बड़े विद्वान् आदमी। हमारे महान् ग्रंथ वेदों का अध्ययन करने के लिए ये हिंदुस्तान आए हुए हैं—हिंदू-धर्म के बहुत बड़े भक्त हैं।"

श्यामनाथ ने उठकर बहुत आदरपूर्वक मारीसन से हाथ मिलाया, "मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। कहिए, हिंदुस्तान में आपने क्या-क्या देखा?"

कामरेड मारीसन ने एक बार बड़े आश्चर्य के साथ उमानाथ के मुख को गौर से देखा—यह जानने के लिए कि उसके इस झूठ का मतलब [illegible] लेकिन उमानाथ शांत था। कामरेड मारीसन ने जरा बचते हुए [illegible] में

अच्छी तरह से घूमा हूँ और देखा भी मैंने बहुत कुछ है। लेकिन एक खास बात मैंने जो देखी, वह यह है कि यहाँ के आदमी नेक होते हुए भी बेवकूफ हैं।"

"इसमें क्या शक है!" श्यामनाथ तिवारी ने मारीसन की बात की ताईद की, "बेवकूफ तो ये लोग अव्वल नंबर के हैं। तभी तो देखिए, आप लोग वेदों के पीछे दीवाने घूम रहे हैं, इतनी दूर विलायत से वेदों का पता लगाने यहाँ आए हैं, और हम लोग अपने ही महान् ग्रंथ की परवाह नहीं करते! तो वेदों को आपने खूब अच्छी तरह पढ़ा होगा?"

"जी···अभी पढ़ ही रहा था। बहुत अच्छी किताब है। आपकी क्या राय है?"

श्यामनाथ तिवारी जरा संकट में पड़ गए। अपना अज्ञान वे प्रकट नहीं करना चाहते थे, पर वेद के धुरंधर विद्वान् के सामने वे दून की भी नहीं हाँक सकते थे। उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "मैं क्या बतलाऊँ! वेद तो हमारा ही ग्रंथ है न! लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि वेद में पूर्ण ज्ञान भरा है। वह महान् ग्रंथ है, और हम हिंदुओं का यह विश्वास है कि स्वयं ब्रह्मा ने उसे लिखा है।"

"जी हाँ! चीज तो वह ऐसी ही है! हिंदुस्तानियों में किसी समय—इन हिंदुस्तानियों में, जो आज परले सिरे के बेवकूफ समझे जाते हैं, इतना अथाह ज्ञान था—यह देखकर मुझे दंग रह जाना पड़ता है!"

उमानाथ इन दोनों की बातचीत पर मन-ही-मन हँस रहा था। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन! आज जिसे हम सोशलिज्म कहते हैं, उस पर वेद में कितना अच्छा प्रकाश डाला गया है! मनुष्य सम है, उसने स्वयं विषमता उत्पन्न कर ली है। उस विषमता को दूर करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है!"

"बिलकुल ठीक, मिस्टर उमानाथ! मुझे बड़ा ताज्जुब है कि हिंदुस्तानी उन दिनों आज की दुनिया की रफ्तार से किस तरह वाकिफ हो गए थे।"

"और वेद में ही तो कहा है कि राजाओं को मार डालो, अमीरों को लूट लो, अमीरी को मिटा दो। जो कुछ अन्न पैदा हो, वह बराबर-बराबर बाँट लो!" उमानाथ ने फिर कहा।

पंडित श्यामनाथ का माथा ठनका। यद्यपि उन्होंने वेद पढ़ा नहीं था, पढ़ना तो दूर रहा, देखा तक नहीं था, पर उन्होंने वेद के विषय में सही-गलत सुना बहुत कुछ था। आर्यसमाजी और सनातनधर्मी सभी वेद की दुहाई देते हैं। पर किसी आदमी ने कभी यह नहीं कहा था कि वेदों में राजाओं और अमीरों को लूटने-पाटने के लिए लोगों को उकसाया गया है। वह आश्चर्य से उमानाथ को देख रहे थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उमानाथ ने भी कभी वेद नहीं पढ़ा है।

और वेद का प्रकांड पंडित बड़े जोश के साथ कह रहा था, "ठीक कहते हो, मिस्टर उमानाथ, वेदों में ही कहा गया है कि मिल के मजदूरों को मिल की

आमदनी पर पूरा अधिकार होना चाहिए। पूँजीपतियों को यह कभी भी अधिकार नहीं है कि वह गरीब मजदूर की खून की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाएं !"

श्यामनाथ तिवारी कह उठे, "क्या कहा ?"

और श्यामनाथ के चेहरे के भाव को देखकर कामरेड मारीसन को पता लग गया कि कहीं गलती हो गई। उस समय उमानाथ ने उनकी बड़ी सहायता की। उमानाथ ने कहा, "मिस्टर मारीसन ! पंडित बद्रीनाथ शास्त्री से आप आज शाम को ही मिलिएगा न ?"

"यह तो तुम जानो—जैसा तै किया हो !" मारीसन समझ गया कि वेदों का किस्सा अब खत्म होना चाहिए।

पंडित बद्रीनाथ शास्त्री कानपुर नगर के बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। लोगों का खयाल था, और स्वयं पंडित बद्रीनाथ शास्त्री का कहना था कि उनके पास भृगु-संहिता है, और इसी सिलसिले मे एकाध बार पंडित श्यामनाथ तिवारी शास्त्रीजी से मिले थे। पंडित बद्रीनाथ शास्त्री ने जो बातें बतलाई थीं, उनमें से पचीस प्रतिशत उनके ज्ञान को साबित करती हुई ठीक निकलीं और पचहत्तर प्रतिशत कलियुग तथा अधर्म के कारणों से ग्रहों के फलाफल में भेद पड़ जाने को साबित करती हुई झूठी निकलीं।

अपने काका को थोड़ा-सा और आश्वासन दिलाने के लिए उमानाथ ने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन ! हिंदुस्तान में मजाक सिर्फ बराबरी वालों से और बराबरीवालों के सामने ही किया जाता है !"

मारीसन ने भी अपनी सफाई देना उचित समझा, "मुझे माफ कीजिएगा। बात यह हुई कि कलकत्ता से आते वक्त ट्रेन मे एक करोड़पति मारवाड़ी से मुलाकात हो गई। बड़ा बना हुआ आदमी था—जब बात करता था, तब गीता और वेद का हवाला देता था। मुझसे टूटी-फूटी अंग्रेजी में दूर की हाँकने लगा। उसे क्या मालूम कि मैं संस्कृत का पंडित ! फिर उसने वेदों पर बातचीत शुरू की। अब मैंने सोचा कि उसे बनाया जाय। तो मैंने जो इस तरह की बातें सुनाईं, तो लगा बगलें झांकने, सारी मिट्टी-पिट्टी भूल गई।"

इस पर श्यामनाथ बहुत हँसे। जो कुछ शक उन्हें हुआ था, वह पंडित बद्रीनाथ शास्त्री का नाम तथा इस मजेदार किस्से को सुनकर दूर हो गया।

श्यामनाथ ने हिंदी मे उमानाथ से वे सब बातें बतला दीं, जो उसमे और दयानाथ में हुई थीं, "अब क्या हो ?" उमानाथ ने पूछा।

"क्या बतलाऊँ ? कुछ समझ में नहीं आता !"

"मैं एक बात कहूँ ! अगर आप ठीक समझें तो मैं कानपुर मे उस समय तक यहीं रहूँ, जब तक बड़के भइया जेल मे हैं। अगर भौजीजी हमारे यहाँ नहीं जातीं तो हम लोग तो यहाँ आ सकते हैं। इससे हमारा मतलब पूरा हो जायगा और बड़के भइया की जिद भी रह जायगी।"

श्यामनाथ कुर्सी से उछल पड़े। "ठीक, उमा! यह बात तो हम लोगों को सूझी तक नहीं थी! मैं जान गया कि विलायत हो आने से [आ]दमी की अक्ल जरूर बढ़ जाती है। तो तुम यहाँ रहने को तैयार हो न! [अ]च्छा, चलो, आज ही मैं लड़के भइया से सब कुछ तै कर लूँगा।"

"काका—मेरा बानापुर जाना बेकार है, आप खुद ददुआ से सब कुछ ठीक कर लीजिएगा। हाँ, आप वहाँ से मेरा असबाब भिजवा दीजिएगा। आप जानते ही हैं कि मेरे जाने से भौजीजी यहाँ अकेली रह जायँगी।"

"हाँ, उमा—यह तुमने ठीक कहा। अच्छा, तो मैं कल सुबह बानापुर जाऊँगा। अभी मैं फतहपुर जा रहा हूँ। रात के समय लौट आऊँगा।"

शाम के समय उमानाथ मार्कंडेय के मकान पर पहुँचा। पंडित झगड़ू मिश्र बरामदे में बैठे पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे और भीतर मार्कंडेय कानपुर के कांग्रेसवालों के साथ बातचीत कर रहा था। मार्कंडेय की बातचीत में बाधा डालना उमानाथ ने उचित नहीं समझा, वह सीधे झगड़ू के पास पहुँचा। झगड़ू उमानाथ को देखते ही उठ खड़े हुए, "तुम अच्छे आय गए मझले कुँवर! पुलिस तो अबहीं तक नहीं आई। बैठो। आवत होई।"

उमानाथ मुसकराया। सड़क पर एकत्रित भीड़ को, जो मार्कंडेय की गिरफ्तारी पर उसे विदा देने के लिए एकत्रित हो रही थी, देखते हुए उसने कहा, "झगड़ू काका! अगर पुलिस इस समय मार्कंडेय भइया को गिरफ्तार करने आती है तो मैं समझूँगा कि पुलिस वाले बहुत बड़े मूर्ख हैं। और इसलिए मैं तो चलूँगा, क्योंकि मुझे जरूरी काम है। वापसी में अगर हो सका तो आऊँगा।"

ठीक सात बजे उमानाथ कामरेड मारीसन के होटल में पहुँचा। ब्रह्मदत्त और कामरेड मारीसन दोनों चुप बैठे उमानाथ का इंतजार कर रहे थे। कामरेड मारीसन ने उमानाथ के कान में कहा, "कामरेड उमानाथ, मैं तो उस आदमी के साथ बैठने में घबराता हूँ, तुम्हीं इसे सँभालो!"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं अभी निपटता हूँ!" और यह कहकर वह ब्रह्मदत्त की ओर घूमा।

उसने बातें आरम्भ की, "कहिए, श्रीयुत ब्रह्मदत्त! आप यहाँ क्या कर र[हे] हैं?"

"मैं मजदूर-सभा का सेक्रेटरी हूँ। कांग्रेस की वार-कौंसिल का मेम्बर [भी] हूँ।"

"मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मजदूरों ने आपको अपना सेक्रेटरी क्यों ब[ना] लिया और कांग्रेसवालों ने आपको वार-कौंसिल में क्यों शामिल कर लिया और, जाने दीजिए इस बात को। अब आप बतलाइए कि अगर आप इस स[मय] मजदूरों से हड़ताल करने को कहेंगे तो क्या वे राजी हो जायँगे?"

"इसमें क्या शक है?" ब्रह्मदत्त ने तपाक के साथ कहा, "जहाँ उन्हें [बत]लाया गया कि हड़ताल करने से उनकी तनख्वाहें बढ़ जायँगी, वहीं वे

हो जायँगे।"

"और मान लीजिए कि मजदूरों ने हड़ताल कर दी, और मिल-मालिकों ने भी उनसे लड़ने की ठान ली, तो ये मजदूर कितने दिन तक बेकार बैठे रह सकेंगे?"

इस पहलू पर ब्रह्मदत्त ने विचार न किया था, क्योंकि विचार करने की उसने जरूरत न समझी थी। प्रत्येक हिंदुस्तानी की भाँति वह भविष्य को भगवान् के हाथ में छोड़ देने पर विश्वास करता था। इस प्रश्न को सुनकर वह गड़बड़ाया, "इसका जवाब तो मैं अभी नहीं दे सकता। दो-एक दिन में सब बातें दरियाफ़्त करके और हिसाब लगाकर बतला सकूँगा।"

"खैर, जाने दीजिए इस बात को! हाँ, अब दूसरा सवाल यह है कि क्या मजदूर-सभा का कोई फंड है और अगर है तो उसमें कितना रुपया है?"

"जी···फंड तो है, लेकिन उसमें रुपया नहीं के बराबर है। देखिए, मजदूर बिचारे दे ही क्या सकते हैं, और जो कुछ भी हम इकट्ठा कर पाते हैं, वह कार्यकर्ताओं के वेतन, मार्ग-व्यय तथा अन्य ऐसी चीजों पर खर्च हो जाता है।"

उमानाथ का स्वर कड़ा हो गया, "फिर आप हड़ताल किस बिरते पर चलाना चाहते हैं?"

"जी···पब्लिक से चंदा माँगकर हम मजदूरों को महीना-पंद्रह दिन खिला सकते हैं।"

"और इस पब्लिक के चंदे में आपको कितना हिस्सा मिलेगा?" उमानाथ ने बड़ी गंभीरतापूर्वक प्रश्न किया।

"मैं समझा नहीं! क्या आपका मतलब है कि मैं मजदूरों के चंदे में से रुपया हड़प कर जाता हूँ!" ब्रह्मदत्त ने तनिक उत्तेजित होकर कहा।

"आप बिलकुल ठीक समझे! और इसमें मुझे तब कोई एतराज नहीं, जब तक आप यह चंदा अमीरों से वसूल करते हैं और अपना हिस्सा खर्च कर डालते हैं, यानी उस रुपये से जमीन-जायदाद खरीदकर खुद पूँजीपति नहीं बनते। लेकिन ब्रह्मदत्त जी, इस समय जब कांग्रेस की लड़ाई जोरों के साथ चल रही है, लोगों की आँखें इस लड़ाई की ओर लगी हैं, इस समय आपको ओर कोई मुखातिब न होगा, आपको कोई रुपया न देगा—इतना आप यकीन रखें। ये चंदा देनेवाले इस समय कांग्रेस को चंदा दे रहे हैं। आपने गलत मौका चुना है।"

"क्या आपने मेरा अपमान कराने के लिए मुझे यहाँ बुलाया है!" ब्रह्म॰ ने कामरेड मारीसन की ओर मुड़कर कहा।

कामरेड मारीसन शांत-भाव से बैठे हुए इन दोनों को देख रहे थे और ले रहे थे। उन्होंने कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा।

कामरेड मारीसन के उस मौन से उत्तेजित होकर ब्रह्मदत्त ने फिर कहा, "लोग परले सिरे के धूर्त और स्वार्थी हैं। एक भले आदमी को अपने घर में

आप इसका अपमान करते हैं।" और वह उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़कर उसे बिठलाते हुए कहा, "कामरेड ब्रह्मदत्त! इस तरह नाराज नहीं हुआ जाता; काम की बातचीत में सभी कुछ सुनना पड़ता है। और जिन बातों के सच होते हुए भी आप उन पर बुरा मान रहे हैं, मैं उन्हें कोई ऐसी बुरी भी नहीं समझता। फर्क इतना है कि मैं कुछ चुराता-छिपाता नहीं, क्योंकि मैं जो कुछ करता हूँ वह विश्वास के साथ, और साथ ही साफ और खरी कहता हूँ।"

ब्रह्मदत्त ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक कोई बात नहीं हुई। उमानाथ ने उठते हुए कामरेड मारीसन से कहा, "कामरेड, अब कल मिलूँगा; अभी मैं मिस्टर ब्रह्मदत्त के साथ जरा शहर घूमने जा रहा हूँ। रास्ते में और भी बातें होंगी।"

आठ बज चुके थे। ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ एक अंग्रेजी होटल में पहुँचा। उमानाथ ने दो पैग ह्विस्की का ऑर्डर दिया। ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं तो नहीं पीता!"

"अकेले या सबके सामने?"

"जी···वैसे तो इसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन महात्मा गांधी ने इस पर धरना बिठला दिया है और मैं उन लोगों में हूँ, जो शराब पर धरने को चला रहे हैं।"

"छोड़ो भी—यहाँ तो आपको देखने वाला कोई नहीं है—हाँ, अपनी गांधी टोपी उतार डालिए!" और उमानाथ ने स्वयं अपने हाथ से ब्रह्मदत्त की टोपी उतारकर जेब में रख ली।

बैरा दो गिलासों में सोडा और ह्विस्की दे गया। पीते हुए उमानाथ ने पूछा, "अच्छा ब्रह्मदत्तजी, एक बात बतलाइए। अगर ये मजदूर हड़ताल करने के साथ-साथ सत्याग्रह भी आरंभ कर दें तो कैसा रहे!"

"किसके खिलाफ? सरकार के खिलाफ या मिल-मालिकों के खिलाफ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"आप किसके खिलाफ चाहते हैं? दोनों ही बदमाश हैं, किस बदमाश को आप पछाड़ना चाहेंगे?" उमानाथ ने कहा।

ब्रह्मदत्त थोड़ी देर तक चुपचाप उमानाथ की बात को समझने की कोशिश करता रहा, पर बात उसकी समझ में नहीं आई, "लेकिन हड़ताल तो मिल-मालिकों के खिलाफ होगी; ऐसी हालत में सत्याग्रह किस तरह सरकार के खिलाफ चल सकता है? अगर सत्याग्रह हो सकता है, तो मिल-मालिकों के खिलाफ!"

"हाँ, यह तो आपने ठीक कहा। लेकिन मान लीजिए कि इस वक्त मिल-मालिक सरकार के साथ मिल जायें और कांग्रेस का साथ छोड़ दें तो क्या होगा? बीच में मजदूरों का सवाल उठाकर क्या हम इस स्वाधीनता की लड़ाई में बाधा

नहीं डालेंगे ? इसके अलावा मजदूर एक तरफ से सरकार की हमदर्दी खो देंगे, दूसरी तरफ़ से जनता की।"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "आप अभी-अभी बाहर से लौटे हैं और चीजों को ठीक तौर से नहीं समझ पा रहे हैं। आप जरा गौर करें कि यह कांग्रेस का मूवमेंट है क्या? आप कहेंगे कि यह कांग्रेस और सरकार के बीच एक लड़ाई है। फिर एक सवाल और उठेगा—यह कांग्रेस क्या बला है ? आप कहेंगे कि कांग्रेस हिंदुस्तान की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली एक संस्था है। मैं मान गया (लेकिन मैं पूछता हूँ कि देश की स्वाधीनता के लिए लड़ कौन रहा है ? ये किसान—निरक्षर और मूर्ख ! भला ये क्या लड़ सकते हैं ? ये तो यह भी नहीं जानते कि स्वाधीनता है क्या चीज़ ! फिर जहाँ तक जमींदारी का सवाल है, यह लड़ाई उनके खिलाफ पड़ती है, क्योंकि हिंदुस्तान की आजादी के अर्थ होंगे जमींदारी-प्रथा का अंत हो जाना। तो बाकी रह गए हमारे देश के व्यापारी। यहाँ यह समझ लेना पड़ेगा कि इंग्लैंड व्यापारिक देश है, और हिंदुस्तान की गुलामी बहुत बड़े अंश में मुख्यतः व्यापारिक तथा आर्थिक गुलामी है। इंग्लैंड की व्यापारिक नीति के कारण हिंदुस्तान के व्यापार को तथा व्यापारियों को बहुत बड़ा धक्का लगता है। तो कामरेड, हमारे देश के व्यापारी ही अपने हित के लिए स्वतंत्रता पाना चाहते हैं और इसलिए ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं। यह व्यापारी कभी भी सरकार का साथ न देंगे। यह याद रखिएगा कि कांग्रेस व्यापारी की, पूँजीपतियों की संस्था है। इस समय पूँजीपति बड़ी आसानी से दबाए जा सकते हैं।")

उमानाथ ने दूसरा पेग मँगवाया, ब्रह्मदत्त ने दूसरा पेग लेने से इनकार कर दिया। थोड़ी देर तक उमानाथ आश्चर्य से ब्रह्मदत्त को देखता रहा, इसके बाद उसने ब्रह्मदत्त के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "यार, आदमी तुम इतने गावदी नहीं हो, जितना मैंने तुम्हें समझ रखा था। लेकिन तुम्हारे लाख समझाने पर भी मेरी तबीयत नहीं होती कि मैं हड़ताल करवाऊँ। बुरा न मानना, मैं समझता हूँ कि जब दो बदमाशों की लड़ाई हो रही हो, तब छोटे बदमाश के साथ मिलकर बड़े बदमाश को खत्म कर देना चाहिए। छोटे बदमाश को तो किसी भी समय आसानी के साथ समझा जा सकता है।"

"जी ! मैंने तो एक सलाह भर दी, यह जरूरी नहीं है कि आप उसे मान ही लें।"

इस समय तक उमानाथ ने दूसरा पेग भी खत्म कर दिया। उठते हुए उसने कहा, "तो फिर अब घर चला जाय, कामरेड ! तुम अच्छे मिल गए। और अब मैं तुम्हें अपना परिचय भी दे दूँ ! तुम दयानाथ तिवारी को तो अच्छी तरह जानते होगे ?"

"अरे ! तो आप उनके भाई तो नहीं हैं !" ब्रह्मदत्त ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा।

"हाँ, मैं उनका भाई हूँ, और अभी दो-चार दिन हुए विलायत

आया हूँ। उन्हीं के बँगले में ठहरा हूँ और रहूँगा भी यहीं। तो कल सुबह आना, जलपान मेरे ही यहाँ आकर करना।"

७

उमानाथ अपनी भावज के पास सुबह पहुँचा, "तो भौजीजी! मैंने यह तै किया है कि जब तक बड़के भइया जेल में हैं, तब तक मैं यहाँ कानपुर में और इसी मकान में ही रहूँ। आपकी क्या राय है?"

राजेश्वरी ने उत्सुकता से उमानाथ को देखा, "इसकी क्या जरूरत थी, मंझले बाबू! खैर, जैसी आपकी मर्जी। लेकिन आप अभी-अभी विलायत से आए हैं; मंझली दुलहिन को भी लेते आइए न!"

उमानाथ ने बात टालते हुए कहा, "खैर, इस पर फिर सोचूंगा, अभी तो मैं सिर्फ आपसे यह बात कहने आया था।" और इस खयाल से कि कहीं बात अधिक न बढ़े, उमानाथ बाहर चला गया।

ठीक सात बजे पंडित ब्रह्मदत्त दयानाथ के बँगले में दाखिल हुए। उमानाथ ने उठकर ब्रह्मदत्त का स्वागत किया, और फिर दोनों कामरेड चाय और नाश्ते पर जुट गए। चाय समाप्त करके ब्रह्मदत्त ने संतोष की गहरी डकार ली। उन्होंने कहा, "कामरेड! आज सुबह चार बजे कानपुर के पाँचवें डिक्टेटर श्रीयुत मार्कंडेय मिश्र गिरफ्तार हो गए।—नगर में इस समय···" उमानाथ ने ब्रह्मदत्त की बात बीच में ही काटते हुए कहा, "क्या कहा, मार्कंडेय भइया गिरफ्तार हो गए—चार बजे सुबह!"

"जी हाँ! आप शायद उन्हें जानते होंगे। दयानाथजी के घनिष्ठ मित्र थे; शायद एक ही गांव के रहने वाले हैं। तो छठे डिक्टेटर की नियुक्ति का सवाल है।"

"हूँ!" उमानाथ ने केवल इतना कहा; वह उस समय झगड़ू के संबंध में सोच रहा था।

"कामरेड—सुन रहे हो, छठा डिक्टेटर बनने को मुझसे कहा जा रहा है।"

"तो तुमने क्या तय किया?" उमानाथ ब्रह्मदत्त की तरफ मुखातिब हुआ।

"जाना तो पड़ेगा ही; यह सम्भव नहीं कि मैं इनकार कर दूं, यद्यपि जाने की इच्छा तो नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं पूंजीपतियों की तरफ से लड़ रहा हूँ। देखिए, मैं समाजवादी सबसे पहले हूँ, कांग्रेसमैन बाद में हूँ। ऐसी हालत में मैं तुम्हारी सलाह ले लेना चाहता हूँ।"

उमानाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "मेरा ऐसा खयाल है कामरेड, कि तुम्हें जाना ही चाहिए। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि अपना नंबर छठे से सातवाँ करा लो।"

"यह तो मुश्किल काम है। एक दिन के लिए भी टालने से लोग मुझे कायर समझने लगेंगे, और बेकार ही कायर समझा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। अगर

एकदम कांग्रेस की नाता को ही छोड़ देना पड़े तो मैं इसे उचित
समझूँगा, लेकिन ऐसी हालत मे मुझे कोई जबरदस्त लेवर मूवमेंट
अपने हाथ में उठा लेना पड़ेगा। अगर मैं यों ही टालता हूँ, तो यह बेजा बात
होगी।"

"हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन अभी कोई लेवर मूवमेंट उठाना मैं उचित नहीं समझता, साथ ही मैं इस बात पर भी जोर दूँगा कि इतना आगे बढ़कर पीछे हटने से तुम्हारी और हमारे दल की बदनामी होगी। लेकिन मैं चाहता हूँ कि अभी दो-चार दिन तुम जेल न जाओ। अच्छा, एक काम करो।"

"वह क्या ?"

"आज तुम्हें एक सौ पाँच डिग्री बुखार आना चाहिए, क्योंकि डिक्टेटर की नियुक्ति आज ही हो जायगी न ! और कल सुबह अच्छे होकर तुम मुझे मिल-एरिया में घुमाना शुरू कर दो। मेरा खयाल है कि तीन-चार दिन में यह काम हो जायगा, फिर तुम बड़े मजे में जेल जा सकते हो।"

"लेकिन अगर कांग्रेसवाले जान गए कि मैंने सिर्फ बहाना किया है ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"इसकी जिम्मेदारी मुझ पर ! मजाल है कि उन्हें शक होने पाए !"

"जैसा तुम ठीक समझो कामरेड, मैं तुम्हारे ही ऊपर सब कुछ छोड़े देता हूँ।"

उमानाथ ने उसी समय टेलीफोन उठाया। उसने स्थानीय दैनिक पत्र प्रताप और वर्तमान में सूचनाएँ भेज दीं—ब्रह्मदत्तजी को १०५ डिग्री बुखार आ गया।

दोनों पत्रों के प्रतिनिधि यह सूचना मिलते ही दयानाथ के बंगले में आ गए। इस बीच में उमानाथ ने ब्रह्मदत्त को सोफा पर लिटा दिया था। संवाददाताओं के आने की सूचना मिलते ही उमानाथ ने ब्रह्मदत्त पर एक कम्बल डाल दिया और बिजली का पंखा बंद कर दिया। दोनों संवाददाता कमरे में आ गए और आते ही उन्होंने ब्रह्मदत्त की खैर-कुशल की पूछताछ आरंभ कर दी।

प्रतिनिधि प्रताप—'बुखार कब चढ़ा ?'
प्रतिनिधि वर्तमान—'बुखार कैसे चढ़ा ?'
प्रतिनिधि प्रताप—'बुखार क्यों चढ़ा ?'
प्रतिनिधि वर्तमान—'बुखार कहाँ चढ़ा ?'

दोनों संवाददाता कागज-पेंसिल लिए तैयार बैठे थे। कम्बल के नीचे से पंडित ब्रह्मदत्त कराह रहे थे और उमानाथ चिंतित तथा मौन कमरे में टहल रहा था। उमानाथ ने ब्रह्मदत्त के पास जाकर उसे थोड़ा-सा पानी पिलाया, फिर वह इन संवाददाताओं की ओर मुखातिब हुआ, "बुखार आज अभी एक घंटा पहले चढ़ा, जाड़ा देकर चढ़ा, मलेरिया के जर्म इनके शरीर में प्रवेश कर गए थे, इसलिए चढ़ा और मेरे इसी कमरे में चढ़ा।"

दोनों रिपोर्टरों ने उमानाथ का बयान दर्ज कर लिया।

उमानाथ ने फिर कहा, "पंडित मार्कंडेय मिश्र की गिरफ्तारी के बाद

डिक्टेटरशिप के लिए ब्रह्मदत्तजी का नम्बर आना चाहिए। जब से इनको बुखार चढ़ा है, तब से ये बहुत चिंतित और उद्विग्न हो गए हैं। बीच-बीच में ये चिल्ला उठते हैं कि मुझे कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में ले चलो, मुझे चार्ज लेना है!"

और उसी समय ब्रह्मदत्त चिल्लाया, "मुझे कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में ले चलो!"

"देखा आपने!" इस प्रत्यक्ष प्रमाण का उल्लेख करते हुए उमानाथ ने कहा, "और मैं इस बात पर जोर दूंगा कि जब तक ये अच्छे न हो जायें, तब तक इन्हें जरा भी काम न करना चाहिए। मैंने यह तै कर लिया है कि तीन दिन तक मैं इन्हें इसी मकान में जबर्दस्ती रखूंगा और इन्हें किसी से न मिलने दूंगा। इनकी हालत इतनी खराब है कि जरा-सी हलचल से भी इनका प्राणांत हो सकता है। एक सौ पांच डिग्री बुखार कम नहीं होता। और जब आदमी बकने लगे, जैसा ब्रह्मदत्तजी कर रहे हैं तब तो हालत और भी खराब समझिए!"

उमानाथ वक्तव्य दे रहा था, दोनों रिपोर्टर तेजी के साथ लिख रहे थे, और ब्रह्मदत्त पसीने से लथपथ था। सब कुछ लिखकर रिपोर्टर ने कहा, "अच्छा, तो अब आप हमें आज्ञा दीजिए! आपने कांग्रेस कमेटी में तो इत्तला कर ही दी होगी।"

"अरे! यह तो मैं भूल ही गया। अगर आप लोगों को कोई विशेष कष्ट न हो तो आप लोग स्वयं इत्तला कर दें। इनकी हालत तो आप लोगों ने देख ही ली है। हां! आप लोगों ने जलपान तो न किया होगा!"

"ही-ही!—आपकी कृपा बनी रहे, जलपान की ऐसी कोई बात नहीं। हम लोग इत्तला कर देंगे।" दोनों रिपोर्टरों ने एक साथ उठते हुए कहा।

"अजी, वाह! अतिथि बिना जलपान किये चला जाय—भला यह कहीं हो सकता है!" हाथ पकड़कर उमानाथ ने दोनों रिपोर्टरों को बिठला लिया। नौकर कोई पास न था, इसलिए वह स्वयं जलपान का प्रबन्ध करवाने भीतर चला गया।

दोनों रिपोर्टरों ने आपस में बातचीत शुरू की।

प्रतिनिधि प्रताप—"यही दयानाथजी के छोटे भाई उमानाथजी हैं; जर्मनी से पढ़कर लौटे हैं।"

प्रतिनिधि वर्तमान—"बड़े सीधे आदमी मालूम होते हैं और साथ ही बड़े खातिरदार हैं।"

प्रतिनिधि प्रताप—"दुनिया घूमे हैं, घाट-घाट का पानी पिए हैं। जानते हैं कि आदमी की किस तरह इज्जत की जाय; कोई बनिया-बक्काल थोड़े ही है!"

प्रतिनिधि वर्तमान—"इसमें क्या शक है! ताल्लुकेदार के लड़के हैं, दिल है और हिम्मत है! देखा पंडित ब्रह्मदत्त की कैसी सेवा-सुश्रूषा कर रहे हैं!"

उधर ये दोनों संवाददातागण उमानाथ तिवारी का गुणगान कर रहे थे, इधर

पंडित ब्रह्मदत्त के बुरे हाल थे। 'गरमी में कम्बल ओढ़कर लेटना आसान काम नहीं है !' इस विषय पर वे उमानाथ से विवाद करने को छटपटा रहे थे। उनका सारा शरीर पसीने से भीगा हुआ था।

उमानाथ के पीछे-पीछे नौकर दो तश्तरियों मे मिठाई और नमकीन लिए हुए आया। दोनों संवाददाता जलपान पर जुट गए। उमानाथ अपनी सफलता पर मुसकरा रहा था।

जलपान करके दोनों संवाददाताओं ने संतोष की डकार ली। इसके बाद दोनों ने उमानाथ की खुशामद करना आरंभ कर दिया।

ब्रह्मदत्त अब निराश हो गया। अभी तक तो समझता था कि ये दोनों महानुभाव काम हो जाने पर चले जायंगे और इसी आशा से वह करीब एक घंटा उस मड़ी गरमी मे कम्बल ओढ़े लेटा रहा, लेकिन अब उसका धैर्य जाता रहा। उसकी झुंझलाहट क्रोध में बदल गई और अपने ऊपर से कम्बल फेंककर वह उठ बैठा। चिल्लाकर उसने कहा, "ये दोनों बदमाश अभी कितनी देर यहां बैठेंगे ? ये जाते हैं या मुझे उठकर इन्हें निकालना पड़ेगा !"

उमानाथ हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ, दोनों रिपोर्टर उसके साथ हो लिए। जरा गंभीर मुख बनाकर और आंख मारकर ब्रह्मदत्त को मौन रहने का आदेश देते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ा और उन दोनों रिपोर्टरों ने भी उनका हाथ पकड़ा। हाथ एकदम ठंडा था। प्रताप के संवाददाता ने कहा, "बुखार अब जरा भी नहीं है—भगवान् को धन्यवाद !" वर्तमान के संवाददाता ने कहा, "देखते नहीं कितना पसीना आया है—बुखार उतर गया। अब ब्रह्मदत्तजी डिक्टेटर बन सकेंगे।"

लेकिन उमानाथ जोर से चिल्ला उठा, "अरे बुखार एकबारगी उतर गया, पसीना छूट रहा है ! इस पर ये प्रलाप कर रहे हैं। सन्निपात की हालत मालूम होती है।"

सन्निपात का नाम सुनते ही दोनों रिपोर्टरों की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। उन दोनों मे कोई भी ब्रह्मदत्त की अर्थी के साथ जाने को तैयार होकर न आया था। प्रताप के संवाददाता ने कहा, "आप फोन करके जल्दी ही किसी डाक्टर को बुलाइए। मैं अभी जाकर 'प्रताप' मे यह सूचना दिए देता हूं !"

"और मैं कांग्रेस-कमेटी मे यह सूचना दे दूंगा, आप निश्चित रहिएगा !" वर्तमान के संवाददाता ने कहा।

दोनों प्रतिनिधिगण ब्रह्मदत्त पर दूसरी नजर डाले बिना ही वहां से रवाना हो गए।

नवाँ परिच्छेद

शाम के समय पंडित श्यामनाथ तिवारी के साथ ानाथ का सामान ही नहीं आया, बल्कि उसकी पत्नी हालक्ष्मी भी अपने तीन वर्ष के सुपुत्र सुरेश के साथ । गई। राजेश्वरीदेवी ने अपनी देवरानी का स्वागत कया और राजेश-ब्रजेश ने सुरेश का। जिस समय हालक्ष्मी कानपुर आई, उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ शहर में चक्कर लगा रहा था।

सब लोगों को घर के अंदर पहुँचाकर तथा असबाब को ठीक तरह से रखवा-कर पंडित श्यामनाथ तिवारी ने संतोष की एक गहरी साँस ली। बाहर ही लान पर कुर्सी निकलवाकर वे बैठ गए और उमानाथ का इंतजार करने लगे। नौकर से उन्होंने कह दिया कि वे चाय उमानाथ के साथ पिएँगे।

इधर दोपहर भर बिजली के पंखे की हवा के नीचे आराम से सोने के बाद शाम के समय ब्रह्मदत्त की आँख खुली। उसने अपने चारों ओर देखा, कमरे में अंधेरा हो गया था। वह बाहर निकला और उमानाथ की प्रतीक्षा में लान पर टहलने लगा।

पंडित श्यामनाथ तिवारी गौर से ब्रह्मदत्त को देख रहे थे। अब उनसे न रहा गया, ब्रह्मदत्त को बुलाकर उन्होंने पूछा, "कहिए, किसकी तलाश में आप हैं?"

"जी! मैं पंडित उमानाथ तिवारी का इंतजार कर रहा हूँ।"

"आपका नाम?" श्यामनाथ ने ब्रह्मदत्त के खद्दर के कपड़ों को देखते हुए फिर पूछा।

"मेरा नाम ब्रह्मदत्त है और मैं लेबर-लीडर हूँ!"

"हूँ!" श्यामनाथ ने कहा, "तो आपकी उमानाथ से दोस्ती है और आप उसका इंतजार कर रहे हैं! कब से?"

"मैं यहाँ सुबह से ही हूँ! आप जानते ही हैं, गरमी के दिन हैं, मैं जरा लेट तो आँख लग गई, और इस बीच में मुझे सोता छोड़कर वे कहीं चल दिए।"

इतने में एक कार पोर्टिको के नीचे रुकी। उस कार से कामरेड मारीस के साथ उमानाथ उतरा। श्यामनाथ के पास ब्रह्मदत्त को बैठा देखकर उमान को कुछ घबराहट हुई। वह सीधे ब्रह्मदत्त के पास पहुँचा, कामरेड मारी उसके पीछे-पीछे थे। बात बनाते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त से कहा, "तो ब्रह्मद जी, आपको बड़ी तकलीफ हुई। अब हम लोग आ गए हैं; बड़के भइया ने इस की देख-भाल करने का भार जो आपको सौंपा था, उससे आप मुक्त हो ग हाँ, आपने चाय तो पी ली?"

ब्रह्मदत्त की समझ में उमानाथ की बात आ गई थी; उसने भी तपा साथ कहा, "कोई बात नहीं, उमानाथजी—तकलीफ क्या, अपने मित्र की की सेवा तो मेरे लिए गौरव की बात थी। रही चाय की बात, सो मैंने नही

मैं आपका इंतजार कर रहा था। लेकिन चाय पीने की ऐसी कोई खास इच्छा नहीं है, आप मुझे आज्ञा दीजिए!"

"वाह, बिना चाय पिए आप कैसे जा सकते हैं! ये मेरे काका पंडित श्यामनाथ तिवारी—फतेहपुर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट हैं, और आप श्री ब्रह्मदत्त—कांग्रेस के बहुत बड़े नेता हैं, साथ ही बड़के भइया के खास दोस्त!"

चाय का हुक्म देकर उमानाथ श्यामनाथ की ओर घूमा, "तो काका, आप बड़ी जल्दी लौट आए! मेरा सामान तो आ गया होगा!"

"हाँ, सब सामान आ गया!" मुसकराते हुए श्यामनाथ ने कहा; और इसी समय राजेश और ब्रजेश के साथ खेलता हुआ सुरेश भी घर से बाहर निकल आया। सुरेश को देखते ही उमानाथ चौंक उठा, "अरे, सुरेश यहाँ कैसे? क्या आप इन लोगों को भी लेते आए हैं?"

"क्या करता? तुम्हीं बतलाओ! मझली बहू बुरी तरह मेरे पीछे पड़ गई। बड़के भइया तो भेजने को तैयार न थे, लेकिन उमा!" श्यामनाथ तिवारी ने [illegible]

[illegible]

[illegible]

ऐसी-ऐसी सुनाई कि उन्हें भी याद होगा। जबरदस्ती मैं मझली बहू को लिवा लाया।"

लेकिन उमानाथ के मुख पर प्रसन्नता आने के स्थान पर विषाद की एक रेखा घिर आई।

"क्यों, क्या बात है? तुम एकाएक उदास क्यों हो गए?" श्यामनाथ ने पूछा।

"यों ही, कोई खास बात नहीं है। काका, असल में मेरा यहाँ पर मन नहीं लगता, लाख कोशिश करने पर भी! विलायत की स्वच्छंद और चहल-पहल से भरी जिंदगी के बाद हिंदुस्तान कुछ अजीब तरह से सूना लगने लग गया है!"

श्यामनाथ जोर से हँस पड़े, "ओह! समझ गया! लेकिन उमा, तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम हिंदुस्तानी हो, और साथ ही हिंदुस्तान की एक सभ्यता है, एक संस्कृति है जो निजी विशेषता रखती है!"

उमानाथ ने श्यामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया; उसका मन भारी था।

श्यामनाथ बातें करने के मूड में थे, वे कामरेड मारीसन की ओर घूम पड़े, "कहिए, पंडित बद्रीनाथ शास्त्री से आपकी बातचीत हुई?"

लेकिन कामरेड मारीसन बद्रीनाथ शास्त्री को न जाने कब से भूल चुके थे। आश्चर्य से उन्होंने कहा, "कौन बद्रीनाथ शास्त्री? इस नाम के तो किसी भी आदमी को मैं नहीं जानता!"

इस बार श्यामनाथ तिवारी को कामरेड मारीसन को आश्[illegible] देखने

की बारी थी। उमानाथ ने अब हस्तक्षेप करना अपना कर्तव्य समझा, "मिस्टर मारीसन ! इतनी जल्दी आप भूल गए ! अरे, वही पंडित जिससे आपने वेदों पर बातचीत की थी !"

"वेद !" कामरेड मारीसन अजीब उलझन में थे, लेकिन एकाएक उन्हें उस दिन की बातचीत याद हो आई, "ओह ! याद आ गया। जी हाँ, उन्होंने मुझे कई खास बातें बतलाईं और मैंने उन्हें नोट कर लिया।"

२

चाय पीकर पंडित ब्रह्मदत्त दूसरे दिन सुबह आने का वादा करके चले गए ! पंडित श्यामनाथ तिवारी को फतेहपुर जाना था, उनका काम पूरा हो गया था।

श्यामनाथ के जाने के बाद दोनों कामरेड रह गए। तब तक राजेश ने आकर उमानाथ से कहा "काका ! आपको अम्मा ने बुलाया है।"

उमानाथ उठ खड़ा हुआ। वह अनुमान कर सकता था कि उसे क्यों बुलाया गया है। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मैं अभी आता हूँ।" और वह अंदर चला गया।

उमानाथ को देखते ही राजेश्वरीदेवी ने व्यंग्य कसा, "क्यों बाबूजी ! बिचारी दुलहिन कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, और तुम्हें जरा भी चिंता नहीं ! जाओ, उससे मिल तो लो !"

उमानाथ कमरे में गया, महालक्ष्मी सिर झुकाए हुए बैठी थी। वह उस समय शायद रो रही थी। उमानाथ के पैरों की आहट पाते ही उसने अपने आँचल से आँखें पोंछ डालीं और उसने दरवाजे की ओर देखा। वह उठ खड़ी हुई; पर वह आगे नहीं बढ़ी—वह प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी उसके पास आएँ, उसे आलिंगन-पाश में कस लें, उसका चुंबन करें; और वह अपने आराध्य देव के कंधे पर अपना सिर रखकर रोए—खूब जी भरकर रोए !

लेकिन उमानाथ ने यह कुछ न किया, वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। उसने कुछ मुलायम स्वर में कहा, "तुम्हारे यहाँ आने की कोई खास जरूरत तो नहीं थी; लेकिन आ गईं तो अच्छा ही किया।"

महालक्ष्मी अपने स्वामी का स्वर पहचान नहीं सकी। जो बात उसने सुनी उससे वह काँप उठी; भरे हुए गले से उसने कहा, "नाथ, मुझसे कौन-सा अपराध हो गया ?" और वह अपने को न रोक सकी। बेतहाशा दौड़कर वह गिर पड़ी और उमानाथ के पैरों से लिपट गई।

महालक्ष्मी के इस व्यवहार के लिए उमानाथ तैयार न था, वह सकपका गया। उसने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी को अपने पैरों से छुड़ाया। उसने केवल इतना कहा, "बैठो और अपना यह वहशियाना ढंग छोड़ो। तुम मेरी बराबरी की हो, तुम गुलाम नहीं हो, जो यह सब करो।"

महालक्ष्मी की समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा था। साथ ही उमानाथ का जी भी घबरा रहा था। उमानाथ उठ खड़ा हुआ, "मेरे एक दोस्त बाहर बैठे हैं—मुझे उनके पास जाना है। और हाँ—वे तुमसे परिचित होना चाहते हैं।"

"मुझसे!" आश्चर्यचकित होकर महालक्ष्मी ने पूछा।

"हाँ, मेरे दोस्त अंग्रेज हैं और तुम जानती हो कि अंग्रेजों में पर्दा-प्रथा नहीं है। यह पर्दा-प्रथा जंगलीपन है। तो तुम चल सकती हो?" उमानाथ ने कहा।

महालक्ष्मी ने दबे हुए स्वर में उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा न मानना मेरे लिए सबसे बड़ा पाप है। लेकिन बाहरी आदमी से मैं कभी मिली नहीं—और आपके दोस्त अंग्रेज हैं, उनके सामने जाने की मुझे हिम्मत नहीं पड़ती। मेरे होश-हवास सब जाते रहेंगे।"

"तुम कुछ बोलना नहीं, जल्दी ही चली आना!"

महालक्ष्मी उमानाथ के साथ चल दी। राजेश्वरीदेवी उस समय स्नान कर रही थीं। कामरेड मारीसन महालक्ष्मी को देखते ही उठ खड़े हुए। उमानाथ ने उनसे महालक्ष्मी का परिचय कराया।

कामरेड मारीसन ने हाथ बढ़ाते हुए अंग्रेजी में कहा, "आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।"

महालक्ष्मी कामरेड मारीसन की बात नहीं समझी, उसने नमस्कार करके ऊपर से आँख फेर लीं।

कामरेड ने अंग्रेजी में, फिर टूटी-फूटी हिंदी में लगातार पाँच-छः प्रश्न करके महालक्ष्मी को बुलवाना चाहा, लेकिन महालक्ष्मी मौन ही रही। महालक्ष्मी का संकट देखकर उमानाथ ने उससे हिंदी में कहा, "अच्छा, अब तुम जा सकती हो!"

महालक्ष्मी के प्राण में प्राण आए, तेजी के साथ वह अंदर चली गई।

महालक्ष्मी के जाने के बाद कुछ देर तक दोनों मौन रहे। उस मौन को कामरेड मारीसन ने तोड़ा, "ऐसी नेक, खूबसूरत और भोली औरत को छोड़कर तुमने हिल्डा से विवाह किया? मुझे ताज्जुब होता है, कामरेड!"

उमानाथ मुसकराया, "हाँ कामरेड, खुद मुझे भी कभी-कभी ताज्जुब होने लगता है, लेकिन फिर भी यह सत्य है कि उसके रहते हुए भी मैंने हिल्डा से विवाह किया। तुम कारण जानना चाहोगे! तो सुनो! पहले हमें विवाह का मतलब समझ लेना पड़ेगा। मेरे मन के अनुसार विवाह केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए नहीं है, विवाह स्त्री से गुलामी करवाने के लिए तथा उसकी सेवा के बदले में उसका भरण-पोषण करने के लिए भी नहीं है; विवाह को मतलब दो प्राणियों में अर्थात् स्त्री-पुरुष में, एक-दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति, पूर्ण सामंजस्य पूर्ण सहयोग है। और ये चीजें तभी संभव हैं जब स्त्री और पुरुष, दोनों ही

से विकसित और सुसंस्कृत हों।)

"अब हमें महालक्ष्मी और हिल्डा की एक-दूसरे से तुलना करनी पड़ेगी। महालक्ष्मी में सौंदर्य है, पर वह सौंदर्य एक मोम की मूर्ति वाला सौंदर्य है—स्पंदन-रहित, निष्प्राण! मैं मानता हूँ कि इसमें महालक्ष्मी का कोई दोष नहीं, हमारी सामाजिक परिपाटी उसके लिए उत्तरदायी है; पर यह मौजूद तो है, अपनी तमाम भयानकता के साथ। वह अभी तुम्हारे सामने आई, लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोली। उसके सौंदर्य पर मुझे गर्व नहीं हो सकता, उस निष्प्राण सौंदर्य से मुझे रुचि नहीं है। आज वाला मेरा जीवन मुझ तक या मेरे बीवी-बच्चों तक ही सीमित नहीं है—वह सामाजिक जीवन है।

"और रही हिल्डा, उसमें लोग शारीरिक सौंदर्य का कुछ अभाव पा सकते हैं, पर वह मेरे मित्रों को प्रसन्न कर सकती है, उनका स्वागत कर सकती है, उन्हें बातों में लुभा सकती है। वह अपने चारों ओर एक सजीव उल्लास का वातावरण बना सकती है, जो महालक्ष्मी नहीं कर सकती। महालक्ष्मी का अस्तित्व मेरे लिए—सिर्फ उस मेरे लिए है जो समाज से बहिष्कृत, अपनेपन में डूबा हुआ हो। आप इतना तो मानेंगे ही!"

मारीसन मुसकराया, "कहे जाओ—मैं समझ रहा हूँ!"

"अब मैं महालक्ष्मी के मेरे प्रति प्रेम की विवेचना करता हूँ। मेरे प्रति उसका प्रेम ठीक वैसा है, जैसा एक कुत्ते का प्रेम अपने स्वामी के प्रति हो सकता है। उस प्रेम में पूर्ण आत्म-समर्पण है और आत्म-समर्पण को मैं जीवनहीनता समझता हूँ। मुझे चाहिए अपनी पत्नी में एक व्यक्तित्व, उसके स्वतंत्र विचार; मेरे व्यक्तित्व का उसके व्यक्तित्व से तथा मेरे विचारों से उसके विचारों का अनवरत संघर्ष! संघर्ष ही जीवन है, कामरेड!"

मारीसन ने बातें तो गौर से सुनी, लेकिन शायद समझ वह कुछ भी नहीं सका। उसने उठते हुए कहा, "कामरेड उमानाथ, तुमने जो कुछ कहा, उसमें कहीं जबर्दस्त गलती है—अपने तजुर्बे से मैं इतना कह सकता हूँ, यद्यपि वह गलती मैं नहीं पकड़ सकता। लेकिन अब करोगे क्या?"

"यह तो मेरी समझ में भी नहीं आता। हिन्दू ला में तलाक है नहीं, यह एक और मुसीबत की बात है। कामरेड, मैं सच कहता हूँ कि महालक्ष्मी के सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। इतनी नेक, इतनी निरीह, इतनी भोली! मुझे उस पर दुःख होता है। वह अभी तक कुछ नहीं जानती—ये सब बात उससे कैसे कहूँ! लेकिन उसे बतलाना तो पड़ेगा ही!" और उमानाथ ने एक ठंडी साँस भरी।

२

रात में जब उमानाथ महालक्ष्मी के पास गया, उसका मन भारी था। आज उसे उस परिस्थिति का सामना करना था, जिसकी उसने एक हल्की सी कल्पना

तो कभी-कभी की थी, लेकिन जिसके असली रूप के प्रति उसने जबर्दस्ती अपनी आँखें बंद कर रखी थीं। बौद्धिक प्राणी का उसके भावनावाले प्राणी के साथ संघर्ष चल रहा था।

उमानाथ और महालक्ष्मी के पलंग अगल-बगल पड़े थे। महालक्ष्मी के पलंग पर सुरेश सो रहा था। उमानाथ चुप अपने पलंग पर लेट रहा। और उस समय महालक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश किया। वह उमानाथ के पलंग पर उसके सामने बैठ गई—शायद उमानाथ के पैर दबाने के लिए। उमानाथ ने अपने पैर हटा लिए और वह उठकर महालक्ष्मी के सामने बैठ गया। उसने आरंभ किया, "मुझे तुमसे एक खास बात कहनी है!"

जिस स्वर में उमानाथ ने यह बात कही थी, वह काँप रहा था, उसमें एक प्रकार का खोखलापन था, और महालक्ष्मी अपने पति के उस स्वर से परिचित न थी। महालक्ष्मी के दिल को एक ठेस-सी लगी। थोड़ी देर तक मौन अपने स्वामी की ओर देखकर उसने कहा, "कहिए!"

उमानाथ की समझ में न आ रहा था कि किस प्रकार वह बात आरंभ करे, "लेकिन तुम मुझे वचन दो कि यह बात तुम अपने ही तक रखोगी—किसी से इसका जिक्र न करोगी!"

"आप मेरी तरफ से निश्चिंत रहें! जो कुछ कहना हो कहिए!"

थोड़ी देर और चुप रहकर उमानाथ ने कहा, "देखो मैंने जर्मनी में दूसरा विवाह कर लिया है।" और वह जैसे महालक्ष्मी के मुख पर अंकित भावों को पढ़ने के लिए रुक गया।

महालक्ष्मी की नजर उमानाथ के मुख पर गड़ी थी। इस बात को सुनकर वह चौंकी नहीं, उसके मुख पर कोई शिकन नहीं आई—हाँ, उसका मुख थोड़ा-सा पीला अवश्य पड़ गया।

पर उमानाथ महालक्ष्मी के अंतर को न पढ़ सका। जो कुछ उमानाथ ने कहा था वह इतनी भयानक बात न थी कि उससे एकबारगी ही महालक्ष्मी के सारे अस्तित्व में निर्जीवता की जड़ता व्याप गई। ऊपर से सब कुछ वैसा-का-वैसा बना रहा, पर उसके अंतर में एक भयानक सूनेपन की निर्जीवता ने अधिकार जमा लिया; और उमानाथ उसके अंतर में जो कुछ हुआ, वह नहीं देख सका। उसने मन-ही-मन सोचा, "कैसी स्त्री है यह, जिसे मेरी इस बात से जरा भी सदमा नहीं हुआ।

उमानाथ ने फिर कहा, "और मैंने जिस स्त्री से विवाह किया है, उससे मैं प्रेम करता हूँ। ऐसी हालत में मैं तुम्हें धोखे में रखना उचित नहीं समझता।"

महालक्ष्मी उठ खड़ी हुई, मौन और आहत। उसके शरीर में मानो रक्त नहीं था, उसके प्राणों में चेतना नहीं थी; उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। बड़ी

मुश्किल से अपने पलंग तक गई, और वहाँ वह गिर पड़ी—बेहोश !

उमानाथ डर गया। महालक्ष्मी की इस मुद्रा को देखकर उसकी समझ में आया कि महालक्ष्मी को कितना बड़ा सदमा पहुँचा। उसने उठकर महालक्ष्मी को देखा, उसके शरीर को हिलाया-डुलाया। महालक्ष्मी ने आँखें खोल दीं और अपनी पथराई आँखों से उमानाथ को देखा। उमानाथ उसके सामने अपराधी की भाँति मौन खड़ा था। महालक्ष्मी ने उठने की कोशिश की, पर उससे उठा न गया। पट्टी पकड़ने के लिए उसने हाथ बढ़ाया ताकि वह उसके सहारे उठ सके—और उसका हाथ सोते हुए सुरेश पर पड़ा। एकाएक उसकी चेतना लौट आई; सुरेश को उसने जोर से अपने हृदय से लगा लिया। उमानाथ से उसने कहा, "आप अब सोइए—मैं अच्छी हूँ। और मैं किसी से कुछ न कहूँगी !" और उसने जोर से अपनी आँखें बंद कर लीं।

४

दूसरे दिन सुबह होते ही उमानाथ ब्रह्मदत्त और कामरेड मारीसन के साथ कानपुर के मिल-एरिया की तरफ निकल गया। वहाँ से वह कामरेड मारीसन के होटल गया।

ब्रह्मदत्त से उसने कहा, "कामरेड ब्रह्मदत्त ! बस इतना ही ! मैं तो कानपुर का मिल-एरिया बहुत बड़ा समझे था। मुझे अफसोस है कि मैंने तुम्हें जेल जाने से बेकार ही रोका।" और फिर रुककर उसने कहा, "यहाँ तो बहुत ज्यादा काम करने की जरूरत है !"

"जो कुछ है, वह मैंने आपको दिखला दिया। कहिए तो अन्य मजदूर-नेताओं से आपका परिचय करा दूं ?" ब्रह्मदत्त ने मुसकराते हुए कहा।

"नहीं-नहीं। इसकी कोई जरूरत नहीं। बात यह है कि मैं अभी कुछ दिन तक प्रकाश में नहीं आना चाहता। जब आप जेल से लौटिएगा, तभी मैं कानपुर में काम-काज आरम्भ करूँगा। तब तक मैं जरा बाहर का भी दौरा कर आऊँ। क्यों, कामरेड मारीसन ?"

"हाँ, मैं भी यही ठीक समझता हूँ।"

कुछ सोचकर उमानाथ ने फिर कहा, "मैं समझता हूँ कि मेरा कांग्रेस के नेताओं से मिल लेना उचित होगा। जो कुछ हिंदुस्तान में मैं देख रहा हूँ, उससे मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि हिंदुस्तान की सबसे जबर्दस्त संस्था कांग्रेस है। और ऐसी हालत में मुझे इस बात का पता लगा लेना जरूरी होगा कि हम दोनों के कार्यक्रम में कहाँ तक समानता है और कहाँ विषमता है; और कहाँ तक हम अपने कार्यक्रम में कांग्रेस के सहयोग का फायदा उठा सकते हैं।"

"इसमें क्या शक है ! और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि अगर हम लोग कांग्रेस के अंदर रहकर काम कर सकें तो यह ज्यादा अच्छा होगा। हम लोग कांग्रेस की एकत्रित शक्ति को धीरे-धीरे अपनी निजी शक्ति बना सकते

हैं, बड़ी आसानी के साथ। इसके अलावा असलियत तो यह है कि
कांग्रेस-ऐसी जबर्दस्त और सुसंगठित संस्था से अलग होकर काम करना कांग्रेस का विरोध करना समझा जायेगा, और इसमें हमारी शक्तियों का अपव्यय होगा, साथ ही सफलता मिलने में देर होगी !" ब्रह्मदत्त ने विश्राम के साथ कहा।

उमानाथ ने गौर से ब्रह्मदत्त को देखा। उसके सामने बैठा हुआ अपढ़ और असंस्कृत ब्रह्मदत्त राजनीति को बड़ी खूबी के साथ अच्छी तरह समझ सकता है—उसने यह अनुभव किया।

ब्रह्मदत्त को उमानाथ की नजर का पता था और उमानाथ की आंतरिक भावनाओं का। वह कहता जा रहा था, "कांग्रेस के अंदर रहकर हमें जितनी सुविधाएं मिल सकती हैं, बाहर रहने पर उतनी सुविधाओं का मिलना असंभव है। यही नहीं, असुविधाओं के मिलने की संभावना अधिक है। ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के खिलाफ सारा देश हमारा साथ देगा। सिर्फ उसी समय ज हम कांग्रेसमैन हैं। अगर हम सिर्फ कम्युनिस्ट हैं तब हमारा साथ देनेवाला कोई न मिलेगा। और अभी हम अपना पैर इस तरह नहीं जमा पाए हैं कि हम सामूहिक विरोध का सामना कर सकें।"

कामरेड मारीसन से अब न रहा गया। वे कांग्रेस का साथ देने से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा, "नहीं, कामरेड ब्रह्मदत्त ! मैं आपकी बात मानने को तैयार नहीं। आपने अभी जो बातें कही हैं, सुविधा-धर्म की वकालत की बातें हैं। लेकिन यह सुविधा-धर्म बहुत खतरनाक है। हम कम्युनिस्टों के कांग्रेस ज्वाइन करने में एक बड़ा खतरा है; हम लोग बड़ी आसानी से अपने लक्ष्य से गिर जाएंगे, अपने ध्येय को भूल जाएंगे। कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, और राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीयता में उतना ही विरोध है, जितना फासिज्म और कम्युनिज्म में है। राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में अंतर्राष्ट्रीयता कभी नहीं पनप सकती—मैं इसका विश्वास दिलाता हूं। विश्वास और सिद्धांत—इनके निर्माण और विकास में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है। सुविधा के लिए अपनाया जानेवाला कोई भी रूपक धीरे-धीरे अपना अस्तित्व बन सकता है; और इसलिए हमें सुविधा-धर्म से बचना पड़ेगा। हमारा अस्तित्व सचाई, ईमानदारी और साहस पर निर्भर है। इनसे दूर हटना ही हमारा सर्वनाश है। एक समय का कम्युनिस्ट मुसोलिनी इसी रूपक के कारण आज भयानक फासिस्ट बन गया है।"

लेकिन इस वाद-विवाद में उमानाथ को दिलचस्पी न थी। वह यह सब सुन रहा था, लेकिन समझ कुछ न रहा था। एक अजीब-सी परिस्थिति पैदा हो गई थी और वह यह न जानता था कि वह क्या करे। उसकी तबीयत हो रही थी कि वह कहीं एकांत में बैठकर सोचे। यह सब क्या हो गया? यह सब क्या हो रहा है? उसका अस्तित्व ही उसके लिए एक भयानक भार बन रहा था। वह उठ खड़ा हुआ। कामरेड मारीसन से उसने कहा, "कामरेड [illegible]

चलकर जरा कांग्रेसवालों से मिलना चाहता हूँ। फिर साथ ही इलाहाबाद भारतवर्ष का सांस्कृतिक और साहित्यिक केंद्र है—वहाँ प्रगतिशील लेखक-संघ भी कायम हो सकता है।"

"हाँ, कामरेड! मैं भी यह सोच रहा हूँ कि बिना साहित्यिकों को अपने साथ लिए हुए हम अधिक काम नहीं कर सकते। पहले हमें अपने सिद्धांतों और आदर्शों का प्रचार करना चाहिए, इस प्रचार के बिना सफलता कठिन है!"

"तो फिर कल ही चलें—देर करने से कोई फायदा नहीं!" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

५

उमानाथ काफ़ी रात गए घर लौटा—उसे घर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। किस प्रकार वह महालक्ष्मी का सामना करेगा?—किस प्रकार वह इस विपत्ति को कुछ दिन के लिए टालेगा?

भोजन करके जब वह अपने पलंग पर सोने के लिए पहुँचा, उस समय बारह बज चुके थे। लेकिन महालक्ष्मी उस समय भी जाग रही थी, वह उमानाथ की प्रतीक्षा कर रही थी। उमानाथ चुपचाप, बिना महालक्ष्मी से कुछ बोले, अपने पलंग पर लेट गया। महालक्ष्मी अपने पलंग से उतरी, उमानाथ के पैताने बैठते हुए उसने कहा, "नाथ, क्या आप कल मुझसे नाराज हो गए?"

महालक्ष्मी के इस प्रश्न से उमानाथ चौंक उठा। वह उठकर बैठ गया, "क्या कह रही हो? मैं नाराज किस बात पर होता? नाराज तो एक तरह से तुम हो सकती थीं।"

"फिर आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? दिन-भर आप घर के बाहर रहे—यह क्यों?"

"देखो—मैंने तुमसे कह दिया है न कि मैंने दूसरा विवाह कर लिया है।"

"तो इससे क्या? कर लिया तो अच्छा किया। लेकिन आप बहन को साथ क्यों नहीं लेते आये? मैं बहन का स्वागत करती—उसकी सेवा करती।"

"क्यों व्यंग्य कस रही हो?"

"मैं व्यंग्य कसूँगी नाथ—आप पर! मुझ पर यह पाप न लगाइए। हम हिंदू-स्त्रियों के लिए सौत कोई नई चीज तो नहीं है, अपना दुर्भाग्य मुझे वहन करना होगा।"

उमानाथ थोड़ी देर तक महालक्ष्मी को देखता रहा। उसके सामने एक अजीब और दिलचस्प परिस्थिति पैदा हो गई थी। पाश्चात्य विचारों को वह इतनी पूर्णता के साथ अपना चुका था कि उसने इस सौत के मसले पर पहले कभी सोचा ही न था। आज उसे एक हलका-सा प्रकाश दिखलाई दिया। लेकिन अपनी स्थिति उसके सामने स्वयं ही साफ न थी। उसने कहा, "लेकिन महालक्ष्मी! मेरी दूसरी पत्नी हिंदू नहीं है और उसे सौत पर विश्वास नहीं।"

महालक्ष्मी चुप रह गई, "तो क्या आप मुझे त्याग देंगे?" करुण स्वर में उसने पूछा।

उमानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद वह कोई उत्तर दे भी नहीं सकता था। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद महालक्ष्मी ने फिर कहा, "बोलिए! नहीं, आप सच नहीं कहना चाहते! आप मुझे दुखाना नहीं चाहते, लेकिन आप मुझसे घृणा करते हैं। आप मुझे त्याग चुके—बहुत पहले त्याग चुके! है न ऐसी बात! मैं आपकी पत्नी नहीं रही। ठीक है, लेकिन आप तो मेरे पति हैं, स्वामी हैं, सब कुछ हैं!" महालक्ष्मी पागल की तरह कह रही थी और उमानाथ सब कुछ समझते हुए, साथ ही कुछ न समझते हुए, सुन रहा था।—"मुझे उसमें सुख है, जिसमें आपको सुख है। आप सुखी रहें, आप अच्छे रहें, आप हँसें-बोलें। आप अपने घर में रहें—मैं तो आपकी दासी हूँ। आप उन्हें बुला लें। जब वह पूछें कि मैं कौन हूँ, तब आप कह दें कि मैं नौकरानी हूँ। और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उनकी सेवा करूँगी, उनकी पूजा करूँगी।" यह कहते-कहते महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिए।

उमानाथ ने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी से अपने पैर छुड़ाए। जो कुछ महालक्ष्मी ने कहा, उससे उमानाथ की सारी मानवता हिल उठी। उसने कहा, "महालक्ष्मी! मुझे क्षमा करो—मैं पापी हूँ! लेकिन अभी सोचो—मुझे सोचने-विचारने का समय दो। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ।"

दूसरे दिन सुबह उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया।

दसवाँ परिच्छेद

अपनी भावज और भाई के कानपुर चले जाने के बाद प्रभानाथ अपने पिता के साथ अकेला रह गया। गिरफ्तारियाँ अब जोरों के साथ हो रही थीं, और पंडित रामनाथ तिवारी काँग्रेसवालों का मुकदमा करने के लिए स्पेशल मजिस्ट्रेट बना दिए गए थे। वे लोगों को सजाएँ दे रहे थे—काफ़ी कड़ी। उन्नाव के नागरिक पंडित रामनाथ तिवारी के मुँह पर ही उनका अपमान करने लगे थे, उन्हें विश्वासघाती और देशद्रोही पुकारते थे। अपने पिता के संबंध में अपमानजनक बातें प्रभानाथ को सुननी पड़ती थीं, और वह जानता था कि यह अपमान लोग उसके पिता का ही नहीं कर रहे हैं, उसका भी कर रहे हैं, केवल इस कारण कि वह रामनाथ का पुत्र है।

और उस दिन एक ऐसी घटना हो गई जिससे प्रभानाथ का सारा अन्तर हिल उठा। काँग्रेस का जुलूस निकल रहा था और सरकार ने नगर में १४४ धारा लगा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस ने जुलूस को रोका, जो निरन्-

वितर हो जाने का हुक्म दिया। कांग्रेस वालंटियरों ने पुलिस का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। वे जमीन पर बैठ गए—और अधिकारियों ने लाठी-चार्ज करवाया।

प्रभानाथ उस समय क्लब जा रहा था। लाठी-चार्ज देखने के लिए उसने कुछ दूर पर अपनी कार रोक ली। उस जुलूस में स्त्रियां थीं। लाठी-चार्ज पुरुषों और स्त्रियों पर समान भाव से हुआ। जिस समय प्रभानाथ ने स्त्रियों को पिटते देखा, उसका खून खौल उठा।

प्रभानाथ कार से उतरकर सुपरिंटेंडेंट पुलिस के पास गया, "आपके सामने स्त्रियां पिट रही हैं और आप खड़े देख रहे हैं, अपने आदमियों को रोकते तक नहीं!"

सुपरिंटेंडेंट पुलिस प्रभानाथ को अच्छी तरह जानता था। मुसकराते हुए उसने कहा, "ये स्त्री-पुरुष—ये सब-के-सब पशु हैं—और पशुओं में कोई भेद-भाव नहीं होता। अगर आपको विश्वास न हो, तो अपने पिता से पूछ सकते हैं!" और वह हँस पड़ा।

इस उत्तर से प्रभानाथ तिलमिला उठा, पर वह कुछ बोला नहीं; तेजी से लौटकर वह कार पर बैठा और क्लब न जाकर अपने घर लौट आया।

रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठे कागज-पत्र उलट रहे थे। उन्होंने प्रभानाथ को देखते ही बुलाया, "क्यों, तुम तो क्लब गए थे, इतनी जल्दी कैसे लौट आए?"

अन्यमनस्क भाव से प्रभानाथ ने कहा, "जी, कुछ तबीयत ठीक नहीं!" और वह अपने पिता के सामने से हटने लगा।

"जरा ठहरो! सुना है तुमने—कौशल्या गर्ल्स स्कूल (कौशल्या प्रभानाथ की स्वर्गीया माता का नाम था) की हेड मिस्ट्रेस सावित्री गर्ग ने इस्तीफा दे दिया है। जानते हो क्यों? उसे सूझा है कि वह नेता बने, कांग्रेस की लड़ाई लड़े। और अभी-अभी खबर मिली है कि आजवाले कांग्रेस के जुलूस में वह सबसे आगे है।"

"जी हां! और मैंने उसे जुलूस के साथ लाठियों से पिटते भी देखा है!" प्रभानाथ ने रूखे स्वर में कहा।

"क्या कहा? स्त्रियों पर भी लाठियां पड़ रही हैं? यह तो बेजा बात है!" रामनाथ कहते-कहते रुक गए। कुछ सोचकर उन्होंने फिर कहा, "ठीक ही है। जो जैसा करेगा, भोगेगा! नियम और कानून में कोई भेद-भाव नहीं होता।"

"पर स्त्रियों पर लाठी चलाना, ददुआ! यह तो मानवता का उपहास है। हमारे लिए यह शर्म की बात है!" प्रभानाथ ने कहा।

"चुप रहो! जो कुछ हो रहा है, वह ठीक हो रहा है। सांपिन स्त्री ही होती है, पर केवल स्त्री होने के कारण तो उसे छोड़ न देना चाहिए। अपराधी—चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष—अपराधी ही है और उसे दंड-व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"पर यह तो दंड-व्यवस्था नहीं है, यह सरासर अत्याचार है। निहत्थे आदमियों पर लाठी चलाना यह घोर बर्बरता है। अगर वे आज्ञा नहीं मानते तो

उन्हें पकड़ो, सजा दो, जेल भेज दो। लेकिन लाठी से उनको मारना, उनके हाथ-पैर तोड़ देना, उन्हें अपाहिज बना देना—यह भयानक बर्बरता है!" प्रभानाथ यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा।

रामनाथ ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, उन्होंने केवल प्रभानाथ को गौर से देखा। कुछ देर तक एकटक वे उसी प्रकार प्रभानाथ को देखते रहे, फिर धीरे से उन्होंने कुछ गंभीरता के साथ कहा, "हां, प्रभा! यह बर्बरता है, मैं इस बात से इनकार नहीं करता। लेकिन यह भी याद रखना कि शक्ति बर्बर होती है। कोमलता स्त्री के हिस्से की चीज है, पुरुष के हिस्से की नहीं। बर्बरता के अभाव ने ही हिंदुस्तान को गुलाम बनाया है—बर्बरता पुरुष का जन्मसिद्ध अधिकार है!"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "ये युद्ध—यह रक्तपात! यह सब बर्बरता की चीजें हैं, और यही प्राकृतिक हैं। अनादिकाल से ये होते रहे हैं, अनंत काल तक ये होते रहेंगे। और यह अहिंसा की लड़ाई—यह हमारी—यह हिंदुस्तानियों की कायरता और नपुंसकता का ढोंग है—यह सब एक स्वांग है। याद रखना, लोहे को लोहा ही काट सकता है।"

रामनाथ मुसकराए, "खैर, छोड़ो इस बात को! सवाल मेरे सामने यह है कि स्कूल मे नई हेड मिस्ट्रेस की जरूरत होगी!"

"तो फिर एक विज्ञापन निकलवा दूं?" प्रभानाथ ने पूछा।

"हां, और एक हफ्ते के अंदर ही दूसरी हेड मिस्ट्रेस आ जाना चाहिए।"

२

प्रभानाथ जब अपने पिता के पास से अपने कमरे में गया, उसके मस्तिष्क में उसके पिता का केवल एक वाक्य था, 'लोहे को लोहा ही काट सकता है!'

उसी दिन सुबह उसे वीणा का पत्र मिला था कि वह युक्त प्रांत में आकर कुछ काम करना चाहती है। वीणा के मतानुसार क्रांतिकारी मूवमेंट को देश के कोने-कोने मे फैलाना चाहिए। उसने भी अहिंसा के संग्राम के प्रति कांग्रेस से अपना मतभेद प्रकट किया था।

एकाएक प्रभानाथ के मन मे प्रश्न उठा, "अगर स्कूल की हेड मिस्ट्रेस होकर वीणा यहां आ जाय तो कैसा रहे?"

उसी समय प्रभानाथ ने वीणा के पत्र का उत्तर लिखा। उसने उन्नाव के स्कूल की स्थिति समझाते हुए वीणा को अपनी अर्जी भेजने का आदेश दिया। उसी दिन शाम के समय उसने हेड मिस्ट्रेस के लिए देश के विभिन्न पत्रों में विज्ञापन भेज दिया।

चौथे दिन, वीणा की अर्जी आ गई और आठवें दिन वीणा कौशल्या गर्ल्स स्कूल की प्रधानाध्यापिका होकर उन्नाव पहुंच गई।

वीणा को रिसीव करने प्रभानाथ स्टेशन गया। ट्रेन से उतरते ही...

वितर हो जाने का हुक्म दिया। कांग्रेस वालंटियरों ने पुलिस का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। वे जमीन पर बैठ गए—और अधिकारियों ने लाठी-चार्ज करवाया।

प्रभानाथ उस समय क्लब जा रहा था। लाठी-चार्ज देखने के लिए उसने कुछ दूर पर अपनी कार रोक ली। उस जुलूस में स्त्रियाँ थीं। लाठी-चार्ज पुरुषों और स्त्रियों पर समान भाव से हुआ। जिस समय प्रभानाथ ने स्त्रियों को पिटते देखा, उसका खून खौल उठा।

प्रभानाथ कार से उतरकर सुपरिंटेंडेंट पुलिस के पास गया, "आपके सामने स्त्रियाँ पिट रही हैं और आप खड़े देख रहे हैं, अपने आदमियों को रोकते तक नहीं!"

सुपरिंटेंडेंट पुलिस प्रभानाथ को अच्छी तरह जानता था। मुसकराते हुए उसने कहा, "ये स्त्री-पुरुष—ये सब-के-सब पशु हैं—और पशुओं में कोई भेद-भाव नहीं होता। अगर आपको विश्वास न हो, तो अपने पिता से पूछ सकते हैं!" और वह हँस पड़ा।

इस उत्तर से प्रभानाथ तिलमिला उठा, पर वह कुछ बोला नहीं; तेजी से लौटकर वह कार पर बैठा और क्लब न जाकर अपने घर लौट आया।

रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठे कागज-पत्र उलट रहे थे। उन्होंने प्रभानाथ को देखते ही बुलाया, "क्यों, तुम तो क्लब गए थे, इतनी जल्दी कैसे लौट आए?"

अन्यमनस्क भाव से प्रभानाथ ने कहा, "जी, कुछ तबीयत ठीक नहीं!" और वह अपने पिता के सामने से हटने लगा।

"जरा ठहरो! सुना है तुमने—कौशल्या गर्ल्स स्कूल (कौशल्या प्रभानाथ की स्वर्गीया माता का नाम था) की हेड मिस्ट्रेस सावित्री गर्ग ने इस्तीफा दे दिया है। जानते हो क्यों? उसे सूझा है कि वह नेता बने, काँग्रेस की लड़ाई लड़े। और अभी-अभी खबर मिली है कि आजवाले कांग्रेस के जुलूस में वह सबसे आगे है।"

"जी हाँ! और मैंने उसे जुलूस के साथ लाठियों से पिटते भी देखा है!" प्रभानाथ ने रूखे स्वर में कहा।

"क्या कहा? स्त्रियों पर भी लाठियाँ पड़ रही हैं? यह तो बेजा बात है!" रामनाथ कहते-कहते रुक गए। कुछ सोचकर उन्होंने फिर कहा, "ठीक ही है। जो जैसा करेगा, भोगेगा! नियम और कानून में कोई भेद-भाव नहीं होता।"

"पर स्त्रियों पर लाठी चलाना, ददुआ! यह तो मानवता का उपहास है। हमारे लिए यह शर्म की बात है!" प्रभानाथ ने कहा।

"चुप रहो! जो कुछ हो रहा है, वह ठीक हो रहा है। साँपिन स्त्री ही होती है, पर केवल स्त्री होने के कारण तो उसे छोड़ न देना चाहिए। अपराधी—चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष—अपराधी ही है और उसे दंड-व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"पर यह तो दंड-व्यवस्था नहीं है, वह सरासर अत्याचार है। निहत्थे आदमियों पर लाठी चलाना यह घोर बर्बरता है। अगर वे आज्ञा नहीं मानते तो

उन्हें पकड़ो, सजा दो, जेल भेज दो। लेकिन लाठी से उनको मारना, उनके हाथ-पैर तोड़ देना, उन्हें अपाहिज बना देना—यह भयानक बर्बरता है!" प्रभानाथ यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा।

रामनाथ ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, उन्होंने केवल प्रभानाथ को गौर से देखा। कुछ देर तक एकटक वे उसी प्रकार प्रभानाथ को देखते रहे, फिर धीरे से उन्होंने कुछ गंभीरता के साथ कहा, "हाँ, प्रभा! यह बर्बरता है, मैं इस बात से इनकार नहीं करता। लेकिन यह भी याद रखना कि शक्ति बर्बर होती है। कोमलता स्त्री के हिस्से की चीज है, पुरुष के हिस्से की नहीं। बर्बरता के अभाव ने ही हिंदुस्तान को गुलाम बनाया है—बर्बरता पुरुष का जन्मसिद्ध अधिकार है!"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "ये युद्ध—यह रक्तपात! यह सब बर्बरता की चीजें हैं, और यही प्राकृतिक है। अनादिकाल से ये होते रहे हैं, अनंत काल तक ये होते रहेंगे। और यह अहिंसा की लड़ाई—यह हमारी—यह हिंदुस्तानियों की कायरता और नपुंसकता का ढोंग है—यह सब एक स्वांग है। याद रखना, लोहे को लोहा ही काट सकता है।"

रामनाथ मुसकराए, "खैर, छोड़ो इस बात को! सवाल मेरे सामने यह है कि स्कूल में नई हेड मिस्ट्रेस की जरूरत होगी!"

"तो फिर एक विज्ञापन निकलवा दूँ?" प्रभानाथ ने पूछा।

"हाँ, और एक हफ्ते के अंदर ही दूसरी हेड मिस्ट्रेस आ जाना चाहिए।"

२

प्रभानाथ जब अपने पिता के पास से अपने कमरे में गया, उसके मस्तिष्क में उसके पिता का केवल एक वाक्य था, 'लोहे को लोहा ही काट सकता है!'

उसी दिन सुबह उसे वीणा का पत्र मिला था कि वह युक्त प्रांत में आकर कुछ काम करना चाहती है। वीणा के मतानुसार क्रांतिकारी मूवमेंट को देश के कोने-कोने में फैलाना चाहिए। उसने भी अहिंसा के संग्राम के प्रति कांग्रेस से अपना मतभेद प्रकट किया था।

एकाएक प्रभानाथ के मन में प्रश्न उठा, "अगर स्कूल की हेड मिस्ट्रेस होकर वीणा यहाँ आ जाय तो कैसा रहे?"

उसी समय प्रभानाथ ने वीणा के पत्र का उत्तर लिखा। उसने उन्नाव के स्कूल की स्थिति समझाते हुए वीणा को अपनी अर्जी भेजने का आदेश दिया। उसी दिन शाम के समय उसने हेड मिस्ट्रेस के लिए देश के विभिन्न पत्रों में विज्ञापन दिया।

चौथे दिन, वीणा की अर्जी आ गई और आठवें दिन वीणा कौशल्या स्कूल की प्रधानाध्यापिका होकर उन्नाव पहुँच गई।

वीणा को रिसीव करने प्रभानाथ स्टेशन गया। ट्रेन से उतरते ही वीणा

प्रभानाथ को आदर के साथ प्रणाम किया, और मुसकराते हुए उस... कहा, "मेरी साधना सफल हुई, मेरे आराध्य देव ने मुझे याद तो या।"

रास्ते में प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "तुम मेरे पिता से जरा सतर्क रहना। ...भाव के वे कुछ कड़े हैं, अपना विरोध उन्हें सह्य नहीं। फिर भी आदमी वे नेक ...। उनके व्यवहार से तुम प्रसन्न ही होओगी।"

"मैं भी उनको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करूँगी क्योंकि वे आपके पिता हैं!" ...ीणा ने उत्तर दिया।

जिस समय वीणा घर पर पहुँची, रामनाथ तिवारी भोजन करके सोने वाले कमरे में लेट चुके थे। वीणा का आगमन सुनकर वे पलंग से उठ आए। उन्हें आशा थी कि वीणा एक फैशनेबिल और सुन्दर स्त्री होगी, पर अपने सामने एक दुबली-पतली; अति साधारण लड़की को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। लेकिन अपने मनोभावों को दबाते हुए उन्होंने कहा, "इन्हें रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई? इन्हें मेहमानवाले घर में ठहरा दो और जब तक कोई मकान न मिल जाय, तब तक ये वहीं रहें। और देखो—इनके भोजन आदि का भी प्रबंध करा देना।" यह कहकर रामनाथ वापस चले गए।

"यदि आप न भी बताते तो मैं उन्हें देखकर ही बता देती कि वे आपके पिता हैं," वीणा ने हँसते हुए कहा, "शिष्ट, गंभीर और शांत!"

शाम के समय वीणा रामनाथ तिवारी के सामने उपस्थित हुई, प्रभानाथ भी वहाँ मौजूद था। रामनाथ ने पूछा, "क्या तुम्हें राजनीति से कोई रुचि है?"

प्रभानाथ ने अपना सिर हिलाया और वीणा समझ गई। उसने कहा, "जी नहीं!"

"यह तो बुरी बात है! समय की हलचल के प्रति अरुचि होना मनुष्य में विकास की कमी का द्योतक हुआ करता है। फिर भी तुम स्त्री हो और स्त्री का क्षेत्र राजनीति नहीं है—होना भी नहीं चाहिए।" कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "तुम्हारे पहले जो हेड मिस्ट्रेस थीं, वह जेल में हैं—कांग्रेस की लड़ाई में उन्होंने सहयोग किया था और मैंने स्वयं उन्हें तीन महीने की सजा दी। मैं कहता हूँ कि उन्होंने बहुत बड़ी बेवकूफी की। राजनीति और खास तौर से कांग्रेस की राजनीति, ओछों की चीज है। तुम सावधान रहना—भावना में बह जाना स्त्री के लिए बड़ा आसान होता है। तुम्हें कांग्रेस के प्रति कोई सहानुभूति तो नहीं है?"

"जी नहीं! मुझे कांग्रेस पर ही विश्वास नहीं है और न अहिंसा पर! अहिंसा अप्राकृतिक सिद्धांत है।"

रामनाथ ने विजय की मुसकराहट के साथ प्रभानाथ को देखा, "सुना, प्रभा यह भी कह रही हैं कि अहिंसा गलत सिद्धांत है—पागलपन का सपना है!"

प्रभानाथ मन-ही-मन घबरा रहा था कि कहीं यह बातचीत अधिक न ब

"जी—वह मेरे पिता हैं !" हँसते हुए प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "और उन्होंने जो आपका अपमान किया है, उसके लिए मैं आप लोगों से माफी माँगे लेता हूँ। तो वीणा देवी से आप लोगों की मुलाकात हुई ?"

"नहीं ! आपके पिता अनाप-शनाप सवाल करने लगे, जिन्हें करने का उन्हें कोई अधिकार न था। और हमने जब उनको उनका अधिकार समझाने की कोशिश की, तो वे बिगड़ खड़े हुए।"

"अच्छा तो अगले रविवार को आप लोग कानपुर में दयानाथजी के बंगले पर शाम को छः बजे वीणा मुकर्जी से मिल सकते हैं !" और यह कहकर प्रभानाथ फाटक के अंदर चला गया।

जिस समय प्रभानाथ बंगले में पहुँचा, वीणा चाय समाप्त करके रामनाथ तिवारी से बात कर रही थी। रामनाथ कह रहे थे, "आखिर ये लोग थे कौन ? मैंने उनका नाम नहीं पूछा, और नाम पूछने की मैंने कोई जरूरत नहीं समझी। पर ये लोग तुमसे परिचित जरूर थे। लेकिन उनमें से कोई भी बंगाली न था।"

वीणा ने बात बनाई, "जी, मेरे भाई के कुछ दोस्त कानपुर में रहते हैं। बहुत संभव है, मेरे भाई ने उन्हें मुझसे मिल लेने को लिख दिया हो !"

"हो सकता है ! तो वे मुझे बतला देते !" रामनाथ मुसकराए, "देखो मैं पुराने युग का आदमी हूँ—कम-से-कम लोग तो मुझे पुराने युग का ही समझते हैं। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि मैं उनसे पूछ-ताछ करता। पर वे लोग इतने अधिक अशिष्ट क्यों हो गए ? उन्हें यह समझ लेना चाहिए था कि जिस आदमी से वे बात कर रहे हैं वह स्वामी है—कर्ता है। मेरे ही मकान में कोई आदमी आकर मेरा अपमान करे—इसको मैं किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

प्रभानाथ को देखकर रामनाथ ने बात का रुख बदला, "क्यों प्रभा ? इनके मकान का कोई इंतजाम हुआ ?"

"अभी तो नहीं हुआ। कोई अच्छा मकान मिल ही नहीं रहा है।"

"तो फिर रहने दो। अभी ये यहाँ हैं—क्यों, तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है ?" रामनाथ ने वीणा की ओर देखकर कहा।

"जी, नहीं ! केवल भोजन मैं बनाना चाहती हूँ; यहाँ का भोजन मुझे रुचता नहीं।"

"हाँ-हाँ—पहले ही कह दिया होता। इसका प्रबंध हो जायगा। देखो प्रभा ! यह इतनी बड़ी कोठी पड़ी है, ये यहीं रह सकती हैं, मकान ढूँढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं !" इस बार रामनाथ ने फिर वीणा से कहा, "लेकिन एक शर्त है ! तुम मुझे रोज अखबार पढ़कर सुनाया करोगी ! मेरी आँखें कमजोर हो गई हैं, पढ़ने में तकलीफ होती है। बूढ़ा हो गया हूँ न !" और रामनाथ मुसकराए।

"जी हाँ—आपकी सेवा करना मैं अपना सौभाग्य समझूँगी !" वीणा ने

कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "तुम्हारे स्कूल का समय हो रहा है। चलूँ, मैं भी स्नान करूँ चलकर।"

रामनाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक प्रभानाथ और वीणा मौन बैठे रहे। इस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा, "वीणा, इस मकान में तुम्हारा रहना ठीक होगा—तुम्हारे मिलने वालों से दद्दुआ का साक्षात्कार होना स्वाभाविक ही है!"

"लेकिन यहाँ मुझसे मिलनेवाला कोई नहीं है!"

"तुम गलत समझती हो—आज दो आदमी आए थे, और लोग भी आ सकते हैं!"

वीणा प्रभानाथ के मुख को एकटक देख रही थी, मैं उन लोगों से नहीं मिलना चाहती—लेकिन···लेकिन···" उसने एक ठंडी साँस ली, "वे मेरे मिलने वाले जरूर हैं; और मेरे मिलनेवालों की संख्या घटने की जगह बढ़ेगी ही। आप ही बतलाइए, मैं क्या करूँ!"

प्रभानाथ ने कुछ सोचकर कहा, "यह तो वास्तव में बड़ी टेढ़ी समस्या है। इसका एक ही उपाय समझ में आता है—वे आपसे यहाँ न मिलने आएँ, बल्कि आप कानपुर में उनसे मिलें। फिर कार्यक्षेत्र कानपुर ही है।"

"और कानपुर यहाँ से दूर भी नहीं है।" वीणा ने कहा।

"हाँ। उन दोनों सज्जनों से मैंने कह दिया है कि रविवार के दिन वे आप से कानपुर में मिल सकते हैं। बड़के भइया वहीं रहते हैं; वे तो जेल में हैं, लेकिन बड़की भौजी, मझले भइया और मझली भौजी, ये सब वहीं हैं। उनसे मिलने के लिए रविवार के दिन आप मेरे साथ चलें। वहीं तै किया जावेगा कि किस तरह काम आगे बढ़े।"

४

प्रभानाथ ने बाकायदा दीक्षा ले ली। जिस समय उसने दीक्षा ली थी, वीणा वहीं मौजूद थी। दीक्षा लेने के बाद जब प्रभानाथ वीणा के साथ कानपुर से वापस लौट रहा था, वीणा ने कहा, "आपका हठ पूरा हुआ लेकिन न जाने क्यों मैं प्रसन्न नहीं हूँ! मैं जानती हूँ कि मेरे ही कारण आपने यह काँटों वाला मार्ग अपनाया है!"

शाम को प्रभानाथ क्लब चला गया, वीणा रामनाथ तिवारी को उस दिन का 'लीडर' सुनाने लगी। समाचार समाप्त हो जाने पर रामनाथ ने वीणा से पूछा, "तो तुम कलकत्ता से आ रही हो? वहाँ कांग्रेस का कैसा जोर है?"

"अधिक नहीं।" दबी जबान से वीणा ने कहा।

"क्यों? बड़े ताज्जुब की बात है। जिस प्रांत ने राजनीति को जन्म दिया, जिस प्रांत ने आंदोलनों को देश में आरंभ किया, उस प्रांत में आज इतनी शिथिलता क्यों?"

"मैं नहीं जानती!" वीणा ने इस विषय को टालने की कोशिश की लेकिन पंडित रामनाथ तिवारी ने यह बात आरंभ की थी वीणा की बात सुनने के लिए नहीं, वरन् अपनी बात कहने के लिए, "सुनो! भूख और बेकारी बंगाल में भी उतनी ही है, जितनी यहाँ पर, लेकिन एक बात वहाँ पर नहीं है—वह है चरित्र! और चरित्र के अभाव के कारण वहाँ साहस का भी अभाव है। बंगाली रो सकते हैं, चिल्ला सकते हैं, कह सकते हैं—पर कर नहीं सकते। त्याग और आत्म-बलिदान—शायद इन बातों का उनमें अभाव है।"

वीणा को बंगालियों पर यह प्रहार बहुत बुरा लगा। वह तिलमिला उठी। "वह कर सकते हैं—इतना कर सकते हैं जितना किसी भी प्रांत का आदमी नहीं कर सकता। बंगाल के नवयुवकों के कारनामे देखकर आप दंग रह जायँगे। उनमें क्रांति की एक भावना भर गई है। गोलियाँ चलती हैं, कितने ही आदमी रोज मरते हैं। ब्रिटिश-सत्ता का अगर कोई मुकाबला कर रहा है तो वे हैं बंगाल के क्रांतिकारी। अखबारों में इसका जिक्र नहीं होता है—इसलिए आप यह सब जान नहीं पाते।"

रामनाथ ने हँसते हुए कहा, "शाबाश! लेकिन इन क्रांतिकारियों के प्रति तुम्हारी सहानुभूति देखकर मुझे डर लगता है।" फिर थोड़ा-सा गंभीर होकर उन्होंने कहा, "हाँ, मैंने बहुत कुछ पढ़ा है—उससे भी अधिक सुना है। पर इस तरह मरना आत्महत्या का दूसरा रूप ही है न! बेकार और निराश आदमी आत्महत्या करना चाहता है; रेल से न कटकर, गले में फाँसी न लगाकर, नदी में न डूबकर वह पुलिस की गोली का शिकार बनता है। यहाँ भी चरित्र का अभाव ही है। इसके अलावा, क्रांतिकारी युद्ध नहीं करता—वह हत्या करता है!"

वीणा ने जबर्दस्ती अपने को इस बात का उत्तर देने से रोका। रामनाथ ने कुछ रुककर फिर कहा, "और क्रांतिकारियों की जितनी गिरफ्तारियां बंगाल में होती हैं, उतनी और कहीं नहीं होतीं। यहाँ भी चरित्र का ही अभाव है। गिरफ्तारियाँ होने के माने हैं भेद का खुलना। अब सवाल यह है कि यह भेद कैसे और क्यों खुलते हैं? उत्तर स्पष्ट है; उन लोगों में चरित्रहीन और बेईमान लोग घुसे हुए हैं जो पैसे के लिए सब कुछ कर सकते हैं! पैसे के लिए वे अपने को बेच सकते हैं, अपने मित्रों की हत्या करवा सकते हैं। नहीं, यह सब बड़ा गलत है, बड़ा दयनीय है।"

"फिर ठीक क्या है?" वीणा ने कहा।

"मैं क्या बतलाऊँ? शायद ठीक वही है जो कुछ हो रहा है। मैं यह कह सकता हूँ कि गलती कहाँ है, पर ठीक क्या है, यह मैं नहीं बतला सकता। अगर यही बतला सकता तो कृष्ण, बुद्ध, ईसा—इन सबसे ऊपर न उठ जाता? आखिर ये कृष्ण, बुद्ध, ईसा—यही कब बतला सके कि ठीक क्या है? इन्होंने किया क्या? सिवा इसके कि दुनिया की उलझनों पर अपना मत प्रकट करके, अपना

एक नया रास्ता और बतलाकर एक नई उलझन और बढ़ा दी। कार्ल मार्क्स ने लिखा और लेनिन ने किया—परिणाम? रूस में भयानक रक्तपात! और यहाँ गांधी ने एक मत बतलाया—और परिणाम? जेल—गिरफ्तारियाँ! पर वास्तव में क्या होना चाहिए, जिससे सब सुखी हो सकें, जो सबकी उलझनों का हल हो? कोई नहीं बतला सका! आखिर होगा क्या?"

वीणा गौर से तिवारीजी की बातों को सुन रही थी। उसे यह खयाल न था कि देहात में रहनेवाला आदमी इतना सोच सकता है, इतना समझ सकता है। और तिवारीजी के तर्क? उनमें गंभीरता थी, उनमें ईमानदारी थी, उनमें सार था।

रामनाथ कहते ही गए, रुके नहीं; मानो वे एक अरसे से किसी सुननेवाले को ढूंढ रहे थे और उस दिन अनायास ही एक सुननेवाला मिल गया, "होगा क्या? और इसके पहले हमें यह तै कर लेना पड़ेगा कि होना क्या चाहिए! हम असंतुष्ट हैं। क्यों? क्योंकि हमें रोटी नहीं मिलती; हमें कपड़ा नहीं मिलता, हमारे पास रहने को जगह नहीं है। हममें से हरेक अभाव से पीड़ित है। और यह अभाव क्यों? दुनिया में इतना अन्न पैदा होता है कि दुनिया की जितनी आबादी है उससे चौगुनी आबादी भरपेट भोजन कर सकती है। इतना वस्त्र दुनिया में बनता है कि सब आदमी बड़े मजे में अपना तन ढक सकते हैं और यह धरातल हमारे रहने के लिए मौजूद है। फिर यह अभाव क्यों?' तिवारीजी ने वीणा की ओर देखा।

पर वीणा ने कोई उत्तर नहीं दिया, और उत्तर न देकर वीणा ने ठीक ही किया, क्योंकि तिवारीजी ने यह प्रश्न वीणा से नहीं पूछा था। यह प्रश्न उन्होंने अपने से पूछा था। तिवारीजी ने उत्तर भी दिया, "यह इसलिए कि विषमता ही प्रकृति का नियम है। हम सब एक प्रकार की पाशविकता लिए हुए हैं, हम सब में दूसरों को उत्पीड़ित करने की दबी हुई मनोवृत्ति है, जो समय-समय पर प्रकट होकर मानवता के विकास में भयानक बाधा बनकर खड़ी हो जाती है। हममें हिंसा है, और इस हिंसा को हम अभी तक नहीं छोड़ सके। और क्या इस हिंसा को छोड़ भी सकते हैं? हमारी हिंसावाली मनोवृत्ति हमें दूसरों की हिंसा से बचने को प्रेरित करती रहती है। और इसलिए हम धन इकट्ठा करते हैं, सम्पत्ति बढ़ाते हैं और इस धन-सम्पत्ति के रूप में दुनिया की सारी वस्तुओं को ढाँपकर हम दूसरों को उन वस्तुओं का उपभोग नहीं करने देते! है न ऐसा?"

"तो हो क्या?" वीणा ने पूछा।

तिवारीजी हँस पड़े, "तो हो क्या? यही प्रश्न मेरे सामने भी है। और सब कुछ सोच-समझकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कुछ भी न हो—दुनिया जिस रफ्तार से चलती है, चले। लोग भूखों मरते हैं—मरें। तुम [illegible] सोशलिज्म चिल्लाते हो; पर यहाँ भी तो तुम लोगों को जान

मनुष्य के प्राणों का मूल्य ही क्या है? एक महायुद्ध—एक महामारी!
लाखों-करोड़ों आदमी मर जाते हैं। और उन मरनेवालों में
ऐसे भी हो सकते हैं, जो अपने को दुनिया का कर्ता—विधाता समझते रहे
। आखिर उनके प्राणों का मूल्य क्या है? तुम सुधार करनेवालों से पूछो तो
क्या वे इतने रक्तपात, इतनी हत्या, इतने परिश्रम के बाद भी इस विषमता
, इस उत्पीड़न को नष्ट कर सकेंगे?"

"वे तो ऐसा ही समझते हैं!" वीणा ने कहा।

"हाँ, वे ऐसा ही समझते हैं, लेकिन वे गलत समझते हैं! यह उत्पीड़न तब
क कायम रहेगा, जब तक लोग उत्पीड़ित होने के लिए तैयार रहेंगे, और
जनसमुदाय उत्पीड़ित होने के लिए अवश्य तैयार रहेगा। भेड़-बकरियों की तरह
पीछे-पीछे चलनेवाले आदमी जब तक दुनिया में मौजूद हैं तब तक उत्पीड़न
होता ही रहेगा, वह रुकेगा नहीं।"

५

वीणा के उन्नाव में आ जाने के बाद कानपुर क्रांतिकारियों का प्रधान केंद्र
बन गया है। साहसी नवयुवक एक दल में बंधकर देश की स्वाधीनता के लिए
युद्ध करने को तैयार होने लगे। इस दल का संचालन करने के लिए बाहर से भी
लोग आ जाया करते थे।

और प्रभानाथ ने देखा कि उसके दल के सब सदस्य अजीब तरह के आदमी
हैं—अपनी-अपनी विशेषता लिए हुए। उनमें से कुछ तो ऐसे थे जो अंधकार के गर्भ
से निकलकर आते थे और फिर वहीं लोप हो जाते थे। न उनका पता था, न
ठिकाना। प्रभानाथ ने उस दल में एक और खास बात देखी—उस दल का न कोई
खास ध्येय था और न कोई खास कार्यक्रम।

उस दिन एक बैठक हुई। कार्यक्रम का अभाव वहाँ एकत्रित प्रत्येक व्यक्ति
को अखर रहा था। प्रभानाथ ने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोग
क्या करने को इकट्ठा होते हैं। हमें ब्रिटिश-साम्राज्य से लड़ना है, हमें देश को
गुलामी से मुक्त कराना है, हमें अंग्रेजों को हिंदुस्तान से निकाल बाहर करना
है—लेकिन किस तरह? हमारे सामने कोई कार्यक्रम ही नहीं है। आखिर हमें
करना क्या होगा?"

सामने बैठे एक युवक ने, जिसे वह केवल सरदार के नाम से जानता था
और जो उन लोगों में एक था जो अंधकार में रहते थे, लेकिन फिर भी उ
कानपुर की पार्टी का मुखिया माना जाता था, कहा, "अभी जल्दी क्या है? ह
तो अभी बहुत बड़ी तैयारी करनी है। हमें चाहिए कि हम अपनी ताकत बढ़
जावें। फिर एक दिन ऐसा आ जाएगा, जब हम अंग्रेजों को हिंदुस्तान में रह
असंभव कर देंगे—जब अंग्रेज लोग विलायत से हिंदुस्तान आने के नाम पर थ
थर काँपेंगे।"

"लेकिन यह अंग्रेजी फौज ! वह आपको यह सब करने देगी ?" प्रमानाथ ने पूछा।

मुसकराते हुए उस युवक ने उत्तर दिया, "अंग्रेजी फौज का सवाल ही नहीं उठता। अकेले फौज के बल पर तो ब्रिटिश-साम्राज्य हिंदुस्तान में कायम नहीं रह सकता। फौजी शासन दो-चार दिन तक हिंदुस्तान के दो-चार स्थानों में भले ही कायम रह जाय, लेकिन अनंतकाल के लिए समस्त हिंदुस्तान पर यह फौजी शासन असंभव है। ब्रिटिश-साम्राज्य को हिंदुस्तान के साथ समझौता करना पड़ेगा जैसा आयरलैंड में हुआ है।"

"मैं यह मानता हूँ !" एक दूसरे युवक ने कहा, "लेकिन मेरा कहना है कि सब की एक हद होती है। यह जोश, वह भावना, यह बलिदान, जिसे लेकर हम लोग इस मार्ग पर अग्रसर हुए हैं—वह सब अनंत और अक्षय तो नहीं है। मैं समझता हूँ कि हमारे लिए यही उपयुक्त समय है, जब हम अपना काम आरंभ करें। इतना बड़ा मूवमेंट चल रहा है, जनता की सहानुभूति हमें मिल जायगी। लेकिन मैं देखता हूँ कि हमारी तैयारी नहीं के बराबर है—हम अपना काम ही नहीं आरंभ कर सकते।"

"हाँ—हम अपना काम ही नहीं आरंभ कर सकते।" सरदार ने उस युवक की बात दुहराई, "और यह इसलिए कि हम तैयार नहीं हैं। लेकिन तैयारी के लिए आवश्यकता है धन की !"

"यह धन आए कहाँ से ? वीणा ने पूछा, "दूसरी संस्थाओं को लाखों रुपयों का चंदा मिल जाता है, लेकिन हम तो चंदा भी नहीं माँग सकते ! फिर इस दल के प्रायः सभी लोग मध्य-वर्ग के हैं—वे जितना रुपया दे सकते हैं, देते हैं। पर उतना रुपया तो हमारी जरूरतों का हजारवाँ हिस्सा भी नहीं पूरा कर सकता ! सब कुछ करने और सोचने के बाद यही सवाल हमारे सामने रह जाता है—यह धन आए कहाँ से और कैसे ?"

"डाका डालकर !" गंभीरतापूर्वक सरदार ने कहा, "हमारे दल की सारी बुनियाद हिंसा और बल पर है, उसी हिंसा और बल का हमें सहारा लेना होगा। हमें जर्मनी और जापान से शस्त्रास्त्र मँगाने हैं, उनके दाम तो हमें देने ही होंगे। इसके अलावा हमारे दल के कितने ही लोग बम बनाने का काम जानते हैं और हमें बम बनाने की सामग्री खरीदनी है।"

"लेकिन यह डाका किस पर डाला जाय ?" एक और युवक ने पूछा।

"कानपुर के धनी व्यापारियों पर ! और मैं तो उसे डाका भी नहीं कहूँगा ! यह तो जबर्दस्ती चंदा वसूल करना है। दिन-दहाड़े अपनी पिस्तौलों के बल पर हमें यह चंदा वसूल करना होगा। और इस काम के लिए हमें जरूरत होगी एक अच्छी कार की, एक अच्छे ड्राइवर की, चार आदमियों की, जिनके चेहरों पर नकाबें होंगी, और चार पिस्तौलों की।"

थोड़ी देर रुककर सरदार ने फिर कहा, "जहाँ तक म

हम रास्ते में किसी की अच्छी कार को हथिया सकते हैं; नकाबें मैं साथ लेता आया हूं, पिस्तौलें हमारे पास हैं । अब चार आदमियों और एक अच्छे ड्राइवर की आवश्यकता है ।"

"हम तीस आदमी हैं—आप चार को चुन सकते हैं," एक युवक ने कहा ।

"आप लोगों में से मुझे सिर्फ़ तीन आदमी चाहिए, चौथा मैं हूं ।" सरदार ने उत्तर दिया ।

तीस आदमियों के नाम चिट डाली गई, तीन आदमियों के नाम निकल आने पर सरदार ने कहा, "और ड्राइवर—यह टेढ़ा सवाल है !"

"मैं हूं !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया ।

इस 'मैं हूं' को सुनकर वीणा चौंक उठी । उसने कहा, "मिस्टर प्रभानाथ, यह बहुत बड़े ख़तरे का काम है । भीड़ शहर में, भरे हुए रास्तों पर अधिक-से अधिक स्पीड से आपको कार चलानी पड़ेगी ! शायद यह आपसे न हो सकेगा ।"

"जरूर हो सकेगा ! और इसका प्रमाण मैं सफलतापूर्वक इस काम को करके दूंगा !" प्रभानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया ।

६

कानपुर के एलफिन्स्टन सिनेमा के सामने जब प्रभानाथ पहुंचा, उस समय सात बज चुके थे । सिनेमा हो रहा था और बाहर माल रोड पर इक्का-दुक्का आदमी चल रहे थे । प्रभानाथ ने मोटरकारों के झुंड के पास जाकर इधर-उधर देखा, कहीं कोई न था । मोटरों के ड्राइवर या तो मोटरों में पड़े सो रहे थे या टिकट लेकर वे भी सिनेमा में बैठे थे ।

उन मोटरों में से प्रभानाथ ने एक चुनी । वह एक बड़ी-सी स्टुडीबेकर कार थी । प्रभानाथ ने फिर एक बार अपने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था । वह कार पर बैठ गया । सौभाग्यवश कार में चाबी नहीं लगी थी, उसने कार स्टार्ट की और चल दिया । नहर के पुल के पास उसके चारों साथी एक पेड़ के नीचे खड़े उसका इंतजार कर रहे थे । उन लोगों को उसने कार पर बिठलाया—और फिर वह जनरलगंज पहुंचा । कार के अंदर ही उन लोगों ने अपनी नकाबें पहन लीं ।

लाला नैनसुखदास का फ़र्म थोक कपड़े के व्यापार का प्रमुख फ़र्म था—और उनकी हैसियत लाखों की समझी जाती थी । उस दुकान के सामने कार रुकी । चारों आदमी कार से उतरकर दूकान में घुस गए—किसी ने इस पर ध्यान भी नहीं दिया ।

दो आदमी दरवाज़े पर पिस्तौल निकालकर खड़े हो गए और दो मुनीम के पास पहुंचे । सरदार ने पिस्तौल तानकर मुनीम से कहा, "पांच हजार रुपये अभी चाहिए—एकदम !"

मुनीम उस समय रोकड़ लिख रहा था—रोकड़िया भी वहीं बैठा था । उसने

सिर उठाकर देखा—पिस्तौल देखकर वह सहम गया, उसकी घिग्घी बँध गई।

"जल्दी करो! नहीं तो···" सरदार ने पिस्तौल की नली मुनीम के मत्थे से लगा दी।

मुनीम ने रोकड़िए की तरफ देखा, वह काँप रहा था। रोकड़िए ने चाबी निकालकर तिजोरी के पास रख दी। सरदार ने अपने साथी से कहा, "तिजोरी से पाँच हज़ार रुपए निकालो—मैं इन लोगों को सँभाले हुए हूँ।" और उसी समय उसने मुनीम तथा रोकड़िये की तरफ मुखातिब होकर कहा, "अगर एक आवाज़ भी निकाली, तो गोली मत्थे के अंदर घुस जायगी।"

तिजोरी खोलकर सरदार के साथी ने पाँच हज़ार रुपए निकाल लिए। रुपया ले चुकने के बाद सरदार ने अपने साथी से कहा, "तुम कार पर चलो और इंजिन स्टार्ट कर दो—मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। कार स्टार्ट करके हॉर्न देना, तब तक मैं इन लोगों को सँभाले हूँ कि शोर-गुल न करें।"

तीन युवक कार में बैठ गए और प्रभानाथ ने कार स्टार्ट कर दी। हॉर्न सुनते ही सरदार तेज़ी के साथ दूकान से निकलकर कार पर बैठ गया और उसके बैठते ही कार चल दी।

कार के चलते ही मुनीम और रोकड़िया "हाय, लुट गए—डाका पड़ गया—पकड़ो!" चिल्लाते हुए दूकान के बाहर निकले। इस शोर-गुल से भीड़ इकट्ठी होने लगी। जब तक लोग सुनें कि क्या हुआ, पूरी बात समझें और सोचें कि क्या किया जाय, तब तक कार मेस्टन रोड पार करके माल रोड पर घूम पड़ी थी।

क्वींस पार्क के पीछे किले की तरफ कार रोक दी गई। पाँचों आदमी कार से उतर पड़े—माल रोड की एक गली में वे घुसकर तितर-बितर हो गए। रुपया सरदार के पास रहा।

उसी दिन शाम को उन लोगों की फिर एक बैठक हुई। इस डाके से कानपुर नगर में बड़ी सनसनी फैल गई थी, लेकिन यह निश्चित हो गया था कि उन लोगों में एक भी आदमी नहीं पहचाना गया है। इतनी आसानी से डाका डाला जा सकता है—प्रभानाथ ने यह पहले कभी न सोचा था।

दूसरा खंड

पहला परिच्छेद

"कितने जोरों की सर्दी है—हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं ! प्रभानाथ, कितना बजा है ?"

"एक बजकर पंद्रह मिनट !" टार्च के प्रकाश में हाथवाली घड़ी को देखते हुए प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ एक बजकर पंद्रह मिनट, और गाड़ी आती है तीन बजे ! दानव-सी काली, डरावनी और लंबी रात, और उस पर यह पाले की हवा !" प्रभानाथ हँस पड़ा, "लेकिन—लेकिन, शायद इस सबका भी जिंदगी में एक विशेष स्थान है, एक विशेष महत्ता है !"

"हो सकता है, लेकिन मुझे अगर इस महत्ता की जगह इस वक्त एक प्याला गरम चाय मिल सकती तो ज्यादा अच्छा होता । आखिर इन अकड़े हुए हाथ-पैरों को तो ठीक करना पड़ेगा !" सरदार ने मुसकराते हुए कहा ।

"हाँ, और इस समय हम लोगों के हाथ-पैर का काम है; विचारों का काम समाप्त हो चुका !" इतना कहकर वीणा ने थरमस फ्लास्कवाली चाय का आधा-आधा प्याला वहाँ एकत्रित पाँचों आदमियों को दिया ।

ये पाँचों व्यक्ति रायबरेली से चौदह मील की दूरी पर रेलवे लाइन के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे । २१ दिसम्बर, १९३० की काली रात—चारों ओर गहरा अंधकार छाया हुआ था । इन पाँचों के पास पिस्तौलें थीं और ये अपने मुँह पर नकाबें डाले हुए थे । कुछ दूर पर एक कार खड़ी थी, जिस पर ये लोग आए थे ।

इन पाँच आदमियों में प्रभानाथ और वीणा के अलावा तीन आदमी और थे जिनका थोड़ा-सा परिचय इस जगह आवश्यक है । पहले थे सरदार । सरदार का नाम था विजयसिंह और वह इस दल का मुखिया था । विजयसिंह की अवस्था लगभग तीस वर्ष की थी और वह कानपुर में मोटर इंजीनियर था ।

चौथे का नाम था मार्तंड और वह लखनऊ यूनिवर्सिटी में डिमांसट्रेटर था उसकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की थी । पाँचवें का नाम था मनमोहन और मनमोहन के संबंध में सरदार को छोड़कर और किसी को कोई ज्ञान न प

मनमोहन कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है—यह सब-का-सब
उसके परिचितों के लिए एक रहस्य था।

मार्तण्ड चाय पी रहा था और कहता जा रहा था, "नहीं, बोसाजी, विचारों का काम न कभी खत्म हुआ है और न कभी खत्म होगा। हमारे—यानी हरएक मनुष्य के हर काम की तह में एक विचार है।"

मनमोहन हँस पड़ा, "हाँ! हरएक मनुष्य के हर काम की तह में एक विचार है; लेकिन हरएक आदमी मनुष्य है कहाँ? फिर हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, कभी-कभी उस पर गौर से सोचने पर यह मालूम होता है कि वह चीज़ मनुष्यता से परे है!"

प्रभानाथ ने ध्यान से मनमोहन को देखा, मनमोहन सिर झुकाये बैठा था। लेकिन उसे शायद प्रभानाथ की उस कौतूहल से भरी दृष्टि का पता था। उसने कहा, "आप इस तरह मुझे देख क्यों रहे हैं? मैंने यह तो नहीं कहा कि चीज़ यह मनुष्यता से गिरी हुई है, मैं शायद उसे मनुष्यता से ऊपर की चीज़ भी कहना चाहूँगा। आप ही सोचिए—हम जो कुछ कर रहे हैं, क्या उसका यश हमें कभी मिलेगा? इतनी भयानक रात! हाथ-पैर ठिठुर रहे हैं; और हम यहाँ, इस एकांत जंगल में बैठे हैं। हम लोग इस समय बड़े मज़े में लिहाफ़ के भीतर पैर फैलाए मीठी नींद सो सकते थे। और मैं पूछता हूँ कि आखिर यह सब किसलिए? ट्रेन को रोककर खज़ाना लूटने के लिए न! उस खज़ाने के साथ राइफ़लें लिए हुए पुलिसमैन होंगे, खज़ाना बचाने के लिए। बहुत सम्भव है, वे हमारा मुक़ाबला करें और गोलियाँ चलाएँ। कौन जानता है कि हममें से किसको यह गोली लगे। और अब सवाल यह है, कि हम यह खज़ाना क्यों लूट रहे हैं? इसलिए न कि हमें अस्त्र-शस्त्र मँगाने के लिए रुपया चाहिए। यह रुपया हमारे निजी उपयोग में नहीं आएगा, यह रुपया हम देश के काम के लिए लूट रहे हैं। और इन सब के बदले हमें मिलता क्या है? हम खुले आम चलने से डरते हैं, हम अपना नाम नहीं ज़ाहिर कर सकते, हम आपस में एक-दूसरे से खुलकर नहीं मिल सकते। हर समय हमें एक कृत्रिम जीवन बनाए रखना है, हमें एक आवरण के नीचे रहना है, और उस आवरण को हटाकर साँस लेने का भी तो हमारे पास समय नहीं।"

मनमोहन कहते-कहते अचानक रुक गया, विजयसिंह एक गाना गुनगुना रहा था।

सर की बाज़ी से मुल्क का बाज़ार गर्म हो,
सर आज हथेली पर है, बोली बोलो।

मनमोहन गौर से इस गाने को सुनने लगा। कितना मीठा स्वर था। विजय-सिंह की आवाज़ थोड़ी-सी काँप रही थी। मनमोहन ही नहीं, सभी लोग मन्त्रमुग्ध की भाँति उस गाने को सुन रहे थे। विजयसिंह रुक गया, उसने [illegible] फिर उसने मनमोहन की ओर देखा, "भाई, अपनी।

गए ?"

मनमोहन ने झुँझलाकर कहा, "बात किससे कहूँ ? तुम लोग सब-के-सब अजीब तरह की मस्ती में गर्क हो; भगवान् जाने इस मस्ती का अंत क्या ? लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं इस कृत्रिम जीवन से ऊब गया हूँ। भेदों को छिपाते-छिपाते मैं आजिज आ गया हूँ। मैं किसी पर विश्वास नहीं कर सकता, किसी से खुलकर मिल नहीं सकता। और इस सब का असर यह हुआ कि मेरी आत्मा संकुचित हो गई है। और रही वीरता···वहाँ भी···" मनमोहन ने न जाने क्यों यह वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"वहाँ भी ?···" जरा कड़े स्वर में विजयसिंह ने पूछा।

"जाने भी दो, वह बात न कहूँगा। उसको सुनकर हममें से हरएक को धक्का लगेगा।"

"नहीं मनमोहन, बात उठी है तो कह ही डालो !" मार्तंड ने कहा।

"अच्छी बात है। अगर कटु सत्य सुनना ही चाहते हो तो कहता हूँ। हम सब समझते हैं कि हम वीर हैं—है न ? और मैं समझता हूँ कि हम सब कायर हैं ! हम सब वीर थे, ऐसे वीर कि किसी भी देश को हमारी वीरता पर गर्व हो सकता था, और उसी वीरता के कारण हम सब प्राणों की बाजी लगाकर निकल पड़े हैं। लेकिन अब हम सब घोर कायर बन गए हैं। जिस तरह हम रहते हैं, जिस तरह हम काम करते हैं, उससे हमारी वीरता तिल-तिल घुटकर मर गई। अब हमारे समान कायर कोई नहीं है !"

"मैं इसका सबूत चाहता हूँ !" खड़े होकर और छाती फुलाकर विजयसिंह ने कहा।

"सबूत !···हा-हा-हा !" एक व्यंग्यात्मक हँसी हँसते हुए मदनमोहन ने कहा, "हमारी हरएक हरकत में इसका सबूत है। आखिर हमारी यह कृत्रिम जिंदगी ? हम जो कुछ करते हैं, वह चुरा-छिपाकर क्यों करते है ? यह सब केवल इसलिए कि हम डरते हैं, हममें एक प्रकार का भय भर गया है; और यह भय ही कायरता है !"

विजयसिंह बैठ गया, "नहीं मनमोहन, यह भय नहीं है, यह बुद्धिमानी है। हम लोग जानते हैं कि जो कुछ हम करते हैं, उसका दंड मृत्यु है, लेकिन फिर भी हम वही सब करते हैं। मृत्यु से हमें डर नहीं, लेकिन बेकार के लिए हम मृत्यु को अपनाना नहीं चाहते। आत्म-रक्षा को तुम भले ही कायरता कहो, मैं तो उसे सिर्फ बुद्धिमानी कहूँगा !"

मनमोहन ने विजयसिंह को देखा—उसकी भौंहें सिकुड़ी हुई थीं, उसके मत्थे पर बल पड़े थे—ऐसा मालूम होता कि विजयसिंह ने उसके मन की बात कह दी हो। उसने एक ठंडी साँस ली, "यही उत्तर मैं भी अपने अंदर वाले तर्क को दे दिया करता हूँ, और इसी उत्तर से अपने कामों को ठीक साबित करने की कोशिश करता रहता हूँ। लेकिन विजयसिंह—संतोष नहीं होता, जरा भी संतोष नहीं

होता। पीछे से हमला करना, अँधेरे में काम करना, अज्ञात में रहना! हमारी जिंदगी सच्ची नहीं, सीधी नहीं। हमारा अस्तित्व एक भयानक झूठ है। माना कि एक बहुत बड़े काम के लिए हमें यह सब करना पड़ता है, लेकिन एक बड़े काम के लिए अपनी मनुष्यता को इतना गिरा लेना, जीवन के श्रेष्ठ आदर्शों से इतना अलग हो जाना—यह कहाँ तक उचित है?"

मनमोहन चुप हो गया। गहरा सन्नाटा छाया था और हरएक आदमी सोच रहा था। मनमोहन ने जो बात कह दी थी, वह ऐसी नहीं थी कि उसकी उपेक्षा की जा सके। उसकी बात उस पाले की रात से अधिक ठंडी थी—मनमोहन ने स्वयं उसका अनुभव किया, फिर उसने धीरे से कहा, मानो वह यह बात अपने से ही कह रहा हो, "यह कहाँ तक उचित है—यह प्रश्न ही क्यों? हमारे आदर्श हो क्या हैं? यही नहीं, हमारा जीवन ही क्या है? हम में से हरएक वह काम करता है, जिसमें उसे सुख मिलता है; और वह अपने काम के औचित्य को सिद्ध करने के लिए एक आदर्श गढ़ लेता है। हममें हिंसा है, और हमें उस हिंसा को तुष्ट करना है। हम मरते हैं इसलिए कि हमें मरना है। रोग और बेकारी से न मरकर हम दूसरों का हित करने के लिए मरते हैं। हम मरते हैं—और जिसे हम मारते हैं, वह आज नहीं तो कल जरूर मरेगा। लेकिन उसके आज मरने से देश का कल्याण है, उसके हमारे हाथ से मरने से देश का कल्याण है, और इसलिए हम मारते हैं…" मनमोहन कहते-कहते उठ खड़ा हुआ, "और हम ठीक करते हैं। हम बचने की कोशिश करते हैं, हम छिपकर काम करते हैं, हम पीछे से प्रहार करते हैं—यह सब अपने लिए नहीं, अपने आदर्श के लिए। हम में से हरएक के जीवित रहने से हमारा आदर्श पनप सकता है, हमारा काम बन सकता है।"

विजयसिंह ने कड़े और गंभीर स्वर में कहा, "मनमोहन! चुप रहो! गाड़ी आने का वक्त हो रहा है।"

और दूर से ट्रेन की आवाज सुनाई पड़ी, रात के गहरे सन्नाटे को चीरती हुई। सब लोग उठ खड़े हुए। उस समय उन लोगों में एक अजीब तरह की स्फूर्ति आ गई थी। सब लोग रेलवे लाइन के आस-पास खड़े हो गए। इंजिन की सर्चलाइट उस अंधकार के कुछ थोड़े-से भाग को प्रकाशमय बनाकर अंधकार की भयानकता को और भी भयानक बना रही थी। वे पाँचों आदमी दरख्तों की आड़ में छिपे थे। गाड़ी आई और तेजी से निकल गई—रुकी नहीं।

विजयसिंह ने कहा, "अरे! यह क्या हुआ?"

"चुप रहो!" मनमोहन बोल उठा, "और मुझे सोचने दो। गाड़ी रुकी क्यों नहीं? क्या वे लोग जगह भूल गए? क्या वे लोग सो गए? क्या वे लोग इस गाड़ी में थे भी? मामला क्या है?" और वह प्रभानाथ की ओर घूमा, "प्रभानाथ, हमें रायबरेली चलना होगा!"

"हाँ! हमें रायबरेली चलना होगा!" विजयसिंह ने समर्थन किया।

"लेकिन रायबरेली चलने से फायदा?" मार्तंड ने पूछा। [illegible]

एक कार का स्टेशन पर रुकना और फिर वहाँ से चल देना! लोगों में शक हो सकता है। नहीं, हमें लखनऊ चलना चाहिए; वहीं पता लग सकता है।"

सब लोग कार पर बैठ गए; प्रभानाथ ड्राइव कर रहा था। विजयसिंह, मार्तंड, मनमोहन—ये तीनों पीछे थे। वीणा और प्रभानाथ आगे। कार चल रही थी और मनमोहन बोल रहा था—अपने से, 'गाड़ी निकल गई—और अच्छा ही हुआ। लेकिन मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मुझमें यह भावना क्यों उठ रही है! खतरे से यह झिझक, संघर्ष के प्रति यह उदासीनता—आखिर यह सब क्यों? क्या हम सब लोगों में यही भावना थी—क्या हम सब लोगों को गाड़ी निकल जाने से एक खुशी-सी हुई?'

"नहीं!" विजयसिंह ने कहा, "गाड़ी निकल जाने से मुझे अफसोस हुआ!"

"हूँ? देखता हूँ कि मेरी नर्व्स कुछ कमजोर हो रही हैं। जाने भी दो। अब लखनऊ चलकर उन लोगों से दरियाफ्त करना है कि यह सब क्यों हुआ। प्रभानाथ, क्या हम लोग ट्रेन पहुँचने से पहले लखनऊ पहुँच जाएँगे?"

"करीब एक घंटा पहले!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"एक घंटा तो बहुत समय होता है! यह एक घंटा प्रगाढ़ निद्रा में डूबे हुए लखनऊ शहर में न बिताकर अगर हम यहीं, इस सड़क पर बिताएँ तो ज्यादा अच्छा होगा। वीणाजी! क्या थोड़ी-सी चाय है?"

"हाँ! अभी थरमस की दूसरी बोतल भरी हुई है!" वीणा ने कहा।

"तो प्रभानाथ, कार रोक दो। हम लोग एक-एक प्याला चाय और पी लें!"

प्रभानाथ ने कार रोक दी। वीणा ने थरमस से निकालकर सबको एक-एक प्याला चाय दी।

इसी समय कार के पास आकर एक इक्का रुका। थानेदार रामप्रकाश अपने इलाके के सबसे बड़े जमींदार की दावत खाकर इक्के में बैठे घर लौट रहे थे। सड़क के बगल में एक मोटर कार को खड़ी देखकर थानेदार साहब को शक हुआ। कांस्टेबिल भोला को उन्होंने यह पता लगाने को भेजा कि कार में बैठे हुए लोग कौन हैं और क्या कर रहे हैं।

भोला ने आकर प्रभानाथ से कहा, "क्या आप लोगों की मोटर खराब हो गई है? थानेदार साहब का इक्का है—वहाँ! कहिए तो वह आप लोगों को रायबरेली तक पहुँचा दे!"

"नहीं, हमारी मोटर बिलकुल अच्छी है। हम लोग जरा चाय-वाय पी रहे हैं।"

भोला ने लौटकर रामप्रकाश से कहा, "दारोगाजी, मोटर तो ठीक है। चार-पाँच आदमी हैं और साथ में एक औरत भी है। और वे लोग कुछ पी रहे हैं।"

"समझ गया। साले बदमाश हैं। मालूम होता है किसी औरत को कहीं से भगाए लिए जा रहे हैं!" यह कहकर रामप्रकाश इक्के से उतर पड़े और कार

की तरफ बढ़े।

प्रभानाथ ने जरा घबराहट के साथ कहा, "यह पुलिस-इंस्पेक्टर तो बुरा हमारे पीछे पड़ा। अब क्या करना चाहिए ?"

"आने भी दो—देखो क्या होता है !" मनमोहन ने अपनी पिस्तौल सँभालते हुए उत्तर दिया।

रामप्रकाश कार के नजदीक आ गए। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि आप लोग कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं और यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

उत्तर में विजयसिंह ने कहा, "पहले हम यह जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं और आपको क्या हक है कि आप हम लोगों से यह सवाल करें ?"

"मैं सब-इन्स्पेक्टर हूँ, इस इलाके का इंचार्ज हूँ !"

"आप बहुरूपिये हैं !" मदनमोहन ने कहा और हँस पड़ा, "जाइये थानेदार साहब, अपना काम देखिये।"

"भोला !" रामप्रकाश ने आवाज दी, "जरा दियासलाई तो लाना, इन लोगों की शक्ल देखूँ।" और भोला ने जो वहीं खड़ा था, दियासलाई जलाई। थानेदार रामप्रकाश सहमकर दो कदम पीछे हटे, "अच्छा तो आप लोग नकाब-पोश हैं यानी बदमाश हैं। आप लोगों को थाने पर चलना होगा।" अपना रिवॉल्वर निकालते हुए उन्होंने कहा।

"बेवकूफ कहीं का ख्वामख्वाह जान देने आया है, तो ले !" और इसके पहले रामप्रकाश अपना सर्विस रिवाल्वर तानें, मनमोहन के पिस्तौल की गोली रामप्रकाश के मत्थे में घुस गई। "मार डाला सालों ने !" कहते हुए रामप्रकाश वहीं गिर पड़े।

भोला रामप्रकाश की चीख सुनकर भागा, लेकिन विजयसिंह ने डपटकर कहा, "खबरदार जो भागे—हम तुम्हें मारेंगे नहीं !" भोला रुक गया। सब लोगों ने उतरकर भोला को पेड़ से बाँध दिया। इसके बाद मनमोहन ने राम-प्रकाश का रिवॉल्वर अपने कब्जे में लिया। इक्कावाला गुम-सुम बेहोश-सा बैठा था। उन लोगों ने उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे इक्के में ही डाल दिया। फिर कार लखनऊ की तरफ रवाना हो गई।

जैसे ही कार स्टेशन के पास रुकी, वैसे ही इलाहाबाद वाली गाड़ी आ गई। दो क्रान्तिकारी गाड़ी से उतरे, इन लोगों के हाथ यह काम सिपुर्द किया गया था कि ये जंजीर खींचकर निर्दिष्ट स्थान पर गाड़ी रोक दें।

मनमोहन ने एक से पूछा, "क्या हुआ जो तुमने गाड़ी नहीं रोकी ?"

अगले डिब्बे की ओर इशारा करते हुए उसने उत्तर दिया, "देखते हो ?"

मनमोहन ने देखा कि गोरी फौज की एक कम्पनी उस डिब्बे से उतर रही है।

"हाँ, समझ गया। अच्छा अब एक महीने के लिए हमें गायब होना है। हम लोगों को जरा सावधान रहना पड़ेगा।"

२

सब लोग चले गए; कार पर केवल तीन व्यक्ति रह गए—प्रभानाथ, वीणा मनमोहन। मनमोहन आंखें बंद किए हुए पिछली सीट पर बैठा था। नाथ ने मनमोहन से कहा, "कहिए, अब आप कहां जाइएगा ?"

मनमोहन ने चौंककर आंखें खोल दीं। उसने अपने चारों ओर देखा, मानो उस जगह को पहचानने की कोशिश कर रहा हो, जहां वह है। फिर उसने से कहा, "मैं खुद नहीं जानता कि मैं कहां जाऊंगा!" और वह मुसकरा आ। गाड़ी से उतरते हुए उसने कहा, "मैंने सोचा नहीं था कि कहां जाना होगा। ता घर-बार कुछ नहीं है। सोचा था लखनऊ में कुछ दिन रहूंगा, लेकिन देखता कि मुझे यहां से चल ही देना चाहिए।"

प्रभानाथ आश्चर्यचकित मनमोहन को देख रहा था। उसकी बातें अजीब रह की थीं, उसे कौतूहल हुआ। उसने कहा, "अगर आप इतने ही फालतू हैं, जितना आपने अपने को इस समय प्रदर्शित किया है, तब तो आपको मेरे यहां कुछ दिन रहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं—आप ही ने मुझसे कार से उतरने को कहा था!" मनमोहन हंस पड़ा और वह कार में फिर से बैठ गया।

जिस समय ये लोग उन्नाव पहुंचे, पंडित रामनाथ तिवारी पूजा समाप्त कर के उठे थे। वीणा अपने कमरे में चली गई, प्रभानाथ मनमोहन को साथ लेकर अपने पिता के पास गया। "यह मेरे मित्र मनमोहन हैं। मेरे क्लास-फेलो थे, आज सुबह आए हैं।" प्रभानाथ ने अपने पिता से मनमोहन का परिचय कराया।

"मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई!" मदनमोहन के नमस्कार का उत्तर देते हुए रामनाथ ने कहा, "इनका असबाब वगैरह रखवाओ!"

प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ दिन भर के लिए ये कानपुर से आए हैं।"

रामनाथ तिवारी से कुछ थोड़ी-सी बातें करके दोनों अंदर गए। पीछे वाले बरामदे में वीणा चाय और नाश्ता लिए बैठी इन दोनों का इंतजार कर रही थी। तीनों ने बैठकर चाय पी।

"अब क्या हो ?" नाश्ता समाप्त करके मनमोहन ने पूछा।

"अब सोया जाय!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"आप लोग सोइए, मुझे तो स्कूल जाना है। अगर संभव हुआ तो स्कूल में थोड़ा-सा सो लूंगी।"

प्रभानाथ मनमोहन को अपने कमरे में ले गया। मनमोहन को लेटाकर प्रभानाथ जब लौटा, वीणा बरामदे में, मौन बैठी कुछ सोच रही थी। वह अपने विचारों में इतनी खोई हुई थी कि उसे प्रभानाथ के आने का पता तक न लगा।

प्रभानाथ वीणा की कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया। वीणा के कंधे पर हाथ रखते हुए उसने कहा, "कहो, क्या सोच रही हो ?"

वीणा वैसे ही बैठी रही, उसने केवल अपना सिर उठा दिया।
प्रभानाथ की आँखों से अपनी आँखें मिलाते हुए उसने कहा, "प्रभा! मैं सोच रही थी कि जो कुछ हो रहा है, वह गलत हो रहा है। और मनमोहन को यहाँ ठहराकर तुमने अच्छा नहीं किया।"

"क्यों?"

"मेरा ऐसा ख्याल है कि मनमोहन का नाम मनमोहन नहीं है—उसका नाम प्रभाकर है।"

प्रभानाथ चौंक उठा। 'प्रभाकर' नाम से वह परिचित था—वही नहीं, सारी दुनिया उस नाम से परिचित थी। प्रभाकर के नाम करीब पन्द्रह वारंट थे, और वह लापता था।

प्रभानाथ कुछ सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन वह प्रभाकर नहीं हो सकता। जिस तरह की वह बातें करता रहा है उस तरह की बातें प्रभाकर के मुख से सुनने की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता।"

वीणा उठकर खड़ी हुई। प्रभानाथ के पास, बहुत पास आकर उसने कहा, "नहीं, प्रभा! जिस तरह की बातें मनमोहन ने की, उस तरह की बातें एक ऐसा ही आदमी कर सकता है, जिसने सिद्धांत और कर्म के साथ अपना जीवन तन्मय कर दिया हो। और तुमने देखा—उस सब-इंस्पेक्टर को गोली मारने वाला आदमी कोई अनाड़ी नहीं हो सकता।"

दोनों एक-दूसरे को थोड़ी देर तक मौन देखते रहे। वीणा ने फिर कहा, "प्रभा! क्या तुम पीछे नहीं लौट सकते? यह सब गलत है—एकदम गलत है। न जाने क्यों मेरे अंदर एक भय समा गया है—ऐसा भय, जिसका मैंने पहले कभी अनुभव न किया था।"

प्रभानाथ एकाएक जोर से हँस पड़ा, "नहीं, भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें मरना है—एक-न-एक दिन अवश्य, फिर चिंता क्यों?" और प्रभानाथ ने वीणा को आलिंगन-पाश में कस लिया।

उस समय वीणा का सारा शरीर पुलक से ढीला पड़ गया था। दोनों के अधर मिले—और एकाएक उन्हें एक अजीब तरह की कराह सुनाई दी। दोनों ने चौंककर एक-दूसरे को छोड़ दिया।

प्रभानाथ ने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। मनमोहन के कमरे का दरवाजा बन्द था। प्रभानाथ ने कहा, "यह कराह किसकी थी?"

"मैं नहीं जानती—नहीं जानती!" वीणा ने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया। और प्रभानाथ ने देखा कि वीणा काँप रही है, उसकी आँखों में आँसू भर आए हैं।

३

शाम के समय जब प्रभानाथ मनमोहन के कमरे में गया, उसने देखा कि मनमोहन पलंग पर आँखें बंद किए हुए लेटा है। प्रभानाथ के पैरों की आहट पाते

ही उसने आँखें खोल दीं, और मुसकराते हुए उसने कहा, "बड़ी अच्छी नींद आई। तबीयत एकदम हल्की हो गई। तुम भी सो लिए न ?"

प्रभानाथ ने सामने का दरवाजा खोल दिया, उस समय आसमान में बादल घिरे हुए थे। उत्तरी हवा का एक ठंडा झोंका कमरे में आया और मनमोहन उठ बैठा। प्रभानाथ ने एक कुर्सी उठाकर पलंग के पास डाल दी और वह उस कुर्सी पर बैठ गया। मनमोहन ने कहा, "तुम्हारा बंगला कितना अच्छा है, कितना शांत है ! क्यों प्रभानाथ, इस सुख और वैभव को छोड़कर तुम हम लोगों के कीचड़ में कैसे फँस गए ?"

प्रभानाथ ने कुछ सोचकर जवाब दिया, "मैं नहीं जानता। शायद अपने भीतर से एक प्रेरणा मिली।"

"अपने भीतर से एक प्रेरणा मिली !" मनमोहन खिलखिलाकर हँस पड़ा, "भीतर से प्रेरणा मिलती है—आज पहली बार ऐसी मजेदार बात सुन रहा हूँ। नहीं मिस्टर प्रभानाथ, इस तरह की बात से मुझे धोखा देने की कोशिश करना बेकार है।"

प्रभानाथ का चेहरा तमतमा उठा। उसने कहा, "आप मुझे झूठा कहकर मेरा अपमान कर रहे हैं, मिस्टर मनमोहन !"

"देखो, नाराज होने की कोई बात नहीं; मैंने तुम्हें झूठा तो नहीं कहा, बहुत संभव है कि तुम सच ही कह रहे हो। ऐसी हालत में तुम खुद अपने को धोखा दे रहे हो ! खैर, जाने भी दो इस बात को, अब एक सवाल और है—वीणा का और तुम्हारा कैसा संबंध है ? क्या यह बात ठीक है कि तुम्हें इस दल में लाने का श्रेय वीणा मुकर्जी को है ?"

प्रभानाथ खड़ा हो गया, तनकर। "आप मेरे अतिथि हैं, मिस्टर मनमोहन, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आप इस तरह की अनाप-शनाप बातें करके मेरा और वीणा का अपमान करें। व्यक्तिगत मामलों में इस तरह दिलचस्पी लेना मनुष्य में संस्कृति का अभाव प्रदर्शित करता है। अगर आप अब आगे इस तरह की बातें करेंगे तो मुझे भी अशिष्ट होना पड़ेगा।"

मनमोहन ने प्रभानाथ का हाथ पकड़कर जबरदस्ती बिठलाते हुए कहा, "यह व्यक्तिगत मामला नहीं है, मिस्टर प्रभानाथ; क्रांतिकारी के पास व्यक्तिगत जीवन नाम की कोई चीज नहीं होती, यह आप हमेशा याद रखिएगा; इस तलवार की धार वाले रास्ते पर आने के बहुत पहले ही आपको यह समझ लेना चाहिए था कि आप व्यक्तिगत-रूप से मर चुके। आप एक संस्था के अंग-मात्र रह गए हैं, जिस पर संस्था का पूर्ण अधिकार है। अगर आपको आज संस्था से यह आदेश मिले कि आप वीणा को गोली से मार दें तो आपको वीणा के प्रति आपका प्रेम कभी भी उस आदेश का पालन करने से नहीं रोक सकता। और इसलिए, इस संस्था के प्रमुख प्रतिनिधि होने के नाते मुझे आपसे यह सब पूछने का पूर्ण अधिकार है !"

प्रभानाथ निष्प्रभ हो गया और उसने अपना सिर झुका लिया। इस हालत में वह कुछ देर बैठा रहा, फिर उसने धीरे से कहा, "शायद आप ठीक कहते हैं, मिस्टर मनमोहन, लेकिन इससे पहले कि मैं आपको अपनी कैफियत दूँ, मुझे यह भी जान लेना चाहिए कि आप कौन हैं।"

"मैं कौन हूँ?" मनमोहन चौंक उठा, "क्यों, यह प्रश्न कैसे उठा?"

"इस तरह कि आपका नाम मनमोहन नहीं है, और हम लोगों में कोई भी, सरदार को छोड़कर, आपको जानता भी नहीं है। जब तक मैं यह न जान लूँ कि मुझसे इस प्रकार के प्रश्न करनेवाला कौन है, तब तक···" प्रभानाथ कहते-कहते रुक गया। उसी समय वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। वह स्कूल से पढ़ाकर लौटी थी।

वीणा ने आते ही कहा, "कहिए! आप लोगों में क्या बातें हो रही थीं जो आप लोग इतने गंभीर हैं?"

उत्तर मनमोहन ने दिया, "जो बातें हो चुकी हैं, उन्हें दोहराना बेकार है; मिस्टर प्रभानाथ से आपको वे बातें मालूम हो ही जाएँगी और इसीलिए वे बातें जारी भी रहेंगी, क्योंकि मैं जो बातें प्रभानाथ से करूँगा वे आपसे छिपी न रहेंगी!"

इस बार मनमोहन प्रभानाथ की ओर मुड़ा, "हाँ! तो आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ? और मैं आपको बतलाता हूँ, इसलिए कि मेरी वजह से आप लोग कुछ थोड़े से खतरे में हैं!" मनमोहन मुसकराया, "इसलिए बतलाता हूँ ताकि आप इस खतरे से आगाह हो जायँ और फिर आप निर्णय करें कि मैं आप लोगों का आतिथ्य स्वीकार करूँ या नहीं। आप लोगों ने प्रभाकर का नाम तो सुना ही होगा, उसी प्रभाकर का नाम जिसके पीछे पुलिस बुरी तरह पड़ी है। तो मैं वही प्रभाकर हूँ, मिस्टर प्रभानाथ! और जहाँ तक तुम्हारी बात है, उसे पूछकर मैंने गलती की, वह इतनी स्पष्ट है कि उसके सबंध में तुमसे पूछना मुझमें कल्पना का अभाव ही प्रदर्शित करेगा!"

थोड़ी देर तक तीनों मौन रहे। मनमोहन ने फिर कहा, "मैंने तुम्हें अपना पूरा परिचय दे दिया; जब इस बात का निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि मैं यहाँ अधिक ठहरूँ या नहीं। इतना मैं जानता हूँ कि लोग 'प्रभाकर' नाम को ही जानते हैं, प्रभाकर को नहीं जानते। प्रभाकर एक छाया-सा आता है और धुएँ-सा गायब हो जाता है, उसे सहज ही पकड़ना कठिन काम है। फिर भी एक सुरक्षित स्थान तो बेचारे के पास होना ही चाहिए। तुम्हारे पिता ताल्लुकेदार हैं, आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं, सरकार के भक्त हैं। यहाँ, इस बगले में प्रभाकर हो सकता है, इसकी कोई कल्पना तक नहीं करेगा, और इसी से मैं तुम्हारे साथ चला आया हूँ। इरादा था कि चार-छः दिन यहाँ रहूँगा, पर अब वह इरादा भी बदल रहा है। लंबी दुनिया मेरे सामने पड़ी है, और उस दुनिया में स्थान की कमी नहीं है—निश्चिन्त और निर्विघ्न, सिर्फ इन्सान के पास आँखें होनी चाहिए!"

प्रभानाथ ने कहा, "लेकिन आप से जाने को कौन कह रहा

कहता हूं कि आप यहां जरूर ठहरें, दस दिन, पंद्रह दिन—जब तक आपका जी चाहे।"

इसी समय बाहर से आवाज आई, "प्रभा !"

आवाज रामनाथ तिवारी की थी।

"जी, आया !" और प्रभानाथ चला गया। अब वीणा और मनमोहन रह गए।

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे, एक-दूसरे की ओर एकटक देखते हुए। अंत में वीणा ने उस मौन को तोड़ा, "मिस्टर मनमोहन, आप कौन हैं, इसका अनुमान मैंने पहले ही कर लिया था। अब एक सवाल मैं आपसे कर रही हूं, ठीक-ठीक उत्तर दीजिएगा।

मनमोहन हंस पड़ा, "मैं आपका सवाल जानता हूं। आप यह पूछना चाहती हैं कि मैं यहां क्यों ठहर रहा हूं; है न ऐसा ? और यहां पर मेरा रुकना आपको पसंद नहीं।"

"आप शायद ठीक कहते हैं !" वीणा ने धीरे से कहा।

"और मैं यह भी बतला दूं कि मेरा यहां रुकना आपको पसंद क्यों नहीं है। आपको प्रभानाथ के हिताहित का इतना खयाल नहीं है जितना आपको अपने सुख और अपनी तुष्टि का खयाल है। आप प्रभानाथ से प्रेम करती हैं, और आप प्रभानाथ को अकेले लेकर अपने सपनों की दुनिया में रहना चाहती हैं। उस दुनिया में दूसरों का आना आपको पसंद नहीं !"

वीणा ने जरा प्रखर स्वर में कहा, "आप चुप रहिए ! यह सब कहने का आपको कोई अधिकार नहीं !"

"मुझे पूरा अधिकार है, वीणाजी ! मुझे तो यहां तक अधिकार है कि मैं आप लोगों से प्रेम करने को मना कर दूं। लेकिन नहीं—यह सब करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं !" एकाएक मनमोहन का स्वर जो शिशिर ऋतु की उत्तरीय हवा की भांति रूखा और कठोर था, मलय-समीर की भांति कोमल हो गया उसकी पथराई आंखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई, "नहीं,वीणाजी—यह सब करना एक भयानक पाप होगा। मैं जानता हूं कि वह आदमी, जिसका सुख छिन चुका है, जिसके प्रेम की भावना तिल-तिल घुटकर मर चुकी है—वह अपनी प्रतिहिंसा में इतना नीचे गिर सकता है, वह दूसरों के सुख, दूसरों के प्रेम को नष्ट करने में ही सुख समझे; और कभी-कभी मुझ पर यह कुत्सित भावना अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करती है। लेकिन नहीं—मैं अपने को रोक सकता हूं। आपका प्रेम फले-फूले, मुझे आपके प्रेम से ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए, बल्कि एक तरह का संतोष होना चाहिए। पर आप भी एक बात याद रखिए। अपने प्रेम में आप अपने को खो न दीजिएगा। आप यह न भूल जाइएगा कि दुनिया को स्वर्ग बनाने के लिए आपने अपने को शैतान के हाथ बेच दिया है। दुनिया को आसमान पर उठाने के लिए आप स्वयं रसातल में पहुंच चुकी हैं, जहां मनुष्यता नाम

चीज का कोई अस्तित्व नहीं है। ये सारी भावनाएँ, यह ममता,
यह प्रेम, ये सपने—ये सब-के-सब आपके साथ तभी तक हैं, जब तक ये आपके एकमात्र सिद्धांत के संघर्ष में नहीं आते। ये सब-के सब जीवन में एक क्षण के लिए आकर निकल जानेवाले झूठ हैं—सत्य है केवल एक सिद्धांत, देश के हित के लिए अपने को मिटा देने वाला एक सिद्धांत !"

मनमोहन कह रहा था और वीणा का मुख पीला पड़ता जा रहा था, उसका सारा शरीर अवसन्न-सा पड़ गया था। उसकी आत्मा में एक असहनीय, भयानक अंधकार भर गया था। मनमोहन को संभवतः वीणा की इस मानसिक स्थिति का पता था। कुछ देर तक वह वीणा की तरफ कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर एकाएक वह उठ खड़ा हुआ; "अब भी समय है, वीणाजी ! हमारा मार्ग निराशा का मार्ग है और निराशा का मार्ग है ! हम सब अंदर से यह जानते हैं, खुलकर कहने की इच्छा नहीं होती। और हमें उन लोगों से बहुत बड़ा खतरा है, जिनके अदर जीवन की सुनहली किरणें खेल रही हैं। हम सब संयत आत्महत्या के पथ पर हैं। जिन्हें जीवन के प्रति मोह है, उनके लिए हमारे दल में कोई स्थान नहीं।" और मनमोहन ज़ोर से हँस पड़ा।

मनमोहन की उस हँसी से वीणा सिर से पैर तक सिहर उठी।

४

रात के समय रामनाथ तिवारी के पास प्रभानाथ, वीणा और मनमोहन बैठे थे। रामनाथ तिवारी कुछ थके हुए थे, उस दिन उन्होंने अदालत में कुछ कांग्रेसवालों को सजाएँ दी थीं। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "समझ में नहीं आता; ये सब-के-सब खुद आते हैं। गवर्नमेंट का कहना है कि समझा-बुझाकर इनसे माफी मँगवाकर इन्हें छोड़ दूं। लेकिन माफी माँगना तो दूर रहा, ये मुकदमे की पैरवी तक नहीं करते और जेल चले जाते हैं। आखिर यह क्यों ?"

मनमोहन हँस पड़ा, "ये युद्ध कर रहे हैं और इनके युद्ध करने का यही तरीका है !"

रामनाथ ने कहा, "जानता हूँ, और हँसता हूँ इस तरीके पर। लेकिन न जाने क्यों, आज इस तरीके पर हँसने को तबीयत नहीं होती। इस युद्ध से ब्रिटिश सरकार हैरान है—इतना मैं जानता हूँ। और ये बदमाश ऐसी कोई हरकत भी तो नहीं करते, जिससे इनकी अक्ल दुरुस्त की जा सके। मैं जानता हूँ कि एक दफे मशीनगन लगा दी जाय, एक दफे ये गोली से भून दिए जाएँ; और मामला एकदम खत्म हो जाय। लेकिन गोली चलाई किस पर जाय, मशीनगन से भूने कौन जायें? ये अहिंसा पर चलने वाले आदमी हिंसा का अवसर भी तो नहीं देते !"

रामनाथ कुछ देर मौन रहे और फिर बोले, "मैं देखता हूँ कि इस लड़ाई से अंग्रेज परेशान हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाय ! लोग हँसते हुए जेल जाते हैं, जेल की कठिनाइयाँ बर्दाश्त करते हैं

१६ इतने आदमी जेलों में भर गए हैं कि वहां भी जगह नहीं। यह अशांति जो खड़ी हो गई है—उसको किस तरह दूर किया जाय, मुख्य प्रश्न है!"

वीणा बोल उठी, "तो ददुआ, क्या आप समझते हैं कि अहिंसा की लड़ाई सफल हो सकती है?"

"लड़ाई—लड़ाई! कैसी लड़ाई? क्या इसी को लड़ाई कहते हैं? लोग जेल जाते हैं—जाएं! इससे सरकार का क्या बिगड़ेगा? लेकिन इस सब के पहले एक सवाल और उठता है—यह अहिंसा कब तक कायम रह सकती है? इतना संयम—इतना त्याग, जो कुछ महात्मा गांधी सिखलाते हैं, यह देवताओं की चीजें हैं; मनुष्य के वश की बात नहीं है। मैं जानता हूं कि महात्मा गांधी महान् हैं, वे तपस्वी हैं। कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि कहीं वे अवतार न हों। और मैं इतना भी मानता हूं कि उनमें इतनी साधना है कि वे अहिंसा पर कायम रह सकें। लेकिन बाकी आदमी। ये लोग अहिंसा पर कब तक कायम रहेंगे?" रामनाथ मुसकराए, "और एक बार इन्हें हिंसा अपनाने दो, फिर देखना! वहीं यह कांग्रेस बुरी तरह कुचल दी जायगी।"

मनमोहन बड़े गौर से रामनाथ की बातें सुन रहा था। उसने पूछा, "और अगर लोग सामूहिक हिंसा पर आमादा हो जाएं तो ये इतने थोड़े-से अंग्रेज कितने दिन टिक सकेंगे?"

"ये थोड़े से अंग्रेज?" रामनाथ ने मनमोहन को एक तीव्र दृष्टि से देखा, "ये थोड़े-से अंग्रेज—मैंने माना! लेकिन इनके पास है भयानक पैशाचिक हिंसा! एक-से-एक विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र से ये सुसज्जित हैं। और हम कायर गुलामों की हिंसा नपुंसकत्व से भरी हुई है—हम हिंदुस्तानी इनकी भयानक हिंसा का मुकाबला कैसे कर सकेंगे? इसके सबूत के लिए तुम्हें दूर नहीं जाना है—सन् १८५७ का गदर ले लो। उन दिनों लोग सशस्त्र थे और अंग्रेजों की फौज यहां नहीं के बराबर थी। फिर उन दिनों न हवाई जहाज बने थे, न मशीनगनें बनी थीं। इतना सब होते हुए भी क्या हुआ? हिंदुस्तानियों ने हिंदुस्तानियों को मारा—उन्होंने अकेले युद्ध ही नहीं किया, उन्होंने हत्याएं भी कीं। हजारों आदमियों को, जो बिलकुल निर्दोष थे, उन्होंने फांसी पर लटकाया और हंसते हुए तमाशा देखा।"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "नहीं, हिंसा की बात ही नहीं उठती; असल में सवाल मेरे सामने यह है कि यह अहिंसा की लड़ाई है क्या बला? इतने दिन हो गए और यह लड़ाई बराबर चलती जा रही है। हम हिंसा का जवाब उससे भी भयानक हिंसा से देकर उसे हरदम के लिए कुचल सकते हैं पर इस अहिंसा का जवाब ही हमारे पास नहीं है।"

रामनाथ ने पान खाया, इसके बाद वह मुसकराए, "मैं सच कहता हूं, प्रभा सारा सैद्धांतिक विरोध होते हुए भी मुझे इस गांधी के व्यक्तित्व के आ

झुकना पड़ता है। इन अपाहिजों में, इन नपुंसकों में, इन अकर्मण्य कायरों में कौन-सी जान इसने फूंक दी है, कौन-सा जादू इसने भर दिया है, समझ में नहीं आता !"

प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ ! तो आप समझते हैं कि यह अहिंसा का सिद्धांत गलत है ?" और उसने अपने पिता पर एक अर्थ-भरी दृष्टि डाली।

रामनाथ ने प्रभानाथ की दृष्टि का मतलब समझ लिया। उन्होंने बड़ी गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया, "प्रभा ! दया को पर से अलग कर देने में स्वराज, स्वतंत्रता नाम की किसी भी चीज के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, इतना समझ लेना। न मैं कांग्रेस पर विश्वास करता हूँ, न अहिंसा पर। मैं जानता हूँ कि अहिंसा का सिद्धांत गलत है, क्योंकि वह असंभव है, ठीक उसी तरह जैसे प्रकृति का एकमात्र नियम विषमता होने के कारण समता का सिद्धांत असंभव है। पर मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि सब-कुछ देखते हुए भी मैं कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि अगर अहिंसा का सिद्धांत संभव हो सकता, तो वह मानवता के लिए अवश्य हितकर होता। 'तुम जो कुछ बोओगे, वही काटोगे !' अंग्रेजी की यह कहावत हमारे जीवन पर पूरी तौर से लागू होती है। हिंसा का उत्तर हिंसा है, और अहिंसा का उत्तर अहिंसा ही हो सकता है। मनुष्य में बुराई-भलाई दोनों ही हैं। तुम बुराई करके मनुष्य की बुराई को ही भड़का सकते हो और भलाई करके दूसरों की भलाई को विकसित कर सकते हो।"

मनमोहन एकाएक उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका मुख कुछ अजीब तरह से विकृत हो गया था। उसने कड़े स्वर में कहा, "यह एकदम गलत बात है—एकदम गलत। मैं इस पर जरा भी विश्वास नहीं करता।" और वह वहाँ से उठकर चल दिया।

मनमोहन के इस बरताव से रामनाथ चौंक उठे। कुछ देर तक वह उस ओर जिधर मनमोहन गया था, आश्चर्य से देखते रहे, फिर उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "तुम्हारे साथी या तो बदतमीज हैं या पागल हैं। यह है कौन ?"

प्रभानाथ ने बात बनाई, "ददुआ ! यह फिलासफर हैं और इसलिए यह सनकी हैं। इनकी बात का आप बुरा न मानिएगा।"

५

मनमोहन जब घूमकर लौटा, रात हो गई थी। मनमोहन की चारपाई प्रभानाथ की चारपाई के बगल में ही पड़ी थी, और प्रभानाथ उस समय कुछ थका-सा बिस्तर पर लेटा था। मनमोहन को देखते ही वह उठ बैठा, "क्यों, आप चले कहाँ गए थे ? आपका खाना रखा है।"

अपनी चारपाई पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "मैं आज खाना नहीं खाऊँगा, मुझे भूख नहीं !" कुछ रुककर उसने फिर कहा, "प्रभा ! तुम्हारे पिता की बातें सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वे इतने गिरे हुए नहीं हैं जितना लोगों ने

उन्हें समझ रखा है !"

प्रभानाथ मुसकराया, "और न इतने बेवकूफ हैं, जितना तुमने उन्हें समझ रखा है। आज-तुमने जो कुछ किया, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। तुम उन्हें जानते नहीं ! आखिर तुम उस समय इस तरह चल क्यों दिए थे ?"

"चल क्यों दिया था ? तुम विश्वास न करोगे, लेकिन मैं सच कहता हूँ मैं तुम्हारे पिता से डरने लगा हूँ ! उस आदमी ने यह सब कहाँ से सीखा, कब सोचा, कैसे समझा ? एक-एक बात जो उसने कही, कितनी तीव्र थी, कितनी कटु थी और साथ-साथ···" मनमोहन के माथे पर बल पड़ गए, "और अगर गलत भी थी तो ऐसी कि गलती आसानी से पकड़ी नहीं जा सकती। उस आदमी के सामने जाने में, उससे बातें करने में मुझे भय लगता है !"

"लेकिन मुझ पर तो उनकी बातों का कोई असर नहीं होता !" प्रभानाथ ने कहा।

"इसलिए कि तुम उनकी बातें सुनते ही नहीं। तुम उनके इतने निकट हो कि तुम्हारे अंदरवाले भय ने उपेक्षा का रूप धारण कर लिया है। प्रभा ! मैं कल सुबह यहाँ से चल दूंगा।"

"यह क्यों ?"

"मैं भाग रहा हूँ, कायर की भाँति; पर भागने में ही मेरा कल्याण है। इस हालत में जबकि अपने सिद्धांतों के प्रति मुझ में एक हल्का-सा अविश्वास पैदा हो चुका है, मैं नहीं चाहता कि उन सिद्धांतों पर कोई बाहरी गहरा धक्का लगे। ·द्व की पीड़ा से बढ़कर और कोई पीड़ा नहीं, और इसलिए अन्तर्द्वंद्व से मैं बचना चाहता हूँ।"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से मनमोहन की ओर देखा और मनमोहन हँस पड़ा, "यह सब मेरी नर्व्स की वजह से है। तुम सोचते होगे कि मैं इस तरह की बहकी-बहकी बातें क्यों करता हूँ !" और मनमोहन एकाएक बहुत अधिक गंभीर हो गया, "सुनो, प्रभानाथ ! मैं थक गया हूँ—बहुत अधिक थक गया हूँ। आखिर मैं मनुष्य हूँ: मेरी शक्तियाँ सीमित हैं। अपने को एक हद तक ही दबाया जा सकता है। मैं कहता हूँ कि मेरा अस्तित्व एक भयानक झूठ है। मेरे सिद्धांत में सत्य है, इसका निर्णय भी तो मैं नहीं कर सकता। मेरे सिद्धांत पर लोग प्रहार करते हैं, मैं उस प्रहार का उत्तर भी तो नहीं दे सकता। और इस सब का परिणाम भयानक होता है। अपने सिद्धांत पर वाद-विवाद करके, उसके पक्ष में बार-बार तर्क देकर मनुष्य को उस सिद्धांत पर दृढ़ रहने का जो बल मिलता है, मुझे तो वह भी नसीब नहीं !"

प्रभानाथ ने दबी जबान कहा, "लेकिन मनमोहन ! (हमें दूसरों से तर्क करने की क्या आवश्यकता ? हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम अपने विश्वासों पर दृढ़ रहकर कर्म करें। तर्क विश्वास का विरोधी है, तर्क का अंत है

मनमोहन मुसकराया, "यही तो मुसीबत है, प्रभानाथ ! मैं जानता हूँ कि तर्क का अंत है अविश्वास, केवल उस समय, जब वह तर्क अपने अंदर उठ खड़ा हो। हम स्वयं अपने से जो तर्क करते हैं, वह सत्य को ढूँढ़ने के लिए करते हैं, और सत्य है अविश्वास से भरा हुआ एक भयानक अंधकार। विश्वास पर कायम रहने के लिए यह जरूरी है कि हम अपने से तर्क न करें बल्कि हम दूसरों से तर्क करें। दूसरे से हम तर्क करते हैं, सत्य को पाने के लिए नहीं, बल्कि दूसरों को अर्थात् अपने विपक्षी को तर्क में पराजित करके उस पर अपना व्यक्तित्व हावी करने के लिए, उसे अपना अनुयायी बनाने के लिए। दूसरे से तर्क करने के समय हममें अपने विश्वास की मादकता रहती है, हम अपने सिद्धांत के अंधविश्वासी पुजारी की कट्टरता को लेकर मैदान में आते हैं नहीं, प्रभानाथ ! मेरी मुसीबत यह है कि मुझे दूसरों से तर्क करने का मौका न मिलने के कारण अपने से ही तर्क करना पड़ता है !"

मनमोहन बिस्तर पर लेट गया। उसने फिर कहा, "और प्रभानाथ, मैं एक बात तुमसे भी कहूँगा, तुमने इस मार्ग में आकर गलती की, इस जीवन को अपनाने में तुमने जल्दबाजी की। तुममें पुरुषत्व है—मैं मानता हूँ; तुम मृत्यु से खेल सकते हो। साथ ही यौवन की उमंग और विश्वास के पागलपन से तुम भरे हुए हो। लेकिन मैं पूछ रहा हूँ कि यह सब कब तक ? खेल एक खेल ही है— [illegible] सकता है, जब तक [illegible] जाय, तब उसका [illegible] पानक, सपाट एक- [illegible] लेकिन उस मृत्यु से समस्त जीवन को विषाक्त बना लेना जीवन का उपहास है। जरा इस पर विचार कर लो, प्रभानाथ—अपने अंदर इस पर अच्छी तरह तर्क कर लो और फिर आगे बढ़ो। अभी समय है !"

और मनमोहन ने देखा कि प्रभानाथ सो रहा है। उसने जो कुछ कहा, वह एक गाफ़िल आदमी से कहा। दाँत किटकिटाते हुए उसने कहा, 'मूर्ख ! मूर्ख ! मूर्ख !' और उसने जबर्दस्ती अपनी आँखें मूँद लीं।

६

सुबह जब प्रभानाथ की आँख खुली, मनमोहन सो रहा था। प्रभानाथ उठकर बाग में टहलने चला गया, वीणा वहाँ मौजूद थी। रोज सुबह रामनाथ की पूजा के लिए फूल तोड़ना उसका नियम-सा हो गया था। वीणा ने प्रभानाथ से पूछा, "मनमोहन कहाँ है ?"

"वह अभी सो रहा है !" प्रभानाथ मुसकराया, "और वीणा—मेरी समझ में नहीं आता कि उसके अंदर कौन-सी उथल-पुथल, कौन-सी हलच[illegible] हुई

है। कभी-कभी तो वह अजीब तरह की बातें करने लगता है।
तो उससे डर लगता है !"

"तुमसे ज्यादा मुझे !" वीणा ने प्रभानाथ के निकट आते हुए कहा, "प्रभा !
एक बात मैं तुमसे कहूँ ? मनमोहन को यहाँ ठहराकर तुमने अच्छा नहीं किया।
जानते हो, उसने जो बातें मुझसे कहीं, और जिस ढंग से वे बातें कहीं, वह सब-
का-सब मुझे अच्छा नहीं लगा। वह कब तक रुकेगा ?"

"मैं क्या जानूँ ? उस आदमी का क्या ठिकाना ? और यह मुझसे होगा
नहीं कि अपने अतिथि से मैं जाने को कहूँ। अभी जब मैं सोकर उठा तो मैंने देखा
कि वह सो रहा है—शांत और निश्चित ! भगवान जाने कितने युग के बाद
उसे ऐसी सुख की नींद नसीब हुई। और वीणा—वह आदमी मुझे तबीयत का
बहुत नेक लगा। किस तरह मैं उसे यहाँ से जाने को कहूँ !"

वीणा फूल तोड़ चुकी थी। उसने कहा, "मैंने यह कब कहा कि आप उन्हें
यहाँ से चले जाने को कहें ? अच्छा ! ददुआ के पूजा-गृह में फूल रखकर आती
हूँ, तब चाय वगैरह का इंतजाम करूँगी। तब तक तुम मनमोहन को जगा रखो।"
और वह चली गई।

प्रभानाथ जब कमरे में वापस लौटा, मनमोहन लिहाफ़ के नीचे इधर-उधर
करवटें बदल रहा था।

प्रभानाथ ने मनमोहन को हिलाया-डुलाया और फिर उसने मनमोहन के
ऊपर से लिहाफ खींच लिया। एक जम्हाई लेकर मनमोहन उठ बैठा, "कितनी
अच्छी नींद आई ! आज बरसों बाद इतनी निश्चितता के साथ सोया हूँ !
अरे ! अभी तो सात भी नहीं बजे !" मनमोहन ने दीवार पर लगी हुई घड़ी
को देखते हुए कहा। कुछ रुककर वह फिर बोला, "तुम लोग बहुत जल्दी सोकर
उठते हो ! तुम तो, मालूम होता है, नहा भी चुके !"

"जी हाँ ! तुमने मुझे और मेरे कुल को समझ क्या रखा है ? हम लोग
ब्राह्मण हैं, उस पर कनौजिया, फिर उसके ऊपर बीस बिस्वा ! पूरे ऋषि
संतान !" और प्रभानाथ जोर से हँस पड़ा, "ददुआ को तुमने देखा ही है, कित
बूढ़े हैं। और वे इस समय देव-गृह में नंगे बदन पूजा कर रहे हैं।"

"लेकिन मुझे तो गरम पानी की जरूरत पड़ेगी—समझे।" मनमोहन
मुसकराते हुए उत्तर दिया, "और अगर इसका प्रबंध न हो सके तो मैं स्
करना टाल भी सकता हूँ !"

पूजा समाप्त करके रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठ गए। उस स
आसमान में कुहरा छाया हुआ था और हवा काटती हुई चल रही थी। वीणा
चाय तैयार करके रामनाथ के सामने रखी। रामनाथ ने पूछा, "प्रभा और उ
दोस्त कहाँ है ?"

"आ रहे हैं !" और वीणा ने चाय का प्याला अपने होंठों से लगा
चाय का एक प्याला समाप्त करके वीणा ने कहा, "ददुआ ! यहाँ इतनी

सर्दी पड़ती होगी—मैंने इसकी कल्पना तक न की थी। और इतनी सर्दी में भी आप इतनी सवेरे उठकर ठंडे पानी से स्नान करते हैं!"

रामनाथ गर्व से तन गए, "हाँ बेटी, शुरू से ही हम लोगों में यह आदत डाली गई है। हम लोग ब्राह्मण हैं, व्रती हैं। अब तो हम ब्राह्मण अपने पथ से भ्रष्ट हो गए, नहीं तो पहले हम लोग अधिक वस्त्र भी नहीं पहनते थे। केवल एक धोती और कंधे पर एक दुपट्टा।"

रामनाथ ने थोड़ी देर तक अपने सामनेवाले बाग को देखा, फिर वे बोले, "आज बड़ा दिन है। कई लोगों से मिलने जाना है।" और वे मुसकराए, "वीणा! एक बात मेरी समझ में नहीं आती। लोग 'बड़ा दिन' का त्योहार मनाकर क्या ईसा का उपहास नहीं करते?"

"ईसा का उपहास? मैं समझी नहीं।" वीणा ने कहा।

उसी समय मनमोहन के साथ प्रभानाथ आ गया। वीणा ने इन दोनों के लिए चाय बनाई। उसके बाद रामनाथ तिवारी प्रभानाथ की ओर घूमे, "प्रभा! मैं इस समय सोच रहा था कि बड़े दिन का सारा हर्ष—सारा उत्सव क्या मानवता का उपहास नहीं है?"

मनमोहन ने उत्तर दिया, "उपहास क्यों? यह दुनिया की एक बहुत बड़ी आत्मा के जन्म-दिन का उत्सव है—इतनी बड़ी आत्मा, आज की सारी सभ्य दुनिया जिसकी अनुयायी है!"

रामनाथ मुसकराए, "यही तो सारी मुसीबत है! सवाल मेरे सामने यह है कि क्या ईसा एक भी अनुयायी बना सके? जहाँ तक इतिहास बतलाता है, ईसा बुरी तरह असफल रहे। ईसा प्रेम का संदेश लाए थे, दया और त्याग का उन्होंने उपदेश दिया। और आज वे लोग, जो अपने को ईसा का अनुयायी कहते हैं, घृणा के उपासक हैं, क्रूरता और उत्पीड़न की सभ्यता को विकसित कर रहे हैं—सबसे बड़े हिंसावादी हैं।"

रामनाथ शायद आगे कुछ और कहते, पर एकाएक उनकी नजर फाटक में आते हुए इक्के पर पड़ी जिस पर झगड़ू मिश्र बैठे थे। बरसाती के नीचे इक्का रुका और झगड़ू मिश्र इक्के से उतरकर बरामदे में चढ़ते हुए बोले, "नमस्कार, तिवारीजी!"

प्रभानाथ ने उठकर झगड़ू के पैर छुए और रामनाथ ने वैसे ही बैठे-बैठे कहा, "नमस्कार, मिसिरजी! कहो, कहाँ से आ रहे हो! अच्छी तरह तो रहे?"

एक खाली कुर्सी पर बैठते हुए झगड़ू ने कहा, "हाँ, बड़ी अच्छी तरह हन! और अबहिने कानपुर से आय रहे हन! सो तिवारीजी, गाँव जाय रहे हन! तौन सोचा कि आपका बतलावत चली कि बड़के कुँवर काल जेल से छुट आए," और इतना कहकर झगड़ू अपने नटुए से तमाखू निकालकर सुरती तैयार करने लगे।

रामनाथ कुछ देर तक मौन बैठे रहे। वे अपने सामने आकाश पर छाए हुए

कुहासे को देख रहे थे जो धीरे-धीरे फट रहा था। फिर वे झगड़ू की ओर घूमे। उन्होंने धीरे से कहा, "और मार्कंडेय ?"

तमाखू बनाकर फाँकते हुए झगड़ू ने उत्तर दिया, "अरे का बताई। ...ड़े न जाने का कीन्हिन कि उन्हें पूरी सजा भुगतन का पड़ी। तौन उनके माँ अबहीं पंद्रह दिन का विलम्ब है!" इसके बाद झगड़ू ने वहाँ बैठे हुए ...गों पर एक नज़र डाली।

वीणा की ओर झगड़ू के गौर से देखने पर रामनाथ को हँसी-सी आ गई। यह हमारे स्कूल की नई प्रधानाध्यापिका हैं—मिसिरजी!"

"काहे?—का कौसल्यादेवी छोड़ दीन्हिन?"

"एक तरह से! वे जेल चली गई थीं, और फिर उसके बाद उनके स्थान पर एक प्रधानाध्यापिका की ज़रूरत तो थी ही!"

"लेकिन उनके जेल से छूटे पर?" झगड़ू ने ज़रा चिंतित होकर पूछा।

रामनाथ हँस पड़े, "उसके जेल से लौटने पर कांग्रेस उसे नौकरी देगी!"

झगड़ू ने थोड़ी देर तक रामनाथ की ओर आश्चर्य से देखा, फिर उन्होंने बहुत शांत भाव से कहा, "तिवारीजी, हम जानत हन कि आप बुद्धिमान आव! लेकिन कबहूँ-कबहूँ हमरे मन मा संका होन लागत है कि आपकी बुद्धि, दया और धर्म का तिलांजलि दै चुकी है, वह आपका मनुष्यता से नीचे गिराय दीन्हिस है!"

लेकिन झगड़ू के इस कहने का असर मानो तिवारी जी पर ज़रा भी नहीं पड़ा। उन्होंने भी उसी प्रकार शांत भाव से मुसकराते हुए उत्तर दिया, "दया और धर्म मैं समझता नहीं, मिसिरजी! दया और धर्म आप जैसे मनुष्यों के लिए हम-जैसे मनुष्यों ने बनाया है! और रही मनुष्यता से नीचे गिरने की बात—वहाँ भी मैं इतना मानता हूँ कि मैं आप लोगों की मनुष्यता छोड़ चुका हूँ! आप समझते हैं कि मैं नीचे गिरा हूँ, और मैं समझता हूँ कि मैं ऊपर उठा हूँ।"

झगड़ू एकाएक भड़क उठे, "सो आप अपने को देवता समझन लाग हो, तिवारीजी! और हम कहत हन कि आप सैतान आव—सैतान! अपने लड़का का घर से निकाल दीन्हेव और चेहरे पर सिकन नहीं आई!...राम-राम!"

इस बात को मानो रामनाथ तिवारी ने सुना ही नहीं; उन्होंने झगड़ू से केवल इतना पूछा, "अच्छा मिसिरजी! आपने मार्कंडेय को जेल जाने से क्यों नहीं रोका?"

"हम काहे का रोकित? कौनो चोरी करके, डाँका मार के, सेंध लगाय के त... जेल गा नाहीं—देस के काम के लिए जेल गा है। तौन भला हम ऊका रोक... काहे के लिए पाप के भागी बनित!"

मनमोहन ने इस बार झगड़ू को ध्यान से देखा—उसके सामने दो बूढ़े... थे, रामनाथ और झगड़ू। दोनों ही बीते हुए युग के आदमी—जीवन के संघ... से खेले हुए, और दोनों के ही अनुभव अलग-अलग, विचार अलग-अलग!

कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा मानो वे झगड़ा करने पर तुले हुए थे, "तौन तिवारीजी, एक बात हम तुम से बहुत दिना से कहा चाहत रहेन, लेकिन ओसर नाहीं मिला। सो हम सोच रहे हन कि आज कह देन ! भला यह सब तुम काहे का कर रहे हो ? ई जमींदारी और धन का मोह का तुम्हें अपनी संतान से बढ़ के है। अब बूढ़े हुइ गए हो, दुनिया की तृष्णा छोड़िके भगवत-भजन करो, और छोड़ देव सब कुछ दया पर। ऊ चाहे राखै, चाहे बहावै !"

रामनाथ तिवारी एकाएक उठ पड़े, वे तनकर खड़े हो गए। उनकी आँखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई थी, उनके मुख पर एक प्रकार की आभा खेल रही थी। छाती फुलाए हुए और अपना मस्तक ऊँचा किए हुए वे कुछ देर तक खड़े रहे—एक पाषाण-मूर्ति की भाँति, फिर उन्होंने बहुत गंभीर स्वर में कहा, "मिसिरजी ! आप गलती करते हैं। मुझे केवल एक बात का मोह है, वह है अपना, अपनी आत्मा का, अपने सिद्धांत का और अपने विश्वास का ! जो कुछ मैं करता हूँ, वही ठीक है ! जो कुछ मैं सोचता हूँ, वही सत्य है ! जब तक मैं जीवित हूँ, मैं स्वामी हूँ, उतना ही बड़ा जितना बड़ा वह, जिसकी पूजा करने का आप मुझे आदेश दे रहे हैं। जो कुछ आपको कहना था, वह नई बात नहीं। अधिकांश लोग मुझसे यही बात कहना चाहेंगे, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। लेकिन उसका असर न मुझ पर पड़ा है, न कभी पड़ेगा। इसलिए आप स्नान आदि कीजिये, थके हुए आ रहे हैं !" और इतना कहकर रामनाथ वहाँ से चले गए।

थोड़ी देर तक वहाँ गहरा सन्नाटा छाया रहा। अपने पिता के उस रूप को प्रभानाथ ने पहले कभी नहीं देखा था। वीणा ने बहुत धीरे से कहा, "यह मनुष्य है या दानव !"

और मनमोहन बोल उठा, "काश कि हरएक आदमी ऐसा ही बन सकता !" और उसने एक ठंडी साँस ली।

७

चौके में खिचड़ी चढ़ाकर झगड़ू मिश्र फिर मनमोहन, प्रभानाथ और वीणा के पास आ बैठे। आते ही उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "कहो हो, छोटे कुँवर ! अबकी दफा गाँव नाहीं गयेव ! सिकार-विकार का कुछ इरादा नाहीं है ?"

"क्या बतलाऊँ, झगड़ू काका ! शिकार की तबीयत तो थी, लेकिन दद्दुआ यहीं हैं और गाँव में कोई भी नहीं है। वहाँ जाकर क्या करूँगा ?"

"वाह, हम तो चल रहे हन ! तौन आजकल सवन गिर रहे हैं।"

मनमोहन से न रहा गया। उसने कहा, "तो मिश्रजी, क्या आप मांस खाते हैं ?"

"काहे नाहीं ! हम खान कनौजिया; सो भला हम का लेकिन अपने हाथ से पकाय के खाइत है।" झगड़ू हँस पड़े,

हाँ, हम पियाज-लहसुन कुछ नाहीं खात हन; तबहूँ हम जो मांस पकाय देई कि आप खाइ के उँगली चाटत रह जाव !"

मनमोहन ने प्रभानाथ की ओर देखा, "क्यों प्रभानाथ ! अगर अपने गांव चलो तो थोड़े दिन शिकार-विकार ही रहे, कुछ गांव की हवा खा लूं !"

"हां-हां ! यह तो अच्छी सलाह दी ! क्यों, झगड़ू काका ! अबकी गंगा में एकाध मगर दिखलाई दिया ?"

"नाहीं ! मगर तो नाहीं दिखाई दीन, लेकिन पता लगाइब ! आस-पास कहूँ हुइहैं जरूर !"

प्रभानाथ ने इस बार वीणा की ओर देखा, "क्यों वीणा ! तुम्हारी भी तो इन दिनों छुट्टी है । तुमने कभी हमारा गांव नहीं देखा—हमारे देहात ऐसे नहीं होते ! चलो, युक्त-प्रांत के गांवों की भी हवा खा लो !"

"लेकिन ददुआ क्या अकेले रहेंगे ? मेरे बिना उन्हें तकलीफ न होगी । न, प्रभा ! मैं न जा सकूंगी !" वीणा ने थोड़ा रुककर फिर दबी जबान कहा, "और प्रभा, कल तुम्हारे काका आनेवाले हैं, तुम कैसे जा सकोगे ?"

"अरे, हां ! मैं तो भूल ही गया था ! ना, झगड़ू काका ! मैं न जा सकूंगा !"

"लेकिन मैं चलूंगा, मिसिरजी ! आप मुझे अपने घर में ठहरा सकेंगे न ! मैं जरा कुछ दिनों के लिए गांवों की सैर करना चाहता हूं, शहरों से मेरी तबीयत ऊब गई है !"

प्रभानाथ बोल उठा, "मेरी कोठी तो है—वहीं ठहरना !"

लेकिन झगड़ू आतिथ्य-सत्कार के नियम जानते ही नहीं थे, उनका पालन करने में भी विश्वास करते थे, "वाह, ऐसनो कबहूँ हुई सकत है ? आप हमारे साथ ठहरो—जो रूखा-सूखा हो, वह आपो खाव—और हम आपका अपने साथ घुमाइब, सिकार कराइब !'

थोड़ी देर तक सब लोग चुप बैठे रहे, फिर मनमोहन ने कहा, "क्यों मिश्रजी ! आपके गांव में सत्याग्रह का कैसा जोर है ?"

"आपै चलि के देख लीन्हेव । हां, एक बात हम बताय देई, हम दिहाती सिद्धांत-विद्धांत तो कुछ जानित नाहीं और न हन यू जानत हन कि स्वराज कौन बलाय आय । लेकिन एक बात हम जानत हन कि हम सब जी तोड़ के मेहनत करता हन, तबहूँ पेट भर के खाय का नाहीं मिलन है । तौन गांधी बाबा हमरे खाय-पियन का प्रबंध कराय सकिहैं, ई बात पर बहुत लोगन का सहज मां विश्वास नाहीं होत है । तौन ऐस जोश तो गांव मां न मिली जैस आप सहरन मां देख रहे हो !"

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा । झगड़ू ने फिर कहा, "लेकिन एक बात आप निश्चय करि के समझ राखौ ! यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई मां काम न दई । सहर वाले लोग देखत हैं तमासा—देखते नाहीं हैं, तमाशा करत हैं । उनका खाय-पियन की कमी तो आय नहीं, पेट भरा है, मौज

की जिंदगी बितावत हैं। आज एक खेल से तबीयत ऊबी, काल दूसर खेल रच दीन्हिन। तौन ई सब जोश जो आप शहर माँ देख रहे हो, ईका हम लोग एक खेलै समझत आन जो जादा दिन नाहीं चलन का। वास्तविक काम तबहीं होई जब ई गाँववाले मनई अपने हाथ माँ लेहैं।"

मनमोहन ने झगड़ू को आश्चर्य से देखा। उनके सामने बैठा हुआ बूढ़ा, और ठेठ देहाती, जिसे आधुनिक संस्कृति और विचारधारा छू तक नहीं गई थी, जिसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे, अंग्रेजी सभ्यता में रँगे हुए और हरएक अंग्रेजी चीज की छाया में ही देश का कल्याण देखनेवाले लोग गँवार और असभ्य तक कहेंगे, बात कुछ सुलझी हुई-सी कह रहा था।

एकाएक झगड़ू को अपनी खिचड़ी की याद हो आई। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "हम आप लोगन की बातन माँ अपनी खिचड़ी तो भूलै गएन! तौन जो जीवन का प्रथम सिद्धांत है—भोजन? ऊकी उपेक्षा नाहीं कीन जाय सकत है!" और झगड़ू चल दिए।

शाम के समय मनमोहन झगड़ू के साथ थानापुर के लिए रवाना हो गया।

दूसरा परिच्छेद

जिस समय दयानाथ जेल से छूटा, उसका वजन करीब पंद्रह पौंड कम हो गया था। जेल के फाटक पर उमानाथ, राजेश्वरी और दयानाथ के दोनों लड़के मौजूद थे। इसके साथ-साथ कांग्रेसमैनों की भी एक बड़ी भीड़ उसका स्वागत करने को इकट्ठा हो गई थी।

दयानाथ के मुख पर मुसकराहट थी, उसका मस्तक उन्नत था। जनता खड़ी हुई दयानाथ की जय-जयकार बोल रही थी। कानपुर के नागरिकों ने दयानाथ का जुलूस निकालने का प्रबंध कर रखा था। दयानाथ की आरती उतारी गई, उसको फूलों की मालाएँ पहनाई गईं।

दयानाथ, उमानाथ और राजेश्वरी से बातें कर ही रहा था कि डाक्टर हीरालाल ने आकर कहा, "चलिए, दयानाथ साहेब! जुलूस का समय हो गया है। जुलूस से वापस आकर आप अपने घरवालों से घर पर जितना चाहिए, बातचीत कीजिएगा।"

डाक्टर हीरालाल की यह बात उमानाथ को अच्छी नहीं लगी, वह कुछ कहना ही चाहता था कि दयानाथ ने उसके मुख पर अंकित भाव पढ़ लिए। मुसकराते हुए उसने उमानाथ का हाथ पकड़ते हुए कहा, 'उमा! यह डाक्टर हीरालाल हैं, मेरे बहुत बड़े दोस्त! अच्छा तुम अपनी भौजी के साथ घर चलो, मैं करीब दो घंटे में घर पहुँच जाऊँगा।"

और डाक्टर हीरालाल ने खीसें निपोरते हुए कहा, "आप रसिए। इनको घर पहुँचा देना—यह मेरी जिम्मेदारी है।"

डाक्टर हीरालाल की इस मुद्रा से उमानाथ भड़क उठा,
से कहा, "भइया! यह जुलूस—यह स्वागत—यह सब ढोंग है।
के घरवाले, आपकी पत्नी, आपके बच्चे—जिन्होंने आपके जेल के जीवन का
-एक दिन एक-एक वर्ष की भाँति विताया है, इन लोगों की ममता, इन लोगों
भावना से आपके लिए डाक्टर हीरालाल या इन कांग्रेस के नेताओं की भावना
धिक प्रिय हो गई—जो जुलूस केवल इसलिए निकालते हैं कि एक प्रकार की
नसनी फैले और उन्हें इस सनसनी से एक प्रकार की तुष्टि मिले!"

उमानाथ की बात सुनते ही दयानाथ के मुखवाली मुसकराहट गायब हो
ई। उसने देखा कि उसके दोनों बच्चे उसके पैरों से लिपटे खड़े हैं, उसने देखा
कि उसकी पत्नी की आँखें तरल हैं, उसने देखा कि उसके भाई के मुख पर एक
उल्लास का भाव है। और उसने उसी समय अपने पास खड़े हुए कांग्रेस-नेताओं
पर दृष्टि डाली, और उसने वहाँ देखा—कुछ नहीं—विलकुल कुछ नहीं। एक
कृत्रिम मुसकराहट के नीचे भावनारहित पथराए-से चेहरे! दयानाथ सिहर
उठा। और उसी समय डाक्टर हीरालाल ने फिर कहा, "चलिए, दयानाथ साहेब!
इतने लोग आपका स्वागत करने आए हैं—इन्हें निराश मत कीजिए!"

दयानाथ ने फिर उस ओर देखा, एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी थी। दयानाथ
के उधर देखते ही एक जोर की आवाज उठी, "दयानाथ की जय!"

और साथ ही राजेश्वरी ने भी उस भीड़ को देखा। गर्व से उसकी छाती फूल
उठी। इतने आदमी उसके पति का स्वागत करने आए हैं, उसके पति की जय-
जयकार कर रहे हैं। उसने कहा, "जाइए, आपको विना साथ ले जाए ये लोग
नहीं मानेंगे। हम लोग भी जुलूस के साथ चलेंगे।"

जुलूस समाप्त हुआ दयानाथ के घर पर। लेकिन जुलूस के समाप्त होने पर
भी दयानाथ घर पर अकेला न रह सका, कांग्रेस के प्रमुख नेता आवश्यक परामर्श
के लिए रुक गए। दयानाथ को घेरकर सब लोग ड्राइंग-रूम में बैठ गए और
मूवमेंट की बातें होने लगीं। जब एक घंटा भूमिका में ही समाप्त हो गया, तब
उमानाथ से न रहा गया। उसने झल्लाकर कहा, "अगर आप लोग भाई साहेब
के वास्तव में मित्र हैं, तो आप लोग इन पर थोड़ी-सी दया करें। इन्हें इतना समय
दें कि ये स्नान-भोजन करके थोड़ी देर आराम कर लें।"

"ओहो! मैं तो भूल ही गया था—भोजन मैंने भी नहीं किया है।" डाक्टर
हीरालाल ने कहा, "क्या वतलाऊँ, रास्ता ही हम लोगों ने ऐसा अपनाया है कि
एक मिनट की भी फुरसत नहीं मिलती। अच्छा हम लोग शाम के समय फिर
इकट्ठा होंगे।" और कांग्रेस-नेता उठ खड़े हुए।

दयानाथ ने अघाकर साँस ली। उस समय वारह वज रहे थे। राजेश्वरी
ने अपने हाथों आज रसोई तैयार की थी। वह वाहर आई—दयानाथ उस समय
उमानाथ से बातें कर रहा था। राजेश्वरी के आते ही उमानाथ उठ खड़ा हुआ
मुसकराते हुए उसने कहा, "भौजी! मैं तो भइया को भीतर ला ही रहा था

वड़ी मुश्किल से मैंने उन कांग्रेस के नेताओं से भइया का पीछा
छुड़ाया। क्या मजाक, कि आज ही जेल से बाहर आए और आज
ही वे लोग इनकी जान खाने लगे, मानो सिवा इस स्वराज्य की लड़ाई के, भइया के लिए कोई दूसरा काम ही नहीं है।"

राजेश्वरी ने दयानाथ की कुर्सी के हत्थे पर बैठते हुए कहा, "मंझले बाबूजी, आप ही इन्हें समझाइए !"

दयानाथ हँस पड़ा, "यह उमा मुझे क्या समझाएगा ? देखो, मैंने जिस समय यह रास्ता अपनाया था, एक पवित्र सिद्धांत पर, एक पवित्र कार्य के वास्ते मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था। वही सेवा, वही त्याग, वही सिद्धांत मेरा एकमात्र अस्तित्व है। मैं जेल से छूटा हूँ, आराम करने के लिए नहीं, काम करने के लिए !"

"और हम लोग—मैं, तुम्हारे दोनों बच्चे—क्या हम लोगों का तुम पर कोई अधिकार नहीं ? हमारे लिए क्या तुम्हारे पास जरा-सा भी समय नहीं है ?" राजेश्वरी ने करुण स्वर में पूछा।

दयानाथ ने राजेश्वरी की पीठ पर हाथ रख दिया, "तुम ! क्या कहती हो ? मुझसे अलग तुम्हारा अस्तित्व ही कहाँ है ? तुम मुझसे अलग कब हो ? जिस समय मैंने अपना जीवन अर्पित किया था, उस समय मैंने तुम्हारा भी जीवन अर्पित कर दिया था ! अच्छा तुमने कितना सूत काता, इन छः महीनों में ?"

राजेश्वरी एकदम पिघल गई। उसने कहा, "बहुत-सा, बहुत-सा सूत काता है, मेरे देवता ! मैं जानती थी कि तुम मुझसे यह प्रश्न करोगे। मैं जानती थी कि तुम अपना वह काम, जो मैं कर सकती हूँ, मुझे सौंप गए हो। और मैंने उस काम को पूरा किया है।"

उमानाथ ने आश्चर्य से अपने भाई और अपनी भावज को देखा। उसके सामने एक अजीब मजाक-सा हो रहा था। एकाएक वह जोर से हँस पड़ा, "वाह भौजी ! तुम तो बड़ी जल्दी पिघल गईं। भइया ने तुम्हें दो ही बातों में काबू में कर लिया !"

राजेश्वरी उठ खड़ी हुई—तनकर। उसने उमानाथ से कहा, "मझले बाबू—तुम्हारे भइया की एक नजर काफी है, दो बातें तो बहुत होती हैं !" और उसने दयानाथ को हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा, "अच्छा, चलिए, स्नान कर लीजिए चलकर; भोजन तैयार हो गया है।"

२

दयानाथ के पुराने साथी सब-के-सब जेल में थे, एक डाक्टर हीरालाल को छोड़कर। इस बीच में नए काम करनेवालों का एक बहुत बड़ा दल तैयार हो गया था और काम तेजी से चल रहा था। शाम के समय कांग्रेस के सब कार्यकर्ता दयानाथ के बंगले पर एकत्रित हुए। अनुभवहीन नवयुवकों का एक समूह अपने

अनुभवी नेता से परामर्श करने को एकत्रित हुआ था। इन लोगों के आते ही उमानाथ बाहर घूमने को निकल पड़ा।

मूवमेंट इस समय तेजी से चल रहा था; देश की सभी राष्ट्रीय संस्थाएं गैरकानूनी करार दे दी गई थीं। उस समय कानपुर-नगर-कांग्रेस कमेटी का काम कौन चलाता है, कैसे चलाता है—किसी को इसका पता न था। अभी बातचीत शुरू ही हुई थी कि नौकर ने इत्तला दी कि लाला रामकिशोर की कार बाहर खड़ी है। दयानाथ उठकर बाहर गया और लाला रामकिशोर के साथ वापस लौटा।

सब लोग बैठ गए। दयानाथ ने कानपुर के वर्तमान डिक्टेटर श्री रामभरोसे से पूछा, "स्थिति मैंने, जहां तक हो सका है, समझ ली। अब सवाल आता है, कल के जुलूस का। जहां तक मैं समझता हूँ, कल के जुलूस में लाठी-चार्ज होगा, और हमें इस बात का खयाल रखना पड़ेगा कि लाठी-चार्ज के समय हमारे आदमी साहस से काम लें।"

कुछ रुककर दयानाथ ने फिर पूछा, "और रामभरोसे, आप बतला सकते हैं कि इस समय गिरफ्तार होने के लिए कितने आदमी आपके पास हैं?"

गर्व से छाती फुलाकर रामभरोसे ने कहा, "गिरफ्तार होने के लिए आदमियों की कमी नहीं है, हजार-दो हजार जितने आदमी चाहें, गिरफ्तार होने के लिए तैयार हैं। लेकिन गिरफ्तारियां आजकल बंद हैं।"

"इतने स्वयंसेवक आपको मिल गए—ताज्जुब की बात है?" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा।

अब लाला रामकिशोर के बोलने की बारी थी, "इसमें ताज्जुब की क्या बात है? हिन्दुस्तान में गरीबों और बेकारों की कमी नहीं, उनको रुपये दो और स्वयंसेवक बनाओ!"

"लेकिन रुपया?" दयानाथ ने फिर पूछा।

"रुपये की कमी नहीं! बाजार में आनेवाले माल की प्रति गाड़ी पर एक पैसा बंधा हुआ है, और यह धर्म-खाते—कांग्रेस का काम धर्म का काम है न!" और लाला रामकिशोर हँस पड़े।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामभरोसे ने फिर कहा, "लाठी-चार्ज होगा अवश्य—हर जगह से लाठी-चार्ज होने की खबरें आ रही हैं। अब हमारे स्वयंसेवकों को चाहिए कि लाठी खायें और हटें नहीं।"

"हूँ! यह समस्या मेरी नजर में भी है!" दयानाथ ने कहा, "लेकिन नेताओं में कितने लोग लाठी खाने को सम्मिलित रहेंगे!" दयानाथ ने अपने इर्द-गिर्द बैठे नेताओं पर नजर डाली।

और दयानाथ ने देखा कि सब लोग मौन हैं। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा के बाद दयानाथ ने रामभरोसे से कहा, "क्यों रामभरोसेजी—स्वयंसेवक लोग यही कहेंगे न, कि लाठी खाने के लिए स्वयंसेवक और यश लूटने के लिए नेता!

और मेरा कहना है कि अगर स्वयंसेवकों के साथ इस परीक्षा के समय उनके नेता नहीं रहते तो किस प्रकार उनमे साहस आवेगा? किस प्रकार वे अहिंसा पर कायम रह सकेंगे? बिना नायक के सेना किस प्रकार लड़ सकती है? नहीं रामभरोसेजी, नेता का साथ मे होना और साथ में ही नहीं, बल्कि सबसे आगे होना बहुत जरूरी है!"

"आप शायद ठीक कहते हैं!" दबी जबान रामभरोसे ने कहा।

'तो आपको जुलूस के आगे रहना चाहिए! आप डिक्टेटर हैं!"

दूसरे दिन शहर मे सनसनी फैली। श्रद्धानंद पार्क में कानपुर की जनता एकत्रित हो रही थी, वहीं से जुलूस निकलनेवाला था। लोगों मे उत्साह था और उमंग थी।

दयानाथ भी जुलूस मे शामिल होने को तैयार हुआ। राजेश्वरी ने कहा, "मैं भी चलूंगी!"

उमानाथ दयानाथ के पास खड़ा था। उसने कहा, "अगर आप गिरफ्तार हो गई, भौजीजी, तो लड़कों को कौन संभालेगा?" और वह मुसकराया।

राजेश्वरी ने भी मुसकराते हुए उत्तर दिया, "वह तो है, बाबूजी!"

उमानाथ हँस पड़ा, "अच्छा भौजीजी, तो आपकी गिरफ्तारी देखने के लिए मैं भी चलूंगा!"

जिस समय वे तीनों श्रद्धानंद पार्क मे पहुंचे, तीन बज रहे थे। जुलूस साढ़े तीन बजे रवाना होने वाला था, और उस समय पार्क खचाखच भर गया था।

ठीक साढ़े तीन बजे जुलूस रवाना हुआ। सब के आगे कानपुर के डिक्टेटर श्री रामभरोसे थे और उनके पीछे करीब सौ स्वयंसेवक। इन सब के हाथ में तिरंगा झंडा था। इनके पीछे महिलाएँ थीं, इनकी संख्या भी करीब पचास थी। महिलाओं के पीछे सैकड़ों लड़के—और उनके पीछे कानपुर का जन-समुदाय!

३

माल रोड के चौराहे पर सुपरिटेंडेंट पुलिस सशस्त्र पुलिस का दस्ता लिए खड़े थे। जिस समय जुलूस मेस्टन रोड से मालरोड पर पहुंचा, पुलिसवालों ने जुलूस को रोक लिया। सुपरिटेंडेंट पुलिस ने रामभरोसे से कहा 'मेरी आज्ञा है कि जुलूस माल रोड पर नहीं जा सकता, उसे वापस ले जाइए, नहीं तो मुझे इस जुलूस को जबरदस्ती भंग करना पड़ेगा।"

रामभरोसे ने उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा मानने को हम तैयार नहीं, आप जिस सरकार के प्रतिनिधि हैं, हम उसे स्वीकार नहीं करते।"

सुपरिटेंडेंट ने अबकी बार जोर से कहा, "मैं इस जुलूस को गैरकानूनी करार देता हूं। मैं दो मिनट का समय देता हूं कि जुलूस तितर-बितर हो जाय नहीं तो वह लाठी-चार्ज से तितर-बितर किया जायेगा।"

दोनों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया था, दोनों

इसी समय रामभरोसे ने नारा लगाया, "बोलो महात्मा गांधी की जय! बोलो भारत-माता की जय!" इन नारों को सारे जुलूस ने एक साथ दुहराया।

दो मिनट बीत गए और जुलूस वैसा-का-वैसा खड़ा रहा। पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने रामभरोसे को गिरफ्तार कर लिया, इसके बाद उसने जुलूस पर लाठी-चार्ज की आज्ञा दी।

पुलिसवालों ने स्वयंसेवकों को लाठी से मारना शुरू कर दिया। पहले प्रहार के समय स्वयंसेवकों में कुछ शिथिलता-सी दिखाई दी, उनमें से दो-चार एक-आध कदम पीछे हटे, लेकिन शीघ्र ही वह शिथिलता जाती रही और स्वयंसेवक जमीन पर बैठ गए। स्वयंसेवकों पर लाठियां बरस रही थीं और वे 'भारत-माता की जय!' 'महात्मा गांधी की जय!' 'वन्देमातरम्!' के नारे लगा रहे थे। ज्यादा मार खाने पर वे बेहोश भी हो जाते थे।

इस समय कुछ स्त्रियाँ भी पीछे से आगे बढ़ीं और पुलिसवाले उन स्त्रियों को देखकर झिझके। सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने उन स्त्रियों को तथा उन स्वयंसेवकों को, जो अभी तक होश में थे, गिरफ्तार करने का आर्डर दे दिया। ये लोग गिरफ्तार करके पुलिस की लारियों में भर दिए गए।

दयानाथ, उमानाथ तथा दो-चार अन्य कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को छोड़कर जो दर्शक रूप में जुलूस के साथ थे, बाकी सब लोग तितर-बितर हो गए थे। पुलिस के जाने के बाद इन लोगों ने घायल और बेहोश स्वयंसेवकों को उठाया तथा इनकी सेवा-सुश्रूषा का प्रबंध किया। इस सब में लोगों को आठ बज गए।

जब दयानाथ और उमानाथ घर लौटे तब उन्होंने देखा कि महालक्ष्मी, राजेश, ब्रजेश, सुरेश और घर के नौकरों से घिरी हुई राजेश्वरीदेवी बरामदे में बैठी हैं और व्याख्यान दे रही हैं। दयानाथ ने आश्चर्य से कहा, "अरे मैं तो समझा था कि तुम जेल में होगी, लेकिन तुम यहां मौजूद हो!"

मुसकराने का प्रयत्न करते हुए राजेश्वरी ने कहा, "हां, अभी जाजमऊ से पैदल आ रही हूं!

"जाजमऊ से और पैदल!" उमानाथ ने आश्चर्य से कहा। जाजमऊ दयानाथ के बंगले से करीब पांच मील दूरी पर था।

"क्या बतलाऊं, बाबूजी! लारी पर बिठलाकर हम लोगों को पुलिसवालों ने जाजमऊ में छोड़ दिया। अरे बाप रे—कितनी दूर है! यह तो कहो कि हम लोग बीस थीं, नहीं तो डर के मारे हमारे प्राण निकल जाते। और फिर हम बीसों वहां से गाना गाते हुए वापस लौटीं। रास्ते में दो औरतें बेहोश हो गईं। यह कहो एक इक्का मिल गया, उसी में उन दोनों को चढ़ाकर उनके घर पहुंचाया; नहीं तो भगवान जाने हम लोगों की क्या दुर्दशा होती!"

इसी समय तीन-चार आदमियों के साथ दो स्त्रियां रोती हुई बंगले में आईं। उनमें एक बुढ़िया थी और दूसरी यद्यपि जवान थी, पर बुढ़िया-सी ही लगती थी।

दोनों औरतें बुरी तरह रो रही थीं और चिल्ला रही थीं। बुढ़िया बीच-बीच में बकने लगती थी, "आग लगे ई काँग्रेस माँ, मर जायँ गांधी ! हमारे बेटवा का नाय लीन्हिन ! हाय राम ! हाय दई !"

दयानाथ ने आगे बढ़कर साथवाले आदमियों से पूछा, "क्या बात है ?"

दयानाथ को देखते ही बुढ़िया उनके पैरों पर गिर पड़ी, "मालिक ! हम लोग लुट गईं; हमार लाल हमसे छिन गा ! हाय राम, हम का करब ?" और बुढ़िया ने जमीन पर अपना सिर पटक दिया।

उमानाथ ने, जो अलग खड़ा हुआ सब कुछ देख रहा था, देखा कि दूसरी औरत एक निर्जीव पेड़ की तरह गिरनेवाली है; बढ़कर उसने उस औरत को सँभाला जो बेहोश हो गई थी।

जिस आदमी से दयानाथ ने सवाल किया था, उसने कहा, "जीवन का अस्पताल में प्राणांत हो गया !"

दयानाथ थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा सोचता रहा। दूसरा आदमी कह रहा था, "यह बुढ़िया उसकी माँ है और यह औरत जो अभी बेहोश हो गई, उसकी मेहरारू है। इसकी दो लड़कियाँ हैं। घर में कोई मर्द नहीं, जीवन अकेला था। अब इन लोगों का क्या होगा—भगवान जानें !"

दयानाथ ने अपना सिर उठाया, उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! तुम लोग बैठो, मुझे जाना पड़ेगा। इसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का प्रबंध करना है न !"

"मैं भी आपके साथ चलूँगा !" उमानाथ ने कहा।

इस समय तक जीवन की पत्नी जैसे-तैसे होश में आ गई थी। दयानाथ ने साथ के आदमियों से कहा, "एक आदमी मेरे साथ अस्पताल चले, बाकी लोग इन औरतों को लेकर घर चलें। मैं अस्पताल से लाश लेकर आता हूँ।"

उन सबको रवाना करके एक आदमी के साथ दयानाथ और उमानाथ अस्पताल पहुँचे। लाश बरामदे में रखी थी। डाक्टर ने दयानाथ से कहा, "मुझे बड़ा अफसोस है मिस्टर दयानाथ, मैं इसे नहीं बचा सका। सिर में फ्रैक्चर हो गया था। अच्छा ही हुआ कि यह मर गया; अगर बच जाता तो यह आदमी पागल हो जाता।"

लाश को गाड़ी में लादकर सब लोग जीवन के घर पहुँचे।

एक तंग गली के अंदर एक टूटे-फूटे मकान का नीचे का हिस्सा, जिसमें दो कोठरियाँ थीं और एक अँधेरा आँगन—यह जीवन का मकान था। जीवन एक प्रेस में कंपोजीटर था और बाईस रुपया महीना पाता था। पाँच रुपया महीना घर का किराया था, बाकि सत्रह रुपये में वह अपनी गृहस्थी चलाता था।

एक कोठरी में तेल की एक कुप्पी टिमटिमा रही थी और उसके अन्दर चार प्राणी तड़प रहे थे। उनके पास-पड़ोस से हमदर्दी के लिए आई हुई स्त्रियाँ भी थीं। पड़ोस के लोग मकान के बाहर खड़े एक-दूसरे से कानाफूसी कर रहे थे।

जैसे ही जीवन की लाश मकान के सामने पहुँची, लोगों की का

की पत्नी) चिता में फाँद पड़ी थी। दयानाथ ने दौड़कर जयदेवी को चिता से खींचा, वे चारों स्वयंसेवक भी वहाँ आ गए थे। जयदेवी के कपड़ों में आग लग गई थी, बड़ी मुश्किल से उन लोगों ने जयदेवी के कपड़ों की आग बुझाई। जयदेवी का शरीर कुछ झुलस गया था।

और बुढ़िया बड़बड़ा रही थी, "हाय राम ! तूहू हमें छोड़ के जाय रही है, लड़कन का को सँभाली ! हाय दई—यह क्या हुइ रहा है ?"

जयदेवी ज्यादा न जली थी। दयानाथ ने कहा, "बहन, इस तरह न करना चाहिए था ! धीरज रखो।"

लेकिन जयदेवी ने उत्तर दिया, "धीरज ? कैसा धीरज ? अब हमारे वास्ते है क्या ? कौन ममता और कौन मोह ? भूखन मरन का है, और लड़कन का भूखन मारन का। यही लिए जिंदा रही ?"

दयानाथ ने इस बार गौर से जयदेवी को देखा। उसने देखा कि जयदेवी एकदम बूढ़ी हो गई है। कोई भी यह न कह सकता था कि वह बाईस वर्ष की एक युवती है। उसके गाल गढ़े में धँस गये थे, उसकी आँखों की चमक मर चुकी थी, उसकी पीठ झुकने लगी थी। दरिद्रता और उत्पीड़न के अनवरत संघर्ष ने उसे बुरी तरह कुचल दिया था। और उसी समय जयदेवी ने फिर कहा, "जिंदगी की एक आसा—एक सहारा ! वही साथ छोड़िगा ! हाय राम, हमें मौत देव !" और उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

"नहीं, बहन—हम लोग तुम्हारा प्रबंध कर देंगे, इतनी अधीर मत होओ !" दयानाथ ने उसे ढाढ़स बँधाया।

जिस समय दोनों भाई घर लौटे, सुबह हो रही थी। रास्ते भर दोनों मौन रहे। घर पर सब लोग सो रहे थे। इन दोनों के आते ही राजेश्वरी और महालक्ष्मी दोनों जाग पड़ीं।

उमानाथ ने आते ही कहा, "भौजी ! एक प्याला गरम चाय चाहिए, हाथ-पैर ठिठुर गए हैं।"

लेकिन दयानाथ मौन सोफ़ा पर बैठ गया। उसने राजेश्वरी पर एक करुण दृष्टि डाली, फिर एक ठंडी साँस ली।

४

मार्कंडेय जेल के फाटक के बाहर निकला; उस समय सुबह के नौ बजे थे। मार्कंडेय को उसी समय बतलाया गया था कि उसकी सजा की अवधि पूरी हो गई है और वह मुक्त कर दिया गया है। जब वह बाहर आया, फाटक पर सन्नाटा छाया था। बाहर निकलकर मार्कंडेय ने अघाकर एक साँस ली। उसने अपने चारों ओर देखा, इक्का-दुक्का लोग स्वच्छंदतापूर्वक इधर-उधर जा रहे थे, लेकिन उसकी ओर किसी ने देखा तक नहीं। वह मुसकराया। जब और लोग छूटते थे, जेल के फाटक पर लोगों की भीड़ लगी रहती थी। अपनी कोठरी—यह स्वागत

करनेवालों के जय-जयकार के नारे सुना करता था। लेकिन उसका स्वागत करने कोई नहीं आया था—आता भी कैसे ? उसके छूटने का तो किसी को पता न था।

वह पैदल ही अपने घर की तरफ़ चल पड़ा। कचहरी पार करके जब वह शहर की ओर चला, तो उसे उमानाथ दिखलाई पड़ा। उमानाथ शहर से लौट रहा था। मार्कंडेय को देखते ही उसने अपनी कार रोक दी, "अरे मार्कंडेय भइया ! आप कब छूटे ?"

"अभी सीधा जेल से चला आ रहा हूँ ! मुझ तक को पता न था कि मैं आज छूटूँगा।"

"चलिए—हमारे यहाँ ! भगड़ू काका तो यहाँ हैं नहीं, गाँव चले गए। बड़के भइया आपको देखते ही चौंक उठेंगे।" हाथ पकड़कर मार्कंडेय को कार में बिठलाते हुए उमानाथ ने कहा।

जिस समय ये दोनों दयानाथ के यहाँ पहुँचे, दयानाथ के ड्राइंग-रूम में कांग्रेस के कार्यकर्त्ता एकत्रित थे और वे दयानाथ से मूवमेंट पर परामर्श कर रहे थे। मार्कंडेय को देखते ही सब लोग चौंककर उठ खड़े हुए; दयानाथ ने उठकर मार्कंडेय को गले लगाते हुए कहा, "अरे मार्कंडेय ! मालूम होता है, सीधे छूटे चले आ रहे हो !"

"हाँ, सीधा !" मार्कंडेय ने गद्देदार कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "उफ़ ! आखिर मैं छूट ही गया। मैं तो समझा था कि अभी एक महीना और सरकार की मेहमानदारी करनी पड़ेगी, लेकिन न जाने क्यों बिना पूछे-बतलाए उन लोगों ने मुझे आज सुबह ही जेल से निकाल बाहर किया।"

इसके बाद मार्कंडेय ने वहाँ पर एकत्रित अन्य लोगों पर नजर डाली, फिर उसने कहा, "अच्छा ! तो आप लोग वही पुराना पचड़ा लिए बैठे हैं ? क्या किया जाय—कैसे किया जाय ! न बाबा ! मैं अभी इस पचड़े में नहीं पड़ूँगा !" वह उमानाथ की ओर घूमा, "कहो जी उमा—कहाँ घसीट लाए ! अपने घर पहुँचकर पैर फैलाकर आराम करता ! यहाँ तो वही मूवमेंट, वही गिरफ्तारी, वही जेल का किस्सा चल रहा है !" और मार्कंडेय उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ हँस पड़ा, "मैंने तो समझा था कि घर में अकेले आपका मन ऊबेगा, इसके अलावा यहाँ इतने कांग्रेसमैनों से मिलकर आपको परिस्थिति की जानकारी हासिल हो जाएगी ! लेकिन देखता हूँ कि आप बड़के भइया के मुकाबिले किसी कदर ज्यादा सुलझे हुए हैं। अच्छा, दूसरे कमरे में चलिए, वहाँ स्नान करके सोइए !"

"अरे बैठो भी मार्कंडेय !" दयानाथ ने कहा, "जरा काम की बातें हो रही हैं और हम लोग कुछ उलझन में पड़े हैं। मैंने तो सोचा कि तुम अच्छे आ गए, तुमसे इस उलझन को सुलझाने में कुछ मदद ही मिल जायगी।"

"यह उलझन क्या है ?" बैठते हुए मार्कंडेय ने पूछा।

"बात यह है कि विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना दिया जा रहा है—इतना तो तुम जानते ही हो। और शहर की करीब-करीब सब दूकानों के माल पर मुहर लगा दी गई है; इनी-गिनी कुछ थोड़ी-सी बची हैं। इन्ही दूकानों पर धरने का जोर है। और धरना देनेवालों में स्त्रियां भी हैं। तो परसों एक बड़ी कुरूप घटना घटित हो गई। एक स्त्री एक दूकान पर धरना दे रही थी। दूकानदार एक नौजवान लड़का है, लेकिन जरा बिगड़ा हुआ और शोहदे किस्म का। इसके अलावा वह धरना देनेवाली स्त्री सुन्दर थी। दूकानदार ने उस स्त्री के प्रति कुछ बड़े अपमानजनक और अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। वह स्त्री उसी समय दूकान से चली आई, और उसने उस घटना का जिक्र अन्य स्वयंसेवकों से किया। परिणाम यह हुआ कि स्वयंसेवक उत्तेजित हो उठे और स्वयंसेवकों से यह चर्चा सुनकर जनता भी उत्तेजित हो गई। खैरियत यह हुई कि दूकानदार को कुछ आशंका हो गई और वह उसी समय दूकान बंद करके घर चला गया, नहीं तो वह जनसमुदाय, जो एक घंटे बाद उस दूकान पर पहुँचा, न जाने क्या करता !"

"तो फिर इसमे उलझन क्या है ?" मार्कंडेय ने पूछा।

"इसमे उलझन यह है कि कुछ लोग—उन लोगों मे कुछ कांग्रेसमैन हैं, बाकी सब कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले हैं—लगातार उस दूकानदार के मकान के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे हैं। उनका कहना है कि वे बिना दूकानदार की नाक काटे नहीं मानेंगे। वह बेचारा दूकानदार एक तरह से अपने घर में कैद है।"

"हाँ ! यह तो बेजा बात है !" मार्कंडेय ने कहा, "मेरा ऐसा खयाल है कि उस दूकानदार ने जो कुछ किया, वह करने का उसे पूरा अधिकार था, क्योंकि वह हिंसा का उपासक है। लेकिन हमारे स्वयंसेवक या कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवाले लोग जो कर रहे हैं या करना चाहते हैं, वह गलत है क्योंकि वह हिंसा है, और हम हिंसा के विरोधी है।"

उमानाथ बोल उठा, "आप हिंसा के विरोधी हैं ! लेकिन यह आपका धरना ! [illegible] हुआ ? [illegible] है?"

[illegible] मतलब दूकानदार को माल न बेचने देने का नहीं है, वह खरीदार से माल न खरीदने का आग्रह है। हर दूकानदार को समझाते हैं, जब दूकानदार नहीं समझता, तब हम ग्राहक को समझाते हैं। विलायती माल खरीदने से देश की हानि है, विलायती माल की खपत से देश अपनी स्वतंत्रता को न पा सकेगा। और इसलिए हम धरना देते हैं। इसमें हिंसा कहाँ से आई ? अगर हम मारने-पीटने पर आमादा हो जायें, तब तुम कह सकते हो कि हम हिंसा के पाप के भागी हैं।"

"भइया ! तब आप हिंसा के केवल बाह्य रूप को देखते हैं। जिस समय आपका स्वयंसेवक जमीन पर लेटकर ग्राहक से कहता है कि

पैर रखकर जाय, तब आपका वह स्वयंसेवक स्पष्ट रूप से दुराग्रह पर उतर आता है; आप उसे सत्याग्रह भले ही कहें।"

इस बार मार्कंडेय की बारी थी, "उमा! तुम उसे दुराग्रह कैसे कहते हो? नैतिक बल किसमें है? छाती खोलकर ज़मीन पर लेट जानेवाले में या छाती पर पैर रखकर दूकान तक न पहुँचकर पीछे हट आनेवाले ग्राहक में? और नैतिक बल सत्य में ही होता है, मिथ्या में नहीं। हमारा दुराग्रह तब होता, जब ग्राहक से यह कहते कि अगर तुम विलायती कपड़ा ख़रीदोगे तो हम सिर फोड़ देंगे!"

"मैं तो समझता हूँ कि किसी तरह का दबाव डालना, व्यक्तिगत स्वाधीनता में किसी तरह बाधक होना, किसी को किसी तरह विवश करना—यह हिंसा है!" उमानाथ ने कहा।

मार्कंडेय मुसकराया, "पर हम दबाव कहाँ डालते हैं? हम तो मनुष्य की आत्मा के सत्य तथा उसकी सुंदरता को जाग्रत करके उनके द्वारा उसके भीतरवाले असत्य और कुरूपता को नष्ट कराते हैं। हम सत्याग्रह द्वारा मनुष्य की कल्याणकारी और मानवीय भावनाओं से अपील करते हैं; और मनुष्य की कल्याणकारी तथा मानवीय भावना उस समय हमारी आत्मा के सत्य के बल की सहायता पाकर अपने अंदरवाली पशुता पर विजय पाती है।"

दयानाथ ने कहा, "अच्छा, छोड़ो इस बात को! अब सवाल यह है कि क्या किया जाय!"

मार्कंडेय ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "हम लोगों को उस दूकानदार के घर चलना चाहिए, उससे अपने आदमियों की हरकत पर क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। अपनी संरक्षता में उसे लाकर उसको दूकान पर बिठलाना चाहिए और हमारे स्वयंसेवकों को, जो उसकी दूकान पर धरना दें, उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेना चाहिए।"

"बिलकुल ठीक!" दयानाथ कह उठा, "अच्छा, अब तुम स्नान करो और भोजन करो। इसके बाद अगर चाहो तो कुछ विश्राम भी कर लो। शाम के समय हमें उस दूकानदार के यहाँ चलना है!"

५

शाम के समय दयानाथ, मार्कंडेय, उमानाथ तथा कांग्रेस के अन्य नेतागण उस दूकानदार के यहाँ पहुँचे। उस दूकानदार का नाम पुरुषोत्तम था, गोरा और खूबसूरत-सा आदमी, कुछ थोड़ा-सा लापरवाह। पुरुषोत्तम साधारण हैसियत का आदमी था और उसका मकान एक गली के अंदर था। मकान भीतर से बंद था। इन लोगों के आवाज़ देने पर उसने भीतर से झाँका, और जब उसे विश्वास हो गया कि उसके दरवाज़े पर आनेवाले आदमी उसपर प्रहार नहीं करेंगे, तब उसने उतरकर दरवाज़ा खोला। सब लोगों के अंदर आ जाने पर जब वह फिर से दरवाज़ा बंद करने लगा तो दयानाथ ने कहा, "कोई ज़रूरत नहीं; हम लोग

तुम्हारे साथ हैं—तुम्हें कोई कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा सकता।
अपने भय को दूर करो!"

ऊपर कमरे में एक साफ़-सुथरा फ़र्श बिछा था, जिस पर सब लोग बैठ गए। बात दयानाथ ने आरंभ की, "हम लोग, जो कुछ कष्ट तुम्हें मिला है, उसके लिए क्षमा माँगने आए हैं। तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो, हम अपने ऊपर यह जिम्मेदारी लेते हैं कि तुम्हारा कोई भी अनिष्ट न होने पाएगा। और अभी तक जो कुछ हुआ है, उसे भूल जाओ!"

पुरुषोत्तम सिर झुकाए बैठा था। बिना अपना सिर उठाए उसने उत्तर दिया "हाँ, मुझसे गलती जरूर हो गई; लेकिन उस गलती के कारणों को मैं आप लोगों के सामने एक बार जाहिर कर दूँ, फिर आप लोग जो उचित समझें, वह दंड मुझे दें और मैं उसे स्वीकार करूँगा। देखिए, मेरी एक छोटी-सी दूकान है; मेरे घर में चार प्राणी हैं, उनका पेट मुझे भरना है। फिर मेरी सब-की-सब पूँजी उस दूकान में लगी है। और उस दूकान में सब-का-सब विलायती कपड़ा है। अब जब आप लोग मेरी दूकान पर धरना देते हैं, तब आप हमारी आजीविका का हरण करते हैं। मैं सब कष्ट बर्दाश्त करने को तैयार हूँ, लेकिन लड़कों-बच्चों का कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता! मेरे पास ज्यादा पूँजी नहीं, जो मैं देसी कपड़ा खरीदकर बेच सकूँ। ऐसी हालत में अगर मेरा दिमाग बिगड़ गया और मैं कुछ अनुचित बात कह बैठा, तो उसमें मेरा क्या दोष?"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे। फिर दयानाथ ने उत्तर दिया, "हाँ, हम लोग तुम्हारी मुसीबत समझते हैं, लेकिन जरा तुम भी तो हमारी मुसीबत समझो! देश के इतने आदमी भूखों मर रहे हैं—करोड़ों आदमियों को एक समय भोजन तक नहीं मिलता। हमारी यह स्वतंत्रता की लड़ाई उन भूखों और पददलितों से उद्धार की लड़ाई है। और तुम! तुम भी तो उत्पीड़ित हो! आज तुम्हारी यह हालत विदेशी सरकार के कारण ही तो है। पुरुषोत्तम! यह युद्ध है; और इस युद्ध में प्रत्येक भारतवासी को अपना हिस्सा लेना है। थोड़ा-सा कष्ट तुम्हें भी बर्दाश्त करना होगा। हम तुमसे जेल जाने को नहीं कहते, लाठी खाने को नहीं कहते। तुम जानते ही हो कि अधिकांश जेल जानेवालों के घर की हालत कितनी खराब है! एकमात्र उपार्जन करनेवाले के जेल चले जाने से उन लोगों को भूखे रहना पड़ता है। लेकिन वे तो उफ़ तक नहीं करते। मैंने देखा है लाठी खाकर मर जानेवाले के घर में न जाने कितने बच्चे अनाथ हो जाते हैं—निराश्रित विधवा और अन्य कुटुंबी हाहाकार करते हैं। इतने बड़े महायज्ञ में अगर हमारा देश आहुति नहीं दे सकता, तो हमारा त्राण नहीं। तुम समर्थ हो! तुम कोई दूसरा काम करो! बाजार में तुम्हारी साख है, देसी कपड़ा तुम उधार लेकर बेच सकते हो। खैर, छोड़ो इस बात को! अब तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो। और तुम्हारे लोगों के सामने आ जाने के बाद फिर लोग तुम्हें कोई भी क्षति नहीं पहुँचाएँगे। इसकी जिम्मेदारी मुझ पर!"

पुरुषोत्तम ने दयानाथ की ओर विनय से देखते हुए उत्तर दिया—"अच्छी बात

है ! मैं कल दूकान खोलूंगा ! आप मुझे अपने साथ ले ...

सब लोग वहाँ से चले । वे लोग जनरलगंज से जा रहे थे कि एक
ने खबर दी, "अनवरगंज की शराब की दूकान पर कुछ गुंडों ने कांग्रेस के
...कों को मारा-पीटा है । भीड़ उत्तेजित हो रही है !"

उसी समय सब लोग अनवरगंज की तरफ़ चल दिए ।
शराब की दूकान के सामने जनता उत्तेजित खड़ी थी, और कुछ स्वयंसेवक
...को शांत कर रहे थे । बारह स्वयंसेवक दूकान के सामने ज़मीन पर बैठे
और दूकान के सामने एक आदमी जो नशे में चूर था, खड़ा हुआ चिल्ला रहा
"ह-ट-जा-ओ ! आज-खू-न-होगा—ला-शें गिरेंगी—एक-एक—बल्लम—
...को···हम···समझ—लेंगे !"

इतने में करीब चार आदमी हाथों में लट्ठ और जेबों में शराब की बोतलें
लिये हुए दूकान से बाहर निकले । स्वयंसेवक छाती खोलकर ज़मीन पर लेट गए;
एक स्वयसेवक ने कहा, "हमारी छाती पर पैर रखकर ही तुम यहाँ से शराब की
बोतलें ले जा सकते हो. ऐसे नहीं ।"

आगेवाला आदमी ठिठककर खड़ा हो गया । उसके खड़े होते ही उसके अन्य
साथी भी रुक गए । इतने में दूकान का मालिक भीतर से निकला । उसने सबसे
आगेवाले स्वयंसेवक का हाथ पकड़कर उठाना चाहा; लेकिन वह असफल रहा ।
झल्लाकर उसने अपने हाथवाली शराब की बोतल उस स्वयंसेवक के सिर पर पटक
दी । बोतल फूटी और लाल शराब बह चली; स्वयंसेवक का सिर फूटा और लाल
बह चला । स्वयंसेवक ने जोर से कहा, 'भारत-माता की जय !' और वह
उसी समय बेहोश हो गया ।

खून देखकर दूकान के मालिक को होश आया, वह एक कदम पीछे हटा । पर
उन चार आदमियों में सबसे आगेवाले आदमी ने उसे रोक लिया, 'काहे हो !
चले कहाँ ?' और इस वाक्य के साथ उसका लट्ठ दूकान के मालिक के सिर पर
पड़ा । दयानाथ भीड़ को चीरकर आगे पहुँचा । दूकान का मालिक लट्ठ के प्रहार
से गिर पड़ा था और इस दफ़े चारों आदमियों ने अपने-अपने लट्ठ तान लिये
कि दयानाथ ने आगेवाले आदमी का हाथ पकड़ लिया, "यह क्या ? तुम अ...
ही आदमी को मार रहे हो ।"

उस आदमी ने कहा, "यह हमारा आदमी नहीं है, यह हमारा दुश्मन
यह हमसे पाप कराने को हमें बहका लाया था ! हमें छोड़िए, हम इसे यहीं
कर दें ! हत्यारा कहीं का !"

उसी समय पुलिस आ गई । दयानाथ ने कहा, "पुलिस आ गई है । तु...
कुछ किया, वह बुरा किया । अब उसे यहीं खत्म करो ! भगवान् तुमको...
दे !"

उसने शांतिपूर्वक दयानाथ को प्रणाम करके कहा, "मुझे आप लो...
करें । जो पाप मैंने किया था, उसकी सज़ा मुझे मिल गई!" और फिर उ...

ज लगाई, 'भारत-माता की जय!' इसके बाद उसने पुलिस
समर्पण कर दिया।
लिस ने घायल स्वयंसेवक को और मालिक-दूकान को अस्पताल भिजवाया।
ों ने यह सब देखकर दूकान बंद कर दी। दूकान के बंद होते ही भीड़
-बितर हो गई।
जिस समय दयानाथ, उमानाथ और मार्कंडेय घर पहुँचे, रात हो गई थी।
ा खाकर तीनों ड्राइंग-रूम में बैठे। बातचीत के सिलसिले में मार्कंडेय ने
नाथ से पूछा, "उमा! तुम्हारे वह दोस्त कामरेड मारीसन कहाँ है?"
"वह तो इंग्लैण्ड चले गए। क्या बतलाऊँ अब अकेला ही रह गया हूँ; मन
ही लगता! हाँ, मार्कंडेय भइया, कामरेड ब्रह्मदत्त का क्या हाल है? उनकी मुझे
ड़ी जरूरत है!"
मार्कंडेय हँस पड़ा, "कामरेड ब्रह्मदत्त आजकल सालीटेरी-सेल में निवास कर
रहे हैं! भाई, आदमी जीवट का है—मैं मान गया!"
"क्यों, क्या हुआ?" उमा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।
"बात यों हुई कि ब्रह्मदत्त को 'बी' क्लास मिला और मुझे 'ए' क्लास मिला
था। कानपुर के डिक्टेटर की हैसियत से मैं भी गया था और ब्रह्मदत्त भी गए थे,
इससे यह भेद-भाव उन्हें अखर गया। सुपरिंटेंडेंट-जेल से उन्होंने लिखा-पढ़ी
की। इसका नतीजा यह हुआ कि इक्वाइरी हुई और यह समझा जाता था कि उन्हें
भी 'ए' क्लास मिल जायगा। लेकिन इस बीच में एक दिन वे सुपरिंटेंडेंट-जेल से
अनायास ही उलझ पड़े।"
"सो कैसे?"
"वह ऐसे कि ब्रह्मदत्त उलझने पर तो तुले बैठे थे। सुपरिंटेंडेंट उस दिन राउंड
लगा रहा था; ब्रह्मदत्त उसके सामने पहुँचे। तेजी के साथ उन्होंने कहा, 'इतने
दिन हो गए और आप लोगों ने अभी तक कुछ नहीं किया। याद रखना, अगर
मुझे 'ए' क्लास नहीं मिला तो कांग्रेस गवर्नमेंट होने पर मैं तुम्हें बर्खास्त क
दूँगा!' ब्रह्मदत्त की बात सुनकर सुपरिंटेंडेंट जोर से हँस पड़ा, 'और अगर मैं तुम
'सी' क्लास दे दूँ तो तुम मुझे फाँसी चढ़वा दोगे। और बर्खास्त होने से मैं
जाना ज्यादा पसंद करूँगा। इसलिए मैं तुम्हें 'सी' क्लास देता हूँ!"
उमानाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा, "मजेदार बात कह गया—तारीफ क
है उसकी! फिर क्या हुआ?"
"अब हमारे ब्रह्मदत्त साहेब को मिला 'सी' क्लास। उसी दिन उन्होंने
हाथ में लेकर कसम खाई कि वे सुपरिंटेंडेंट को नाकों चने चबवा देंगे। फिर
था, उन्होंने 'सी' क्लास के कैदियों का एक यूनियन स्टार्ट किया। दो-चार
ही वे जेल के एकछत्र शासक बन बैठे। अब किसी भी कैदी को कोई हुक्म
मजाल है कि बिना पंडित ब्रह्मदत्त की मंजूरी के वह हुक्म पूरा हो जाय।
... ब्रह्मदत्त को डंडा-बेड़ी मिली, उन पर मार पड़ी,

चढ़ाया गया। लेकिन हालत सुधरने की जगह दिनोंदिन बिगड़ती ही गई। जिस दिन मैं छूटा, उसके दो दिन पहले वे सालीटरी सेल में भेज दिए गए थे। लेकिन 'सी' क्लास के कैदियों ने बाक़ायदा सत्याग्रह आरंभ कर दिया था और यह सत्याग्रह था कि काम न करेंगे, चाहे उनकी बोटी-बोटी काट डाली जाय।"

"तब तो शायद उनकी सज़ा बढ़ा दी जाय!" उमानाथ ने चिंतित भाव से कहा।

मार्कंडेय ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "मेरा ख़याल है कि जितने तरह के रिप्रीशंस हो सकते हैं, वे सब-के-सब उनके हक़ में बरते जाएँगे और अगर दो-चार दिन के अंदर ही पंडित ब्रह्मदत्त तुम्हें आकर सलाम करें तो इसमें मुझे ज़रा भी आश्चर्य न होगा।" इसके बाद मार्कंडेय दयानाथ की ओर घूमा, "दया! कल मैं गाँव जाने की सोच रहा हूँ। दो-चार दिन गाँव में रहकर आराम कर लूँ, तब फिर यहाँ का काम-काज देखूँ-भालूँगा!"

"मैं भी आपके साथ चलूँगा, मार्कंडेय भइया!" उमानाथ ने कहा।

दयानाथ ने दोनों को देखा, फिर उसने मार्कंडेय से कहा, "अच्छी बात है, लेकिन कल सुबह उस दूकानदार के मसले को हल करके जाना।"

सुबह दस बजे सब लोग पुरुषोत्तम के मकान पर पहुँचे। उसे साथ लेकर वे लोग उसकी दूकान पर आए—जनता की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, लेकिन सब लोग शांत थे। पुरुषोत्तम ने अपनी दूकान खोली और बैठ गया; उसके पास ही अन्य लोग भी बैठ गए।

उसी समय वह स्वयंसेविका, जिसका उस दिन पुरुषोत्तम ने अपमान किया था, झंडा लेकर दूकान के सामने खड़ी हो गई। स्वयंसेविका के दूकान के सामने खड़ी होते ही पुरुषोत्तम ने दूकान से उतरकर उस स्वयंसेविका के चरण छुए। जनता ने उस समय नारा लगाया, 'भारत-माता की जय!'

पुरुषोत्तम ने फिर दूकान पर खड़े होकर कहा, "भाइयो और बहनो! मैंने जो पाप किया था, आज मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। आज ही मैं अपने माल पर कांग्रेस की मुहर लगाए देता हूँ और आगे के लिए मैं अपने को कांग्रेस का एक तुच्छ कार्यकर्ता घोषित करता हूँ।"

चारों ओर एक हर्ष-ध्वनि गूँज उठी।

जब सब लोग वापस हुए, उमानाथ ने मार्कंडेय से कहा, "मार्कंडेय भइया! आप लोग ख़ूब तमाशा करते हैं—मैं मान गया! लेकिन यह सब क्यों—एक गलत सिद्धांत पर लोगों को चलाकर आप उनका कितना अधिक अहित कर रहे हैं—यह आप नहीं जानते।"

मार्कंडेय ने उमानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, "क्या कहा? गलत सिद्धांत? तुम्हारे पास क्या सबूत है कि यह गलत सिद्धांत है?"

"इसका सबूत यह है कि आपका सिद्धांत प्रकृति के विरुद्ध है।"

"और मैं कहता हूँ कि यह प्राकृतिक है !" मार्कंडेय ने कहा,
"तुमने कल शराबपान का दृश्य देखा और आज यह दृश्य देखा ! इस पर भी तुम कहते हो कि हमारा सिद्धांत प्रकृति की अवहेलना करता है !"

एक व्यंग्यात्मक मुसकराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "मार्कंडेय भइया ! उस स्थिति में जहाँ भावना थोड़ी देर के लिए क्षणिक उन्माद का रूप धारण कर लेती है, अगर एक बात हो जाय तो उसे हम प्राकृतिक नहीं कह सकते। आपका यह 'मास-मूवमेंट' और 'मास-अपील' सत्य और नित्य नहीं है। आज और कल जो कुछ हुआ, उसे हम भावना का पागलपन ही कह सकते हैं, स्वाभाविक और प्राकृतिक घटनाएं नहीं कह सकते।"

उस समय तक दोनों मार्कंडेय के मकान तक पहुँच चुके थे। मार्कंडेय ने कहा, "उसका उत्तर मैं तुम्हें गाँव चलकर दूँगा, अभी मुझे चलने का प्रबंध करना है !"

तीसरा परिच्छेद

रात के समय जब मनमोहन शाम को शिकार में मारे हुए दो सवनों को पका रहा था तो भगड़ू ने पूछा, "काहे हो मनमोहन ! तुम कौन जात हो ?"

मनमोहन चौंक पड़ा, फिर जरा-सा सँभलकर उसने उत्तर दिया, "शायद ब्राह्मण !"

इस बार भगड़ू के चौंकने की बारी थी, "यू 'सायद' काहे ?"

मनमोहन ने बहुत ही गंभीरतापूर्वक कहा, " 'शायद' इसलिए कि मुझे किसी भी चीज पर विश्वास नहीं रह गया। ब्राह्मण के कुल में मैंने जन्म अवश्य पाया है, पर न मेरे कर्म ब्राह्मण के हैं, न संस्कार ! मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं, मुझे अपने ऊपर तक विश्वास नहीं। ऐसी हालत में मैं अपने को निश्चयपूर्वक ब्राह्मण कैसे कह सकता हूँ ?" कुछ रुककर मनमोहन ने फिर कहा, "लेकिन, मिसिरजी ! आपने इस समय मेरी जाति क्यों पूछी थी ?"

"बात यू आय कि मास तुम पकाय रहे हो और खाँय की इच्छा हमरी हू हुई आई ! तौन हम यू निरचै कर लीन चाहा कि तुम ब्राह्मण आव कि नाहीं !"

"और अगर मैं ब्राह्मण न होता ?" मनमोहन ने पूछा।

"तो फिर आज हम निरामिष भोजन करित !"

एकाएक मनमोहन उठ खड़ा हुआ। उसका स्वर तनिक कर्कश हो उठा, "तो मिसिरजी ! आप वह नहीं हैं जो मैंने आपको समझ रखा था; आप भी समाज की रूढ़ियों से बंधे हुए उतने ही कायर आदमी हैं, जितना आज का हरएक हिंदुस्तानी है।"

"का कह्यो? हम कायर आन?" कड़े स्वर में झगड़ू ने पूछा।

"हाँ, आप कायर हैं!" मनमोहन का स्वर और भी उत्तेजित हो उठा। "मनुष्यों में छूआछूत का इतना विचार रखनेवाले आप पशु-पक्षियों को छू ही नहीं सकते हैं, वरन् उनका भक्षण कर सकते हैं! आपने कभी इस पर सोचा है? और सोचने की आवश्यकता ही क्या है—यह बात इतनी स्पष्ट है! नतीजा साफ है—आपके अंदरवाली कायरता आपको मजबूर करती है कि आप इन रूढ़ियों में बँधे रहें।"

झगड़ू कुछ देर मौन बैठे हुए मनमोहन की बात पर सोचते रहे, फिर उन्होंने सिर उठाया, "शायद तुम ठीक कह्यो, मनमोहन! हम अवश्य कायर आन! लेकिन ई तो मानै का पड़ी कि कायरता कबौं-कबौं हितकारी होत है। हम सब छुटकवा मनई कायर आन?"

"सो कैसे?" इस बार मनमोहन के प्रश्न करने की बारी थी।

"सो ई तरा कि दुनियाँ माँ सफल मनई वह आय जो वीर आय। और वीरता का एक रूप आय अपराध, अपनेपन के पीछे लोकमत की उपेक्षा। सो प्रत्येक लोकमत की उपेक्षा करनेवाला अपराधी आय! है न!"

"लोक दृष्टि में—अपनी दृष्टि में नहीं।" मनमोहन ने कहा।

"माना, किंतु लोक से पृथक् हमार अस्तित्व कब आय? अब जब हम अपनपन का लोकमत के ऊपर उठाय लेइत हन तब हम वीर बन जात हन; काहे सेनी कि हम ऊ समय अंदरवाली पुकार से प्रेरित हुइ के लोकमत का चुनौती देन पर तैयार हुइ जात हन!"

मनमोहन हँस पड़ा, "मिसिरजी! यह लोकमत बनता कैसे है? हम सब लोक के एक भाग हैं कि नहीं? जो बात ठीक है, उसे करने में हिचक क्यों? आज का लोकमत यदि गलत है, तो उसे सुधारने वाला कौन है? हमीं लोग न! हमीं लोगों के जिम्मे यह काम है कि हम लोकमत को बदलें! बिना इस बलिदान के हमारा जीवन निरर्थक है, हमारा अस्तित्व शून्य है!"

झगड़ू उठ खड़े हुए। कुछ देर तक एकटक वे रात के गहरे अंधकार को देखते रहे, फिर एक ठंडी साँस लेकर उन्होंने कहा, "तुम ठीक कहि रहे हो, मुला ई पै सोचन का पड़ी। तौन इतना तो हमहू कबौं-कबौं अनुभव करन लागत आन कि हमार जिंदगी निरर्थक बीत रही है। अब सार्थक कैसे बने—यू हमका कबहूँ नाहीं सूझा!"

कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "और सूझतो कैसे? हम पंचे अपढ़ मनई बैल की तरा काम-काज माँ जुटे रहेन, कबौं दम मारन की फुरसत नाहीं मिली!"

उस रात झगड़ू और मनमोहन में फिर कोई बात नहीं हुई। दूसरे दिन सुबह छः बजे ही दोनों शिकार पर निकल पड़े।

गंगा के किनारे किनारे दोनों चले जा रहे थे, सूर्योदय हो रहा था। एकाएक झगड़ू रुक गए, उनके सामने करीब दो सौ गज की दूरी पर हिरनों का एक झु

बैठा था। मनमोहन के कंधे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "देखते हो। बीच में यह वाला बड़ा है! कैसे बड़े-बड़े सींग हैं!"

"तो उसी को लेता हूँ!" यह कहकर मनमोहन ने बंदूक का निशाना लिया। मनमोहन बंदूक का घोड़ा दबाने ही वाला था कि झगड़ू ने उसे रोक दिया, "नहीं, मनमोहन, छोड़ो! चलो, आगे बढ़ो!"

"क्यों?" मनमोहन ने पूछा।

झगड़ू मुसकराए, "ऐसन! मजे माँ किलोलें करत हैं—कैसे सुखी हैं! तौन उनकेर सुख हर लेन की तबीअत नाहीं होत है!'

उस समय तक सारा ग्राम-प्रांत मधुर कलरव से भर गया था। मनमोहन ने झगड़ू की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह गंगा के किनारे खड़ा हुआ गंगा के प्रवाह को देख रहा था। उसके सामने गंगा की अथाह जल-राशि थी, जिसके साथ सूर्य की सुनहली किरणें अठखेलियाँ कर रही थीं। वह प्राकृतिक सौंदर्य उसने युगों के बाद देखा था, और वह सोच रहा था। उसने एक ठंडी साँस भरकर झगड़ू से कहा, "मिसिरजी! मैं इस सबसे कितनी दूर हट गया हूँ! दुनिया में इतना अधिक सौंदर्य है, इतना अधिक उल्लास है, इतना अधिक सुख है—पर इन सबों से मैं कितना दूर हो गया हूँ!"

पर झगड़ू की आँखों के आगे न सौंदर्य था और न सुख था। उनकी आँखों के आगे एक भयानक सूनापन था, उनकी सारी जिंदगी उनकी आँखों में अपना खोखलापन भर चुकी थी। एक निरर्थक-सी करुण मुसकराहट के साथ झगड़ू ने कहा, "हुइ सकत है! तुम अबहीं-अबहीं सहर से आय रहे हो!"

मनमोहन ने एक ठंडी साँस भरी। बंदूक उसने अपने कंधे पर लटका ली और दोनों चल पड़े।

दोनों चल रहे थे और दोनों सोच रहे थे। कुछ देर तक चलते रहने के बाद मनमोहन ने झगड़ू से पूछा, "मिसिरजी! आपने अभी मुझे हिरन पर गोली चलाने से रोका था, यह कहकर कि वे सुखी हैं—उनके सुख को न छीनना चाहिए! अब आप बतलाइए कि फिर हम लोग शिकार खेलना बंद क्यों नहीं कर देते!"

झगड़ू ने कुछ सोचकर कहा, "लेकिन मनमोहन! ई हिरन खेती का कितना नुकसान करत हैं! ई जितन सिकार आयँ, उनकी तह माँ एक सिद्धांत है। हम उन ही जानवरन का मारत हन या सिकार करत हन, जौन हमार नुकसान करत हैं!"

"हूँ!" मनमोहन ने सिर हिलाया, "शायद आप ठीक कहते हैं!"

अब वे दोनों एक ऊँचे टीले पर आ गए थे, जहाँ से इर्द-गिर्द बहुत दूर का दृश्य दिखलाई देता था। दोनों उस टीले पर खड़े हो गए, और मनमोहन ने अपने चारों ओर देखा। उनकी दृष्टि दूर तक बानापुर के राजा साहेब के महल पर रुक गई; कुछ देर तक वह उस ओर देखता रहा। फिर उसने बहुत गंभीरतापूर्वक

झगड़ू से कहा, "मिसिरजी ! क्या आपने कभी मनुष्य का शिकार कया है ?"

इस प्रश्न से झगड़ू चौंक पड़े। उन्होंने मनमोहन को बड़े ध्यान से देखा, "मनई का सिकार ? काहे हो मनमोहन—तुम कबहूँ कीन्हे हौ का ?"

मनमोहन के मुख पर हलकी-सी मुसकराहट आई, "नहीं, मिसिरजी ! बात यह थी कि आपने अभी कहा था कि हम लोग उन्हीं जानवरों का शिकार करते हैं जो हमारा नुकसान करते हैं। शिकार को इस कसौटी पर कसने के बाद मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हम लोग मनुष्य का शिकार करने लगें तो मानव-समाज का बड़ा कल्याण हो। है न ऐसा !"

झगड़ू अजीब चक्कर में पड़ गए। उन्होंने अनेक प्रकार के विचित्र मनुष्य देखे हैं, पर आज उनके सामने उन सबसे अधिक विचित्र मनुष्य खड़ा था। उसने बात ऐसी कही थी जो भयानक होते हुए भी सारहीन न थी। उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मनई तो सबसे ज्यादा नुकसान करत हैं, और ऊके कर्मन का दंड भी मिल जात है। यह राज-काज, न्यायालय—सब यही तो कर रहे हैं—हमार काम यू थोड़ो आय !"

मनमोहन ने उसी तरह शांत भाव से कहा, "लेकिन ये न्यायालय न्याय कब करते हैं ? न्याय का रूप समर्थ के वास्ते कुछ है और असमर्थ के वास्ते कुछ। धनी आदमी हत्या करके मजा कर सकता है और उसके बदले में एक निर्धन निरपराधी को दंड मिल सकता है !"

"ई तो ठीक है ! लेकिन ई सब का देखनवाला भगवानो तो है। न्याय-अन्याय का लेखा-ड्योढ़ा जन्म-जन्मांतर माँ बराबरै हुइ जात है !"

२

करीब ग्यारह बजे दोनों वापस लौटे। उस दिन उन्हें कोई शिकार नहीं मिला, या यों कहें कि उस दिन उन्होंने शिकार नहीं किया। जब वे लोग गाँव पहुँचे तो उन्होंने देखा कि झगड़ू के दरवाजे एक भीड़ खड़ी थी। झगड़ू ने आते ही पूछा, "कहो—क्या मामला है ?"

एक नवयुवक ने बढ़कर कहा, "झगड़ू काका ! अब तो बड़ी ज्यादती हो रही है। आज मैनेजर साहेब ने रामाधीन को बुरी तरह पिटवाया—बिचारे को अधमरा करके छोड़ा।"

"यू काहे ?" झगड़ू ने पूछा।

"बकाया-लगान की चुकौती में जिलेदार साहेब रामाधीन के बैल छीने लिए जा रहे थे। सो रामाधीन से न रहा गया, उसने बढ़के रोका। बस, इसी पर बात बढ़ गई। इस पर मैनेजर साहेब खुद आए और उन्होंने यह सब कांड किया।"

"और तुम लोग सब-के-सब मरि गै रह्यो जौन खड़े-खड़े देखत रह्यो ?" झगड़ू ने गरजकर कहा, "ठाकुर रामसिंह रामाधीन का अधमार करके जिंदा

चले गए। डूब मरो चुल्लू भर पानी मां!"

उस नवयुवक ने, जिसका नाम मोहनलाल था, कहा, "झगड़ू काका, आप ही तो हम लोगों को अहिंसा पर चलने का उपदेश देते रहते हैं और आज आप हम लोगों पर नाराज हो रहे हैं!"

पर झगड़ू का पारा चढ़ चुका था, इस समय वे हिंसा-अहिंसा के मामले पर वाद-विवाद करने को या सोचने को जरा भी तैयार न थे। उन्होंने कहा, "हम ई कुछ नहीं जानित! तौन ठाकुर रामसिंह से यू संदेशा कहाय देव कि अब उइ गाँव माँ पैर न रक्खैं नहीं तो उनकी वहै गति होई जो उइ रामाधीन की कीन्हिन है। अच्छा रामाधीन कहाँ है?"

"घर में पड़े हैं, मरहमपट्टी हो रही है!"

"हम चल के देखित हन!" झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "तौन जरा तुम बैठो, हम रामाधीन का देख आई!"

रामाधीन की मरहमपट्टी करके झगड़ू करीब दो बजे लौटे। मनमोहन तब तक पढ़ता रहा। झगड़ू के वापस आने पर दोनों ने भोजन किया। भोजन करके दोनों लेट गए।

शाम के समय अलाव के सामने झगड़ू के पड़ोसी इकट्ठा हो गए। झगड़ू और मनमोहन—दोनों वहाँ आकर बैठ गए, और बातचीत रामाधीन पर उठ पड़ी। एक आदमी ने कहा, "मिसिरजी! रामाधीन की जो हालत हुई है, उससे गाँव भर में आतंक फैल गया। जिलेदार कह रहे हैं कि जो आदमी मैनेजर साहब के हुक्म की उपेक्षा करेगा, उसकी वही गति होगी।"

झगड़ू ने मनमोहन की ओर देखा, "सुनेव, मनमोहन! यू अत्याचार दिनोंदिन बढ़त जात है। अब हमरे सामने सवाल यू है कि ई सबका उत्तर कौनी तरह दीन जाय। तौन महात्मा गांधी अहिंसा-अहिंसा चिल्लाय रहे हैं, और हम कहित है कि अहिंसा कायरता आय!"

मनमोहन ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "लेकिन, मिसिरजी! आप कर ही क्या सकते हैं? इस अत्याचार को दो तरह से ही दबाया जा सकता है, या तो अत्याचारी को मिटाकर या स्वयं मिटकर! अभी तक आप मिटे हुए थे, आप गुलाम थे, इसलिए आप पर अत्याचार कम होते थे। लेकिन जब आपने करवट ली, तब आप पर अत्याचार बढ़े। अगर आप इस अत्याचार को मिटाना चाहते हैं, तो आपके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आप अत्याचारी को मिटावें। और इसलिए यह सवाल महत्त्व का है कि क्या हिंसा द्वारा आप उस अत्याचारी को मिटा सकते हैं?"

"काहे नाहीं!" झगड़ू ने तनकर कहा, "ई मनीजर, सरबराकर, जिलेदार, पियादा—इनकेर हस्ती का है? हम कहित है कि ठाकुर रामसिंह जरा [illegible] माँ पैर रख के तो देख लेंय!" और इस बार अपने आस-पास बैठे लोगों मुड़े, "काहे हो भइया! हम ठीक कहित है न!"

विश्वंभर नाम के एक अधेड़ आदमी ने कहा, "नहीं मिसिरजी! अभी दो-चार दिन तो वह नहीं आ सकते, लेकिन इसके बाद जब सब लोगों का जोश ठंडा पड़ जायगा, तब की बात मैं नहीं कह सकता।"

अलाव जोरों के साथ सुलग रहा था और चारों ओर गहरा अंधकार फैला था। लकड़ी के एक बड़े-से कुंदे की आग का लाल प्रकाश मनमोहन के चेहरे पर पड़ रहा था और झगड़ू ने मनमोहन के लंबे-से सुंदर मुख पर एक हल्की-सी मुसकराहट देखी। और उन्होंने देखा कि उस मुसकराहट से मनमोहन का चेहरा एकाएक बहुत भयानक रूप से विकृत हो गया है; मनमोहन की उस महाकुरूप मुसकराहट से झगड़ू सिहर-से उठे। घबराकर उन्होंने उधर से अपनी आँखें फेर लीं। विश्वंभर से उन्होंने कहा, "तो तुम्हारा खयाल है कि ई गाँव के मनई दुइये-चार दिना माँ दबि जइहैं?"

विश्वंभर ने कुछ सकपकाते हुए कहा, "मिसिरजी, आप यह तो जानते ही हैं कि हम लोगों के बीच में एका नहीं है। आज जब आप रामाधीन के यहाँ गए थे, उस समय दो आदमी मैनेजर के यहाँ पहुँचे और मेरा ऐसा खयाल है, उन्होंने एक-एक की पाँच-पाँच जड़ी होगीं। जब तक हम लोगों में ऐसे विश्वासघाती मौजूद हैं, तब तक कोई बात निश्चित रूप से कैसे कही जा सकती है!"

"उइ दुइ मनई कौन आँय—जरा हमहू तो जानी!" झगड़ू ने पूछा।

"नाम आप मुझसे न पूछें, मिसिरजी! मैंने आपको केवल आगाह भर किया था!"

झगड़ू चुपचाप सोचन लगे—आगे-पीछे पर; फिर उन्होंने कहा, "विसंभर सुवा गाँव के सब मनई इहाँ इकट्ठा कीन जाइहैं! अब तो या झगड़ू मिसिर हैं या फिर ठाकुर रामसिंह हैं।" और झगड़ू उठ खड़े हुए, वे कुछ तन गए, "रामसिंह का अबहीं वम्हनन-ठकुरन से पाला नहीं पड़ा, अहिर-गोड़रियन पर रोब दिखावत रहे हैं। यू याद राखैं कि अगर जिंदा अपनी मरजी से उइ ई गाँव से नाहीं गए तो फिर हमरी मरजी से उनका मुरदा हुइ के जाँय का पड़ी।"

मनमोहन ने हाथ पकड़कर झगड़ू को बिठला लिया, "मिसिरजी! आप होश में नहीं हैं। बैठिए!"

झगड़ू बैठ गए—लेकिन वे आवेश से काँप रहे थे।

थोड़ी देर तक झगड़ू के शांत हो जाने की प्रतीक्षा करने के बाद मनमोहन ने पूछा, "मिसिरजी! आप अकेले मैनेजर से मोरचा लेंगे या आपके साथ और भी आदमी होंगे?"

"सारा गाँव हमार साथ देई!" सब लोगों की ओर देखते हुए झगड़ू ने कहा, "और अगर ई लोग साथ न देंय तबहूँ हमें ई की चिंता नाहीं। हम अकेले काफी आन!"

"नहीं! आप अकेले तो काफ़ी नहीं हैं! और गाँववाले आपका साथ देंगे—इस पर मुझे शक है। लेकिन अगर मैं यह मान भी लूं कि वे लोग आपका साथ देंगे

मेरे खयाल से वे गलती करेंगे !"

इसी समय एक आदमी ने कहा, "मालूम होता है, बहुत-से आदमी आ रहे हैं, मिसिरजी !" और बात बंद हो गई। सामने कुछ आदमी आ रहे थे। आगे-आगे एक आदमी लालटेन लिए हुए था और उसके पीछे दस-बारह आदमी लट्ठ लिए हुए थे। यह गिरोह झगड़ू के दरवाजे आकर रुका। उस गिरोह में से एक आदमी ने बढ़कर कहा, "मिसिरजी ! पाँव लागी !"

जिस आदमी ने यह कहा था उसके हाथ में लाठी के स्थान पर एक बंदूक थी। वह ओवरकोट पहने था और उसके चेहरे से रोब टपकता था। झगड़ू ने बैठे-ही-बैठे उत्तर दिया, "आसीर्वाद, ठाकुर रामसिंह ! कहो, कैसे कष्ट कीन्हेव ?"

मुसकराते हुए रामसिंह ने कहा, "मिसिरजी ! हमने आज सुना कि आप हम पर नाराज हो गए हैं ! इसीलिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ! हमने आपका ऐसा कौन-सा अपराध किया ?"

झगड़ू इस परिस्थिति के लिए तैयार न थे; उन्हें यह न सूझ पड़ रहा था कि किस तरह बातचीत की जाय; फिर भी उन्होंने कहा, "मनीजर साहेब ! रामाधीन के हाथ-पैर आप की आज्ञा से तोड़े गए हैं न ?"

रामसिंह ने उत्तर दिया, "हाँ, मिसिरजी ! यह सब हमारे ही हुक्म से हुआ है। लेकिन इतना हम आपको बतला दें कि हम तो केवल एक माध्यम हैं, जिसके द्वारा राजा साहेब का हुक्म चलता है। उनका हुक्म है कि राज्य की आज्ञा का विरोध करनेवाले को कड़ा-से-कड़ा दंड दिया जाय !"

"ऐस बात है !" झगड़ू ने केवल इतना ही कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामसिंह ने कहा, "और मिसिरजी, आपने जो हमें संदेश भिजवाया कि हम गाँव में कदम न रक्खें, वह संदेश हमें मिल गया। उसी के उत्तर में हम यहाँ आए हैं—आप हमें देख रहे हैं न ?"

रामसिंह के पहले उत्तर से झगड़ू कुछ शांत हो गए थे, लेकिन उनकी दूसरी बात ने बुझती हुई आग पर घृत का काम किया। वे उठकर खड़े हो गए, "तो फिर ठाकुर रामसिंह, हम यू समझी कि तुम हमें चुनौती देन आए हो !"

एक व्यंग्य की हँसी हँसते हुए रामसिंह ने कहा, "चुनौती तो हमें आपने दी थी, हम उसे राजा साहब की तरफ से मंजूर करते हैं। आपने कहलाया था कि हमारी वही गति होगी जो हमने रामाधीन की थी। हम यहाँ खड़े हैं, अब जिसकी हिम्मत हो, वह हमारी वह गति बनावे !"

"तो फिर लेव !" झगड़ू ने अपने बगल में रखी हुई लाठी को तानते हुए कहा। पर झगड़ू के लाठी तानते ही मनमोहन ने उन्हें पकड़ लिया, "नहीं, मिसिरजी ! इस तरह आवेश में आकर काम नहीं किया जाता !" और उस समय झगड़ू ने देखा कि रामसिंह के छः आदमी लट्ठ ताने हुए उन्हें घेरे खड़े हैं। मनमोहन इस बार रामसिंह की ओर घूमा, "जाइए, मैनेजर साहेब ! आप जा सकते हैं। लेकिन यदि मिसिरजी के प्रति आप आदर दिखलाते तो अधिक अच्छा [illegible]"

मैनेजर साहेब हँस पड़े, "आदर! मिसिरजी का हम आदर करते हैं! राजा साहेब की बराबरीवाले हैं। हमने तो न उन अपमान किया, न उन्हें बुरा-भला कहा। हम सिर्फ़ इतना कहने आए हैं कि हम राजा साहेब के प्रतिनिधि हैं—राजा साहेब के मैनेजर को चुनौती देना असल में राजा साहेब को चुनौती देना है!" और यह कहकर ठाकुर रामसिंह अपने साथियों के साथ चले गए।

३

रात-भर झगड़ू को नींद नहीं आई। उनके घर के सामने बानापुर का मैनेजर उसका अपमान करके चला गया—आज तक झगड़ू को इस स्थिति का सामना न करना पड़ा था। घटनास्थल से मैनेजर के जाते ही वे वहाँ से उठ आए थे; चलते समय उन्होंने न किसी से एक शब्द कहा और न किसी ने उनसे कोई बात की। झगड़ू जानते थे कि वे पराजित हुए, गाँववाले यह जानते थे कि झगड़ू पराजित हुए। रातभर वे करवटें बदलते रहे, सुबह चार बजे के करीब उनकी आँख लगी, और जब वे सोकर उठे, तब धूप काफ़ी चढ़ आई थी।

मनमोहन सुबह तड़के ही घूमने चला गया था। झगड़ू जब घर के बाहर निकले, गाँव के आदमी वहाँ इकट्ठा थे। एक आदमी ने कहा, 'मिसिरजी! रात में मुरली के मकान में आग लग गई। ऐसा खयाल किया जाता है कि यह करतूत रियासतवालों की है।'

झगड़ू ने चुपचाप यह खबर सुनी, वे कुछ बोले नहीं। उस समय वे तेजी के साथ सोच रहे थे। चीजें बहुत बड़ी रफ्तार से बढ़ रही थीं और झगड़ू को ऐसा लग रहा था कि जल्दी ही उन्हें कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। वे चुपचाप बैठ गए; गाँववाले अब भी इकट्ठा हो रहे थे। आज सारा वातावरण गंभीर और आतंक से भरा हुआ था। लोग निर्णय करने आए थे और उन्हें अपना निर्णय देना था अपने जीवन-मरण के प्रश्न पर। लेकिन शायद झगड़ू के सामने उस समय गाँववालों का प्रश्न उतना न था, जितना उनका व्यक्तिगत प्रश्न था। रात में कई आदमियों के सामने ठाकुर रामसिंह उसका अपमान कर गए थे—किस प्रकार उस अपमान का बदला लिया जाय—वे उस समय यही सोच रहे थे।

विश्वंभर ने कहा, "मिसिरजी, हम लोगों ने कल रात की घटना की बाबत सुना। राम-राम! ठाकुर रामसिंह की अब यह हिम्मत हो गई है! अब आपका क्या विचार है?" और विश्वंभर ने वहाँ उपस्थित अन्य लोगों की ओर देखा, "सो मैं तो यह जानता हूँ कि मिसिरजी हमारे पूज्य हैं, उनका अपमान—हम सब लोगों का अपमान है! अब मिसिरजी के ऊपर है कि वे किस प्रकार उस अपमान का बदला लेना चाहते हैं!"

झगड़ू अब तक चुप थे, अब उन्होंने अपनी नजर उठाई। उन्होंने वहाँ उपस्थित लोगों को एक बार गौर से देखा, फिर शांत और गंभीर स्वर में कहा,

"आप लोग इतना अधिक उद्विग्न न होंय। यदि हमार अपमान भी है तो हम अपने अपमान का बदला लै सकत हन। सवाल आप लोगन के सामने यू आय कि यह अत्याचार कौनी तरह रोका जाय। हम अबही सोचत रहेन कि तिवारीजी से मिल के उन्हें सब कुछ बताय देन और अगर तिवारी जी हू कुछ न सुनें तो फिर हम सब काम करी। आप लोगन केर का विचार है ?"

"क्या आपका अनुमान है कि इस मामले में तिवारीजी हम लोगों का पक्ष लेंगे ?" एक नवयुवक ने कहा, "और मिसिरजी, आप तिवारीजी को इतना अधिक जानते हुए भी यह अनुमान कर लेते हैं—इस पर मुझे आश्चर्य होता है। फिर अपने अधिकारों की हम दूसरों से भिक्षा क्यों मांगें ? स्वयं अपने अधिकारों को अपने हाथ में लेकर हमें काम करना चाहिए। राज्य के नौकर-चाकर लोकमत की उपेक्षा नहीं कर सकते, समय पड़ने पर वे सब हमारा साथ देंगे—इतना मैं जानता हूँ। अब अगर हम लोग काम करने से डरते हैं तो यह हमारी कायरता है।"

झगड़ू ने उस नवयुवक से पूछा, "तो तुम काम करा चाहत हो ? अच्छा, अब हमें यह बताओ कि का काम करा चाहत हो ?"

नवयुवक निरुत्तर-सा हो गया। उसने केवल इतना कहा, "आप लोग सब इकट्ठा हुए हैं—इसका निर्णय तो आप ही लोग करेंगे।"

झगड़ू मुसकराए, "बात कहि देब आसान आय, लेकिन काम करब बड़ा कठिन आय! जोश में आय के कहि डालै मां और उचित ढंग से काम करै मां बड़ा अंतर आय। अच्छा परमेसुर! निर्णय तो हम सब लोग करबै—तुम उपाय तो बताओ!"

उस नवयुवक ने, जिसका नाम परमेश्वर था, जरा हिचकिचाते हुए कहा, "कह तो सकता हूँ, लेकिन आप सब लोग उसे मानेंगे नहीं।"

"नहीं; कह डालो—मानें या न मानें—इसमें हर्ज क्या है।" विश्वंभर ने कहा।

"तो कल रात मुरली की झोंपड़ी में आग लगी है, चोरी-छिपे; आज रात मैनेजर साहेब के घर में आग लगे ऐलान करके!" परमेश्वर ने तनकर कहा।

सभा में गहरा सन्नाटा छा गया। जो कुछ परमेश्वर ने कहा, वह उस सभा में बैठे कई आदमियों के मन में था, लेकिन कहने की हिम्मत किसी को न हो रही थी। थोड़ी देर तक सब चुप बैठे रहे, फिर उस मौन को झगड़ू ने तोड़ा, "आग लगाउब अपराध आय, दंडनीय आय। मुरली की झुपड़िया मां आग लगावनवाले का पता नहीं है सो उका दंड नाहीं मिल सकत। किंतु मनीजर के मकान मां आग लगावनवाले हम दंड के भागी बनब। ऐस कृत्य से हम आपन हित को अपेक्षा अहित कर लेब।"

इस समय मनमोहन घूमकर लौट आया और वह चुपके-से एक कोने में बैठ गया। झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "लो और सुन्यो, मनमोहन! कल रात कौनो

मुरली की झुपड़िया माँ आग लगाय दीन्हिस। मुरली और जिले[दार]
माँ इधर कुछ दिनन से तनातनी हुई गई रहै, और जिलेदार मुरली
[क]ु धमकी हू दीन्हिन रहैं कि उइ मुरली का तवाह कर देहैं। अब हम लोगन
[स]ामने प्रश्न ई आय कि ई अत्याचार का मुकाबिला कैसे कीन जाय।"

मनमोहन मुसकराया और झगड़ू को एकाएक मनमोहन की पिछली रात
[वा]ली मुसकराहट याद हो आई। ठीक वैसी ही कुरूप मुसकराहट थी, रात में
[अ]लाव के लाल प्रकाश में वह बहुत भयानक दिखी थी, इस समय उसकी भयानकता
किसी हद तक दवी हुई थी। मनमोहन ने कहा, "मिसिरजी! मैंने कल आपसे
कहा था न कि इस अत्याचार को स्वयं मिटाकर या अत्याचारी को मिटाकर ही
दवाया जा सकता है। पर मुसीवत यह है कि आपके सामनेवाला अत्याचारी
[अ]सली अत्याचारी नहीं है, वह तो अत्याचार की एक बहुत बड़ी मशीन का एक
साधारण-सा पुरज़ा है। इस अत्याचारी को मिटाने की कोशिश करके आप पूरी
अत्याचार की मशीन को अपने ख़िलाफ चालू कर लेंगे। इस मैनेजर के ऊपर हैं
ताल्लुकेदार, ताल्लुकेदार के ऊपर है ब्रिटिश सरकार, जिसकी पुलिस हमेशा
ताल्लुकेदार की रक्षा करती रहती है, और पुलिस की रक्षा करने के लिए है एक
बहुत बड़ी फौज। तो मिसिरजी, इस लंबे चक्कर में पड़कर आप बहुत बुरी तरह
पिस जाइयेगा। इस पर आप पहले सोच लीजिए!"

मनमोहन की बात का उस सभा में एकत्रित सब व्यक्तियों पर गहरा असर
पड़ा। उसने ऐसी बात कही थी जिससे कोई इनकार न कर सकता था। परमेश्वर
ने कुछ सोचकर दवी जवान कहा, "तो फिर इसके माने ये हैं कि हम मिटते
रहैं?"

"जरूर!" मनमोहन कह उठा, "इसलिए कि तुम निर्बल हो और वे लो[ग]
सवल हैं। सबल और निर्वल की लड़ाई एक हास्यास्पद चीज़ है: सबल से निर्व[ल]
कभी भी पार न पा सकेगा। सवल और निर्वल की लड़ाई केवल एक तरह सं[भव]
है—निर्वल सवल पर जव वार करे तव पीछे से, छिपकर। जव तक सवल नि[र्वल]
को देख नहीं सकता, तब तक उसे नष्ट नहीं कर सकता। केवल इसी तरह
लड़ाई संभव है!"

झगड़ू ने जरा सँभलकर कहा, "लेकिन मनमोहन, पीछे से चोरी-छिपे
करब कायरता आय!"

मनमोहन हँस पड़ा, "जहाँ वीरता अवश्यंभावी मृत्यु है, वहाँ वह आ[व]
की मूर्खता है। कायरता उत्पीड़न को सहन करना है, उत्पीड़न का स
उत्तर देते हुए सवल के वार को वचाते रहना कायरता नहीं है, बुद्धिमानी

"नाहीं—हमार जी तो नाहीं भरत है!" झगड़ू ने कहा और वे अ
की ओर घूमे, "अच्छा, हम जरा तिवारीजी से ई संवंध माँ वातचीत
तब ऊके वाद 'का कीन जाई' ई पै निर्णय कीन जाई। आज संध्या के
... जाव!"

दस दिन शाम के समय झगड़ू का उन्नाव जाना न हो सका। जैसे ही कपड़े पहनकर वे उन्नाव चलने के लिए घर से बाहर निकले, वैसे ही मार्कंडेय ने उनके चरण छुए। मार्कंडेय को अपने सामने देखकर झगड़ू को आश्चर्य हुआ, "अरे, तुम छुटि आएव। हम तो समझे रहे कि अबहीं तुम्हारे छूटै माँ कुछ विलंब है।"

"जी हाँ, उन्होंने कल मुझे बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। सोचा, दो-चार दिन के लिए गाँव हो आऊँ, उसके बाद फिर से काम-काज शुरू करूँ।" मार्कंडेय ने कहा, "और बप्पा आप कहाँ जा रहे हैं?"

"हाँ, तिवारीजी से बातें करै का है। तौन गाँव माँ बड़ा अंधेर मचा भवा है, मनीजर और जिलेदार बुरी तरा से लोगन का सताय रहे हैं। अब उनकी ऐस हिम्मत बढ़ गई है कि सब मनइन के सामने मनीजर काल्ह रात हमार अपमान कर गए।"

"तो फिर इसमें जल्दी क्या है? आज न जाकर कल चले जाइयेगा। मेरे साथ उमानाथ भी आए हैं, मैं जरा इस सबंध में उनसे भी बात कर लूँगा।" मार्कंडेय ने झगड़ू को मकान के अंदर ले चलते हुए कहा।

बाहरवाले कमरे में मनमोहन लेटा हुआ गीता पढ़ रहा था, झगड़ू और मार्कंडेय को आते हुए देखकर वह उठ बैठा, "क्यों मिसिर जी, आप गए नहीं?" और मनमोहन उठ खड़ा हुआ।

"हाँ! जाय की पूरी तैयारी कर लीन रहे, मुला ई बीच माँ मार्कंडेय आय गए—काल्हि जेल से छूट के आए हैं।"

मनमोहन और मार्कंडेय—दोनों ने एक-दूसरे को देखा, दोनों एक-दूसरे के सामने खड़े थे। मार्कंडेय ने मनमोहन से कहा, "आपका परिचय, बप्पा?"

"का तुम इन्हें नाहीं जानत हौ? इनका नाम आय मनमोहन, प्रभा के मित्र आँय। तौन सिकार खेलै के लिए गाँव माँ आए हैं। और मार्कंडे, हम इनसे बातचीत करि के ई निर्णय पर पहुँचेन कि ई बहुत विद्वान् मनई आयँ!" झगड़ू ने सहज भाव से कहा, फिर उसने मनमोहन से कहा, "और ई मार्कंडे कानपुर माँ वकालत करत रहैं, तो कांग्रेस के पीछे आपन वकालत-मकालत छोड़-छाड़ि के जेल चले गए। तौन अब छूटि के अपने बप्पा के दरसन करन चले आए हैं!" और झगड़ू खिलखिलाकर हँस पड़े।

मनमोहन ने मार्कंडेय को नमस्कार किया और मार्कंडेय ने नमस्कार का उत्तर दिया।

एक घंटे बाद उमानाथ मार्कंडेय से मिलने आया। उमानाथ की आवाज सुनते ही झगड़ू घर के बाहर निकल आए, "गुड ईवनिंग, झगड़ू काका!" उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "कहिए, कुछ सिकार-विकार हो रहा है?"

"हाँ, मंझले कुँवर, सिकार-विकार अबहीं तक होत रहा, मुला इधर—एक

दिना से वंद हैं !"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने पूछा।

"पसु-पक्षी का सिकार करि के जी ऊविगा—अव मनई के सिकार की तयारी ही है !" कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "तुम आय गयो, तौन वड़ा नीक वहुत संभव है ई व्यर्थ का खून-खरावा वच जाय !"

"क्या वात है, झगड़ू काका, साफ़-साफ़ कहिए ?" उमानाथ ने पूछा।

"तौन मार्कंडेय से सुन लीन्हेव !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "यही तुम्हें अच्छी ह से समझाय सकत हैं। और ई मनमोहन—इहौ तुम्हारी हमजोली के आयँ, व वातैं देखिन-सुनिन हैं और साथ माँ छुटके कुँवर के मित्र आयँ, तौन इनसे सव ातैं ठीक-ठीक मालूम हुई जइहैं !"

मार्कंडेय कपड़े पहनकर वाहर आ गया था। उसने मनमोहन से कहा, "इसलिए, आप असल में तो उमानाथ के मेहमान हैं, इसलिए उन्हीं के यहाँ इस वक्त का नाश्ता हो और गप-शप जमे ! क्यों उमा !"

और मार्कंडेय ने उमानाथ से मनमोहन का परिचय कराया।

जिस समय ये तीनों आदमी वानापुर के राजा साहेव के महल में पहुँचे, वाना-पुर के राज्य के करीव-करीव सव कर्मचारी मंझले कुँवर को सलाम करने के लिए एकत्रित हो गए थे। इन तीनों के आते ही सव लोग उठ खड़े हुए, और इनके वैठने के वाद सव लोग फर्श पर वैठ गए। उमानाथ ने रामसिंह से पूछा, "कहिए मैनेजर साहेव ! सव कुछ कुशलपूर्वक तो चल रहा है !"

रामसिंह ने जरा मुँह वनाते हुए कहा, "कहाँ, मंझले सरकार ! इस जमाने में कुशल कैसी ? एक ओर राजा साहेव का हुक्म कि सख्ती करो, और दूसरी तरफ़ कांग्रेस की वगावत। मैं तो अजीव परेशानी में हूँ। उधर अगर राजा साहेव की आज्ञा न मानूँ तो हुक्म-उदूली और नमकहरामी होती है, और इधर अगर सख्ती करता हूँ तो गाँववालों से दुश्मनी वढ़ती है। अव तो मेरी जान भी खत में है।"

मार्कंडेय चौंक उठा, "जान का खतरा ? कांग्रेस तो अहिंसा का सिद्धांत ले चल रही है, मैनेजर साहेव ! यह जान का खतरा कैसा ?"

एक रूखी मुसकराहट के साथ रामसिंह ने उत्तर दिया, "सरकार ! अहिंसा—ये सव वड़े आदमियों की वातें हैं; यहाँ तो हमसे यह कहलाया ग कि अगर मैं गाँव में पैर रक्खूँगा तो मेरी जान की खैर नहीं। और कहला लोग केवल वातूनी नहीं हैं वे जो कहते हैं, उसे कर गुजरने वाले लोग हैं।"

"ज़रा उनका नाम तो सुनूँ !" मार्कंडेय ने कहा।

इस वार सरवराहकार जयनारायण के वोलने की वारी थी, "संदेश हैं आपके पिताजी ने, और दुनिया इस वात को जानती है कि आपके अपने हठ के पक्के हैं। मैनेजर साहेव विना दस-पाँच आदमी साथ वाहर कदम नहीं रख सकते !"

"लेकिन कल रात आप मेरे पिताजी के यहाँ गए थे न?"
मार्कंडेय ने पूछा।

मैनेजर रामसिंह ने गंभीरतापूर्वक कहा, "जी हाँ, मिसिरजी को सारी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मुझे वहाँ जाने को मजबूर होना पड़ा था; लेकिन बात बनने की जगह बिगड़ ही गई। उनका क्रोध भयानक होता है—उसे मैं तो शांत नहीं कर सकता!"

"और आप स्थिति स्पष्ट करने के लिए दल-बल के साथ गए थे, इस तरह तो समझौते की बातें नहीं होतीं," मार्कंडेय ने उत्तर दिया।

"अगर मैं अपने शरीर-रक्षकों के साथ न गया होता तो मैं न वापस आता, मेरी लाश वापस आती! इतने आदमियों के होते हुए भी उन्होंने लाठी तान ली थी।"

"और मैंने उनको रोका था, मैनेजर साहब, इसलिए नहीं कि आपकी जान का खतरा था, बल्कि इसलिए कि उनकी जान का खतरा था। चारों तरफ अपने लट्ठबंदों से उन्हें घिरवाकर आपने उनका अपमान किया था, उनके क्रोध को जानते हुए। उसका परिणाम प्राकृतिक रूप से यही होता कि वे आप पर प्रहार करते, और उनके प्रहार करने के पहले आपके आदमी उन पर प्रहार करते! है न ऐसी बात?" मनमोहन ने कहा।

"अच्छा! तो आप ही ने उन्हें रोका था!" गौर से मनमोहन को देखते हुए रामसिंह ने कहा, "तो फिर आप सच्ची घटना के साक्षी-रूप यहाँ पर मौजूद ही हैं। आप ही बतलाइए कि मैंने उनका क्या अपमान किया था? मैंने तो केवल इतना कहा था कि मैं राजा साहेब का प्रतिनिधि हूँ। राज्य के मैनेजर को जो चुनौती दी जाती है, वह रामसिंह को नहीं दी जाती, बल्कि राज्य के स्वामी राजा साहेब को दी जाती है! है न?"

"कहा तो आपने यही था," मनमोहन को स्वीकार करना पड़ा, "लेकिन कहने का ढंग गलत था!"

"हम लोग तो साहेब देहाती आदमी हैं और हमें यही ढंग आता है!" रूखे स्वर में रामसिंह ने उत्तर दिया।

मैनेजर का रूखा जवाब मार्कंडेय को अखर गया। उसने गौर से मैनेजर को देखा, फिर धीरे से कहा, "और शायद आप दूसरा ढंग समझने की जरूरत भी नहीं समझते! यही सारी मुसीबत है, मैनेजर साहेब! फिर भी मैं बप्पा से बातें करके सब-कुछ ठीक करा देने की कोशिश करूँगा। चीजों को बहुत आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए; इस समय, जब हमें विदेशी सरकार से लड़ना है, आपस में इस तरह का कलह-विद्वेष हमें शोभा नहीं देता। और इसी समय क्यों? मैं तो कहता हूँ कि हर समय, हर काल सदिच्छा और सद्भावना से हमें काम लेना चाहिए।"

"यही तो मैं भी चाहता हूँ, मिसिर जी!" रामसिंह ने कहा, "आपसे कल—यह

पसंद है कि मुझे अशांति की शरण लेनी पड़े, आत्म-रक्षा के रूप में भी ! अपने लिए तो मैं यह कह सकता हूं कि मुझे जो कुछ करना पड़ता है, वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करता, वह मैं राजा साहेब की आज्ञा से करता हूं। फिर अगर ऐसा न किया जाय तो काम भी तो न चले !"

५

मार्कंडेय और मनमोहन के साथ उमानाथ लाइब्रेरी के कमरे में चला गया, हॉल में राज्य के कर्मचारी रह गए। वहां का वातावरण एक अनिश्चित-सा, आशंका से भरा हुआ था। ठाकुर रामसिंह ने ज़िलेदार विंदेश्वरीप्रसाद से कहा, "तो ज़िलेदार साहेब ! इस वक्त गांववालों के क्या हाल हैं ?"

"सरकार ! लक्षण तो अच्छे नहीं दिख रहे, पूरी फौजदारी ठनी हुई है। आज सुबह यह भी सुझाव पेश किया गया था कि रात में सरकार के मकान में आग लगा दी जाय, लेकिन पंडित झगड़ू मिश्र ने इसे रोक दिया !"

"इतनी हिम्मत !" रामसिंह ने कुछ सोचा, फिर वे सरबराहकार जयनारायण की ओर घूमे, "सुना सरबराहकार साहेब ! अच्छा, अपने पास कुल कितने आदमी हैं ?"

"करीब बीस लठैत हैं और छः बंदूकें हैं—आप कोई चिंता न करें !" सरबराहकार जयनारायण ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने धीरे से कहा, "लेकिन मैनेजर साहेब, अगर आप इतनी सख्ती न करें तो कुछ हर्ज है? जमाना बड़ा नाजुक है, और मुझे कभी-कभी अपने आदमियों पर ही शक होने लगता है !"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।" रामसिंह ने कहा।

"मेरा मतलब यह है कि रिआया के बागी होने से हमें फायदा नहीं होगा, नुकसान ही होगा। मान लीजिए कि हम लोग मजबूत हैं और हर तरह से रिआया को कुचल सकते हैं; लेकिन अगर लड़ाई हुई तो हम लोगों पर बिना आंच आए रहेगी नहीं। और अगर यह बैर जड़ पकड़ गया तो फिर हम लोगों का यहां रहना असंभव हो जायगा।"

रामसिंह हंस पड़े, "आप आज कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं, पंडित जयनारायण जी ? यह आप क्यों भूले जाते हैं कि हम रिआया पर हुकूमत तभी कर सकते हैं जब रिआया के दिल में हमारा खौफ समा जाय ?"

"लेकिन मैं तो यह देख रहा हूं कि रिआया पर इस वक्त हुकूमत कर रहे हैं झगड़ू मिश्र; और झगड़ू मिश्र की हुकूमत प्यार की हुकूमत है, जबरदस्ती की नहीं !"

कुछ चुप रहकर रामसिंह ने कहा, "हां, इस वक्त रिआया पर हुकूमत कर रहे हैं पंडित झगड़ू मिश्र, लेकिन जिस तरह की हुकूमत वे कर रहे हैं, उस तरह की हुकूमत हरएक आदमी कर सकता है। पंडित झगड़ू मिश्र से रिआया का कोई रुपये-पैसे का ताल्लुक नहीं है, वे लोगों को बड़ी आसानी से बरगला सकते

हैं। लेकिन यह गाँववाले पंडित झगड़ू मिश्र की तो रिआया नहीं हैं—ये हमारी रिआया हैं। ऐसी हालत में पंडित झगड़ू मिश्र का जिक्र चलाना बेकार है।"

"जैसी आपकी इच्छा ?" सरबराहकार जयनारायण ने कहा, "मेरी अर्ज तो केवल इतनी थी कि मनुष्य को सिर्फ वहीं तक दबाना चाहिए, जहाँ तक वह दब सके। छोटी-सी जिंदगी है—उसके बाद भगवान् के सामने अपने कर्मों का लेखा-ड्योढ़ा देना है; इस छोटी-सी जिंदगी में नेकी और बदी में होड़ लगी है; नेकी व बदी अपना बदला नेकी व बदी में ही देती है।"

रामसिंह के माथे पर बल पड़ गए, "तो, पंडित जयनारायण, मैं यह समझूँ कि आपके अंदरवाला देवता हमारी दानवता से घृणा करता है। अच्छी बात है, मैं राजा साहेब से इसका जिक्र कर दूंगा ! आप-जैसे मुलाजिमों के रहते हुए राज्य में राजा साहेब की हुकूमत की जड़ पनप नहीं सकती !" और रामसिंह उठ खड़े हुए।

पंडित जयनारायण भी उठ खड़े हुए, "जैसी आपकी इच्छा, मैनेजर साहेब ! लेकिन यहाँ देवत्व और दानवता का तो सवाल मैंने नहीं उठाया, मैंने सिर्फ एक सलाह भर दी थी !"

पंडित जयनारायण चले गए। रामसिंह ने जिलेदार विदेश्वरी प्रसाद से कहा, "जिलेदार साहेब ! कुछ ऐसा दिखता है कि आगे चलकर बहुत बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। इलाके से कुछ और लठैत बुला लेने चाहिएँ। आप कल सुबह मेरे यहाँ आ जाइएगा, मैं दीगर जिलों को हुक्मनामा लिख दूंगा। और इस बीच आप जरा मझले कुँवर की कारंवाइयों को गौर से देखते रहिएगा।"

उमानाथ उस समय लाइब्रेरी में बैठा हुआ मार्कंडेय और मनमोहन से गाँव की वर्तमान परिस्थिति पर बात कर रहा था। विदेश्वरीप्रसाद लाइब्रेरी के सामनेवाले बरामदे में दरवाजे से कान लगाकर खड़ा हो गया। उसने सुना—"मार्कंडेय भइया, सारी मुसीबत तो इस अहिंसात्मक विरोध से उठ खड़ी होती है। अगर किसी यह जान जाय कि इनकी लात का जवाब हमारे जूते से मिलेगा तो वह लात मारने के पहले एक बार अच्छी तरह सोचे-समझेगा। इतने अधिक गाँववाले और इतने थोड़े-से राज्य के कर्मचारी ! मेरी समझ में नहीं आता कि अगर गाँववाले मरने-मारने पर तुल जायँ तो किस तरह राज्य के कर्मचारी उन्हें उत्पीड़ित कर सकते हैं !" और उमानाथ हँस पड़ा।

इसका उत्तर मनमोहन ने दिया, "मिस्टर उमानाथ ! आपने यह तो कह दिया कि राज्य के कर्मचारी थोड़े-से हैं, लेकिन यह कहने के समय आप राज्य को भूल गए। बानापुर तालुका एक बहुत बड़े राज्य का एक छोटा-सा हिस्सा है। अगर आप गौर से देखें तो आपको स्पष्ट हो जायगा कि बानापुर तालुका की रक्षा करने के लिए, उसके उत्पीड़न को सार्थक और सफल बनाने के लिए, एक बहुत बड़े साम्राज्य की बहुत बड़ी सेना मौजूद है।"

"तो आपका मतलव है कि जव तक यह साम्राज्य कायम रहेगा, तव तक यह विषमता मौजूद रहेगी, और इस विषमता को मिटाने के पहले साम्राज्य को मिटाना जरूरी है !" उमानाथ ने कहा।

"जी हाँ, आप मेरा मतलव ठीक समझे !"

"और मैं आपसे असहमत हूँ !" उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप एक बात भूल जाते हैं मिस्टर मनमोहन ! साम्राज्य विषमता का परिणाम है, कारण नहीं है। यह साम्राज्य तभी बन सका है, जव दुनिया में विषमता मौजूद थी। आज मान लीजिए कि आप इस साम्राज्य को मिटा भी दें, लेकिन इन श्रेणियों को कायम रखें तो कल यही श्रेणियाँ साम्राज्य के मुकावले की या इस साम्राज्य से भी कहीं अधिक भयानक और शक्तिशाली किसी दूसरी चीज़ को जन्म दे देंगी। मिस्टर मनमोहन, परिणाम को मिटाने के पहले हमें उस परिणाम के मूल कारणों को ढूँढकर मिटाना पड़ेगा। इसी में हमारा कल्याण है। और मैं कहता हूँ कि कारण हम में श्रेणी-भेद है। ये थोड़े-से अँगरेज़ इस विशाल देश हिंदुस्तान पर इसलिए शासन करते हैं कि उत्पीड़न करने वाली श्रेणियाँ इस उत्पीड़न में अँगरेज़ों की मदद करती हैं। इसलिए अगर देश का वुर्जुआ क्लास मिट जाय तो फिर क्या मजाल कि अँगरेज़ यहाँ ज़रा-सा भी टिक सकें।"

"लेकिन उसके वाद !" मार्कंडेय ने पूछा।

"उसके वाद क्या ?" उमानाथ मार्कंडेय की ओर घूमा।

"इन बुर्जुआ लोगों को मिटाने के वाद मिटानेवाले लोग शोषक वन जाएँगे और मिटनेवाले उत्पीड़ित वन जाएँगे, मनोविज्ञान तो यह कहता है। आखिर उत्पीड़न है क्या ? सबल का निर्बल से बेजा फ़ायदा उठाने की कोशिश करना ! मारनेवाला सबल है, मारा जानेवाला निर्बल है !"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप कैसी भद्दी दलील दे रहे हैं, मार्कंडेय भइया ! वास्तव में सबल वहुमत है—वह समुदाय है जो भूखों मरता है। केवल यह वहुमत अपनी शक्ति को जानता नहीं, उसका उपयोग नहीं कर सकता। और यहाँ एक और मनोवैज्ञानिक सत्य लागू होता है, शक्तिमय वहुमत का नियम है विकसित होना—असीमता की ओर, शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—इकाई की ओर। इसी से राजा का जन्म होता है।"

इस वार मार्कंडेय के हँसने की वारी थी, "तुम्हारी दलील मैं स्वीकार करता हूँ, उमा ! और तुम्हारी दलील ही तुम्हारी वात का खंडन करती है। तुम अपने वहुमत का रूप ठीक-ठीक नहीं देख पा रहे हो। तुम्हारा दृष्टिकोण विकृत है। तुम्हारा यह वहुमत वास्तव में अल्पमत है, क्योंकि यह वहुमत केवल साधन है, कर्ता नहीं है। कर्ता कुछ थोड़े-से इने-गिने लोग हैं, जिन्हें 'नेता' कहा जाता है। वहुमत इन्हीं थोड़े-से नेताओं के इशारों पर भेड़-वकरियों की तरह चलता है। और तुम्हारा यह कहना कि शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—

इकाई की तरह! —यह भी ठीक है। आज रूस का डिक्टेटर
स्तालिन राजा का स्थानापन्न भर है।"

रमानाथ ने बड़े ध्यान से मार्कंडेय की बातें सुनी थीं। उसने कहा, "आप बड़ा गलत समझ रहे हैं, मार्कंडेय भइया! आप यह कहते हैं कि रूस में अल्पमत का आधिपत्य है, यह मैं माने लेता हूँ, लेकिन उस अल्पमत का सिद्धांत बहुमत के कल्याण का सिद्धांत है, वह अल्पमत बहुमत का प्रतिनिधि भर है—वह कोई विशेष श्रेणी नहीं है। और इसलिए उस अल्पमत की आवाज सारी दुनिया की आवाज है। आज जो कुछ आप रूस में देख-सुन रहे हैं, वही सत्य और नित्य नहीं है। वह विकास के क्रम का एक आवश्यक अंग भर है। समाजवाद एक संपूर्ण सुगठित समाज में विश्वास करता है, और प्रत्येक व्यक्ति उस सुगठित समाज का एक पुरजा है, जिसे अपना काम ठीक तरह से करना है। आरंभ में जब एक तरह की अस्थिरता, एक तरह का अज्ञान लोगों में रहता है, तब उस समाज को ठीक तौर से संचालित करने के लिए समाज को इकाई की शरण लेनी पड़ती है। पर वह इकाई ऐसी होनी चाहिए, जिस पर सब लोगों का पूर्ण विश्वास हो जो समाज को संचालित करने के योग्य हो। और ऐसा आदमी डिक्टेटर कहलाता है। पर मार्कंडेय भइया, उस डिक्टेटर का हित, उसका निजी हित नहीं होता। वह समस्त समाज का हित होता है। आपने स्तालिन की बात उठाई है, तो मैं उसी को लेता हूँ। आप कह सकते हैं कि स्तालिन अपने ऊपर कितना खर्च करता है? जब दुनिया के बड़े-बड़े नरेश अपने ऐश-आराम पर करोड़ों रुपये खर्च कर देते हैं, तब स्तालिन केवल कुछ सौ रुपयों पर अपना जीवन निर्वाह करता है।"

"हाँ! यह मैं मानता हू कि स्तालिन बहुत कम रुपया लेता है!" मार्कंडेय ने कहा, "लेकिन यह तो कोई नई बात नहीं है। हिंदुस्तान में औरंगजेब भी तो अपने ऊपर कम-से-कम खर्च करता था। ऐसे अनेक राजाओं की चर्चा इतिहास में आती है जिन्होंने अपने ऊपर कम-से-कम खर्च किया है। ऐसी हालत में अगर स्तालिन अपने ऊपर बहुत कम खर्च करता है तो यह कोई बड़ी बात नहीं। यह याद रखना कि स्तालिन के पास भयानक शक्ति का भयानक नशा है, बनाना और मिटाना उसके हाथ में है। उसे रुपयों की जरूरत ही क्या? हमारे देश में एक ऐसा जमाना था जब ब्राह्मण त्यागी होते थे, जंगलों में रहते थे। उनके पास कोई संपत्ति नहीं होती थी और उन्होंने खुद यह सब परित्याग किया था। जानते हो क्यों? इसलिए कि वे शासक थे, वे समर्थ थे। राजा उठकर उनका स्वागत करता था, उन्हें उच्च आसन देता था, उनके खाने-ठहरने का उत्तम-से-उत्तम प्रबंध करता था। सारे संसार का धन उनकी सेवा में था। यही नहीं, मंदिरों में देवदासियाँ उनकी कामवासना तुष्ट करने के लिए रहती थीं, जनता उन्हें कन्यादान करती थी। शक्ति भयानक चीज है, उमा! और अगर बिना पैसे के शक्ति द्वारा सब कुछ मिल सके तो पैसे की क्या जरूरत है?"

"और गांधी जी के पास भी तो वही शक्ति है?" मनमोहन ने

कहने के मुताबिक मैं फिर गांधी में और स्टालिन में कोई अंतर नहीं देखता। गांधी भी तो डिक्टेटर हैं!"

"वेल सेड! वेल सेड!" उमानाथ ने ताली पीटते हुए मार्कंडेय को देखा।

पर मानो मार्कंडेय इस प्रश्न के लिए तैयार बैठा था। उसने कहा, "हाँ, गांधी भी डिक्टेटर हैं—मैं यह मानता हूँ। पर वह प्रेम और विश्वास से डिक्टेटर हैं। स्टालिन के पीछे एक बहुत बड़ी सेना की ताकत है, वह लोगों पर शासन करता है अस्त्र-शस्त्र के जोर से! और गांधी! गांधी के पीछे सारी ताकत है भावना की, प्रेम की, विश्वास की। आप जब चाहें, गांधी को डिक्टेटरशिप से हटा सकते हैं, लेकिन स्टालिन को नहीं। एक विदेशी सरकार की बड़ी-से-बड़ी शक्तियाँ भी अपने संपूर्ण विरोध-द्वारा गांधी पर जनता के प्रेम और विश्वास को कम नहीं कर सकीं। वे डिक्टेटर हैं, केवल इसलिए कि देश को उनकी जरूरत है। उन्होंने अपने को जनता के मस्तक पर जबर्दस्ती नहीं लादा, बल्कि जनता ने आग्रहपूर्वक उन्हें अपने मस्तक पर बिठलाया!"

"जैसा जनता ने गाँधी को अपने मस्तक पर बिठाया, वह हम खूब जानते हैं!" उमानाथ ने मुँह बनाते हुए कहा, "गाँधी का हथियार है फ़रेब और छल—गुलामों के पास यही हथियार हुआ भी करता है। झूठे वादे, झूठी कल्पना, झूठा प्रोग्राम! चारों ओर एक भयानक झूठ; और उसी झूठ से प्रभावित होकर हिंदुस्तान की मूर्ख जनता, जो सदियों से झूठे भगवान की, झूठे धर्म की, झूठे महात्माओं और महंतों की गुलामी करती आ रही है, इस महात्मा को भी सिर पर बिठलाए हुए है। लेकिन मार्कंडेय भइया, यह ज्ञान और तर्क का युग है, यह महात्मापन का परदा ज्यादा दिन तक नहीं चल सकता। और फिर या तो इस महात्मा को अपन तख्त खाली करना पड़ेगा, या फिर अपने तख्त को कायम रखने के लिए बल क प्रयोग करना पड़ेगा।"

गांधी के व्यक्तित्व तथा ईमानदारी पर यह हमला मार्कंडेय को अच्छा नह लगा; लेकिन वह उत्तेजित नहीं हुआ। उसने शांत भाव से कहा, "उमा! क यह आवश्यक है कि तुम इतने बड़े महापुरुष को इतनी खराब गालियाँ दो! तुम से प्रार्थना करूँगा कि तुम गाँधी को समझने की कोशिश करो! व्यक्ति समझने के लिए उसके सिद्धांतों को समझना बहुत जरूरी होता है। यह हम देश का ही नहीं, वरन् समस्त मानवता का दुर्भाग्य है कि वह बिना सिद्धांत सम बाहरी बातों से प्रभावित हो जाता है। उमा! तुम दुनिया को बदलना चा हो, बिना खुद बदले हुए, और यही तुम्हारी असफलता का बीज है! गांधी दुनि को बदलना चाहते है स्वयं अपने को बदलकर। और अपने को बदलने के प्र को तुम झूठ और आडंबर कहते हो! तुम हिंसा के उपासक हो, और अपने अ वाली हिंसा से प्रभावित होकर तुम अहिंसा को केवल झूठा ढोंग ही समझ स हो! इस बात पर मुझे दुःख होता है। जब तक तुम अपने अंदरवाली हिंस भरी पशुता को दूर करने का प्रयत्न न करोगे, तब तक गांधी को समझ स

तुम्हारे लिए असंभव ही है।") और मार्कंडेय उठ खड़ा हुआ।

६

दूसरे दिन सुबह उमानाथ ने झगड़ू को बुलवाया। मैनेजर रामसिंह वहीं मौजूद थे। उस समय झगड़ू का पारा काफी चढ़ा हुआ था; तड़के ही उन्हें यह सूचना मिली थी कि रात के वक्त परमेश्वर नाम के एक नवयुवक को जिले के आदमियों ने घेरकर मारा, और परमेश्वर ने उस समय तक अन्न न ग्रहण करने का प्रण किया है, जब तक मैनेजर से बदला न ले लिया जाय।

झगड़ू ने आते ही रामसिंह से कहा, "काहे हो मनीजर साहब, अब तो आपके आदमी बहुत अधिक अत्याचार करन लग गए हैं।"

"क्यों क्या बात है, मिसिरजी? कौन-सा अपराध हो गया है उनसे?" बड़ी नम्रता के साथ रामसिंह ने पूछा।

मैनेजर की विनम्रता से झगड़ू का क्रोध और भी भड़क उठा, "जैसे तुम कुछ जानते नहीं हो! अरे भगवान से तो डरो! परमेसुर तुम लोगन का का बिगाड़े रहे जो ऊका अकेले पाय के तुम्हारे इलाके के आदमी बुरी तरह पीटिन?"

"कौन परमेश्वर?—वह छोकरा?" रामसिंह ने कुछ सोचने की मुद्रा बनाकर कहा, "वही न जो बड़ा तेज है। तो मिसिरजी, मुझे उसके संबंध में कुछ नहीं मालूम! लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि वह लौंडा इतना बदजबान और अक्खड़ है कि उसका हमारे आदमियों से हक-नाहक उलझ पड़ना स्वाभाविक है। और ऐसी हालत में परिणाम तो आप समझ ही सकते हैं।"

इस बार उमानाथ ने अपना सिर उठाया। वह चीजों के वास्तविक रूप को समझ सकता था—और वह यह भी जानता था कि घटनाओं का क्रम निश्चित रूप से अकल्याणकारी है। लेकिन उसे राज्य के मामले में बोलने का कोई अधिकार नहीं है—अपनी इस सीमा का भी उसे ज्ञान था। उसने धीरे से कहा, "मैनेजर साहेब! मैं जानता हूँ कि राज-काज में दस्तन्दाजी करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। लेकिन एक बार मैं भी अपनी बात कह देना चाहता हूँ। आप जो कुछ कर रहे हैं, आप उसे राज्य की भलाई के लिए भले ही कहें, लेकिन मैं समझता हूँ कि वह सब आप अपनेपन से, अपनी अहम्मन्यता से प्रेरित होकर कर रहे हैं; उसमें राज्य का फायदा नहीं, नुकसान है; और इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि आप अपने आदमियों से शांत हो जाने के लिए कह दें।"

हाथ जोड़कर रामसिंह ने कहा, "मझले सरकार! आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मैं आपको किस तरह विश्वास दिलाऊँ कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह अपनी तरफ से नहीं कर रहा हूँ बल्कि राजा साहेब के हुक्म की तामील कर रहा हूँ। इसके अलावा मैंने अपने आदमियों से हमेशा शांत रहने को कहा है, लेकिन यह गांववाले हमारे आदमियों को शांत बैठने कब देते हैं!"

रामसिंह के इस कथन से उमानाथ निरुत्तर हो गया। कुछ देर तक सब लोग

मौन बैठे रहे, फिर उमानाथ ने कहा, "यह तो सुना, लेकिन सवाल मेरे सामने यह है कि आखिर हो क्या ? जो कुछ अभी हो रहा है, उसमें किसी का कल्याण नहीं।"

मालूम होता है कि इतनी देर में ठाकुर रामसिंह ने उत्तर सोच रखा था। उन्होंने कहा, "अब एक ही तरीका है, मंझले सरकार ! वह यह कि मैं इस्तीफा दे दूं। मिसिरजी के कहने के मुताबिक बिनाए-मुखासिमत मैं हूं, और शायद मेरे हटने से झगड़ा शांत हो जाय।"

झगड़ू ने कड़ी निगाह से रामसिंह को देखते हुए कहा, "और तुम्हार ऐस खयाल है कि तुम्हारे रहत भए सांती नाहीं हुइ सकत !"

'मैंने तो यह नहीं कहा। मेरा कहना तो सिर्फ इतना है कि मेरे यहां रहते हुए गाँववाले चुप होने वाले नहीं। उस दिन आप ही ने तो संदेशा भिजवाया था कि अगर मैंने गांव में पैर रखा तो मेरे हाथ-पैर तोड़ दिए जाएंगे !"

उमानाथ ने झगड़ू की ओर देखा और झगड़ू ने उत्तर दिया, "हां, मनीजर साहिब ठीक कह रहे हैं। तौन मनीजर साहेब रामाधीन का ऐस पिटवाइन कि वह अधमरा हुइगा। तौन आज तक वह चारपाई सेंक रहा है।"

"खैर, छोड़िए इस बात को ! अब अगर मामला यहीं रोक दिया जाय तो कैसा रहे ?" उमानाथ ने कहा।

"लेकिन परमेसुर अन्न-जल छोडे पड़ा है। ऊ अन्न-जल तबै ग्रहण करी जब मनीजर से बदला लीन जाई ! अब ई का उपाय क्या है ?"

उमानाथ ने कुछ सोचा, "अच्छा ! मैं मैनेजर को यहां से दद्दुआ को बुलाने भेज रहा हूं—जब दद्दुआ आएंगे, तब सब कुछ तै हो जायगा। तब तक मैनेजर साहब के यहां से दूर रहने से परमेश्वर के अन्न-जल ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए !"

"हमें मंजूर !" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"सरकार का हुक्म मेरे सिर-आंखों !" रामसिंह ने कहा।

७

जिस समय झगड़ू घर लौटे, उनका मन भारी था। वह समझौता कर आए थे, पर वह समझौता था कैसा ? उसका रूप क्या था ? यही न, कि उन्होंने इस बात का वादा कर लिया था कि रामसिंह ने जो ज्यादतियां की थीं, उनके खिलाफ गांववाले कोई कार्रवाई न करेंगे ! और रामसिंह का क्या होगा, यह अनिश्चित था। झगड़ू के अंदर से कोई बार-बार कहता था कि उस समझौते में झगड़ू की पराजय हुई।

गाँववाले झगड़ू के दरवाजे पर इकट्ठा थे, वे झगड़ू की राह देख रहे थे। झगड़ू के आते ही सब लोग उठ खड़े हुए। झगड़ू बिना कुछ बोले थके हुए-से बैठ गए।

किसी ने झगड़ू से कुछ न कहा, सब यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि झगड़ू बात

आरंभ करें। जब बहुत देर तक झगड़ू ने कुछ नहीं कहा, तब एक ने पूछा, "काहे हो मिसिरजी, कुशल है न?"

शुष्क भाव से झगड़ू ने उत्तर दिया, "हां, कुसलै समझो। तौन मंझले कुंवर हमसे कहिन कि अब ई लड़ाई-झगड़ा बंद कर दीन जाय!"

"और मैनेजर यहीं रहेंगे?" दूसरे ने पूछा।

लड़खड़ाते हुए स्वर में झगड़ू ने कहा, "मनीजर आज उन्नाव चले जइहैं, और राजा साहेब के साथ वापस अइहैं। तौन मनीजर की बर्खास्तगी की बात तो राजा साहेब के सामने उठ सकत है। और हमहू सोचा कि राजा साहेब के आवैं तक हम लोग शांत रही, ई लड़ाई-झगड़ा से नुकसानै तो आय! साथै परमेसुरी अब अन्न-जल ग्रहण कर सकत है!"

इस पर एक नवयुवक हंस पड़ा, "तो झगड़ू काका, इस लड़ाई के आरंभ करने के पहले ही आपने यह क्यों नहीं सोच लिया था! अब इस अवसर पर शांत हो जाना अपनी पराजय है—मैं तो यह जानता हूं!"

उस नवयुवक ने जो बात कही थी, उससे झगड़ू नाराज नहीं हुए। उन्होंने केवल अपना सिर झुका लिया। चारों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। इस पर एक वृद्ध आदमी ने कहा, "जाने भी दो, लड़ाई बंद करने में हमारा हित ही है। विजय-पराजय के चक्कर में पड़कर दो-चार आदमियों के मरने से क्या तुम लोगों को संतोष हो जायगा? मिसिरजी ने समझौता करके ठीक ही किया!"

सब लोग चले गए, पर संतुष्ट कोई न था। झगड़ू चुप बैठ गए; न उन्होंने स्नान किया और न भोजन। वे उस समय घर में अकेले थे, मनमोहन को साथ लेकर मार्कंडेय एक नजदीकवाले गांव में कांग्रेस का काम-काज देखने चला गया था। दोपहर में जब वे दोनों लौटे, झगड़ू उसी तरह उदास बैठे कुछ सोच रहे थे।

मार्कंडेय ने झगड़ू से कहा, "अरे बप्पा! आपने तो स्नान-भोजन कुछ भी नहीं किया? हम लोगों को देर हो गई लेकिन आपको तो कर लेना चाहिए था।"

"ऐसने असलाय गएन" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो अब उठिए!"

अपने पुत्र के आग्रह को झगड़ू ने नहीं टाला। स्नान-भोजन के बाद जब तीनों बैठे, तब झगड़ू ने बात आरंभ की, "सुनेव हो मार्कंडे, आज सुबह मंझले कुंवर हमें बुलाइन रहैं।"

"क्यों?"

"बात यू भई कि रात मां मनीजर के आदमी परमेसुर का मारीन! तौन परमेसुर यू सपथ लै लीन्हिस कि जब तक मनीजर से बदला न लीन जाई, तब तक वह अन्न-जल न ग्रहण करी। तौन जब हम मंझले कुंवर के यहां गएन तो मझले कुंवर कहिन कि उइ मनीजर का उन्नाव भेजि रहे हैं, और इहां लड़ाई-झगड़ा बंद कर दीन जाय। उन्नाव से तिवारीजी का साथ लै के मनीजर वापस ऐहैं तब

निपटारा हुइ जाई। और मनीजर के इहाँ से चले जाय ...
परमेसुर अन्न-जल ग्रहण करैं।"

...र्कंडेय ने कहा, "यह तो ठीक बात है। समझौता हर हालत में अच्छा है।"

...किन मनमोहन ने सिर हिलाया, "हो सकता है। मैं तो यह जानता हूँ कि ...तब होगा, जब परमेश्वर को संतोष हो जाय।"

"हाँ! यू ठीक कहेय!" झगड़ू चौंक-से उठे, "तौन परमेसुर के यहाँ जाब ...हम भूलै गएन!" यह कहकर झगड़ू उठ खड़े हुए। मार्कंडेय और मनमोहन उनके साथ हो लिये।

८

परमेश्वर लेटा था और उसकी बूढ़ी माँ उसके सिरहाने बैठी थी। परमेश्वर के हाथों और पैरों में पट्टियाँ चढ़ी थीं। झगड़ू के आते ही परमेश्वर की माँ ने घूँघट खींच लिया और आगंतुकों के बैठने के लिए जमीन पर एक फट्टा डाल दिया। उस फट्टे पर मार्कंडेय और मनमोहन बैठ गए, झगड़ू खड़े ही रहे। उन्होंने परमेसुर से कहा, "अच्छा परमेसुर, अब अन्न-जल ग्रहण करो। मनीजर का मंझले कुँवर आज उन्नाव भेज दीन्हिन!"

परमेश्वर ने झगड़ू की ओर देखा और कुछ देर तक देखता रहा, इसके बाद उसने आँखें बंद कर लीं और पीड़ा से कराह उठा।

झगड़ू को अपनी बात दुहराने की हिम्मत नहीं हुई, उनके दिल का भारीपन और भी बढ़ गया।

परमेश्वर ने फिर आँखें खोलीं, क्षीण स्वर में उसने कहा, "काका! बैठ... जाओ!"

"नहीं परमेसुर—हम खड़े हन, यहै ठीक आय। अब हम तुमसे प्रार्थना क... आए हन कि तुम अन्न-जल ग्रहण करो!"

"लेकिन बदला तो नहीं लिया गया!"

"बदलै समझो! मनीजर अबहीं तो बानापुर से हटाय दीन गए हैं, ... साहेब के आवै पर बर्खास्त कर दीन जइहैं।"

"और अगर राजा साहेब ने उन्हें बर्खास्त नहीं किया?" परमेश्वर ...

"और मैं जानता हूँ कि राजा साहेब उन्हें बर्खास्त न करेंगे। तब फिर बदला ...

"काहे न बर्खास्त करिहैं—करैं का पड़ी!" झगड़ू ने तैश में आका...

परमेश्वर मुसकराया, "झगड़ू काका! इसकी जिमेदारी आप ले ...

"हाँ, ई की जिम्मेदारी हमरे ऊपर!" झगड़ू ने आवेश में कह दि...

"तो झगड़ू काका, मैं जल ग्रहण किये लेता हूँ—अन्न तो तभी ग्र... जब काम पूरा हो जायगा!" परमेश्वर ने कहकर आँखें बंद कर लीं...

सब लोग चले आए। लेकिन आवेश के दूर होते ही झगड़ू क... ...न्होंने जो कुछ किया, वह गलत किया। वे रामनाथ ...

जानते थे और इसलिए उनके मन में भी रह-रहकर यही प्रश्न उठता था—अगर पंडित रामनाथ तिवारी ने मैनेजर को न बर्खास्त किया तो ?

अपने मन के प्रश्न को वे लाख प्रयत्न करने पर भी न दबा सके। घर पर भोजन करने के बाद जब झगड़ू, मार्कंडेय और मनमोहन बैठे तब झगड़ू ने कह ही डाला, "काहे हो मार्कंडे! तिवारीजी से तो हमें आसा नहीं कि उइ मनीजर का बर्खास्त करिहैं। तौन मंझले कुँवर से नाहीं कुछ करवाय सकत हो ?

मार्कंडेय कुछ देर तक मौन सोचता रहा, फिर उसने कहा, "बप्पा! मुझे यह आशा कम ही है कि उमा की बात का तिवारीजी पर कुछ असर पड़ेगा। फिर भी मैं कोशिश जरूर करूँगा!"

"और अगर हम सब असफल भएन तब ?" झगड़ू ने फिर पूछा।

मार्कंडेय मानो इस प्रश्न के लिए तैयार ही बैठा था, "तब सत्याग्रह करना चाहिए!"

इस बात से झगड़ू चौंक उठे, "सत्याग्रह! सत्याग्रह तो सरकार के साथ कीन जात है, मनई के साथ कैसा सत्याग्रह ?"

"क्यों नहीं ? गाँववाले लगान देना बद कर दें!"

"और जबर्दस्ती होई, बेदखली होई, कुरकी होई—ऊका कौन उपाय है ?" झगड़ू ने पूछा।

"जबर्दस्ती बर्दाश्त की जाय, कुर्की में कोई माल न खरीदे, बेदखली के बाद उस जमीन को कोई न ले!"

इस बार मनमोहन बोला, "आप क्या कह रहे हैं, मार्कंडेयजी ? लोग मार खायें और सब कुछ खो दें। कुर्की में खरीदनेवाले मिल जायँगे और अगर न भी मिले, तो कुर्क हुई चीजें—हल, बैल, जमीन, मकान—कम-से-कम दाम में खुद तिवारीजी खरीद लेंगे। और बेदखली के माने होंगे तिवारीजी के लिए कुछ सौ रुपयों का नुकसान; जिसे वे आसानी से बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन किसानों के लिए बेदखली के अर्थ होंगे भूखों मरना, जिसे वे लोग बर्दाश्त न कर सकेंगे।"

"सुनेव मार्कंडे—मनमोहन का कहिन! सोला आना ठीक बात आय। नाहीं, सत्याग्रह ई मामला माँ संभव नाहीं!" झगड़ू ने कहा।

"सब संभव है, लेकिन आत्मबल चाहिए, बप्पा! ये किसान वैसे ही कब भूखों नहीं मरते ? एक बार उनको समझ में यह बात आ जाय कि इस पशुता की जिंदगी से मृत्यु अच्छी है, तो सब कुछ संभव हो जायगा। और साथ ही मैं तो यह कहता हूँ कि सत्य और अहिंसा में इतना बल है कि बड़े-से-बड़े अत्याचार को दबा सकती है, केवल मनुष्य में इस सत्य और अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। तिवारीजी मनुष्य ही तो हैं, उनके पास भी हृदय है, करुणा है। ऐसी हालत में आप यह कैसे समझते हैं कि इस सत्य और अहिंसा का असर उन पर न पड़ेगा ?"

इस बात को सुनकर मनमोहन जोर से हँस पड़ा। मनमोहन की
हँसी से पिता-पुत्र दोनों ही चौंक उठे। उस हँसी में सरसता न थी,
था। उस हँसी में रूखापन से भरा एक भयानक व्यंग्य था, उपेक्षा थी!
एक घमंड की हँसी थी, जिसके अंदर भयानक प्रतिहिंसा भरी थी।
ने आश्चर्य से मनमोहन को देखा, लेकिन मनमोहन हँसता ही रहा।
मार्कंडेय को पूछना पड़ा, "क्यों, क्या बात है मनमोहन?"

"कुछ नहीं आप, अपना प्रयोग करें। समय बतला देगा कि कौन गलती कर
है।" मनमोहन ने सिर्फ इतना ही कहा।

६

दूसरे ही दिन शाम के समय तिवारीजी को साथ लेकर मैनेजर रामसिंह
नापुर में उपस्थित हो गए। जिस समय उनकी कार महल के सामने रुकी,
मार्कंडेय, उमानाथ और मनमोहन चाय पीकर टहलने जाने वाले थे। उमानाथ ने
बढ़कर अपने पिता के चरण छुए, मार्कंडेय और मनमोहन तिवारीजी को प्रणाम
करके एक ओर खड़े हो गए। कार से उतरते हुए रामनाथ ने मुसकराकर उमा-
नाथ से कहा, "देखता हूँ वह मुसीबत, जिससे मैं बचना चाहता था, मेरे ऊपर आ
ही पड़ी।"

रामनाथ तिवारी की व्यंग्यात्मक मुसकराहट से ही उमानाथ ने समझ लिया
कि उसके पिता निर्णय करके घर से चले हैं, और उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित
कर लिया है। उस निर्णय से उन्हें डिगाने के लिए उमानाथ को भी मुसकराकर
कहना पड़ा, "मुसीबत स्वयं नहीं आती, वह तो लोगों द्वारा आमंत्रित की जाती
है। दोष इसमें मैनेजर साहब का है, यह मैं कह सकता हूँ।"

उमानाथ ने साफ देख लिया कि उसका यह वार खाली गया। उसकी बात
का रामनाथ पर कोई असर न पड़ा, क्योंकि उसकी बात का रामनाथ ने जरा भ
बुरा नहीं माना। "हाँ, हो सकता है। लेकिन मैं तो इतना जानता हूँ कि रामसि
मेरे इलाके में एक अरसे से मैनेजर हैं, और आज के पहले रामसिंह के कारण
इस परिस्थिति का कभी सामना नहीं करना पड़ा था।" कमरे की ओर बढ़ते
रामनाथ ने कहा।

वे चलते जाते थे और कहते जाते थे, "मैंने सारी परिस्थिति समझ
बिना रामसिंह की पूरी बात सुने हुए। परिस्थिति समझ लेना ऐसा कोई
काम भी तो न था। रामसिंह कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे कि उन्हों
ज्यादती की; मैं भी उसे अपना अधिकार और फलस्वरूप रामसिंह का
मानकर कहूँगा कि उन्होंने कोई ज्यादती नहीं की। साथ ही मैं यह स्वीक
से नहीं हिचकता कि आज मेरे उस अधिकार को ही लोग ज्यादती कहें
उसे मार्कंडेय ज्यादती कहेंगे, उसे दया ज्यादती कहेगा, उसे तुम भ
और चूँकि तुम लोग उसे ज्यादती कहते हो, लिहाजा मेरी

उसे ज्यादती समझने लगी है। लोगों ने मेरी रिआया को समझाया है कि वह ज्यादती है, मैं अपनी रिआया को समझाने आया हूँ कि वह मेरा अधिकार है।"

"तो क्या आप अपनी रिआया को समझा सकेंगे ?" मार्कंडेय ने पूछा।

"जरूर ! बड़ी अच्छी तरह समझा सकूँगा, लेकिन समझाने का तरीका कुछ और होगा और मेरे हिसाब से सही होगा।" रामनाथ इस बार हँस पड़े, "अधिकारी वही हो सकता है, जो समर्थ होता है, और समर्थ वह है, जो बली है, शक्तिशाली है। लिहाजा अपने अधिकार को अपनी शक्ति द्वारा ही सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है !"

मार्कंडेय ने कहा, "और मनुष्यता !—क्या जीवन मे मनुष्यता का कोई स्थान नहीं ?"

रामनाथ ने रूखा-सा उत्तर दिया, "मार्कंडेय ! मैं तुम्हें समझाने नहीं आया हूँ और इसलिए मैं तुमसे तर्क न करूँगा। मैं अपने साथ एक दूसरी तरह का तर्क लेकर आया हूँ, ऐसा तर्क जो मुझे अपनी प्रजा के साथ करना चाहिए। और इसलिए तुम्हारे साथ तर्क करके मैं इस समय वाले अपने तर्क को भूलना नहीं चाहता।"

इस समय तक सब लोग बड़े कमरे मे पहुँच गए थे। तख्त पर रामनाथ बैठ गए और खिदमतगार उनके जूते खोलने लगा। उमानाथ वगैरह फर्श पर बैठ गए। रामसिंह एक तरफ खडे थे। तिवारीजी ने रामसिंह को देखा, "और तुम उना के कहने से उन्नाव गए थे न !"

"सरकार, सभी लोगों की ऐसी राय थी तो मझले कुँवर ने भी कह दिया। और इस बढ़ते हुए उपद्रव को देखकर मैंने भी यह मुनासिब समझा कि इसकी इत्तला सरकार को कर दी जाय !"

इतने में झगड़ू मिसिर भी वहाँ पहुँच गए। पंडित रामनाथ तिवारी के आने की इत्तला बिजली की तरह गाँव भर में फैल गई थी, और लोगों ने झगड़ू को रामनाथ तिवारी से मिलकर सारी स्थिति स्पष्ट कर देने को भेजा था।

झगड़ू को देखते ही रामनाथ उठ खड़े हुए और उन्होंने झगड़ू के प्रणाम का उत्तर देते हुए कहा, "आइए, मिसिरजी ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था !" यह कहकर उन्होंने झगड़ू का हाथ पकडकर अपने साथ तख्त पर बिठलाने की कोशिश की।

लेकिन झगड़ू तख्त पर नहीं बैठे। उन्होंने कहा, "नहीं, तिवारीजी ! आज हम फ़रियादी की हैसियत से राजा साहेब के समुख उपस्थित भए हन, तौन हमार स्थान यू फरस आय !" और झगड़ू फर्श पर बैठ गए।

रामनाथ ने झगड़ू को एक बार गौर से देखा, और उनका मुख गंभीर हो गया तथा उनके माथे पर बल पड गए। उन्होंने कहा, "अच्छा, मिसिरजी ! आपके साथ न्याय ही होगा, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, अब

कहना हो, कह डालिए ।"

रामनाथ की इस मुद्रा से उमानाथ को प्रसन्नता हुई, उमानाथ ने देखा
नाथ के अंदर तर्क की कमजोरी पैदा हो गई है। झगड़ू ने गला साफ करके
"बात यू है, तिवारीजी, कि मनीजर साहेब आजकल बहुत ज्यादती करव
र दीन्हिन हैं। लोगन का पिटवाइन, उनकी खेती उजाड़ दीन्हिन, उनके
ां आग लगवाय दीन्हिन। आखिर लोगन का जियन देहैं कि नाहीं! हमार
कुछ अपमान कीन्हिन ऊकी तो हमें चिंता न आय, लेकिन परमेसुर नाम के
लड़का केर काल हाथ-पैर तुड़वाय दीन्हिन !"

"आपका अपमान भी हुआ है ?" आश्चर्य से रामनाथ ने पूछा, फिर उन्होंने
रामसिंह से कहा, "क्यों रामसिंह, मिसिरजी का कहना है कि तुमने उनका
अपमान किया है। क्या बात है ?"

"जी ! ..." सकपकाते हुए रामसिंह ने कहा, "बात यों हुई कि किसी
आसामी को जो मैंने सजा दिलवाई, तो मिसिरजी ने मुझसे कहलाया कि मैं गांव
में कदम न रखूं वरना मेरी भी हालत वही होगी जो उस आसामी की हुई थी।
और सरकार, मैंने मिसिरजी की वह चुनौती इस नाचीज के खिलाफ नहीं समझी,
बल्कि राजा साहेब के खिलाफ़ समझी, क्योंकि यहां तो मेरी हस्ती सरकार के
प्रतिनिधि की हैसियत से है।"

"फिर तुमने क्या किया ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी, करता क्या ! अपने दस-बारह आदमियों के साथ मैं उसी दिन रात के
समय मिसिरजी की सेवा में हाजिर हो गया, मिसिरजी को समझाने के लिए कि
मैंने जो कुछ किया, वह जाती नहीं था बल्कि सरकार के हुक्म की तामीलो के
रूप में था और उन्होंने मुझे जो चुनौती दी थी वह मुझे नहीं दी थी बल्कि राज
को दी थी।"

"तो तुम फ़ौजदारी करने गए थे मिसिरजी से, मिसिरजी की आदत जानते
हुए ? तुमने समझा था कि जो बात क्षणिक आवेग मे आकर मिसिरजी ने कह दी
उसका बदला अपने को कानून की गिरफ्त से बचाकर ले लिया जाय। तो मिसि
जी ने तुम्हें चले आने दिया ? क्यों मिसिरजी ! यकीन नहीं होता, आपको जा
गए। उस समय तो फ़ौजदारी होनी ही चाहिए थी !"

अब मनमोहन के बोलने की बारी थी, "जी, मिसिरजी ने लाठी तान ली
लेकिन मैंने देखा कि वे अकेले हैं और आपके आदमी उनकी हत्या करने पर
गए हैं। लिहाजा मैंने मिसिरजी का हाथ पकड़ लिया था।"

रामनाथ थोड़ी देर कुछ सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "फिर अ

"अब हम का बताई !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "तौन आपके आदमी
के परमेसुर का ऐस बुरी तरह मारिन कि कुछ न पूछो ! और परमेसु
पकड़ गा कि जब तक मनीजर से बदला न लै लीन जाई, तब तक वह
न ग्रहण करी।"

रामनाथ ने कहा, "परमेश्वर के खिलाफ़ दो बातें हैं—एक तो वह अपना लगान देने से इनकार करता है, दूसरे रिआया को वरगलाता है कि वह भी लगान न दे। मिसिरजी, ये बातें कहां तक ठीक हैं ?"

झगड़ू को कहना पड़ा, "हां, इसे तो इनकार नाहीं कीन जाय सकत है। लेकिन ई सब का कारन आपके मनीजर का दुर्व्यवहार है। तौन परमेसुरो का नया खून आय। सो ऐसी बातन पर ध्यान न देन चाही।"

रामनाथ हँस पड़े, "और ऐसी बातों पर ध्यान न देकर अपने को नष्ट कर लेना चाहिए !—आप यही कहना चाहते हैं, मिसिरजी ? तो आप गलती करते हैं। अच्छा मिसिरजी ! अब मैं अपना निर्णय दे रहा हूं। रामसिंह को मैं बर्खास्त कर रहा हूं, इस बात पर कि उन्होंने आपका अपमान करके एक तरह से मेरा अपमान किया है। लेकिन रामसिंह अभी दो महीने तक इस राज्य के मैनेजर रहेंगे, यह साबित करने के लिए कि उनकी अन्य बातों से मैं सहमत हूं और मैं दूसरों की जरा भी परवाह नहीं करता।"

इस निर्णय को सुनकर वहां सब लोग अवाक् रह गए। झगड़ू कुछ चुप रहकर बोले, "तिवारीजी, हमार आप मे यह प्रार्थना अय कि हमरे कारन रामसिंह का कौनो दंड न दीन जाय, केवल ई लिए कि परमेसुर की बात पूरी हुइ जाय, आप अबहीं रामसिंह का कौनो हल्का-सा दंड दै देंय।"

रामनाथ तिवारी ने झगड़ू की आंखों से आंखें मिलाते हुए कहा, "और इस तरह मैं अपनी रिआया पर यह जाहिर करूं कि मैं कमजोर हूं, मैं उससे दबता हूं ! मिसिरजी ! आज के पहले तो यह परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई थी। यही रिआया थी, यही मैनेजर थे, और यही मैं था। आप शायद कहेंगे कि आज के दिन लोग अपना अधिकार जान गए हैं। आप ही क्यों, आज सभी पढ़े-लिखे लोग यह कह रहे हैं। लेकिन जहां अधिकार की बात उठती है, वहां मैं भी अपना अधिकार जानता हूं। सबल अधिकारी है, यह नियम अनादि काल से लागू रहा है, अनंत काल तक लागू रहेगा। मैं इस इलाके का मालिक हूं, जो कुछ मैं कहूंगा, इस इलाके मे बसनेवाले को वही करना पड़ेगा। जो वह नहीं करना चाहता, जो मेरे कहने का विरोध करेगा, वह इस इलाके मे नहीं रह सकता। जिस तरह होगा, उसे दंड दिया जायगा।"

तिवारीजी की इस बात से झगड़ू तिलमिला उठे, "तिवारीजी, यू याद राखौ कि आपके ऊपर कानून है !"

"कानून !" तिवारीजी हँस पड़े, "शब्द-शब्द-शब्द ! कानून शब्दों का एक जंजाल है। कानून बनता है कायरों के लिए, असमर्थों के लिए, निर्बलों के लिए। कानून हमने बनाए हैं, हम समर्थों ने अपनी सुविधा के लिए, और अपनी सुविधा के लिए हमीं उन्हें बदल सकते हैं, तोड़-मरोड़ सकते है, उन्हें, दूसरे अर्थ पहना सकते हैं। मैं कहता हूं, तुम सब पुलिस के पास जाओ, डिप्टी कलेक्टर के पास जाओ, कलेक्टर के पास जाओ ! तुम्हे कोई रोकता नहीं, रास्ता साफ खुला ।

मिसिरजी, मैं फिर कहता हूँ कि मैं सवल हूँ, मैं कानून हूँ!"
झगड़ू उठ खड़े हुए, उनका चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर, तिवारीजी,
-चलत हमहूँ एक वात आप से कहि देई; आप मनुष्यता के उपासक न
ा, आप दानवता के उपासक आओ; तौन आप का झुकाय दानवतै सकत है!
छा प्रनाम!" और झगड़ू वहाँ से चले गये।

थोड़ी देर तक वहाँ गहरा सन्नाटा रहा, फिर तिवारीजी मुसकरा पड़े, "मुझे
नवता ही झुका सकती है! रामसिंह—यहाँ कितने लठैत हैं?"

"सरकार, चालीस! हालत खराव देखकर मैंने बुलवा लिए थे।"

"और कुल कितनी बंदूकें?"

"सरकार, दस बंदूकें हैं!"

"ठीक है!" और तिवारीजी ने मुसकराते हुए कहा, "मुझे दानवता ही
झुका सकती है। कितनी मज़ेदार वात है!"

१०

कोठी से जव सव लोग वाहर निकले, मनमोहन ने रामसिंह से कहा, "ज़रा
आप से दो-एक वातें करनी हैं!"

"कहिए!" और मनमोहन और रामसिंह एक किनारे हो गए।

"आपको पंडित रामनाथ तिवारी ने बर्खास्त कर दिया है। अगर आप दो
महीने वाद न जाकर आज ही यहाँ से चले जायँ तो क्या हर्ज़ है?"

रामसिंह के मत्थे पर वल पड़ गए, "क्यों, मेरे जाने से क्या होगा?"

"परमेश्वर की जान वच जाएगी, और साथ ही शायद, एक बहुत वड़ा खून
खरावा वच जाय!" मनमोहन ने गंभीरतापूर्वक कहा।

"हूँ! ऐसी वात है! अच्छा, इस पर गौर करूँगा!"

"इसमें गौर करने की क्या वात है?"

रामसिंह एकाएक तनकर खड़े हो गए—उनके मुख से उनकी शिष्टता
आवरण हट गया, "तो मैं आपसे साफ़-साफ़ कह दूँ! मेरी यहाँ से जाने
संभावना नहीं के वरावर है। जिन झगड़ू के कारण मुझे वर्खास्त होना पड़
इन झगड़ू में कितना दम-खम है—एक दफ़े मैं यह देख लेना चाहता हूँ!"

मनमोहन ने रामसिंह को गौर से देखा, एक अजीव तरह की दृढ़ता
कठोरता रामसिंह के चेहरे पर थी। और अनायास ही मनमोहन का मु
विकृत हो गया, "हूँ! तो एक वात मैं भी आपसे कह देना चाहता हूँ
होता है आप दूसरों को मिटाने पर ही तुल गये हैं लेकिन दूसरों को
प्रयत्न में कहीं आप खुद न मिट जाएँ, ज़रा इस पर सोच लीजिएगा।"

"तो क्या मैं इसे धमकी समझूँ?" रामसिंह ने पूछा।

"आप इसे मेरी आख़िरी वात समझिए!" और इतना कहकर
प्रतीक्षा किये मनमोहन वहाँ से चल पड़ा।

मनमोहन जब घर पहुँचा, गाँववाले झगड़ू को घेरे बैठे थे। झगड़ू कह रहे थे, "रामसिंह को दंड तो मिल चुका, जैसे दुई महीना बाद बर्खास्त भये, तैसे आज !"

"लेकिन परमेश्वर तो प्राण देने पर तुला है !" एक ने कहा, "उसका कहना है कि रामसिंह को दंड नहीं मिला है, कम-से-कम उसके साथ अन्याय करने पर !"

और इसी समय एक आदमी ने आकर बतलाया कि परमेश्वर ने जल पीना भी छोड़ दिया है। झगड़ू ने उठते हुए कहा, "तो फिर भगवान की इहै इच्छा है कि खून-खराबा होय !"

मनमोहन के साथ झगड़ू परमेश्वर के यहाँ पहुँचे; परमेश्वर बेहोश-सा पड़ा था। झगड़ू के आने पर उसने बड़े प्रयत्न से आँखें खोलीं, हाथ में जनेऊ लेकर उसने कहा, "मिसिरजी, इस जनेऊ की शपथ ली है। ब्राह्मण होकर मैं शपथ नहीं तोड़ सकता !"

झगड़ू निराश होकर लौटे। उनके अंदर भयानक उथल-पुथल मची थी। परमेश्वर इतना अधिक कमजोर हो गया था कि दो-एक दिन से अधिक उसका चलना असंभव था। वह रात एक दुश्चिंता से भरी हुई थी, एक अजीब निराशा चारों ओर छाई थी। झगड़ू की चौपाल में लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। बहुमत यह था कि रात में ही महल पर चढ़ाई की जाय और जमकर युद्ध हो।

पूरी बात सुनकर झगड़ू ने अपना निर्णय दिया, "तो फिर आज फैसला हुई जाय ! मृत्यु कबौं-न-कबौं तो अवश्य आई; तो फिर कायरता-पूर्वक जिंदा रहने से कौन लाभ ?"

और झगड़ू की बात सुनकर सब लोग उठ खड़े हुए।

पर मनमोहन ने झगड़ू का हाथ पकड़ लिया, "मिसिरजी ! आप क्या कर रहे हैं ? आप सब लोग मृत्यु के मुख में जा रहे हैं—क्या आप जानते हैं ?"

झगड़ू ने कहा, "हाँ, पर ई से क्या ?"

"इससे यह है कि आप युद्ध करने या लड़ने नहीं जा रहे हैं बल्कि आप मरने जा रहे हैं। वहाँ चालीस लठैत हैं, दस बंदूकें हैं, और आप लोगों को पशुओं की तरह मार डालने का पूरा प्रबंध है !"

झगड़ू ठिठक गये, और उनके साथ अन्य लोग भी। उसी समय मार्कंडेय तिवारीजी के यहाँ से वापस लौटा। उसने जो यह भीड़ देखी तो अपने पिता के पास आकर पूछा "क्या बात है, बप्पा ?"

झगड़ू ने कोई उत्तर न दिया, लेकिन मार्कंडेय सारी स्थिति स[illegible]
उसने कहा, "लेकिन बप्पा ! यह सब कितना गलत है—आप लोग [illegible] ग्रहण ले रहे हैं ! क्या यह आपको शोभा देता है ? आप एकाएक क्यों भूल गये ?"

झगड़ू ने झुंझलाकर कहा, "लेकिन तुम्हार अहिंसा [illegible]

के लिए नाहीं है। यहां तो परमेसुर के प्रानन का प्रश

"मैंने तिवारीजी से बातें की हैं, कल वह परमेश्वर के यहां जायें

हीं सब बातें पूछकर वे अपना निर्णय देंगे !"

स रात सब लोग चले गए। सुबह के समय रामनाथ तिवारी परमेश्वर के
हुँचे। गाँव के अन्य लोग वहां पहले से ही इकट्ठा होकर तिवारीजी की
ा कर रहे थे। तिवारीजी ने परमेश्वर से कहा, "अच्छा, तुम अपना अनशन
दो। जब ताकत आ जाय, तब मुझ से सब बातें बतलाना। मैं इतना विश्वास
ाता हूँ कि मैं न्याय करूँगा।"

लेकिन परमेश्वर ने फिर जनेऊ हाथ में लेकर कहा, "मेरा न्याय तो यह है।
ने शपथ ली है, राजा साहेब ! और शपथ पूरी करके अपने ब्राह्मणत्व का
ालन करूँगा !"

"तो तुम्हें मेरे न्याय पर विश्वास नहीं है ?" जरा कड़े स्वर में रामनाथ ने
कहा।

परमेश्वर के मुख पर एक रूखी मुसकराहट आई, "आपका न्याय तो नित्य
हुआ करता है !"

रामनाथ तिवारी घूम पड़े। सब लोग स्तब्ध खड़े थे। घर के बाहर रामनाथ
तिवारी रुके, उनके सामने गांववाले खड़े थे। रामनाथ ने गंभीरतापूर्वक कहा,
"जिसे मेरे न्याय पर विश्वास नहीं, उसे मेरी मनुष्यता पर विश्वास नहीं; और
इसलिए वह आदमी मरता है या जीता है, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं !" और
ामनाथ तिवारी अपनी कोठी को लौट गये।

११

परमेश्वर की तबीयत दोपहर से गिरने लगी और रात में उसकी मृत्यु हो
गई। गाँव भर में परमेश्वर की मृत्यु की खबर फैल गई। सुबह उसकी अर्थी
निकली।

परमेश्वर की अन्त्येष्टि-क्रिया करके गांववाले शाम के समय लौटे। स
गांव में मुर्दनी छाई हुई थी। मनमोहन भी अर्थी के साथ श्मशान गया था;
से लौटकर उसने झगड़ू से कहा, "मिसिरजी ! अब मैं चलूंगा। मैंने इस गांव
बहुत-कुछ देखा। इतना देखा कि जी भर गया।"

झगड़ू की आंखों में आंसू आ गये। अपराधी की भांति सिर झुकाकर उ
कहा, "जाओ, मनमोहन ! कौन मुंह लैके हम तुम्हें रोकी। हम सब पसु अ
परमेसुर दुनिया से चला गा, और रामसिंह ई गांव से नहीं गए ! न जाने भ
की का इच्छा है !"

मनमोहन ने झगड़ू की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उस
भयानक रूप से विकृत हो गया था। उसने दरवाजे से निकलते हुए केव
कहा, "मिसिरजी ! भगवान् कुछ नहीं है, भगवान् हमारी अकर्मण्यता

कायरता भर है। अच्छा, मैं उमानाथ और तिवारीजी से मिलकर चला जाऊँगा। तिवारी मुझे स्टेशन भिजवाने का प्रबंध करा देंगे। प्रणाम!"

जिस समय मनमोहन नानापुर के महल में पहुँचा, उसने देखा कि तिवारीजी अकेले बैठे कुछ सोच रहे हैं। बाहर रामसिंह तथा इलाके के अन्य कार्यकर्ता खड़े थे। वहाँ का सारा वातावरण दुश्चिंता से भरा था। मनमोहन सीधा कमरे में चला गया।

रामनाथ ने सिर उठाया। मनमोहन ने कहा, "तिवारीजी! मैं जा रहा हूँ। आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।"

रामनाथ ने मनमोहन के मुख पर से आँखें हटा लीं; कुछ देर तक उन्होंने शून्य की ओर देखा, फिर कहा, 'मनमोहन! मुझे इस बात का दुःख है कि यह सब हो गया। मैं नहीं जानता था कि आगे क्या होगा, पर मैं इतना अनुभव करता हूँ कि आगे जो कुछ होगा, बहुत सम्भव है, वह इससे भी अधिक बुरा हो, भयानक हो! लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है?"

रुखाई के साथ मनमोहन ने उत्तर दिया, "इस संबंध में मैं क्या राय दे सकता हूँ, राजा साहेब! यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है।"

रामनाथ ने मानो मनमोहन के स्वर की रुखाई को अनुभव ही नहीं किया; उन्होंने फिर कहा, "मैं कहता हूँ कि पहले कभी यह सब क्यों नहीं हुआ? मैं पूछता हूँ कि आज की परिस्थिति की जिम्मेदारी मुझ पर कैसे आ सकती है? यह इलाका वही है, मैं वही हूँ, मेरे मुलाजिम वही हैं और मेरी नीति वही है—फिर यह सब क्यों?"

मनमोहन इस बात पर मौन रहा।

रामनाथ स्वयं ही बोल उठे, "हाँ, समय बदल रहा है और समय के साथ दुनिया बदल रही है। लेकिन मैं कहता हूँ कि दुनिया गलत तरीके पर बदल रही है। यह अराजकता, यह एक-दूसरे पर अविश्वास, यह दुराग्रह!—इस तरह हमारा कल्याण नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता। जहाँ हिंसा का व्यवहार है, वहाँ विजयी वही होगा, जिसके पास बल है, पाशविकता है। इस हिंसा का मुकाबला करने के लिए यही प्राकृतिक है कि हम भी अपनी हिंसा को पाशविकता की सीमा तक विकसित करें...!' और रामनाथ अपनी बात कहते-कहते रुक गये।

वे उठ खड़े हुए, "तो तुम जा रहे हो! अच्छा, मेरी कार तुम्हें स्टेशन तक पहुँचा देगी!" यह कहकर रामनाथ ने खिदमतगार को आवाज दी।

"देखो—उमा को बुलाकर कह दो कि वह मनमोहन को स्टेशन पहुँचा आए!" तिवारीजी ने खिदमतगार से कहा।

उमानाथ ने मनमोहन को टिकट खरीदकर उसे गाड़ी पर बिठाया उस समय छः बजे थे। गाड़ी चल दी।

अगले स्टेशन पर मनमोहन गाड़ी से उतर प...
हो गई थी और गहरा अंधकार छाया था। रेल की पटरी-
...नापुर की ओर वापस लौटा।

...जिस समय उसने बानापुर में प्रवेश किया, दस बज चुके थे। गाँव में सन्नाटा
...था। दबे पाँव वह मैनेजर रामसिंह के घर पहुँचा।
...रामसिंह के घर के सामने दो सिपाहियों का पहरा था। ये दोनों सिपाही
...के सामने बैठे हुए दम लगा रहे थे। उनकी नजर बचाकर मनमोहन फाटक
...अन्दर घुस गया।

बाहर के कमरे में रामसिंह दो सरवराहकारों के साथ बैठे बात कर रहे थे।
...नमोहन बरामदे में दरवाजे की आड़ में खड़ा होकर इन सरवराहकारों के जाने
...की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद दोनों सरवराहकार उठकर चले गए।
...वे सरवराहकार फाटक के बाहर निकल गए और रामसिंह अन्दर जाने को उठ
खड़े हुए। उसी समय मनमोहन ने उनके कमरे में प्रवेश किया।

मनमोहन के कमरे में प्रवेश करते ही रामसिंह चौंक उठे। उन्होंने कहा,
"आप! आप यहाँ कैसे? आप तो आज उन्नाव चले गए थे!"...और एका-
एक रामसिंह रुक गए, उनका चेहरा पीला पड़ गया, वह भय से काँप उठे।

उस समय रामसिंह ने देखा कि उनके सामने मनुष्य नहीं खड़ा है, एक महा-
कुरूप दानव खड़ा है। मनमोहन मुसकरा रहा था और उसके हाथ में पिस्तौल
थी। उसने कहा, "रामसिंह! हम लोगों के विधान में मृत्यु का बदला मृत्यु हुआ
...रता है। तुमने परमेश्वर की हत्या की है, मैं तुम्हें उसका दण्ड देने आया हूँ!"
...र इसके पहले कि रामसिंह कुछ कहें, या अपनी सहायता के लिए किसी को
...कारें, मनमोहन ने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया।

पिस्तौल की आवाज होते ही चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। इस भगदड़ क...
लाभ उठाकर मनमोहन पिस्तौल दागता हुआ गाँव के बाहर हो गया।

१२

जिस समय रामसिंह की हत्या की खबर तिवारीजी के यहाँ पहुँची, ...
हुए थे। उन्हें नींद न आई थी, उस समय वे बहुत अधिक उद्विग्न थे। उनक...
कह रहा था कि जल्दी ही कोई भयानक कांड होनेवाला है, लेकिन उनकी...
में न आ रहा था कि क्या होगा और कैसे होगा।

खबर पाते ही रामनाथ उठ खड़े हुए। उमानाथ के साथ वे रामसि...
पहुँचे, वहाँ कुहराम मचा हुआ था। मनमोहन के पिस्तौल की गोली रा...
हृदय पार कर गई थी और गोली लगते उसी क्षण उसके प्राण निक...
रामनाथ ने आते ही एक हरकारा थाने भेज दिया पुलिस को खबर क...
इसके बाद उन्होंने मानो अपने ही से कहा, "यह गोली रामसिंह के न...
है, यह गोली मेरे मारी गई है।"

पुलिसवाले आए और तहकीकात शुरू हुई। कोई भी यह नहीं कह सकता था कि रामसिंह की हत्या किसने की। किसी पर शक भी नहीं किया जा सकता था। लेकिन यह स्पष्ट था कि रामसिंह की हत्या की गई, और गांव की जैसी परिस्थिति थी, उसे देखते हुए इस पर आश्चर्य भी न होता था कि रामसिंह की हत्या की गई। रामसिंह का शव चीर-फाड़ के लिए उसी समय उन्नाव भेज दिया गया।

रामसिंह की हत्या की खबर सुबह गांववालों को उस समय मालूम हुई जिस समय पुलिस ने तहकीकात के लिए गांव में प्रवेश किया। पर गांव में पूरी तरह तहकीकात होने पर भी पुलिस के दरोगा और पंडित रामनाथ तिवारी किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके! पुलिस के चले जाने के बाद शाम के समय रामनाथ अपने महल के बरामदे में राज्य के कर्मचारियों से घिरे बैठे थे। कोई कुछ न बोल रहा था, किसी की समझ में कुछ न आ रहा था।

एकाएक रामनाथ उठ खड़े हुए, उन्होंने तनकर कहा, "यह वार रामसिंह पर ही नहीं किया गया, यह वार मुझ पर भी किया गया है, और इस वार का मुझे जवाब देना पड़ेगा। ठाकुर जगदेवसिंह! क्या किया जाय?"

सरबराहकार जगदेवसिंह रामसिंह के नजदीकी रिश्तेदार होते थे। उन्होंने कहा, "सरकार! सारा फिसाद झगड़ू मिसिर ने खड़ा किया है।"

"हो सकता है, लेकिन इससे तो मामला हल नहीं होता!" रामनाथ तिवारी कुछ सोचने लगे! उन्होंने फिर कहा, "सवाल यह है कि किया क्या जाय? क्या तुम्हारा ऐसा खयाल है कि झगड़ू इस हत्या में शामिल है, या उन्हें हत्या करनेवाले का पता होगा?"

"मैं तो ऐसा ही समझता हूं, सरकार!"

"तो फिर मुझे झगड़ू से इस पर बातचीत करनी पड़ेगी?" रामनाथ ने एक कदम बढ़ाते हुए कहा, "मैं खुद झगड़ू के यहां चल रहा हूं?"

रामनाथ तिवारी सदलबल झगड़ू के यहां पहुंचे। उस समय झगड़ू के यहां गांव के लोग एकत्रित थे और रामसिंह की हत्या पर टीका टिप्पणी कर रहे थे। रामनाथ को देखते ही सब लोग उठ खड़े हुए। झगड़ू ने तख्त पर बिछौना बिछाते हुए कहा, "प्रनाम, तिवारीजी! कैसे कष्ट कीन्हेव? पधारो!"

रामनाथ तिवारी बैठे नहीं, खड़े-ही-खड़े उन्होंने पूछा, "मिसिरजी, मैं आपके यहां यह पूछने आया हूं कि रामसिंह की हत्या किसने की?"

झगड़ू चौंक उठे, "तो का आपका ऐसा खयाल है कि ई हत्या मां हम सामिल हन?"

रामनाथ ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा, "मैं आशा करता था कि मुझ पर पीछे से वार न किया जाएगा।"

एकाएक झगड़ू कांप उठे। अचानक ही उन्हें मनमोहन की याद हो गई 'निर्बल और सबल की लड़ाई केवल एक तरह संभव है, निर्बल सबल पर

वार करे, पीछे से करे !' और झगड़ू ने कोई उत्त

उस समय सोच रहे थे—'क्या मनमोहन ने यह किया है ? लेकिन न तो कल शाम के समय ही उन्नाव चला गया था, उमानाथ उसे खुद र चढ़ा आए थे !'

कुछ देर तक झगड़ू के उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद रामनाथ ने कहा, "क्यों रजी ! बोलते क्यों नहीं। रामसिंह की हत्या का बदला मैं जरूर लूंगा ! र आप उस आदमी का नाम मुझे बतला दें जिसने यह कांड किया है, तो गांव न्य लोग मेरे बदले की चक्की से बच जाएंगे !"

"और नहीं तो ?" झगड़ू के पास खड़े हुए परमानंद सुकुल ने पूछा।

रामनाथ ने तेज नज़र से परमानंद सुकुल को देखा, "और नहीं तो मैं सारे ांव को उजाड़ दूंगा, इस गांव को जलवाकर राख कर दूंगा।" उत्तेजित होकर ामनाथ ने कहा।

"और यह सब आप करके सही-सलामत बच जाएंगे और हम नपुंसक की तरह देखते रहेंगे" मन्नू दूबे ने रामनाथ की आंखों से अपनी आंखें मिलाते हुए कहा।

और उसी समय परमानंद सुकुल ने कहा, "आपकी क्या हस्ती जो यह सब करें ? हम ऐसे निर्बल नहीं हैं, तिवारीजी !"

"मेरी हस्ती देखना चाहते हो तो देख लेना !" और रामनाथ अप आदमियों के साथ वापस लौट आए।

दूसरे दिन रामनाथ के आदमियों के साथ पुलिस के दारोगा गांव में आए। परमानंद सुकुल और मन्नू दूबे को बांधकर वे रामनाथ की कोठी पर ले गए। यह बात आंधी की तरह गांव भर में फैल गई। रामनाथ ने चुनौती दे दी थी।

खबर एक गांव से दूसरे गांव में पहुंची और दूसरे से तीसरे में। आस-पास के गांव के आदमी उत्तेजित होकर बानापुर में एकत्रित होने लगे, और करीब दो-तीन घंटे के बाद ही तीन चार सौ लट्ठ-बंद आदमी रामनाथ की कोठी की तरफ चल पड़े। उस समय झगड़ू ने उन लोगों को शांत रहने को बहुत कुछ समझाया बुझाया, लेकिन वहां झगड़ू की बात सुनने को कोई तैयार न था। झगड़ू देखा कि एक अति भयानक कांड होने वाला है। एक बार रामनाथ को समझा के लिए झगड़ू वहां से रामनाथ के यहां चले, भीड़ से यह वादा करके कि आ घंटे के अंदर ही वे मामला तै करके लौट आवेंगे !

जिस समय झगड़ू रामनाथ के यहां पहुंचे, पुलिस-दारोगा के साथ बैठे रामनाथ गांव में एकाएक उत्पन्न हो जानेवाली परिस्थिति पर बातें कर र झगड़ू के पहुंचते ही बातें बंद हो गईं। दारोगाजी ने झगड़ू से कहा, " मिसिरजी ! गांववालों के क्या इरादे हैं ?"

झगड़ू ने पुलिस-दारोगा के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, रामनाथ से कहा, "हम आपसे यूं प्रार्थना करन आए हैं कि परमानंद सु

मन्नू दुबे का छोड़ दीन जाय। और फिर यू हमार जिम्मेदारी कि गाँव माँ कौनो उपद्रव न होई !"

"और अगर न छोड़े गए तो ?" रामनाथ ने पूछा।

झगड़ू रामनाथ के स्वर को जानते थे, उन्होंने कहा, "तिवारीजी ! आप यू हमार व्यक्तिगत प्रार्थना समझो ! हम गाँव की तरफ से आपका चुनौती देन नाही आए हन !"

रामनाथ मुसकरा पड़े, "आपकी प्रार्थना है, मिसिरजी ! आपने मुझे अजीब परिस्थिति मे डाल दिया। पर आपकी बात मैं नहीं टालूंगा !" इस बार उन्होंने पुलिस-दारोगा से कहा, "दारोगाजी, उन दोनों आदमियों को आप यहाँ बुलाइए और उन्हें आगाह करके छोड़ दीजिए !"

दारोगा ने दोनों आदमियों को बुलाया, उनकी हथकड़ियाँ खोल दी गई, रामनाथ ने कहा, "आप लोग जा सकते हैं ! अपने छूटने पर आप लोग मिसिर जी को धन्यवाद दें !"

दोनों चले गए, बिना एक शब्द कहे हुए, सिर झुकाए ! पर उन दोनों की मुद्रा में कुछ ऐसी बात थी जो वहाँ बैठे हुए लोगों को अच्छी नहीं लगी। भीड़ रामनाथ की कोठी से करीब एक मील की दूरी पर खड़ी हुई थी। मन्नू दुबे उस हथियारबंद भीड़ को देखते ही चिल्ला उठे, "धिक्कार है हम लोगन पर ! आज हमार सब मर्दानगी बूड़ गई। हमारा इतना अपमान हुआ, हथकड़ी पहनाकर हम लोगों को पुलिसवाले ले गए और तुम लोग मुर्दा की तरह खड़े रहे। अब यह गाँव रहने काबिल नहीं रह गया।"

मन्नू दुबे की इस बात ने आग मे घृत का काम किया। कुछ लोगों ने पूछा, "हम लोग मरने-मिटने पर तैयार होकर निकले हैं। बोलो, क्या किया जाय ?"

अब परमानंद की बारी थी। उन्होंने पास खड़े हुए एक आदमी की लाठी छीनकर घुमाते हुए कहा, "आज फैसला हो जाना चाहिए। जो अपने को मर्द समझता हो वह आवे हमारे साथ !" और यह कहकर वे रामनाथ की कोठी की तरफ घूम पड़े। उत्तेजित भीड़ परमानद और मन्नू के पीछे-पीछे चल पड़ी।

भीड़ की आवाज सुनकर रामनाथ और अन्य लोग चौंक उठे। भीड़ तेजी के साथ बढ़ी आ रही थी। दारोगा ने उठते हुए कहा, "राजा साहेब ! भीतर चलिए ! मालूम होता है यह लोग बलवा करने आ रहे हैं। अपने आदमियों को इकट्ठा कीजिए, मुकाबला करने के लिए !"

पर रामनाथ बैठे ही रहे, "आने दीजिए ! सुनूं भी कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं !"

भीड़ उस समय तक सामने आ गई थी। दारोगाजी तेजी के साथ कमरे के अंदर घुस गए और उन्होंने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया। झगड़ू ने खड़े होकर कड़े स्वर मे कहा, "काहे ! का बात है ?"

पर झगड़ू की बात मानो किसी ने सुनी ही नहीं; एक मिनट मे दोनों चारों

तरफ से घिर गए। परमानंद सुकुल ने चिल्लाकर कहा, "लो! हमें हथकड़ी पहनाने का बदला लो!" और उन्होंने रामनाथ पर का प्रहार किया।

पर झगड़ू ने यह प्रहार अपने हाथों पर लिया, और उसी समय मन्नू दूबे ने चलाई। उस समय रामनाथ खड़े हो गए। लाठी उनके सिर पर पड़ी और गर पड़े। झगड़ू ने चिल्लाकर कहा, "हत्यारा! यू का करि रहे रहो?"

लेकिन भीड़ पागल हो गई थी। एक साथ पचास लाठियाँ उठीं। और उसी मय झगड़ू रामनाथ तिवारी के ऊपर लेट गए। पचासों लाठियाँ झगड़ू पर ड़ीं।

और एकाएक मार्कंडेय की आवाज आई, "बप्पा! बप्पा! यह क्या हो रहा है?"

मार्कंडेय की आवाज सुनते ही मानो भीड़ का पागलपन गायब हो गया। लाठियाँ रुक गईं और मार्कंडेय दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। उस समय लोगों ने देखा कि झगड़ू की आँखें बंद हैं और उनके सिर से खून की धार बह रही है। इस समय तक रियासत के दस आदमी और पुलिस के दस आदमी बंदूकें लिए हुए वहाँ आ गए थे।

भीड़ ने देखा कि रामनाथ जिंदा हैं और उसने झगड़ू के प्राण ले लिए।

चौथा परिच्छेद

रेल की पटरी-पटरी मनमोहन रातों-रात पैदल नाव पहुँच गया।

जिस वक्त मनमोहन प्रभानाथ के बँगले पर पहुँचा, प्रभानाथ सोकर उठ चुका था। मनमोहन को देखते ही वह चौंक उठा। आश्चर्य से उसने पूछा, "अरे, इस वक्त तुम यहाँ कैसे?"

कुरसी पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "सब कुछ बताता हूँ, लेकिन ठहरकर। रात भर पैदल चलता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ।"

थोड़ी देर में नौकर ने प्रभानाथ को चाय के लिए बुलाया। मनमोहन साथ लेकर प्रभानाथ चाय पीनेवाले कमरे में पहुँचा। वहाँ वीणा प्रभानाथ इंतजार कर रही थी। मनमोहन को देखते ही वह उठ खड़ी हुई, उसने मन को नमस्कार किया। लेकिन शायद मनमोहन ने न वीणा को देखा, न नमस्कार को देखा; सिर झुकाए हुए वह एक खाली कुरसी पर बैठ गया। उसने वीणा को उस समय देखा, जब वीणा ने चाय बनाकर प्याला उसके दिया।

देखते ही मनमोहन चौंककर उठ खड़ा हुआ। नमस्कार

उसने मुसकराने का प्रयत्न किया, [illegible] मैंने उनको देखा नहीं था। मैं उनके [illegible] और उनके [illegible] को नहीं, स्वयं अपने अस्तित्व को [illegible]" इतना कहकर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया और [illegible]।

वीणा की आँखों में [illegible]। उसने पूछा, "आखिर कौन-सी ऐसी बात हुई जो [illegible] है?"

"बात?" मनमोहन ने [illegible] कहा, "बात...कुछ भी नहीं, और शायद बहुत बड़ी। मैं [illegible] हूँ, प्रभानाथ, तुम्हारी रियासत के मैनेजर को खत्म करके, [illegible] करने के नाते तुम्हारी रियासत में एक बहुत बड़े खून-खराबे को [illegible]" और यह कहकर मनमोहन ने बानापुर के संघर्ष का पूरा किस्सा [illegible]।

इस किस्से को सुनकर [illegible] हो गया। उसने कहा, "मनमोहन! तुम समझते हो कि तुमने [illegible] के [illegible] विद्रोह को समाप्त कर दिया है, लेकिन मैं कहता हूँ कि तुमने [illegible] काम किया है जिसके परिणाम की कल्पना करते ही मैं काँप उठता हूँ। [illegible] हो रहा होगा, मैं नहीं जानता; लेकिन कुछ भयानक [illegible]" तुम [illegible] को पूरी तरह नहीं जानते!"

चाय पीकर [illegible]। वह जिस समय सोकर उठा, बारह बज गए थे।

वीणा स्कूल चली गई थी और प्रभानाथ बाहर लॉन पर आधा धूप में तथा आधा एक पेड़ की छाया में कुर्सी पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था। मनमोहन बाहर निकल आया, वह प्रभानाथ के सामने लॉन पर ही बैठ गया। उसने पूछा, "कौन-सी किताब है?"

"कार्ल मार्क्स का [illegible]!"

मनमोहन हँस पड़ा, "[illegible] बनने की धुन तुम पर कैसे सवार हुई?"

प्रभानाथ मुसकराया, "समाजवाद ऐसा कुछ बुरा भी नहीं मालूम होता, क्योंकि मैं समाजवादी बनने की इस समय तो नहीं सोच रहा हूँ। यह किताब मँगाने भइया की है, पढ़ने के लिए और कोई किताब नहीं थी, इसलिए इसी को खोलकर बैठ गया।" कुछ रुककर प्रभानाथ ने पूछा, 'नींद तो अच्छी तरह आई?"

"खूब अच्छी तरह। सारी थकावट मिट गई। हाँ, प्रभानाथ, एक बात कहनी थी। आज मैं कानपुर जा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि अज्ञात-प्रवास को अब समाप्त कर देना चाहिए, अब काम करना है।"

प्रभानाथ कुछ बोला नहीं, वह मौन मनमोहन को देख र

मानो मनमोहन ने प्रभानाथ के किसी भी प्रकार के उ

थी, कुछ रुककर उसने फिर कहा, "छोटी-सी ज़िन्दगी है

अनिश्चित! इसका प्रत्येक क्षण मूल्यवान् है, प्र

काम-ही-काम है! तो शाम की गाड़ी से मैं कानपुर जा

फ़ायर किया। गोली प्रभानाथ के बाएँ हाथवाले पुट्ठे में

उसी समय मनमोहन ने घूमकर उस आदमी की तरफ़ गोली छोड़ी।
दमी उस समय तक गाड़ी से नीचे उतर आया था।
मोहन और प्रभानाथ स्टेशन की इमारत के पास आ गए थे—वे अपनी
करीब पचीस कदम के फ़ासिले पर थे। उसी समय उस आदमी ने दूसरी
लाई। इस बार गोली मनमोहन की जाँघ में घुस गई। मनमोहन ने फिर
र पिस्तौल चलाई, एक आह के साथ उस आदमी के पास खड़े हुए एक
आदमी के गिरने का धमाका हुआ।

इस समय तक बारहों पुलिसमैन अपनी राइफ़लें लिए हुए गाड़ी से उतर पड़े,
बारह राइफ़लें एक साथ छूटीं।

मनमोहन और प्रभानाथ इस समय स्टेशन की इमारत के बाहर हो रहे थे।

मनमोहन ने खतरे को देख लिया उसने प्रभानाथ से कहा, "तुम जाओ, और सब
ोग कार पर चल दो! मैं इस जंगल में कहीं छिप जाऊँगा।"

प्रभानाथ ने उसी समय ज़ोर से कहा, "सरदार, तुम चलो। हम लोग कल
तक पहुँच जाएँगे।" और उसके कहने के साथ ही कार चल दी। इधर मनमोहन
को सहारा देते हुए प्रभानाथ रात के गहरे अन्धकार में विलीन हो गया।

जिस आदमी ने यह दो गोलियाँ चलाई थीं, उसका नाम विश्वम्भरदयाल था,
और वह पुलिस डिपार्टमेंट में था। विश्वम्भरदयाल खुफ़िया विभाग का एक
बड़ा कर्मचारी था और वह भारत सरकार से संबद्ध था। वह असिस्टेंट सुपरि-
टेंडेंट के पद पर था और वह उस गाड़ी से इलाहाबाद जा रहा था, जहाँ दो दिन
रुककर उसे कलकत्ता के लिए चल देना था। कलकत्ता में आतंकवादियों के दल,
की जड़ खोद निकालने के लिए उसकी नियुक्ति हुई थी।

विश्वम्भरदयाल ने देख लिया था कि दो आदमी जख्मी हो गए हैं और कार
बिना उन्हें लिए हुए चल पड़ी है। उसने पुलिसवालों को दो टुकड़ियों में बाँटकर
मनमोहन और प्रभानाथ का पीछा करने का हुक्म दिया। एक टुकड़ी के साथ वह
था, दूसरी के साथ खजाने के साथवाला हवलदार।

पेड़ों के झुरमुट में छिपते हुए मनमोहन और प्रभानाथ दोनों चल रहे थे
मनमोहन की जाँघ से खून बह रहा था और धीरे-धीरे उसकी जाँघ में पीड़ा
रही थी। थोड़ी दूर तक चलने के बाद पुलिसवालों के पैरों की आवाज धीमी प
प्रभानाथ ने अपने रूमाल से मनमोहन की जाँघ पर पट्टी बाँध दी। उसी
उन्हें पुलिसवालों की टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया और उनके पैरों की आ
बढ़ने लगीं। ऐसा मालूम होता था कि टार्च के प्रकाश में पुलिसवालों
दोनों की झलक मिल गई।

प्रभानाथ मनमोहन को हाथ का सहारा देते हुए दूसरी ओर घूम पड़
उन्हें दूसरी ओर भी दूर पर टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया। पुलिसव
री टुकड़ी उस ओर थी।

"कह नहीं सकता ! केवल इतना जानता हूँ कि चल रहे हैं !"

चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया था। कभी-कभी दूर से पैरों की आहट
...ती थी, जिससे यह मालूम होता था कि पीछा करनेवाले थके नहीं, न उन्होंने
...करने का इरादा ही छोड़ा है।

मनमोहन सोच रहा था, एक ठंडी सांस भरकर उसने कहा, "ठीक कहते
प्रभानाथ। हम सब केवल इतना ही जानते हैं कि हम चल रहे हैं, और यही
...री मुसीबत है। यही मुसीबत रही है, यही मुसीबत रहेगी। अगर हम इतना
...न सकते कि हम कहाँ चल रहे हैं तो अधिक अच्छा होता। लेकिन...लेकिन...
...यद यह संभव नहीं है।"

प्रभानाथ मौन था, पता नहीं वह मनमोहन की बात सुन भी रहा था। पर
यह साफ मालूम हो रहा था कि प्रभानाथ थक गया है। वह हाँफ रहा था। मन-
मोहन ने काफी देर तक प्रभानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करके कहा, "नहीं, मुसीबत
तब हल होगी, जब हम यह जान लें कि हम कहाँ चल रहे हैं। इस बिना लक्ष्य के
चलते रहने से मैं ऊब गया हूँ, प्रभानाथ !"

लेकिन प्रभानाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभानाथ के लिए यह समय
बात करने का नहीं था—उसके सामने सवाल यह था कि किस तरह सही-सलामत
बच निकला जाय।

मनमोहन ने कुछ रुककर कहा, "प्रभानाथ, प्यास लगी है !"

"देखो—आगे चलकर कोई गाँव मिल जाय !"

"नहीं, प्रभा ! बुरी तरह प्यासा हूँ ! मेरा गला सूख रहा है। तुम थक गए
...ो—मैं यह साफ़ देख रहा हूँ ! मुझे तुम यहीं लिटा दो। देखो, पास में कोई नहर
या तालाब हो।"

प्रभानाथ वास्तव में थक गया था। उसने मनमोहन को जमीन पर लिट...
दिया और फिर वह पानी की तलाश में चल दिया।

प्रभानाथ करीब बीस-पचीस कदम गया होगा कि उसे पिस्तौल की आवा...
सुनाई दी। यह पिस्तौल की आवाज वहाँ से आई थी, जहां वह मनमोहन
लिटा आया था। प्रभानाथ दौड़ा, उसने देखा कि मनमोहन चित्त पड़ा है, उ...
एक हाथ उसके मत्थे पर है और उसके हाथ में पिस्तौल है ! प्रभानाथ ने
मोहन को देखते ही कहा, "यह क्या कर डाला, मनमोहन ?"

मनमोहन का चेहरा एक भयानक पीड़ा से ऐंठ रहा था। उसने अपनी
को दबाने के लिए मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "प्रभा ! दो आ...
के मरने की अपेक्षा एक का मरना अधिक अच्छा है। अब तुम जाओ-...
घर ! और मैं जा रहा हूँ...हम दोनों के चलने का लक्ष्य तो मिल गया...
तक हम लक्ष्यहीन चल रहे थे।"

प्रभानाथ खड़ा था, निस्तब्ध और विमूढ़। मनमोहन ने फिर कहा...
...रे पास बैठ जाओ—हां, ठीक ! प्रभा, अंतिम समय एक बा...

कहूँगा—तुम इस क्रान्तिकारी दल को छोड़ दो। यह बड़ा गलत रास्ता है, यह रास्ता उन लोगों के लिए है, जो निराश हो चुके हैं!"

मनमोहन छटपटा रहा था। उसने फिर कहा, "मैं जा रहा हूँ, प्रभा! मेरी तुम पर ममता हो गई है—क्यों? मैं नहीं कह सकता। लेकिन एक बात की खुशी है—आज मैंने तुममें वह मानवता देखी, जिस पर से मैं विश्वास खो चुका था। मैंने देखा कि मुझे बचाने के लिए तुम अपनी जान खतरे में डाल रहे हो! उफ, प्रभा! तुम नहीं जानते कि मैंने कितना बर्दाश्त किया है! कितनी जोर की प्यास लगी है—अंतिम समय यदि पानी की एक बूँद मिल सकती!"

"मैं पानी लिये आता हूँ!" प्रभानाथ ने कहा।

"नहीं! यह भी बर्दाश्त कर सकता हूँ। कुछ क्षण—बस इतनी ही देर तो बर्दाश्त करना है, जब एक लंबी जिंदगी मैंने बर्दाश्त करने में बिता दी! अच्छा, प्रभा! तुम मुझे वचन दो कि तुम इस क्रांति के मार्ग से हट जाओगे—मुझे वचन दो!"

"मनमोहन!..."

"मैं मर रहा हूँ, प्रभा, और मैं कहता हूँ—अपने सारे अनुभवों को लेकर कहता हूँ कि यह गलत मार्ग है। मुझे वचन दो!..." मनमोहन ने प्रभा को एक बड़ी करुण दृष्टि से देखा।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं वचन देता हूँ!'

"ठीक, प्रभा! अब मैं शांतिपूर्वक मर सकता हूँ—म—र—र—हा—हूँ।" और प्रभानाथ ने देखा कि मनमोहन का सिर लटक गया, उसके हाथ एकाएक ऐंठ गए। लेकिन उसके होठों पर एक हल्की-सी मुसकान थी।

४

मनमोहन के सिरहाने बैठकर प्रभानाथ ने भगवान से मनमोहन की आत्मा को शांति देने की प्रार्थना की; इसके बाद वह वहाँ से चल पड़ा। उस समय उसे दिशा-ज्ञान न था, उसके सिर में चक्कर आ रहा था। चलते-चलते वह पक्की सड़क पर पहुँच गया और उसने फतेहपुर की राह ली। जिस समय वह श्यामनाथ के बँगले में पहुँचा, सुबह हो रही थी। पहरेदार ने प्रभानाथ को सलाम किया। चुपचाप प्रभानाथ अपने कमरे में चला गया। कमरे में पहुँचकर उसने कपड़े बदले, रातवाले कपड़ों को उसने जला दिया। पर उस समय उसके हाथ में असह्य पीड़ा हो रही थी।

जिस समय प्रभानाथ मकान में पहुँचा था, श्यामनाथ वहाँ न थे। रात में ही उन्हें ट्रेन की डकैती की खबर मिल गई थी और वे तहकीकात को निकल पड़े थे। प्रभानाथ अपने कमरे में पड़ा छटपटा रहा था—उसका हाथ सूज आया था। गोली हाथ के अंदर रह गई थी। रातभर वह जागता रहा था—उस समय वह बुरी तरह थका हुआ था। लेकिन उसे नींद न आ रही थी।

करीव दो घंटे के वाद उसे श्यामनाथ की आवाज़ सुनाई दी—ड्राइंग-
रूम में से। श्यामनाथ कह रहे थे, "जहाँ तक मैं कह सकता हूँ,
मैं कोई भी क्रांतिकारी नहीं है। वे लोग कानपुर के रहे होंगे—कानपुर
तिकारियों का एक वहुत वड़ा अड्डा है भी। इस तरह की वारदात मेरे
पहली है।"

र इसके उत्तर में एक दूसरी आवाज़ ने कहा, "मेरा भी ऐसा खयाल है।
सवाल यह है कि वह दूसरा आदमी गायव कहाँ हो गया? जहाँ तक मैं
ता हूँ, वह आदमी भी जख्मी हो गया है; और वह उस स्टेशन से वहुत दूर
गया होगा, क्योंकि किसी ट्रेन का समय भी नहीं है।"

दूसरे आदमी की आवाज़ सुनकर प्रभानाथ चौंक उठा। वह दूसरा आदमी
न है? क्या वह वही आदमी तो नहीं है जिसने रात में गोली चलाकर उसे
र मनमोहन को जख्मी किया था?

श्यामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन यह आदमी कौन है जो मरा हुआ पाया
या है। उसके पास कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली, जिससे उसका पता लगाया जा
सके। सिर्फ उसके पैरों में वँधा हुआ एक रूमाल और उस रूमाल पर एक अक्षर
है—पी। इस 'पी' के क्या माने हैं, परमेश्वर, पूरन, प्रद्योत—न जाने कितने
नाम हैं।"

"प्रभाकर!" दूसरी आवाज़ ने कहा।

"अरे हाँ, प्रभाकर! क्या सचमुच वह प्रभाकर ही है? यकीन तो नहीं
होता!"

दूसरी आवाज़ ने कहा, "मैं जानता हूँ कि वह प्रभाकर है। प्रभाकर का
फोटो मेरे पास है। मैं परेशान था इस आदमी से। न जाने कितनी कोशिशें की
गईं इस आदमी को पकड़ने की; लेकिन गज़व का फ़ितरती आदमी था। सवाल
मेरे सामने यह नहीं है कि वह लाश प्रभाकर की है या किसी दूसरे आदमी की;
सवाल मेरे सामने यह है कि क्या यह रूमाल उसी आदमी का है? जहाँ तक मैं
जानता हूँ, प्रभाकर के रूमाल पर 'पी' अक्षर न होना चाहिए। अव यह सवाल
उठता है कि क्या वह रूमाल उसके साथी का है?"

प्रभानाथ यह सुनकर चौंक उठा। उसे याद हो आया कि उसने अपना रूमाल
मनमोहन के ज़ख्म पर वाँध दिया था। इस वात से वह वहुत अधिक चिंतित ह
उठा। यह दूसरा आदमी कौन है, क्या है, कहाँ का है? रात में वह गोली चला
वाले की शक्ल न देख सका था। वह उठा, दरवाजे के सूराख से उसने देखा-
एक दुवला-सा क्लीन-शेव आदमी वैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। उस आ
की उम्र कोई तीस साल की होगी—मंझोला कद; साँवला रंग और उसके
पर एक प्रकार की कठोरता।

नौकर ने चाय की ट्रे उन दोनों आदमियों के सामने रख दी। प्रभानाथ
पलंग पर लेट गया।

चाय पी चुकने के बाद श्यामनाथ ने कहा, "मिस्टर विश्वंभर-
दयाल ! आप थोड़ा-सा आराम कर लें—रात-भर की दौड़-धूप के बाद कुछ आराम की जरूरत होगी।" यह कहकर उन्होंने प्रभानाथ के कमरे की तरफ इशारा किया, "उस कमरे में चले जाइए, मेरे लड़के का है। वह आजकल उन्नाव या गई है। बिस्तर बिछा हुआ है—आराम से सोइए !"

मिस्टर विश्वंभरदयाल कमरे में प्रवेश करते ही चौंक उठे—उनके सामने प्रभानाथ खड़ा था।

५

दोनों ने एक-दूसरे को ध्यान से देखा, थोड़ी देर तक दोनों मौन खड़े रहे। इसके बाद प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "काकाजी को यह पता नहीं कि मैं रात में आ गया था, इसी से उन्होंने आपको मेरे कमरे में भेजने की गलती की। चलिए, मैं आपको दूसरे कमरे मे पहुँचा दूँ !"

एकाएक विश्वभरदयाल की गंभीरता जाती रही। वे खिलखिलाकर हँस दिए, "आप रात को आए और आपके काकाजी को इसका पता तक नही! वाकई बड़ी मजेदार गलती रही मिस्टर···"

"प्रभानाथ ! मेरा नाम प्रभानाथ है ! जी हाँ, गलती मजेदार हुई···" और प्रभानाथ चलने के लिए घूम पड़ा।

विश्वंभरदयाल प्रभानाथ के साथ दूसरे कमरे में पहुंचे, उन्हें कमरे में छोड़कर प्रभानाथ लौट आया।

विश्वंभरदयाल से मिलकर प्रभानाथ के मन मे एक अजीब तरह की हलचल पैदा हो गई। वह आदमी भयानक था—प्रभानाथ उसके चेहरे को देखते ही समझ गया था। छोटी-छोटी तेज और पैनी निगाह जो आदमी के हृदय तक को चीर देने का प्रयत्न करती हो, मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता से भरी दृढ़ता। प्रभानाथ सीधा श्यामनाथ के कमरे में पहुँचा। बड़ी मुश्किल से वह अपने दर्द को बर्दाश्त कर रहा था। प्रभानाथ को देखते ही श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "अरे प्रभा ! तुम कब आए ?"

"सुबह !" और प्रभानाथ कराह उठा।

"अरे ! तुम्हे क्या हुआ ?" श्यामनाथ ने प्रभानाथ की तरफ बढते हुए कहा, "सुबह तो कोई गाड़ी नही आती ! ···" और श्यामनाथ कहते-कहते रुक गए। उन्होंने देखा कि प्रभानाथ का चेहरा पीला पड़ गया है, उसका हाथ सूज गया है और वह दर्द से छटपटा रहा है।

प्रभानाथ ने कहा, "इसमें गोली धँस गई है, काकाजी !" और वह दर्द से फिर कराह उठा।

एकाएक श्यामनाथ सिर से पैर तक सिहर उठे, "तो क्या वह रूमाल तुम्हारा था ?"

"हाँ !" प्रभानाथ ने एक ठंडी साँस ली ।

"तुम्हें यहाँ आते किसी ने देखा तो नहीं ?"

ौकीदार ने देखा है—और···वह आपके मेहमान—वे मुझे देख गए
ा, बड़ा दर्द है !"

मनाथ हतबुद्धि-से खड़े थे । उनको इस सब पर यकीन नहीं हो रहा था ।
उनके सामने खड़ा हुआ उनका लड़का दर्द से कराह रहा था, और उन्हें कुछ
था । कुछ देर तक मौन रहकर उन्होंने प्रभानाथ की तरफ़ देखा । प्रभानाथ
रे पर असह्य पीड़ा के भाव अंकित थे । श्यामनाथ को ऐसा लगा, मानो
ाथ गिर पड़ेगा । बढ़कर उन्होंने प्रभानाथ को सँभाला, उसे कुरसी पर
ाते हुए उन्होंने कहा, "चलो, तुम्हें डॉक्टर के यहाँ ले चलता हूँ !···"

और ये कहते-कहते वे रुक गए । अपनी बात के खोखलेपन से वे स्वयं ही
क उठे—"नहीं, तुम्हें फतेहपुर से बाहर जाकर इलाज कराना होगा । बाहर
ाकर । कानपुर ?—नहीं, वहाँ खतरा है । हाँ, इलाहाबाद ! मैं डाक्टर अवस्थी
ो चिट्ठी लिखे देता हूँ, उनके यहाँ चले जाओ । सब कुछ उन्हें बतला देना !"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, उसकी आँखें बंद थीं ।

श्यामनाथ ने स्वयं सुराही से गिलास में डालकर पानी प्रभानाथ को पिलाया,
प्रभानाथ ने आँखें खोल दीं । श्यामनाथ ने कहा, "क्या तुम अकेले इलाहाबाद जा
सकते हो ? मेरा अभी यहाँ से चल देना ठीक न होगा ।"

एक क्षीण मुसकराहट के साथ प्रभानाथ ने कहा, "मैं अकेला जाऊँगा !"

"तो तुम तैयार हो जाओ, एक्सप्रेस आती ही होगी ।"

६

कमरे से प्रभानाथ के जाने के बाद विश्वंभरदयाल सोए नहीं, प्रभानाथ को
देखकर उन्हें ऐसा लगा, मानो उन्होंने कहीं उसे देखा है । विश्वंभरदयाल बहुत
देर तक सोचते रहे कि कहाँ उन्होंने इस युवक को देखा है, और एकाएक उन्हें
रातवाली घटना स्मरण हो गई । ऐसा ही लंबा और सुडौल वह आदमी था जो
मरनेवाले के साथ था । और वह आदमी एकाएक गायब हो गया था ।

विश्वंभरदयाल ने सोचना आरंभ किया, "वह नवयुवक रात में आय
इसके पिता को इसके आने का पता नहीं । तो क्या वह नवयुवक सच बोला
और फिर उस युवक का चेहरा पीला था, उसकी आँखें लाल थीं—मानो वह
तरह थका हुआ था । तो क्या यही तो वह आदमी न था, जो गायब हो गया
लेकिन यह नवयुवक—यह सुपरिंटेंडेंट पुलिस पंडित श्यामनाथ तिवार
लड़का—यह क्रांतिकारी दल में कैसे होगा ?"

विश्वंभरदयाल उठ बैठे—वे बरामदे में टहलने लगे । सामने फाट
पुलिस का कांस्टेबिल बैठा था । उसको बुलाकर विश्वंभरदयाल ने पूछ
म्हारे छोटे बाबू सुबह जिस वक्त आए, उस वक्त क्या ड्यूटी पर तुम्हीं

"जी हां," कांस्टेबिल शिवसिंह ने उत्तर दिया।

विश्वंभरदयाल का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। तो वह युवक झूठ बोला—वह रात में नहीं, बल्कि सुबह आया था।

"कितने बजे आए थे?" विश्वंभरदयाल ने फिर पूछा।

प्रभानाथ की बाबत इस जिरह से शिवसिंह के कान खड़े हुए। उसको ऐसा लगा कि दाल में कुछ काला है; वह सतर्क हो गया, "ठीक वक़्त तो मुझे याद नहीं, शायद छः या सात बजे होंगे।"

"उनके साथ कुछ असबाब वग़ैरह था?" विश्वंभरदयाल ने फिर सवाल किया।

"यह तो मैंने गौर नहीं किया!" शिवसिंह विश्वंभरदयाल की बात को टाल गया।

विश्वंभरदयाल समझ गए कि अब उन्हें शिवसिंह से ठीक उत्तर की आशा नहीं करनी चाहिए। लौटकर वे फिर कमरे में लेट गए। उनके हृदय में एक तरह की प्रसन्नता भर गई थी। मामले का पता इतनी आसानी से लग सकेगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। वह जिस मुलजिम की तलाश में है वह उसी घर में है—लेकिन सबूत? और सबूत पाने के पहले सबसे बड़ी बात यह है कि वह मुलजिम सुपरिंटेंडेंट पुलिस का लड़का है।

प्रभानाथ श्यामनाथ का लड़का है—और श्यामनाथ के खिलाफ सबूत पाना कठिन है। लेकिन असंभव नहीं है—विश्वंभरदयाल यह जानते थे। लेकिन यही कब निश्चित था कि प्रभानाथ ज़ख्मी है, और प्रभानाथ वास्तव में क्रांतिकारी दल में शामिल था। मानो प्रभानाथ रात में ही आया हो और सुबह के वक़्त वह टहलने चला गया हो। जब वह टहलकर वापस आ रहा हो, उस समय उसे शिवसिंह ने देखा हो।

विश्वंभरदयाल एक अजीब उलझन में थे; लेकिन प्रत्येक क्षण उनके मन में यह धारणा जमती जा रही थी कि प्रभानाथ ही मुलजिम है और प्रभानाथ निश्चित रूप से जख्मी है। उस सबका पता पहरेवाले सिपाही से लग [illegible] पहरेवाला सिपाही ही यह बतला सकता है कि प्रभानाथ [illegible] जब आ[illegible] उसके कपड़े अस्त-व्यस्त थे।

विश्वंभरदयाल उठ खड़े हुए, उन्हें कुछ करना ही [illegible]। 'अ[illegible]' [illegible] की चीज पर उन्होंने कभी विश्वास नहीं किया था। [illegible] अनायास ही उनके हाथ में एक ऐसा सूत्र आ गया [illegible] कठिन होता, और एक बार सूत्र हाथ में आ [illegible] करनी ही थी।

विश्वंभरदयाल रातभर सोए न थे, और [illegible] उनको [illegible] नींद आ रही थी; लेकिन नींद अब उनकी आंखों [illegible] बरामदे में आए—वहां श्यामनाथ बैठे हुए थे [illegible]

थे। विश्वंभरदयाल को देखते ही श्यामनाथ ने कहा, "क्या ...
नींद नहीं आ रही है ?"

...हीं !" विश्वंभरदयाल ने उत्तर दिया। वह श्यामनाथ के सामने बैठ गए, ...कर उन्होंने कहा, "जो काम हाथ में लिया है, बिना उसे पूरा किए अब ...द आराम, सब हराम। आप ऑफिस चल रहे हैं न !"

...हाँ।" श्यामनाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन अभी एक मुआइने में जाना ...हाँ करीब आध घंटे का काम है, उसके बाद मैं आऊँगा। आप चलें !"

यह कहकर ड्राइवर से कार मंगवाई।

विश्वंभरदयाल श्यामनाथ को मौका न देना चाहते थे कि वह प्रभानाथ से ...कर उसे बचाने की कोई कार्रवाई कर सकें। उनका ऐसा खयाल था कि ...ानाथ अभी श्यामनाथ से नहीं मिला और श्यामनाथ को प्रभानाथ के संबध में ...भी तक कुछ नहीं मालूम। लेकिन जब विश्वंभरदयाल को कार पर बिठलाकर ...यामनाथ ने ड्राइवर से कहा कि वह कार वापस लाए और वे स्वयं कार पर नहीं ...ठे, तब विश्वंभरदयाल को चिंता हुई। कहा, "चलिए, वहीं से चले जाइएगा।'

विश्वंभरदयाल के इस रुख से श्यामनाथ को बुरा लगा, और शायद दूसरे मौके पर वह अपनी बात पर अड़ भी जाते; पर इस समय मामला ही दूसरा था; उन्होंने कार पर बैठते हुए कहा, "चलिए, अच्छी बात है !"

श्यामनाथ के साथ चलने से विश्वंभरदयाल एक प्रकार से निश्चित हो गए। पुलिस ऑफिस में पहुंचकर श्यामनाथ ने विश्वंभरदयाल को सब सुविधाएं देने का आदेश दिया और फिर वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, "एक घंटे में काम खत्म हो जाएगा—आप मेरा इंतजार कीजिएगा।"

श्यामनाथ के चले जाने के बाद विश्वंभरदयाल ने सब-इंस्पेक्टर माताप्रसाद को बुलाया। सब-इंस्पेक्टर माताप्रसाद मोटे-से अधेड़ आदमी थे, सुलझे हुए दिमाग के। विश्वंभरदयाल ने कहा, "माताप्रसाद साहेब, मेरा ऐसा खयाल है कि आप कायस्थ हैं !"

"हाँ, हुजूर !" माताप्रसाद ने अदब के साथ उत्तर दिया।

"और मैं भी कायस्थ हूँ !" विश्वंभरदयाल ने कहा, "और इस पर आ... मेरे बुजुर्ग हैं ! इसलिए मैं आपको भाई साहेब कहूँगा !"

"मेहरबानी है हुजूर की—वरना ओहदे में, हैसियत में तो खाकसार हु... का गुलाम है !"

"तो भाई साहेब ! बात यह है कि कप्तान साहेब के यहाँ जो सिपाही ... सुबह पहरे पर था, क्या आप उसके नाम व घर का पता लगा सकते हैं ?"

"क्या बात है ?" माताप्रसाद ने पूछा।

"पहले आप बतलाइए कि आप उसे जानते हैं और उस पर अपना अस... सकते हैं, पीछे मैं आपको सब कुछ बतलाऊँगा !"

...माताप्रसाद चक्कर में पड़ गए। जिस ढंग से विश्वंभरदयाल बातें क...

वह ढंग अच्छा न था। उस बात में कहीं-न-कहीं कोई कुरूपता अवश्य थी। उसने जरा ठहरकर कहा, "जी···उसका पता लगाना होगा।"

माताप्रसाद के इस उत्तर से विश्वंभरदयाल समझ गए कि उन्हें माताप्रसाद को कुछ और दम-दिलासा देना होगा। उन्होंने माताप्रसाद को गौर से देखा, फिर उनकी पीठ पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "मैंने आपको अपना भाई साहेब कह दिया है और इसलिए मैं आपसे कोई बात छिपाऊँगा नहीं। मामला यह है कि कल रात की डकैती के सिलसिले में मेरा शक कप्तान साहेब के साहेबजादे पर है, और मेरा खयाल है कि वह वही क्रांतिकारी है जो गोली खाकर लापता हो गया था। आप शायद मेरे शक की वजह भी जानना चाहेंगे। तो वजह यह है कि साहेबजादे आज सुबह तशरीफ लाए—बिना किसी असबाब के। मैंने उनको सुबह कप्तान साहेब के बँगले पर देखा—चेहरा जर्द था और आँखें सुर्ख थीं। यह साफ मालूम होता था कि वे रात भर सोए नहीं हैं। इसके अलावा सुबह के वक्त कोई गाड़ी भी नहीं आती। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि श्यामनाथ साहेब को भी अपने साहबजादे के आने का कोई इल्म न था।"

माताप्रसाद सन्नाटे में आ गए। कुछ देर तक तो उनके मुँह से बोल ही न निकला, फिर सँभलकर उन्होंने कहा, "यह तो बुरी बात है! कप्तान साहेब के लड़के के खिलाफ···" और वे कहते-कहते रुक गए।

विश्वंभरदयाल ने कहा, "बुरी बात तो जरूर है, लेकिन जो मेरा फर्ज है, जो आपका फर्ज है, जो हरएक पुलिसवाले का फर्ज है—यानी अमनो-अमान कायम रखना और मुजरिम को सजा दिलाना—उसे तो अदा करना ही पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि पंडित श्यामनाथ साहेब निहायत ही नेक व शरीफ आदमी हैं; मैं जानता हूँ कि उनका मातहत उनके इखलाक व उनकी नेकी का गुलाम है; लेकिन किया क्या जाय, भाई साहेब—यह मजबूरी है!"

माताप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया, वे सोच रहे थे।

विश्वंभरदयाल को शायद माताप्रसाद के अंतर्द्वंद्व का पता था। उन्होंने फिर कहा, "भाई साहेब, हम पुलिसवाले दया और मुहब्बत के वास्ते नहीं बने हैं—हमें तो अपना फर्ज अदा करना चाहिए। मैं आपको अपना भाई साहेब मानता हूँ और इसलिए मैं आपसे इतना और कह दूँ कि ऐसे मौके बार-बार नहीं आते। इस मौके का फायदा उठाइए—और इसमें मेरी ही नहीं बल्कि आपकी भी बहुत बड़ी तरक्की होगी।"

हिचकिचाते हुए माताप्रसाद ने कहा, "फिर क्या करना होगा?"

"अकेले उस लड़के का जख्मी होना पूरा सबूत नहीं है—यह भी साबित करना होगा कि वह अलस्सुबह बाहर से आया, बिना असबाब के—पैदल। वह थका हुआ था, उसके कपड़े मैले थे व कपड़ों पर खून के दाग थे—वगैरह-वगैरह। और इसके लिए पंडित श्यामनाथ के बँगले पर जो सिपाही सुबह के वक्त पहरे पर था, उसकी शहादत की जरूरत पड़ेगी। मुझसे वह सही-सही बात न

बतलायेगा। आपकी मदद की ज़रूरत होगी।"
"मैं आपकी मदद करूँगा!" माताप्रसाद ने कहा।

७

शिवसिंह का बयान ले लिया गया, और वह बयान इस प्रकार था, "सुबह
रीब सात बजे प्रभानाथ बँगले में दाखिल हुए। उनके कपड़े फटे हुए थे और
पड़ों पर खून के दाग थे। उस वक्त प्रभानाथ के पैर डगमगा रहे थे; ऐसा
मालूम होता था कि पैदल एक लंबा रास्ता तै किए हुए आ रहे हैं और बहुत ही
थके हुए हैं। उनके साथ कोई सामान न था। इधर कई दिनों से प्रभानाथ फतेहपुर
के बाहर गए हुए थे। जब वे गए थे तो अपना सामान ले गए थे और फतेहपुर से
वह अपनी कार पर गए थे। प्रभानाथ के इस हालत में होने से मुझे ताज्जुब तो
जरूर हुआ, लेकिन चूँकि वे कप्तान साहेब के साहेबज़ादे हैं, इसलिए मुझे उनसे
किसी भी तरह की बातचीत करने की या पूछताछ करने की कोई हिम्मत नहीं
हुई। उन्होंने भी मुझसे कोई बात नहीं की, न उन्होंने मुझसे किसी की बाबत कुछ
दरियाफ्त किया। सीधे वे अपने कमरे में चले गए।"

बयान देकर शिवसिंह चला गया। थोड़ी देर बाद श्यामनाथ लौटे, उस समय
विश्वंभरदयाल और माताप्रसाद बैठे हुए परामर्श कर रहे थे कि आगे क्या
कार्रवाई की जाय। श्यामनाथ के आने पर विश्वंभरदयाल ने कहा, "मिस्टर
श्यामनाथ! मुझे बड़ी नींद लग रही है—कुछ देर आराम करना चाहता हूँ।"

"चलिये बँगले पर; आप बेकार ही यहाँ चले आये। सो लेते तो अच्छा
होता। कहिए, कुछ काम-काज हुआ?"

उठते हुए विश्वंभरदयाल ने कहा, "हुआ तो, लेकिन नहीं के बराबर है। हाँ
इस तहकीकात में मैं मिस्टर माताप्रसाद को अपने साथ लेना चाहता हूँ, आप
इसमें कोई एतराज तो नहीं है?"

"भला मुझे इसमें क्या एतराज हो सकता है—आप बड़ी खुशी से मि
माताप्रसाद को ले सकते हैं।" चलते हुए श्यामनाथ ने कहा।

"तो मिस्टर माताप्रसाद, आप भी मेरे साथ बँगले पर चलिए, वहीं बा
होगी!" और विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद को अपने साथ ले लिया।

तीनों आदमी श्यामनाथ के बँगले पर पहुँचे। ड्राइंग-रूम में बैठकर वि
दयाल ने श्यामनाथ से कहा, "आपके साहबजादे क्या अभी तक सो
दिखलाई नहीं दिए!"

श्यामनाथ ने अपने को सँभालते हुए उत्तर दिया, "वह तो यहाँ नहीं
तो शायद आपसे सुबह ही कहा था कि वह बाहर गया है।"

"लेकिन सुबह के वक्त आपके साहबज़ादे अपने कमरे में मौजूद थे
के आने के चंद घंटे पहले आए थे और उस वक्त आराम कर रहे थे!

"ताज्जुब की बात है। मुझे उसके आने की खबर ही नहीं मि

कहते हुए श्यामनाथ ने प्रभानाथ के कमरे का दरवाज़ा खोल दिया। कमरा खाली था। श्यामनाथ ने मानो अपने आप ही कहा, 'कहाँ गया?' और उन्होंने अपने नौकर स्वामी को आवाज़ दी।

"प्रभा कहाँ है?" श्यामनाथ ने स्वामी से पूछा।

"छोटे सरकार! क्या छोटे सरकार उन्नाव से लौट आए?" स्वामी ने आश्चर्य से पूछा।

स्वामी को विदा करके श्यामनाथ ने कहा, "बड़े ताज्जुब की बात है कि उसके आने की खबर न मुझे है, न इस घर के किसी नौकर को है!"

विश्वंभरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए। काम इतना आसान नहीं है—वे समझ गए। उन्होंने कहा, "बहुत मुमकिन है मुझसे कुछ गलती हो गई हो।" और वह फिर कुर्सी पर बैठ गए।

थोड़ी देर तक सब लोग मौन बैठे रहे। इस मौन को श्यामनाथ ने तोड़ा, "तो अब आप आराम कर लीजिए!"

"जी—आराम तो क्या करूँगा—अब तो मुझे उस वारदात की सरगर्मी के साथ छानबीन करनी होगी!" इसके बाद विश्वंभरदयाल माताप्रसाद की ओर घूमे, "यहाँ किसी भी किस्म का पता या सुराग लगना मुश्किल है—मुझे कानपुर चलना चाहिए, क्योंकि मेरे खयाल से डाकू कानपुर से आए थे। इस वक्त कानपुर के लिए कोई गाड़ी जाती है?"

"करीब दो घंटे बाद यहाँ से एक्सप्रेस जाएगी!" माताप्रसाद ने उत्तर दिया।

"तो वह एक्सप्रेस ठीक रहेगी।" इस बार विश्वंभरदयाल श्यामनाथ की ओर घूमे, "देखिए, मैं अपने साथ मिस्टर माताप्रसाद को ले जाना चाहता हूँ। फतेहपुर जिले का कोई आदमी तो मेरे साथ चाहिए।"

श्यामनाथ ने अनुभव किया कि विश्वंभरदयाल हुक्म चला रहा है। उससे वे भली-भाँति परिचित नहीं थे। उन्हें केवल इतना मालूम था कि विश्वंभरदयाल भारत सरकार के गुप्तचर-विभाग के एक कर्मचारी हैं। लेकिन वे यह अच्छी तरह समझते थे कि विश्वंभरदयाल ओहदे में उनसे छोटा होगा, और इसलिए उसका इस तरह हुक्म चलाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने रुखाई के साथ कहा, "मिस्टर माताप्रसाद को तो मैं आपके साथ नहीं भेज सकूँगा क्योंकि यहाँ के कामकाज में हर्ज होगा। इसके अलावा चूँकि यह वारदात मेरे इलाके में हुई है, लिहाज़ा मैं समझता हूँ कि इसके बाबत आपको तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं।"

इस उत्तर के लिए मानो विश्वंभरदयाल तैयार बैठे थे, "नहीं—इसमें तकलीफ की क्या बात—ऐसे ही मामलों के लिए तो हम लोग रखे गए हैं।" यह कहकर उन्होंने अपनी जेब से एक तार निकाला जो इलाहाबाद से इंस्पेक्टर जनरल पुलिस के यहाँ से आया था। तार विश्वंभरदयाल ने श्यामनाथ के हाथ में रख दिया। उसमें लिखा था, "कुरसली कलाँ डकैती की तहकीकात का काम मिस्टर विश्वंभरदयाल को, जो भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के हैं, सौंपा जाता है.

ये फ़तेहपुर की पुलिस से हर तरह की मदद ले सकते हैं।"

श्यामनाथ ने आँखें फाड़कर विश्वंभरदयाल को देखा—और उस समय यह अनुभव हुआ कि उनके सामने जो आदमी बैठा हुआ है, वह चतुर है, दृढ़ और किसी हद तक कठोर भी है। उन्होंने ठंडी साँस लेकर कहा, "ठीक है—माताप्रसाद साहेब को अपने साथ ले जा सकते हैं।"

दो घंटे बाद विश्वंभरदयाल कानपुर की गाड़ी पर सवार हो गए। माताप्रसाद अपना असबाब वग़ैरह लेने अपने घर चले गए थे। जिस समय वे स्टेशन पर पहुँचे, गाड़ी ने सीटी दे दी थी। वे भी विश्वंभरदयाल के डिब्बे में बैठ गए।

जब गाड़ी फ़तेहपुर के स्टेशन से निकल गई तब माताप्रसाद ने कहा, "आज सेकंड क्लास का सिर्फ़ एक टिकट बिका है—इलाहाबाद के वास्ते—और वह टिकट एक्सप्रेस जाने के पहले बिका है। इसके आगे और कुछ पता नहीं चल सका।"

"इलाहाबाद!" विश्वंभरदयाल ने धीरे से दुहराया, "इलाहाबाद! ठीक है। कानपुर में खतरा है। कानपुर में छानबीन होगी, क़ानपुर में तहक़ीक़ात होगी। माताप्रसाद साहेब! हमें सुबह की गाड़ी से ही इलाहाबाद के लिए रवाना होना पड़ेगा।" विश्वंभरदयाल मुसकराए, "बरखुरदार से मुलाक़ात करनी निहायत जरूरी है, और वह भी जल्दी-से-जल्दी!"

"लेकिन इलाहाबाद में कैसे पता लगेगा?" माताप्रसाद ने पूछा।

विश्वंभरदयाल की कुरूप मुसकराहट अभी तक उनके होंठों पर मौजूद थी, "कह नहीं सकता, लेकिन यह जानता हूँ कि पता लगेगा जरूर! जानते हैं, माताप्रसाद साहेब—मैं तक़दीर पर यक़ीन करनेवाला हूँ और मैं यह जानता हूँ कि इस वक्त मेरी किस्मत अच्छी है, मेरा सितारा बुलंदी पर है। इसका सबूत शायद आप पाना चाहें, तो सुनिए। रात के वक्त मैं इत्तफ़ाक़ से ही उस गाड़ी में था जिसमें डाका पड़ा था। मैंने गोली चलाई, और यह इत्तफ़ाक़ की ही बात है कि मेरी दोनों गोलियाँ कारगर हुईं। यह भी इत्तफ़ाक़ की ही बात है कि शख्स जिसका नाम प्रभाकर है और जिसे गिरफ्तार करने में हिंदुस्तान की पुलिस के अच्छे-से-अच्छे आदमी नाकामयाब हुए, मेरी गोली का शिकार हुआ। इत्तफ़ाक़ की ही बात है कि प्रभाकर की गोली मेरे न लगकर मेरी बगल में हुए पुलिसवाले के लगी, जब कि दुनिया जानती है कि प्रभाकर का निशाना अचूक होता था और सबसे बड़ी खुशकिस्मती की बात तो यह है कि दूसरा मुझे बड़ी आसानी से ऐन सुपरिंटेंडेंट पुलिस के मकान में ही दिख गया। प्रसाद साहेब! आप यक़ीन रखिए, मेरा सितारा बुलंद है और मैं जानता साहेबज़ादे का पता मुझे बड़े मजे में लग जाएगा।"

माताप्रसाद विश्वंभरदयाल की बात से काफ़ी अधिक प्रभावित "वाक़ई बात तो आपने बड़े पते की कही। चलिए, इलाहाबाद में [illegible] जाय!"

[illegible] भरदयाल माताप्रसाद के साथ इलाहाबाद के [illegible]

हो गए। गाड़ी इलाहाबाद दोपहर में पहुँची। गाड़ी से उतरते ही वे इंस्पेक्टर जनरल पुलिस के पास पहुँचे। इंस्पेक्टर जनरल ने इलाहाबाद के सुपरिंटेंडेंट पुलिस से फोन पर सब बातें बतलाकर विश्वंभरदयाल को हर तरह की मदद देने को कह दिया।

८

श्यामनाथ ने डाक्टर अवस्थी के नाम एक पत्र लिखकर प्रभानाथ को दे दिया था। डाक्टर अवस्थी का पूरा नाम था डाक्टर व्रजबिहारी अवस्थी, और वे श्यामनाथ के अभिन्न मित्र थे। वे इलाहाबाद के सिविल सर्जन थे; और इलाहाबाद नगर में उनका नाम था।

प्रभानाथ जब डाक्टर अवस्थी के घर पहुँचा, वे घर पर ही थे। प्रभानाथ को देखते ही वे उठ खड़े हुए, "तुम, प्रभा!—अरे, तुम्हारे चेहरे पर यह पीलापन कैसा? क्या हुआ?"

प्रभानाथ ने डाक्टर अवस्थी को कोई उत्तर नहीं दिया—वह निष्प्राण-सा पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद उसने अपनी जेब से पंडित श्यामनाथ का पत्र निकालकर उन्हें दिया।

डाक्टर अवस्थी ने उस पत्र को तीन बार आदि से अंत तक पढ़ा, फिर उसमें दियासलाई लगाकर वे प्रभानाथ के सामने खड़े हो गए, "हूँ! तो यह बात है! तुम्हारा असबाब?"

"ताँगे में है," प्रभानाथ ने कहा।

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ का असबाब उतरवाकर एक खाली कमरे में रखवाया और ताँगा विदा किया। "तुम्हारे काका का कहना है कि तुम्हें मौत के मुँह से बचाना है! बचाने की कोशिश करूँगा, प्रभा—भरसक कोशिश करूँगा!"

प्रभानाथ इस बार भी मौन रहा। कुछ देर रुककर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा,"तुम्हें यह क्या सूझी जो तुम यह नासमझी का काम कर बैठे? लेकिन नहीं, यह वक्त यह सब बात कहने का नहीं है। इस वक्त तो तुम्हारे हाथ का ऑपरेशन करके गोली निकालनी होगी और तुम्हें अच्छा होने में करीब एक महीना लगेगा।" डाक्टर अवस्थी ने घड़ी की ओर देखा—दो बज चुके थे। उन्होंने फिर कहा, "और तुम्हारा ऑपरेशन, अभी और इसी वक्त करना होगा। तुम्हारा अस्पताल जाना ठीक न होगा—मैं तुम्हें वहाँ ले भी न जाऊँगा, इसलिए यह आपरेशन यहीं मेरे मकान में होगा। लेकिन ऑपरेशन करने का सारा सामान मुझे अस्पताल से लाना पड़ेगा। ऑपरेशन के बाद तुम मेरे घर में ही रहोगे—कहीं भी निकलकर नहीं जा सकते। समझे!"

"जी हाँ!' और प्रभानाथ ने अपनी आखें बंद कर लीं।

डाक्टर अवस्थी के मकान पर उनकी पत्नी के सिवा और कोई न था।

प्रभानाथ को एक खाली बेडरूम में ले गए और उसे वहाँ लिटा।
"मैं अभी आया !" और यह कहकर डाक्टर अवस्थी अस्पताल
ए।

एक घंटे बाद डाक्टर अवस्थी ऑपरेशन का सामान लिए हुए वापस लौटे। केले ही आए थे। अपने विश्वासपात्र नौकर से उन्होंने कमरे में पानी, तौलिया, न वगैरह मँगवा लिया। उन्होंने प्रभानाथ से कहा "प्रभा! मैं नहीं चाहता कोई बाहरवाला यह जान सके कि मैंने तुम्हारा ऑपरेशन किया है और तुम रे मकान में हो। इसलिए मैं ऑपरेशन में मदद करने के लिए किसी को अपने ाथ नहीं लाया, एक कंपाउंडर तक नहीं। अब सवाल यह है कि तुम्हें क्लोरो-फार्म कौन देगा ?"

प्रभानाथ सँभलकर बैठ गया, "आप इसकी फिक्र न कीजिए—मुझे क्लोरो-फार्म की कोई आवश्यकता नहीं, मैं बर्दाश्त कर लूँगा !"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को ध्यान से देखा, फिर उन्होंने हल्की मुसकान के साथ कहा, "जहाँ तक मेरा खयाल है, तुम आसानी से बर्दाश्त न कर सकोगे; मैं जानता हूँ कि तुम बर्दाश्त नहीं कर सकोगे। बर्दाश्त करनेवाले लोग दूसरे होते हैं, मैंने उन्हें देखा है !"

प्रभानाथ को बुरा लगा, वह तन गया, "आप मुझे गलत समझ रहे हैं !"

इस बार डाक्टर अवस्थी हँस पड़े, "मैं तुम्हें गलत समझ रहा हूँ। कैसी मजेदार बात कही है तुमने। वह तजुर्बा, जो मैंने इन बालों को पकाकर हासिल किया है, जरा मुश्किल से ही झूठा हो सकेगा। लेकिन मैं तुम पर विश्वा करूँगा।"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को लिटा दिया। इसके बाद उन्होंने चाकू उस स्थान को काटा, जहाँ से गोली घुसी थी। प्रभानाथ ने दर्द बर्दाश्त करने बहुत कोशिश की, लेकिन एक हल्की-सी चीख निकल ही पड़ी।

डाक्टर अवस्थी ने चाकू रोक दिया, वे मुसकराए, "मैंने कहा था न, कि बर्दाश्त न कर सकोगे और मैंने गलत नहीं कहा। लेकिन प्रभा, मैं जानता तुम वीर हो, और तुम्हें बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। इसके सिवा कोई नहीं।"

डाक्टर अवस्थी ने ऑपरेशन करके गोली निकाल दी, इसके बा प्रभानाथ की मरहमपट्टी खुद की।

६

इलाहाबाद में प्रभानाथ की छानबीन जोरों के साथ शुरू हो इसमें पुलिस को कोई सफलता न मिल सकी। विश्वंभरदयाल को था कि प्रभानाथ इलाहाबाद में ही है और किसी डाक्टर से इलाज सी भी डाक्टर के यहाँ उसका पता न चल सका। करी

के सब कंपाउंडरों से पूछताछ की गई और उसमें भी विश्वंभर-
दयाल को असफलता ही मिली।

तीसरे दिन विश्वंभरदयाल एक तरह से निराश हो गए। दोपहर को खाना खाकर विश्वंभरदयाल माताप्रसाद से उसी संबंध में बातचीत करने लगे। इलाहाबाद में की गई तहकीकात की पूरी रिपोर्ट विश्वंभरदयाल के सामने थी। उस रिपोर्ट को विश्वंभरदयाल दो बार आदि से अंत तक पढ़ गए। उनका चेहरा धुंधला हो गया। एक ठंडी आह भरकर उन्होंने कहा, "मुमकिन है साहबजादे और आगे बढ़ गए हों—बनारस, पटना, कलकत्ता—कहीं भी। सोचा हो कि नजदीक रहने में खतरा है।"

"मुझे तो यकीन है कि प्रमानाथ साहेब आगे बढ़ गए हैं—शायद कलकत्ता, क्योंकि वहाँ डाक्टरी इलाज अच्छा होता है!" माताप्रसाद ने कहा।

'मुझे तो यकीन है कि साहबजादे इलाहाबाद में ही हैं और मेरे हाथों गिरफ्तार होंगे!" विश्वंभरदयाल यह कहकर चुप हो गए, वह सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने सिर उठाया, लेकिन साहेबजादे हैं कहाँ, सवाल यह है! इलाहाबाद में जितने बँगले हैं, सबका पता मैंने ले लिया। किन बँगलों में डाक्टर आते हैं और वहाँ कौन बीमार है, इस बात का भी पता है!"

कुछ सोचकर माताप्रसाद ने कहा, "क्या यह मुमकिन है कि साहेबजादे किसी डाक्टर के घर में ही ठहरे हों?"

"मुमकिन है! लेकिन उन डाक्टरों के कंपाउंडरों से भी तो कोई पता नहीं चलता!"

"सरकारी अस्पताल अभी तक नहीं देखा गया है।" माताप्रसाद ने कहा।

विश्वंभरदयाल हँस पड़े, "कोई जरूरत नहीं। इतना बड़ा जुर्म करके और उसका सबूत रखते हुए साहेबजादे सरकारी अस्पताल में न भरती होंगे, इतना यकीन है!" कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, "लेकिन आपका खयाल ठीक है, सरकारी अस्पताल की भी जाँच हो जानी चाहिए। यह तो कहने को न रह जाय कि जरा-सी गलती हो गई।"

शाम के समय माताप्रसाद के साथ विश्वंभरदयाल सरकारी अस्पताल में पहुँचे। उस समय वहाँ डाक्टर अवस्थी न थे, एक असिस्टेंट सर्जन से इन दोनों की मुलाकात हुई। विश्वंभरदयाल ने उससे पूछताछ शुरू की, लेकिन इस असिस्टेंट सर्जन ने उनके प्रश्नों का उत्तर देने से यह कहते हुए इनकार कर दिया, "जब तक सिविल सर्जन की आज्ञा न हो, तब तक हम लोग इस अस्पताल के संबंध में कोई भी बात नहीं बतला सकते और न आपको अस्पताल दिखला सकते हैं।"

"सिविल सर्जन किस समय आते हैं?" विश्वभरदयाल ने पूछा।

"सुबह!" उन्हें उत्तर मिला।

विश्वंभरदयाल ने सिविल सर्जन के बँगले का पता ले लिय

र्जन के बंगले की तरफ मोड़ दी गई। डाक्टर अव... प्रभानाथ के पास बैठे हुए उससे बातें कर रहे थे। विश्वंभरदया... कर वे बाहर आए। विश्वंभरदयाल और माताप्रसाद को ड्राइंग-रूम ... हुए उन्होंने कहा, "कहिए, आप लोगों ने कैसे तकलीफ़ की?"

...भरदयाल ने गला साफ करके कहा, "बात यह है डाक्टर साहेब, कि ...कारी जख्मी होकर इलाहाबाद की तरफ आया है, और यहीं कहीं ...रा रहा है। मैंने बहुत पता लगाया, लेकिन कहीं उसका पता नहीं लगा। ...क एक दफे सरकारी अस्पताल भी देख लूँ, गोकि जहाँ तक मेरा खयाल सरकारी अस्पताल में भरती न हुआ होगा। बहरहाल जब अस्पताल ... तो वहाँ के डाक्टर ने बतलाया कि बिना आपकी इजाज़त के यह मुमकिन ...।"

डाक्टर अवस्थी ने कागज़-कलम लेते हुए कहा, "इस काम के लिए आपके ...ँ तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी, आपने वहीं से मुझे फोन कर दिया ...ता। खैर, मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ।"

डाक्टर अवस्थी ने विश्वंभरदयाल को चिट्ठी दे दी, और विश्वंभरदयाल ...माताप्रसाद के साथ कार पर बैठकर अस्पताल की तरफ चल पड़े। माताप्रसाद ...ने कहा, "इन डाक्टर साहेब को तो मैंने कप्तान साहेब के यहाँ देखा है, उनके तो यह बहुत बड़े दोस्त हैं।"

विश्वंभरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए, "क्या कहा? यह कप्तान साहेब ... दोस्त हैं?"

"जी हाँ! और इसलिए मैं समझता हूँ कि हम लोगों का अस्पताल जाना बेकार ही होगा। अगर साहेबज़ादे वहाँ होते तो डाक्टर साहेब इतनी आसानी से चिट्ठी न दे देते।"

विश्वंभरदयाल तेज़ी के साथ सोच रहे थे। तो क्या प्रभानाथ इलाहाबाद में सिविल सर्जन के इलाज में है? और अगर है तो कहाँ ठहरा हुआ है?

विश्वंभरदयाल और माताप्रसाद को अस्पताल में कोई पते की बात न मिल... सकी। रात में दोनों थके हुए होटल वापस आए। लेकिन विश्वंभरदयाल को न जाने क्यों यह विश्वास हो गया कि प्रभानाथ डाक्टर अवस्थी के इलाज में है... उन्होंने माताप्रसाद से कहा, "भाई साहेब! मुझे पूरा यकीन है कि प्रभान... यहाँ इलाहाबाद में है, और वह डाक्टर अवस्थी के इलाज में है! आप श... वजह जानना चाहेंगे, लेकिन वजह मैं बतला नहीं सकता, वजह मैं जानता न... अगर वजह की तलाश करने लगूँ तो भाई साहेब, मुझे अपना पेशा छोड़... पड़ेगा।" विश्वंभरदयाल कहते-कहते हँस पड़े, एक अजीब रूखी-सी हँसी... हाँ, हमारा वास्ता पड़ता है मुजरिमों से और जुर्म हैवानियत है। मुजरि... इंसान होता है, जिसकी हैवानियत उसकी इंसानियत पर हावी हो जा... और जहाँ हैवानियत है, वहाँ बहस नहीं, दलील नहीं!"

विश्वम्भरदयाल कहते-कहते रुक गए, उनके मत्थे पर बल पड़ गए, उनका चेहरा कुछ भयानक रूप से विकृत हो गया, "हैवानों से इस कदर साबिका पड़ता है माताप्रसाद साहब, कि एक कामदार पुलिस के अफसर में इंसानियत बाकी ही नहीं रह जाती। हमें सूंघना पड़ता है। हमारी हर हरकत ऊलजलूल, बिना मानी-मतलब की होती है। और इसलिए जिसे हम एनीमल इंस्टिक्ट कहते हैं, वह मुझमें मौजूद है! मैं कहता हूँ कि प्रभानाथ है, यहीं इलाहाबाद में है, डाक्टर अवस्थी के इलाज में है और वह मेरे हाथों गिरफ्तार होगा, बचेगा नहीं!"

पता नहीं, मुंशी माताप्रसाद विश्वंभरदयाल की बातों को समझे कि नहीं, उन्होंने इतना जरूर कहा, "मुझे तो काम इतना आसान नहीं दिखलाई देता। मामला सिविल सर्जन का है···"

"और मामला सुपरिटेंडेंट पुलिस के लड़के का भी है! है न ऐसी बात? लेकिन भाई साहब, मैं तो सिर्फ एक बात समझता हूँ—मामला मेरा है और मेरी पीठ पर बैठी हुई सरकार का है! हमें डाक्टर अवस्थी की हरकतों पर नजर रखनी पड़ेगी।"

१०

विश्वंभरदयाल के हुक्म से दो सादी वर्दी वाले खुफ़िया पुलिस के सिपाही सिविल सर्जन के बँगले के सामने तैनात कर दिए गए। सिविल सर्जन साहब कहाँ जाते हैं, कब जाते हैं, उनके यहाँ कौन-कौन लोग आते हैं, इन सब बातों की पूरी-पूरी खबर विश्वंभरदयाल को मिलती थी। तीसरे दिन उन्हें यह खबर मिली कि पंडित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहाँ आए थे और एक घंटा ठहरकर चले गए। यह खबर पाते ही विश्वम्भरदयाल खुशी से उछल पड़े। उन्होंने माताप्रसाद से कहा, "भाई साहब, किस्मत अच्छी मालूम होती है। साहेबजादे यहीं इलाहाबाद में मौजूद हैं, और इसका सबूत यह है कि पंडित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहाँ आए थे। लेकिन सवाल यह है कि साहेबजादे ठहरे कहाँ हैं?"

"शायद कप्तान साहब की मोटर का पीछा करने से पता लग जाता।'

"हाँ, लेकिन जिस वक्त वह आए, उस वक्त हम लोगों को खबर ही नहीं मिली, और अब उनका पता चलना बड़ा मुश्किल है। मौका चूक गया।'

थोड़ी देर तक विश्वंभरदयाल बैठे रहे, फिर उन्होंने कहना आरम्भ किया, मानो वे वह बात अपने ही से कह रहे हों, "पंडित श्यामनाथ आए थे! एक घंटा ठहरे और चले गए! कहाँ गए? जहाँ प्रभानाथ ठहरा है। अरे!—कहीं साहेबजादे खुद डाक्टर अवस्थी के यहाँ तो नहीं ठहरे हैं?"

विश्वंभरदयाल उठ खड़े हुए और उन्होंने एक सिगरेट सुलगाई। इसके बाद वे कमरे में टहलने लगे। वे कह रहे थे, "माताप्रसाद साहब! प्रभानाथ डाक्टर

अवस्थी के यहां ही ठहरा है, वहीं उसका इलाज हो रहा है
गया ! कितनी आसानी से मिला—और किस जगह मिला !
बाप सुपरिंटेंडेंट पुलिस, उसका इलाज कर रहा है एक सिविल सर्जन,
उसका रिश्तेदार भी हो सकता है; और लड़का क्रांतिकारी, जिसने एक ऐसा
किया है, जिसकी सजा मौत है। हा ! हा ! हा ! कितनी मजेदार बात है,
ई साहब !"

विश्वंभरदयाल हँस रहे थे और माताप्रसाद उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे। उन्होंने विश्वंभरदयाल को इस तरह हँसते कभी न देखा था। एकाएक विश्वंभर-दयाल गंभीर हो गये। उन्होंने फिर कहना आरंभ किया, "जो जिंदगी के साथ खेलता है, क्या उसे मौत की परवाह होती है ? यह लड़का—क्या वह मौत से डरता है ? क्यों माताप्रसाद साहब—क्या यह प्रभानाथ मौत से डरता होगा ?"

"यह कहना तो मुश्किल है, लेकिन यह सवाल ही क्यों उठा ?" माताप्रसाद ने पूछा।

"यह सवाल क्यों ? माताप्रसाद साहब, यह सवाल इसलिए कि इसी के जवाब पर मेरी कामयाबी या नाकामयाबी, मेरी फतह या शिकस्त की बुनियाद है। आप जानते हैं मैं क्यों इस लड़के के पीछे पड़ा हूँ ? शायद आप नहीं जानते। तो मैं आपको बतलाता हूँ, क्योंकि जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह किसी कदर इंसानियत से नीचेवाली चीज समझी जा सकती है। आखिर पंडित श्यामनाथ साहब ने मुझे अपने घर में ठहराया, उन्होंने मेरी अच्छी तरह से खातिरदारी की और उन्हीं के लड़के के पीछे मैं पड़ा हूँ, उसे गिरफ्तार करने पर आमादा हूँ ! अगर मैं इस मामले को छोड़ दूं, तो इसका किसी को कुछ भी पता न चलेगा। और यह लड़का भी यह रास्ता छोड़ देगा। अगर खुद न छोड़ेगा तो इसके वालिदै
इससे यह रास्ता छुड़वा देंगे। और वाकया यह है कि मैं इतना गिरा हुआ
नहीं हूँ, कि ख्वामख्वाह किसी के खून का प्यासा होऊँ ! तो फिर मैं इस लड़के
पीछे इतनी बुरी तरह क्यों पड़ा हूँ ? सवाल यह है ! इसका जवाब सबसे प
देना पड़ेगा, माताप्रसाद साहब ! और मैं कहता हूँ कि मैंने उस लड़के को
देखी है ! गोकि थोड़ी देर के लिए ही देखी है, लेकिन गौर से देखी है !
उस लड़के की शक्ल देखकर ही मुझे पता चल गया कि वह लड़का मौ
मुकाबला नहीं कर सकता।"

"जब आप इतना जानते हैं, तब तो उसके पीछे पड़ना और भी गलत

"नहीं, माताप्रसाद साहब, अगर आप ठीक तौर से देखें तो आपको
होगा कि सही है। वह मौत का मुकाबला नहीं कर सकता, इसके माने उ
वह मौत से डरता है, और चूंकि वह मौत से डरता है; लिहाजा मैं उसे
ख्शा दूंगा और उससे जिंदगी की कीमत वसूल करूंगा..." विश्वंभर
हँस पड़े, "जी हाँ, भाई साहब, जिंदगी बख्शूंगा, उसे जरूर जिंद
उससे जिंदगी की कीमत वसूल करके। और आप जानते

ज़िंदगी की कीमत क्या होगी ?"

"जी हाँ, समझ गया। आप उसे मुखबिर बनाने की कोशिश करेंगे!"

"कोशिश ही नहीं करूँगा, उसमें कामयाब हूँगा।"

इस बार माताप्रसाद के हँसने की बारी थी, "मैं दिल से चाहता हूँ कि आपका खयाल सही निकले, लेकिन मुझे तो आपकी कामयाबी पर शक है। मेरा भी खयाल है कि वह लड़का मौत से डरता है, और मेरा खयाल है कि मैं मौत से डरता हूँ, आप मौत से डरते हैं, हर एक इंसान मौत से डरता है। लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी चीजें हैं, जो किन्हीं-किन्हीं लोगों के लिए मौत से भी ज्यादा खौफ़नाक हैं। उन चीज़ों में एक है बेइज्ज़ती! जहाँ तक मैं कप्तान साहेब व उनके खानदान को जानता हूँ, बेइज्ज़ती से वे सब-के-सब बहुत ज्यादा डरते हैं, इतना ज्यादा डरते हैं कि वे मौत का सामना करने को तैयार हो जायेंगे।"

माताप्रसाद की बात ने मानो विश्वंभरदयाल को चौंका दिया हो, वे टहलते-टहलते रुक गए। माताप्रसाद के पास आकर, उनकी आँखों से आँख मिलाकर उन्होंने कहा, "क्या वाकई आपका यह खयाल है ?"

"जी हां!" माताप्रसाद ने विश्वंभरदयाल की नजर से अपनी नजर हटाकर कहा, 'इस खानदान को मैं थोड़ा-बहुत जानता हूँ। सब-के-सब ऐंठदार आदमी हैं, दबना और झुकना शायद इस खानदान में कोई नहीं जानता।"

"तो क्या मैं गलती करता हूँ ?" विश्वंभरदयाल ने अपने आप ही कहा, "क्या इसमें मुझे नाकामयाबी मिलेगी ? माताप्रसाद साहेब! क्या कहा आपने ? सब-के-सब ऐंठ में फूले हुए, न दब सकते हैं, न झुक सकते हैं!" और एकाएक विश्वंभरदयाल में वही पुराना विश्वास और जोश लौट आया, "हाँ! खुदी में गर्क हैं। और जब खुद ही मिटने का सवाल आ जाय तब ? नहीं, माताप्रसाद साहेब! हर इंसान झुक सकता है, मौत के आगे झुकना ही पड़ता है!"

११

"कहिए चाचाजी, अभी कितने दिन और लगेंगे ?" प्रभानाथ ने पूछा।

डाक्टर अवस्थी पट्टी बाँध चुके थे, प्रभानाथ के पलँग के सामने कुरसी खिसकाकर बैठते हुए उन्होंने कहा, "मैं समझता था कि ज़ख्म के पूरा भरने में ज्यादा वक्त लगेगा, लेकिन देखता हूँ कि पंद्रह दिनों में ही ठीक हो जायगा!" कुछ रुककर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा, "प्रभा! एक बात पूछूँगा, ठीक-ठीक जवाब देना!"

"जी हाँ, चाचाजी! लेकिन इतना ही पूछिएगा जितने का मैं ठीक जवाब दे सकूँ!"

डाक्टर अवस्थी मुसकराए, "उतना ही पूछूँगा, यह यकीन दिलाए देता हूँ, और अगर कहीं ज्यादा पूछ बैठूँ तो जवाब देने से इनकार कर देना। मैं जरा भी बुरा न मानूँगा।"

प्रभानाथ भी मुसकराया, "तो फिर पूछिए!"

डाक्टर अवस्थी ने कहा, "पहला सवाल यह है कि तुमने यह टेररिस्ट मूवमेंट क्यों ज्वाइन किया? क्या तुम समझते हो कि इस मूवमेंट द्वारा ब्रिटिश सरकार को उलट सकोगे?"

"चाचाजी! मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकार को हिंदुस्तान से केवल इस तरह निकाला जा सकता है कि हिंदुस्तानी अंग्रेजों को युद्ध करके हरा दें। लेकिन सामने आकर हिंदुस्तानी अंग्रेजों से युद्ध नहीं कर सकते और इसलिए अंग्रेजों पर, ब्रिटिश सरकार पर, पीठ-पीछे से ही हमला करना होगा। अब सवाल यह है कि क्या हम लोग इस सरकार को उलट सकते हैं? वहाँ मैं केवल इतना कहूँगा कि हम, यानी मैं और मेरे साथी, भले ही इस सरकार को न उलट सकें, क्योंकि हमारी संख्या अभी बहुत कम है, लेकिन एक समय आ सकता है जब हमारी तादाद बहुत अधिक बढ़ जाय। और उस हालत में इन मुट्ठी-भर अंग्रेजों को निकाल बाहर करना क्या मुश्किल है?"

"और क्या तुम्हारा खयाल है कि तुम्हारी तादाद इतनी बढ़ सकेगी?"

"मुझे पूरा यकीन है।"

"और मुझे पूरा यकीन है कि तुम्हारी तादाद किसी भी हालत में इतनी ज्यादा न बढ़ सकेगी। तुम समझते हो कि आयरलैंड के रास्ते पर चलकर हिंदुस्तान में भी तुम क्रांति कर सकते हो, लेकिन प्रभा, तुम हिंदुस्तान को पहचानते नहीं! तुम्हारे मार्ग में बाधा बननेवाले, तुम्हें मिटानेवाले अंग्रेज न होंगे, वे होंगे हिंदुस्तानी, गुलाम, स्वार्थी और देशद्रोही हिंदुस्तानी, जो ब्रिटिश सरकार के टुकड़ों के बदले धर्म, ईमान, मनुष्यता सभी कुछ बेच सकते हैं!"

इसी समय डाक्टर अवस्थी के नौकर ने आकर खबर दी कि बाहर कई पुलिसवाले खड़े हैं और पुलिस के एक अफसर ने डाक्टर अवस्थी को बुलाया है।

यह खबर सुनकर डाक्टर अवस्थी सहम गए। नौकर से उन्होंने कहा, "बँगले के पीछे देखो, वहाँ तो कोई पुलिसवाला नहीं है!"

नौकर ने लौटकर कहा, "सरकार, पुलिस सारा बँगला घेरे हुए है!"

डाक्टर अवस्थी ने उठते हुए कहा, "प्रभा, तुम चिंता न करना! देखूँ तो क्या मामला है!"

प्रभानाथ ने दृढ़ता के साथ कहा, "चाचाजी, अगर ये मुझे गिरफ्तार करने आए हों, तो मैं तैयार हूँ। मेरी वजह से आप किसी तरह की मुसीबत में न पड़िएगा।"

डाक्टर अवस्थी बाहर निकले। ड्राइंग-रूम में इलाहाबाद के सुपरिंटेंडेंट पुलिस के साथ विश्वंभरदयाल खड़े थे। डाक्टर अवस्थी ने कहा, "कहिए—आप लोगों ने कैसे तकलीफ की?"

विश्वंभरदयाल ने वारंट निकालते हुए कहा, "प्रभानाथ नाम के एक

टेररिस्ट पर वारंट है। वह आपके बँगले में है, इसलिए उसे गिरफ्तार करने आया हूँ!"

"वह मेरे बँगले में है—यह आपको कैसे मालूम ?"

"मुझे मालूम नहीं है, बल्कि शक है!"

"और महज शक पर आप लोगों ने पुलिसवालों से मेरा बँगला घिरवा लिया है! आप जानते हैं मैं कौन हूँ और मेरे बँगले में आप लोग घुस कैसे आए?"

विश्वंभरदयाल ने दूसरा वारंट निकालते हुए कहा, "मैं जानता था डाक्टर अवस्थी, कि मुझे सिविल सर्जन के बँगले से मुलजिम गिरफ्तार करना है और इसलिए मैं यह सर्च वारंट लेता आया हूँ!"

"मैं अपने बँगले की तलाशी किसी हालत में नहीं लेने दूँगा!" डाक्टर अवस्थी ने कड़े स्वर में कहा।

यह बातचीत काफी तेज आवाज में हो रही थी कि एकाएक लोगों ने देखा प्रभानाथ ड्राइंग-रूम में चला आ रहा है। प्रभानाथ आकर बीच कमरे में खड़ा हो गया। उसने कहा, "क्या आप लोगों के पास मेरे नाम कोई वारंट है?"

डाक्टर अवस्थी पुलिसवालों और प्रभानाथ के बीच में आ गए, "मैं आप लोगों को किसी हालत में इस लड़के को गिरफ्तार न करने दूँगा। यह बीमार है और मेरे इलाज में है!"

विश्वंभरदयाल ने कहा, "जी हाँ, यह लड़का आपके ही इलाज में रहेगा, लेकिन अस्पताल में रहेगा और पुलिस की हिरासत में रहेगा।"

पाँचवाँ परिच्छेद

जिस समय दयानाथ को मार्कंडेय का यह पत्र मिला, जिसमें मार्कंडेय ने अपने पिता की मृत्यु की सूचना दी थी, दयानाथ फिर से जेल जाने की तैयारी कर रहा था। सत्याग्रह चल रहा था और ब्रिटिश साम्राज्य के कर्णधारों के हृदय में एक प्रकार की चिंता उत्पन्न हो गई थी। पहली राउंड टेबिल कांफ्रेंस में [illegible] में उसका खोखलापन [illegible] के राउंड टेबिल [illegible] र ब्रिटिश सरकार में समझौता कराने का प्रयत्न आरंभ कर दिया था।

मार्कंडेय का पत्र पढ़कर दयानाथ अवसन्न-सा रह गया। वह जानता था कि बानापुर में जो कुछ फ़िसाद हुआ, उसकी जड़ में रामनाथ तिवारी की अहमन्यता और उनका प्रतिक्रियावादी होना ही था। इस भयानक कांड की पूरी जिम्मेदारी उसके पिता पर है—वह अच्छी तरह जानता था; ग्लानि से वह क्षुब्ध हो गया।

दयानाथ के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो
जाय या न जाय। वानापुर में उसके पिता मौजूद थे, वानापुर
मौजूद थे। यही नहीं, वानापुर में संभवतः इस समय संघर्ष चल रहा
जोरों के साथ। दयानाथ के जाने से और भी असाधारण परिस्थिति
ही सकती है। यह भी संभव है कि वानापुर गाँव के लोग उसके पिता के
पनी घृणा को दयानाथ के साथ भी बरतें। उन गाँववालों को क्या पता
ानाथ घर का त्याज्य पुत्र है। एक बार दयानाथ के अंदरवाले कायर मानव
ा, 'नहीं, गानापुर जाना उचित नहीं।'

लेकिन दूसरे ही क्षण दयानाथ के अंदरवाला वीर मानव बोल उठा, 'इससे
? मेरा कर्तव्य है अपने मित्र के प्रति संवेदना प्रकट करना! लोकमत से मुंह
लेना कायरता है—वीरता है लोकमत का सामना करने में!' और उसी
मय दयानाथ ने तै कर लिया कि उसे मातमपुर्सी करने के लिए वानापुर जाना
चाहिए।

दयानाथ वानापुर पहुंचकर सीधे मार्कंडेय के यहाँ पहुँचा। मार्कंडेय अपने
पिता का क्रिया-कर्म करके बैठा था। दयानाथ को देखते ही मार्कंडेय की आँखों में
आंसू आ गये। उसने दयानाथ का मौन-भाव से स्वागत किया। दयानाथ में हिम्मत
नहीं थी कि वह मार्कंडेय से बातें करे। चुपचाप सिर झुकाकर वह मार्कंडेय के
सामने बैठ गया।

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे; फिर उस मौन को मार्कंडेय ने तोड़ा,
ा सीधे यहीं आ रहे हो?"

"हाँ!" दयानाथ ने उत्तर दिया, "घर का त्याज्य पुत्र हूँ न! आना
वश्यक था इसलिए चला आया। कल चला जाऊँगा—रात भर तुम्हारे यहाँ
हरूँगा!"

फिर दोनों मौन हो गये। अब की बार दयानाथ के बोलने की बारी थी,
"क्या से क्या हो गया, मार्कंडेय!"

मार्कंडेय के मुख पर एक करुण मुसकान आ गई, "दया! बप्पा की मृत्यु
मैंने अपनी आँखों देखी है। मुझे इस बात पर गर्व है कि बप्पा मेरे पिता थे! एक
बहुत बड़ी हिंसा को बचाने के लिए उन्होंने अपने प्राण दिये!"

उस समय संध्या ढल रही थी और रात की कालिमा ने ग्राम-प्रांत को ढंक
आरंभ कर दिया था। पश्चिम में शुक्र तारा झिलमला रहा था। दयानाथ
आकाश की कालिमा पर अपनी आँखें गड़ाते हुए कहा, "हाँ, मार्कंडेय! मैंने
कुछ सुना है!"

उस समय दयानाथ गंभीर था, बहुत अधिक गंभीर! उस ग्राम में, जि
कुछ दिनों पहले तक अपना समझता था, आज वह बिलकुल पराया था। व
का वह विशाल महल, जिसमें दयानाथ ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग
खुशी में बिताया था, दूर पर भयानक दानव की भाँति उन्नत-मस्तक ख

और दयानाथ के चारों ओर उदासी का अथाह सागर लहरा रहा था। उसके अंतरवाली गहरी कालिमा सारे आकाश को घेरती हुई बढ़ रही थी।

और दयानाथ के ठीक सामने मार्कंडेय बैठा था, श्वेत वस्त्र पहने हुए। मार्कंडेय के मुख पर सौम्य भाव था, उत्साह था, आत्माभिमान था। दयानाथ ने कुछ देर तक चुप रहकर कहना आरंभ किया, "मार्कंडेय ! लज्जा से मेरा मस्तक झुका जा रहा है। वह हिंसा, जिसकी ज्वाला को शांत करने के लिए भगड़ू काका ने अपने प्राण दे दिए, वह मेरे पिता द्वारा प्रज्वलित की गई थी!"

"नहीं, दया ! ऐसी बात न करो !" मार्कंडेय ने दयानाथ को रोकते हुए कहा, "इसमें दोष तिवारीजी का नहीं है। मैंने बहुत सोचा, और मैं तो इसी निर्णय पर पहुँचा कि यही आज का विधान है ! आज का समस्त समाज इसी हिंसा की नींव पर विकसित हुआ है। तिवारीजी को अधिक-से-अधिक इस हिंसा की नींव [illegible]" चुप होकर मार्कंडेय [illegible] लाव ताप रहे थे। उन [illegible] ानाथ से कहा, "इन्हें देखते हो—ये जो न सोच सकते हैं, न समझ सकते हैं ! ये जो भयानक रूप से कायर हैं ! सदियों से शासित होनेवाले अपमानित होनेवाले यही लोग जरा-जरा-सी बात पर खून-खराबी कर सकते हैं, हत्या कर सकते हैं। और इसका कारण है कि हम सब-के-सब अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक हिंसा को लेकर पैदा हुए हैं, और हम अर्ध-विकसित हैं ! इस जनसमुदाय की हिंसा और पशुता को दूर करने में समय लगेगा। इस हिंसा को हिंसा द्वारा दूर करना असंभव है—इसे दूर करने का एकमात्र साधन है अहिंसा !"

"लेकिन मार्कंडेय, हिंसा के आगे अहिंसा कब तक टिक सकती है ? इस तरह क्या वास्तव में अहिंसा संभव है ? क्या वह अहिंसा आगे चलकर नष्ट न हो जायगी ?" दयानाथ ने पूछा।

मार्कंडेय मुसकराया, "दयानाथ ! यह प्रश्न स्वाभाविक है। और इस स्थान पर हमें यह याद रखना पड़ेगा कि अहिंसा की प्रतिक्रिया अहिंसा ही हो सकती है और इसलिए अहिंसा कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। हाँ, अहिंसा कठिन अवश्य है—शायद बहुत अधिक कठिन। हम सब मनुष्य हैं—अपनी-अपनी अपूर्णता लिए हुए; हम सब अर्धविकसित हैं। लेकिन हमारा लक्ष्य है पूर्णता प्राप्त करना, विकसित होना। आज जो अहिंसा का साम्राज्य चारों ओर फैला हुआ है, उसका मुख्य कारण यह है कि हिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा है। हम दूसरों की प्रतिक्रिया में हिंसा करते हैं और दूसरे हमारी प्रतिक्रिया में हिंसा करते हैं। इस तरह क्रिया और प्रतिक्रिया में हिंसा बढ़ती जाती है। और आज दिन हिंसा ने इतने भयानक रूप में समाज पर आधिपत्य कर लिया है कि एकाध अहिंसा के काम का कोई असर हो ही नहीं सकता। दयानाथ ! आवश्यकता है व्यापक रूप में अ[illegible]!"

"पर मेरा अनुभव बतलाता है कि यह संभव नहीं। दो-एक दिन तक सब कुछ किया जा सकता है। लेकिन अपने जीवन को पूर्ण-रूप से अहिंसामय बना लेना असंभव है!" दयानाथ ने कहा।

"यहीं गलती करते हो, दयानाथ! यह सब किया जा सकता है, केवल साधना की—साधारण नहीं, बल्कि असाधारण साधना की आवश्यकता है कि तुम अडिग बन सको। अपनी साधना द्वारा तुम अपने आस-पास वालों को साधना करने के लिए प्रेरित कर सकते हो—उन्हें अपना आत्मिक बल प्रदान करके सार्वजनिक व्रत को सफल बनाने में सहायक हो सकते हो!"

दयानाथ ध्यान से मार्कंडेय की बात सुन रहा था। एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कंडेय, वास्तव में अहिंसा बहुत बड़ी साधना है, साधना ही नहीं, तपस्या है! पर व्यक्ति यह साधना और तपस्या कर सकता है—समाज किस तरह इसे कर सकता है। और हम समाज के एक अंग हैं, इसलिए समाज को…"

मार्कंडेय सँभलकर बैठ गया। ऐसा मालूम होता था कि उसके पिता की आत्मा अपनी समस्त साधना और बलिदान के साथ उस पर आ गई है। उस समय उसकी आँखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई थी, उसकी वाणी में दृढ़ता भर गई थी, "दयानाथ! तुमने ठीक कहा कि व्यक्ति को समाज में रहना है—समाज व्यक्तियों का समूह है। ऐसी हालत में जो चीज व्यक्ति के लिए संभव है, वह समाज के लिए भी संभव है। अहिंसा कल्याणकारी तभी हो सकती है, जब वह व्यक्ति से ऊपर उठकर समाज की चीज बन सके। और मैं समझता हूँ कि समाज को अहिंसक बनाया जा सकता है; यही नहीं, अहिंसक बनाना पड़ेगा। हम, तुम और हमारी श्रेणी के और भी लोग, जो अपने को विकसित मानव कहते हैं, अपने को समाज का नेता समझते हैं—यह हम लोगों का काम है कि हम लोग समाज को अहिंसामय बनाएँ। इतने बड़े काम के लिए हमें दूसरों का बलिदान नहीं करना है, हमें अपना ही बलिदान करना है। इसमें—हम अहिंसा के उपासकों में और दुनिया के अन्य नेताओं में बहुत बड़ा अन्तर है! दूसरे जो कुछ करते हैं अपने लाभ के लिए करते हैं, अपने ऐश-आराम के लिए करते हैं, और इसलिए अपने सिद्धांतों पर ये लोग दूसरों की बलि चढ़ा देते हैं। लेकिन हम जो कुछ करते हैं, वह मानवता के कल्याण के लिए करते हैं और उसमें हमें अपना ही बलिदान देना होगा। दयानाथ! यह काम एक-दो बलिदानों से न चलेगा, इतने कम बलिदानों से यह हजारों वर्ष की विचारधारा, हमारी जन्मजात पशुता आसानी से दूर न होगी। इसको दूर करने में समय लगेगा, और लाखों आदमियों के बलिदान की इसमें जरूरत है!"

मंत्रमुग्ध-सा दयानाथ मार्कंडेय की बातें सुन रहा था और मार्कंडेय कहता जा रहा था, "समाज को अहिंसक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अहिंसक बने। हम अहिंसा के उद्देश्यों से युक्त लंबे-लंबे व्याख्यान देकर समाज

को अहिंसक नहीं बना सकते। हमारे कांग्रेस मूवमेंट में जो अहिंसा दिख रही है, वह कई स्थलों पर मुझे अहिंसा के व्यंग्य-रूप में नजर आती है, क्योंकि वह अहिंसा अधिकांश स्थलों पर अहिंसा नहीं है बल्कि कायरता है, मैंने उन बड़े-बड़े कांग्रेस नेताओं को देखा है, जो अहिंसा का उपदेश देते फिरते हैं, जो जुलूस में लाठी खाते हैं, जो जेल जाते हैं। लेकिन उन्हीं लोगों का व्यक्तिगत जीवन भी मैंने देखा है, और उस व्यक्तिगत जीवन में मैंने देखी है भयानक हिंसा। आज जिस अहिंसा को मैं देख रहा हूँ, वह नीति के लिए अपनायी गई है और नीति के लिए अपनायी जानेवाली अहिंसा मेरी नजर में कायरता है। दयानाथ! आवश्यकता है व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा की।"

दयानाथ ने एक ठंडी साँस ली, "तुम ठीक कहते हो, मार्कंडेय! समाज को अहिंसामय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अहिंसक बने। और यही सबसे कठिन काम है!..." दयानाथ कहते-कहते रुक गया; उसे उसी समय सुनाई पड़ा, "प्रणाम, बड़के भइया!"

दयानाथ ने घूमकर देखा, सामने उमानाथ खड़ा था। उमानाथ ने कहा, "आप आए, लेकिन अपने आने की खबर ही नहीं दी। मैंने माना कि आप दद्दा को खबर नहीं देना चाहते थे, लेकिन भला मैंने आपका कौन-सा अपराध किया है?"

स्नेह से उमानाथ के कंधे पर हाथ रखते हुए दयानाथ ने कहा, "हाँ उमा, मैं अपनी गलती मानता हूँ। लेकिन मेरे आने की खबर तुम्हें मिल ही गई। कहो, अच्छी तरह तो हो?"

"अच्छी ही तरह समझिए!" उमानाथ ने कहा, "जो कुछ अभी तक हुआ, जो कुछ अब हो रहा है और आगे चलकर जो कुछ होने वाला है—इस सब पर सोचने से जी काँप उठता है—लेकिन फिर भी जबर्दस्ती इस सबके बीच में रहना पड़ता है।"

मार्कंडेय उमानाथ की बात सुनकर हँस पड़ा, "अरे उमानाथ! तुम भी क्या कह रहे हो! न कुछ खास चीज हुई है, न हो रही है और न होनेवाली है। ये सब बड़ी साधारण बातें हैं—इनमें से एक भी बात असाधारण नहीं है। अनादि काल से लोग मरते आए हैं, अनंतकाल तक मरते रहेंगे। इस मरने-मारने का असर हम लोगों के ऊपर स्पष्ट रूप से कितना पड़ता है? मैं कहता हूँ—जरा भी नहीं। जितना जी चाहो रो लो, दिन-दो दिन, महीना-दो महीना, साल-दो साल! इसके बाद बिना हँसे तबीयत नहीं मानने की। कल जो कुछ हो चुका है, दुनिया उसे भूल चुकी है; आज जो कुछ हो रहा है, यही दुनिया कल उसे भूल जाएगी। यही प्रकृति का क्रम है!"

उमानाथ मार्कंडेय की बात सुनकर मुसकराया, "ठीक कहते हो, मार्कंडेय भइया! और यही हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। अगर हम चीजों को इतनी आसानी से न भूलें तो शायद दुनिया कुछ और ही हो जाय!"

२

ाथ से मिलकर जिस समय उमानाथ घर पहुंचा, रामनाथ
सकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें पता चल गया था कि उमानाथ दयानाथ
के लिए मार्कंडेय के घर गया है। कड़े स्वर में उन्होंने उमानाथ से कहा,
दया यहाँ आया है और तुम उससे मिलने गए थे!"

जी हाँ!" शांतभाव से उमानाथ ने उत्तर दिया।

'और मैं कहता हूँ कि तुम बिना मुझसे पूछे दयानाथ से क्यों मिलने गए?"

उमानाथ उद्धत स्वभाव का अवश्य था, लेकिन आज तक उसने अपने पिता
ामने अपना संयम न तोड़ा था। पर इधर कई दिनों से उसने जो कुछ देखा-
ा, उससे उसके हृदय के अंदर एक भयानक विद्रोह भर गया था। उस विद्रोह
विस्फोट का समय आ गया था। रामनाथ के इस प्रश्न को, और इस प्रश्न से
धिक उनके कड़े स्वर को सुनकर वह अपना संयम तोड़ बैठा। उसने रूखे स्वर
में कहा, "मैं पूछ सकता हूँ कि मैंने आपकी गुलामी का पट्टा कब लिखा?"

उमानाथ का यह उत्तर सुनकर रामनाथ स्तब्ध रह गए। थोड़ी देर तक
एकटक वे उमानाथ को देखते रहे; वे यह देख रहे थे कि क्या उनके सामने बैठा
हुआउद्धत युवक वास्तव में उमानाथ है? उसके बाद उन्होंने धीरे से कहा, "हूँ!
तो तुम भी गुलामी के खिलाफ जिहाद करने वाले हो!"

और बिना उमानाथ के उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए वह मुंह फेरकर वहाँ से
चले गए।

उस रात पंडित रामनाथ तिवारी से ठीक तौर से भोजन न किया गया।
उनका बड़ा लड़का उसी गाँव में मौजूद था, लेकिन बिलकुल पराया-सा। और
उस दिन उन्होंने देखा कि उनका दूसरा लड़का भी उनके हाथों से निकल गया।
भोजन करके वे अकेले अपने कमरे में बैठ गए। उनका मन भारी था, उनकी
आत्मा में एक भयानक अशांति थी। उन्हें कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि सारी
दुनिया एकाएक बदल गई है। यह सब क्या हो रहा है, यह सब क्यों हो रहा है
यह सब कैसे हो रहा है? और इन प्रश्नों का उत्तर उन्हें न मिल रहा था
उनका अतीत, उस अतीत का गौरव, उनका सारा-का-सारा विगत जीवन ए
चित्र की भाँति उनकी आँखों के आगे आ गया था, और उस चित्र के परदे
वह एक महान् कुरूप वर्तमान को अंकित होता हुआ देख रहे थे। और उ
जबर्दस्ती बलपूर्वक अपनी आँखें बंद कर लीं। लेकिन उनकी आँखों के आ
वर्तमान फिर भी ओझल न हो सका, उस वर्तमान को उनकी स्थूल आँखें न
रही थीं, उस वर्तमान को देख रही थी उनकी चेतना। और वे एकाएक उ
हुए। दरवाज़े के पास वे जाकर रुके और बाहर देखने लगे।

बाहर गहरा अंधकार था, लेकिन फिर भी तिवारीजी बाहर देख
मानो वे अंधकार के अंक को चीरकर उसके समस्त रहस्यों को निकाल

कटिबद्ध हो गए हैं और दूर पर उन्हें एक प्रकाश दिखाई दिया, जिसे देखते ही वह चौंक उठे। वह प्रकाश उनके महल की तरफ आनेवाली मोटर का था।

तिवारीजी ने नौकर को आवाज दी, "देखो, कौन है?" और वे आकर तख्त पर बैठ गए।

थोड़ी देर में रामनाथ ने देखा कि श्यामनाथ कमरे में चले आ रहे हैं। श्यामनाथ के पैर कांप रहे थे और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आते ही वे करुण स्वर में चिल्ला उठे, "भइया!" और बिना दूसरा शब्द कहे वे आरामकुर्सी पर बैठे नहीं, बल्कि गिर-से पड़े। श्यामनाथ ने अपने सिर पर हाथ रख लिए और आँखें बंद कर लीं।

श्यामनाथ की हालत देखकर रामनाथ चौंक उठे। उन्होंने पूछा, "क्या बात है?···अरे, तुम्हें हुआ क्या है, तबीयत तो ठीक है न?"

पर श्यामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उनमें से उत्तर देने की क्षमता जाती रही थी। वे रामनाथ की ओर निर्निमेष देख रहे थे, पर उन की आँखों के आगे सिवा सूनेपन के और कुछ न था। रामनाथ श्यामनाथ की इस मुद्रा से घबरा गए, उठकर वे श्यामनाथ के पास गए। श्यामनाथ के कंधे को हिलाते हुए उन्होंने पूछा, "क्यों, बोलते क्यों नहीं? तुम्हारी ऐसी हालत क्यों है?"

श्यामनाथ के मुख से अनायास निकल पड़ा, "भइया! प्रभा गिरफ्तार हो गया है!"

"प्रभा गिरफ्तार हो गया?" चौंकते हुए रामनाथ ने पूछा, "क्या वह भी कांग्रेसवालों के बरगलाने में आ गया था?"

"नहीं, भइया! कांग्रेस में नहीं, वह गिरफ्तार हुआ है डकैती और हत्या के अभियोग में। वह क्रांतिकारियों में शामिल था। उसने ट्रेन में डाका डाला था, और उस डकैती में वह जख्मी हुआ था!"

रामनाथ ने यह सब सुना। बिना कुछ समझे-बूझे, बिना कुछ अनुभव किए हुए, बिना किसी प्रकार की भावना अथवा चेतना के यह सब सुना, और लौटकर वे तख्त पर बैठ गए। कुछ देर तक वे मौन बैठे रहे, फिर उन्होंने कहा, "अब क्या हो?"

"यही आप से पूछने आया हूँ!" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी जमानत का कुछ प्रबंध किया?"

"बहुत कोशिश की भइया, लेकिन उसकी जमानत नहीं हुई! भइया, यह वारदात मेरे ही इलाके में हुई थी, लेकिन मामला मेरे हाथों में नहीं है, वह स्पेशल पुलिस के हाथ में सौंप दिया है। मैं पुलिस का सुपरिंटेंडेंट भी उसकी जमानत नहीं करा सका।" यद्यपि श्यामनाथ की आँखों में आँसू न थे, तो भी श्यामनाथ का स्वर रो रहा था। "भइया, उसे बचाइए—किसी तरह बचाइए!"

रामनाथ उठ खड़े हुए और वे कमरे में टहलने लगे। उस समय वे सोच रहे

थे, बड़ी तेजी के साथ।" और टहलते-टहलते वे कमरे के दरवाजे पर रुक गए। उन्होंने वहीं से कहा, "श्यामू! रात के इस सघन अंधकार को देख रहे हो? —सिवा उस अंधकार के वहाँ और कुछ नहीं है। तुम कहते हो कि प्रभा को बचाऊँ। क्या मैं उसे बचा सकूँगा? कह नहीं सकता! नहीं-नहीं, श्यामू! बचाना और मारना— यह हमारे हाथ में नहीं है, जरा भी नहीं है। यह सब उस अदृश्य के हाथ में है, जिसे लाख प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं देख पा रहा हूँ!" और धीरे-धीरे रामनाथ का स्वर और कड़ा हो गया, "श्यामू! जी चाहता है कि उस अंधकार के अंक को चीरकर देखूँ कि वहाँ क्या है? यह सब जो चारों ओर हो रहा है, क्यों हो रहा है, किसकी इच्छा से हो रहा है, कैसे हो रहा है? इस सबको करनेवाला कौन है, और इस सबके करने से उसे कौन-सा फायदा होता है, कौन-सा सुख मिलता है? वह बनाता है, मिटाता है! लेकिन यह क्यों—यह क्यों?"

रामनाथ कहते-कहते रुक गए। इतना सब कह लेने पर भी क्या वे सत्य के निकट जरा भी पहुँच सके? दरवाजे से वे लौट पड़े, फिर अपने तख्त पर वे बैठ गए। आज वे एक तरह की थकावट अनुभव कर रहे थे। वे स्पष्ट देख रहे थे कि उनकी आँखों के आगे एक तरह की निराशा का धुंधलापन घिरता आ रहा है। और फिर उन्होंने अपने सारे शरीर को एक झटका दिया, अपनी आत्मा पर घिरती हुई शिथिलता को दूर करने के लिए। उन्होंने नौकर से कहा, "उमा को भेज दो!"

उमानाथ अपने कमरे में लेटा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था। उसे श्यामनाथ के आने का पता न था। कमरे में आकर उसने श्यामनाथ को देखा और अभिवादन किया, "काका, प्रणाम!"

पर अपने अभिवादन का उत्तर न पाकर उसे आश्चर्य हुआ। श्यामनाथ अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था में बैठे थे। जो कुछ हो रहा था, उन्हें शायद इस सबका पता न था।

रामनाथ ने कहा, "उमा! प्रभा गिरफ्तार हो गया है, रेल पर डाका डालने के जुर्म में! मुझे अभी इसी समय चलना है।"

"कहाँ?" उमानाथ ने पूछा।

"कहाँ?" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर मुड़कर पूछा, "प्रभा इस समय कहाँ है? फतेहपुर में या कानपुर में?"

"इलाहाबाद में है!" श्यामनाथ ने कहा, "मैंने उसे डाक्टर अवस्थी के यहाँ इलाज़ कराने भेजा था, वहीं वह गिरफ्तार हुआ। लेकिन शायद उसे वे लोग कानपुर ले आए हों।"

"लेकिन चलना कहाँ होगा?' रामनाथ ने पूछा।

"कानपुर!" श्यामनाथ ने उठते हुए कहा, "भइया, कानपुर में ही कोशिश करनी होगी, क्योंकि मामला अभी तक पुलिस के हाथ में है! और यह खैरियत है कि मामला अभी तक पुलिस के ही हाथ में है!"

"पुलिस के हाथ में है—और इसमें तुम मेरी मदद लेने आए हो ? क्यों—तुम क्यों यह सब नही कर सकते ?" रामनाथ ने पूछा।

श्यामनाथ फूट पड़े, "भइया, मेरे हाथ-पैर ढीले पड़ गए हैं। अगर दूसरे का मामला होता तो मैं सब कुछ कर सकता था, लेकिन यह मामला मेरे लड़के का है, मेरा है ! भइया, आप मेरे साथ चलिए, मेरे दिल में एक प्रकार का भय समा गया है—मेरे प्राणों में एक प्रकार की निराशा भर गई है !"

उमानाथ ने कहा, "काका, अगर आप उचित समझें तो मैं बड़के भइया को भी खबर दे दूं !"

"क्या दया यहाँ है ?" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ ! मार्कंडेय भइया के यहाँ ठहरे हैं !" उमानाथ ने कहा, "आपको मालूम हो गया होगा कि यहाँ क्या-क्या हो चुका है।"

"दया को अभी खबर दो जाकर—उसे अपने साथ लेते आओ," श्यामनाथ ने अधीर होकर कहा।

"नहीं, दया को खबर देने की कोई जरूरत नहीं, न कोई फायदा है। गाड़ी तैयार करो, उमा ! अभी चलना है, इसी समय !" यह कहकर रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

३

प्रभानाथ की गिरफ्तारी की खबर दयानाथ को सुबह मिली, और यह खबर सुनकर वह स्तब्ध हो गया। उसे यह भी मालूम हुआ कि उसके पिता, उमानाथ और श्यामनाथ रात के समय ही कानपुर के लिए रवाना हो गए। मार्कंडेय से दयानाथ ने कहा, "सुना ?"

मार्कंडेय मुसकराया, "हाँ, दयानाथ, सुना ! और यह सब सुनकर मुझे जरा भी ताज्जुब नहीं हुआ। प्रभानाथ क्रांतिकारी हो सकता है, इसकी कल्पना तुम लोगों में से किसी ने न की होगी, मैं कहता हूँ, मैंने भी नहीं की थी। लेकिन इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। उसमें क्रांतिकारी बनने की हिंसा मौजूद थी—वह हिंसा जो तुम्हारे कुल के सब लोगों को मिली है—तुम्हें भी मिली है ! तुम उस हिंसा से मुक्त नहीं हो, दयानाथ !"

आश्चर्य से दयानाथ ने मार्कंडेय की ओर देखा, "क्या कहा, मार्कंडेय ! मुझमें हिंसा है ?"

इस बार मार्कंडेय हँस पड़ा। "हाँ, दया ! तुममें भी हिंसा है, उतनी ही जितनी तुम्हारे पिता में है। अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारे अन्दर [illegible] किसी हद तक दबी हुई है। तुम जानते हो कि यह हिंसा क्या है ? [illegible] का विश्लेषण कर सको तो समझ जाओगे !"

दयानाथ ने सीधे-सादे भाव से कहा, "हिंसा को मैं [illegible] उसका विश्लेषण मैं क्या करूँ ? हिंसा है दूसरों पर प्रहार [illegible]

मैं समझता हूँ कि मैं दूसरों पर प्रहार करनेवाली प्रवृत्ति को पूरी तौर से दबा चुका हूँ !"

मार्कंडेय ने सिर हिलाया, "नहीं, दया ! तुम समझते-भर हो; पर वास्तविकता इससे भिन्न है ! अच्छा बताओ, हम दूसरों पर प्रहार क्यों करते हैं ? तुम कहोगे कि यह हमारी एक प्रवृत्ति भर है ! पर बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। हमें और आगे बढ़ना पड़ेगा। दूसरों पर प्रहार करने की यह प्रवृत्ति हमारी अहंमन्यता का रूपांतर भर है। जिसमें जितनी अधिक अहंमन्यता है, उसमें उतनी ही अधिक भयानक रूप में दूसरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति है और मैं जानता हूँ दया, कि तुममें अहंमन्यता है, उतनी ही अधिक, जितनी तुम्हारे पिता में अथवा अन्य भाइयों में है !"

दयानाथ कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन, मार्कंडेय, मैं तो अहं पर विश्वास करनेवाला हूँ और जहाँ अहं होगा, वहाँ अहंमन्यता भी होगी। अगर तुम समझते हो कि हमारे विकास के लिए अहं को मिटा देना अनिवार्य है, तो मैं तुमसे असहमत हूँ, क्योंकि अहं एक मनोवैज्ञानिक सत्य है और कोई भी समझदार व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता।"

मार्कंडेय के पास उत्तर तैयार था, "मैंने कब कहा कि अहं मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है। अगर मैं इस बात से इनकार करता तो मैं न जाने कब का समाजवादी बन गया होता। लेकिन दया ! अहं में और अहंमन्यता में भेद है। अहं और अहंमन्यता के भेद को जान लेना तथा इसके बाद अहंमन्यता को छोड़कर केवल अहं का विकास करना—यह एक असाधारण साधना है। यह याद रखना, अहंमन्यता अहं और दूसरों के पार्थक्य से होती है, अहंमन्यता सीमित और अविकसित अहं का गुण है, जिसमें वह बुद्धि और ज्ञान जो मानवता के लिए वरदान रूप में आए हैं, अभिशाप बन जाया करते हैं। हमारी आज की दुरवस्था का मूल कारण यह सीमित और संकुचित अहं है। इस अहं को असीमत्व प्रदान करना, दूसरों को दूसरा न समझकर अपना समझना—यही अहं का विकास है और यही अहंमन्यता का विकास है !"

"शायद तुम ठीक कहते हो !" दयानाथ ने कहा, "और मैं इतना मानता हूँ कि मेरे कुल में हरएक आदमी में अहंमन्यता है ! और···और···जाने भी दो, मार्कंडेय !" दयानाथ अपनी ही बात में उलझकर कुछ सोचने लगा।

"क्यों, क्या सोच रहे हो ?" मार्कंडेय ने पूछा।

"यही कि मुझे आज ही कानपुर चल देना चाहिए ! प्रभा गिरफ्तार हो गया, सब लोग कानपुर गए हैं, और मैं यहाँ पड़ा हूँ !"

"लेकिन तुम जाकर ही क्या करोगे ? इस मामले में तुम्हारा बीच में पड़ना ठीक नहीं। उससे मामला बिगड़ ही सकता है। तुम उसे सुधार न सकोगे !"

"हाँ, यह ठीक कहते हो। लेकिन फिर भी इस समय मेरा कानपुर में होना

जरूरी है। प्रमानाथ की पैरवी में मदद कर सकता हूँ। इसके अलावा कांग्रेस का भी काम है!"

उसी दिन शाम के समय दयानाथ कानपुर के लिए रवाना हो गया। जिस समय वह घर पहुँचा, उसने देखा कि उमानाथ वहाँ मौजूद है और वह पंडित ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा है। पंडित ब्रह्मदत्त जोरो में कह रहे थे, "कामरेड! मजाल है कि ये लोग मुझे बिना मेरी इच्छा के जेल में रख सकते हैं! नाकों चने चबवा दिए, नाकों! आखिरकार झख मारकर मुझे छोड़ना ही पड़ा!"

"लेकिन यह कैदियों का यूनियन! यह तो बड़ा नया-सा आइडिया था!" उमानाथ ने मुसकराते हुए कहा।

"क्यों? नये आइडिया की क्या बात? आखिर जेल के कैदी भी तो वर्कर्स हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह मिल के मजदूर! फर्क इतना है कि जहाँ कैदी एक इमारत में कैद हैं, वहाँ मजदूर एक क्षेत्र में। वास्तविक स्वाधीनता किसी को भी प्राप्त नहीं है। फिर मिल के मजदूरों का जितना शोषण किया जाता है, उससे कहीं अधिक कैदियों का शोषण होता है। मैं कहता हूँ कि उन कैदियों को, जो काम करते हैं, उनकी मजदूरी क्यों नहीं दी जाती? आप कहेंगे कि उन्हें सजा मिली है और सजा मिलने की वजह से ये लोग बंद कर दिए गए हैं। बाहर घूम नहीं सकते, कहीं निकल नहीं सकते, किसी को देख नहीं सकते, किसी से मिल नहीं सकते। दुनिया की सारी-की-सारी हँसी-खुशी उनसे छीन ली गई है। न उन्हें बीवी का सुख, न उन्हें बच्चों का सुख! इतनी सजा क्या उन्हें काफी नहीं है जो उन कैदियों से बड़ी-से-बड़ी मेहनत ली जाय और वह भी जबर्दस्ती, फिर इसके बाद उन्हें उनकी मेहनत की मजदूरी न दी जाय! नतीजा यह होता है कि जब वे जेल के बाहर निकलते हैं, तो भूखे और कंगाल। इसके अलावा मुलजिम होने का ठप्पा भी उन पर लगा होता है। और इस सबका नतीजा यह होता है कि जेल के बाहर आते ही उन्हें जुर्म करने की जरूरत होती है।"

उमानाथ मुसकराया, "बात तो तुमने बड़े ही पते की कही। विलायत में कैदियों को उनके काम की तनख्वाहें मिलती हैं। लेकिन तुम्हारा यह कैदियों का यूनियन कहाँ तक चला?"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा "अभी यह कैदियों का यूनियन क्या चलेगा? वह तो मैंने जेलर को यह दिखलाने के लिए चलाया था कि मैं क्या बला हूँ!"

दयानाथ को देखते ही उमानाथ ने बातचीत बंद कर दी। उठते हुए उसने कहा, "आप आ गए, बड़के भइया—बड़ा अच्छा किया।"

"दद्दुआ और काका कहाँ ठहरे हैं?" दयानाथ ने पूछा।

"होटल में! मैंने बहुत कहा कि यहाँ ठहरें, और काकाजी ने भी जोर दिया, लेकिन दद्दुआ को तो आप जानते ही हैं, कितने जिद्दी आदमी हैं! मुझसे भी [illegible] ठहरने को कह रहे थे, लेकिन मैंने साफ-साफ कह दिया कि घर रहते हुए मैं होटल में नहीं ठहर सकता।"

कुरसी पर बैठते हुए दयानाथ ने कहा, "हाँ, तो उमा, क्या बात है ? प्रभा क्यों गिरफ्तार हुआ ?"

"कुपस्ती कलाँ की डकैती के सिलसिले में—वह भी उस डकैती में शामिल था। भइया, प्रभा क्रांतिकारी हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी न की था !"

"मुझे तो ताज्जुब हो रहा है, उमा ! कितना शांत और सुशील ! यह सब क्या हो रहा है ?" और दयानाथ उठकर घर के अंदर चलने लगे। तब तक ब्रह्मदत्त ने कहा, "नमस्कार, दयानाथजी ! आपने तो मुझे देखा तक नहीं !"

"अरे पंडित ब्रह्मदत्तजी ! क्षमा कीजिएगा—दिमाग अजीब उलझन में है !" दयानाथ ने मुड़कर कहा।

"जी हाँ ! जब दिमाग है तब वह कभी-कभी उलझन में भी हो सकता है !" और ब्रह्मदत्त अपने उस कटु व्यंग्य पर खिलखिलाकर हँस पड़ा।

दयानाथ को ब्रह्मदत्त का हँसना उसके व्यंग्य से भी अधिक बुरा लगा। उसने कहा, "ब्रह्मदत्तजी ! संस्कृति नाम की एक चीज होती है, जो लोगों को बड़ी मुश्किल से मिलती है। मुझे दुःख है कि वह संस्कृति आपको नहीं मिल सकी। लेकिन शायद इसमें आपका दोष नहीं है—दोष है हमारे समाज का !" और दयानाथ अंदर चला गया।

ब्रह्मदत्त जोर से हँस पड़ा, "संस्कृति ! संस्कृति ! उमानाथजी, सुना आपने ! कितनी मजेदार बात है !" लेकिन उसके तमतमाए हुए चेहरे से यह स्पष्ट था कि ब्रह्मदत्त पर आघात हुआ है, ऐसा आघात कि वह तिलमिला उठा है, "शायद संस्कृति के ठेकेदार वे लोग हैं, जिनके पास पैसा है, जो अमीर घरों में पैदा हुए हैं, जिन्हें जीवन में सब प्रकार की सुविधाएँ मिली हैं ! कितनी मजेदार बात है !" और ब्रह्मदत्त हँसता रहा, मानो वह अपनी इस व्यंग्यात्मक और कुरूप हँसी से अपने दिल पर लगी हुई चोट की मरहमपट्टी करने का प्रयत्न कर रहा हो।

उमानाथ ने बात को सँभालने की कोशिश की, "ब्रह्मदत्तजी, आपने सुना ही है कि प्रभानाथ गिरफ्तार हो गया है। बड़के भइया की बात पर इसलिए बुरा न मानिएगा। हम सब लोग इस मामले में बहुत अधिक परेशान हैं।"

"कोई बात नहीं, कामरेड ! ऐसी बातें तो करीब-करीब रोज ही सुनने को मिलती हैं—एक तरह से मैं इन बातों को सुनने का आदी हो गया हूँ !" ब्रह्मदत्त ने सँभलते हुए कहा, "लेकिन यह संस्कृति, यह सभ्यता ! समाज की विषमता द्वारा उत्पन्न ये चीजें—इन पर वे लोग, जो समाज में समता उत्पन्न करने के दावेदार हैं, गर्व कैसे कर सकते हैं; यह कांग्रेसवाले पूंजीपति, ये कितने झूठे और ढोंगी हैं ! अच्छा खाते हैं और पहनते हैं !"

"हाँ, अधिकांश आदमी ऐसे हैं, ब्रह्मदत्त ! लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा

कि जो सच्चे कांग्रेसवाले हैं, जिनका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है, वे ऐसे नहीं है।"

"बिलकुल गलत! मैं कहता हूँ कि सब-के-सब ऐसे हैं। जब मैं देखता हूँ उन लोगों को, जो सिर हिलाकर मेरे साथ सहानुभूति दिखलाते हैं, जो मुझ पर दया का भाव प्रदर्शित करते हैं, तब मैं सच कहता हूँ मेरी तबीयत जल उठती है। मुझे ऐसा लगता है कि वह आदमी मेरा उपहास कर रहा है—मेरा ही नहीं, सारी मनुष्यता का उपहास कर रहा है। मैं कहता हूँ, मुझसे लड़ो, मुझसे झगड़ो, मुझे गाली दो—मुझे जरा भी बुरा न लगेगा, क्योंकि यह सब तुम मेरी बराबरी में आकर करते हो; लेकिन जब तुम मुझसे लड़ना टाल जाते हो, यह प्रदर्शित करते हुए कि तुम इतने ऊँचे हो कि मुझसे लड़ना-झगड़ना तुम्हें शोभा नहीं देता, और इसलिए लड़ने-झगड़ने की जगह तुम मेरे साथ प्रेम, दया, सहानुभूति की बात चलाने लगते हो, तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम मुझे चिढ़ा रहे हो तुम मेरा उपहास कर रहे हो!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की बात सुन रहा था और उसे ताज्जुब हो रहा था ब्रह्मदत्त की उस बात पर। जो कुछ वह ब्रह्मदत्त के संबंध में जानता था, जितना कुछ उसे ब्रह्मदत्त का अनुभव था, उससे वह कल्पना भी न कर सकता था कि ब्रह्मदत्त ऐसे महत्त्वपूर्ण सत्य की तह तक पहुँच सकता है। उसने कहा, "लेकिन ब्रह्मदत्त इतना कटु होने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे अंदरवाली कटुता दूसरे का अहित करने के स्थान पर तुम्हारा ही अहित कर सकती है। इस कटुता से ऊपर उठकर रचनात्मक कार्य करने में ही कल्याण है।"

"हाँ, मैं यह जानता हूँ! लेकिन कामरेड, जरा सोचो तो, यह कटुता कितनी मनोवैज्ञानिक है। आप लोग ऊँचे समाज के हैं, सम्पन्न हैं, आपको ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ मिली हैं। लेकिन मैं गरीब घर में पैदा हुआ; तिरस्कार और अपमान के बीच में मैं पला, ऊँची शिक्षा मिलने के साधनों का सर्वथा अभाव था। जहाँ तक योग्यता, लगन, कर्मण्यता का सवाल है, वहाँ मैं किसी से कम नहीं हूँ। लेकिन फिर भी देखता हूँ कि लोग लगातार मुझे दबाने का प्रयत्न करते हैं। नित्य ही मुझे इन घमंडी अमीरों के सामने आना पड़ता है, इनकी अहम्मन्यता का मुझे मुकाबला करना पड़ता है। आप नहीं जानते, कामरेड कभी किसी पूँजीपति के सम्पर्क में आप अभाव की स्थिति में नहीं आए। आप अपनी सारी योग्यता और सारी ईमानदारी लेकर किसी भी मूर्ख-से-मूर्ख और चरित्र-हीन-से-चरित्रहीन पूँजीपति के सामने जाइये, और आप देखिएगा कि वह आपके व्यक्तित्व को चाँदी और सोने के पाटों के बीच में डाल पीसकर रख देने की कोशिश करेगा। मैं पूछता हूँ, दुनियाँ में कौन-सा नेता है, कौन-सा महात्मा है, जो पूँजीपति के इशारों पर न नाचता हो?"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के तर्कों का उत्तर न दे सकता था, क्योंकि [illegible] उमानाथ के तर्क थे। अंतर केवल इतना था कि जहाँ वह उमानाथ

तर्क भर था, वहाँ वह ब्रह्मदत्त का अनुभव था और उन अनुभवों से जनित उसके गहरे विश्वास से भरा हुआ विद्रोहत्माक व्यक्तित्व था।

उसी समय घड़ी ने रात के दस बजाए।

ब्रह्मदत्त उठ खड़ा हुआ, "अरे! दस बज गए और मैं अभी तक आपके यहाँ बैठा रहा। अब आप सोइए जाकर, कामरेड उमानाथ!"

"तो कामरेड, कल मिलना! जहाँ तर्क मैं समझता हूँ, कांग्रेस का काम-काज ढीला पड़ने लगा है; और लोगों की दौड़-धूप से यह पता चलता है कि कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में जल्दी ही कोई समझौता होने वाला है। लिहाजा अब हमारे काम-काज करने का अवसर आ रहा है, और उसकी तैयारी करनी है! सब कार्यकर्ताओं से मिलकर एक भावी कार्यक्रम बनाना पड़ेगा।"

"हाँ, कामरेड! मैं कल सुबह नौ बजे आऊँगा!" यह कहकर ब्रह्मदत्त चला गया।

४

कानपुर आकर जो पहला काम पंडित रामनाथ तिवारी ने किया, वह था विश्वंभरदयाल से मिलना। उस समय विश्वंभरदयाल अपने होटल में बैठे नाश्ता कर रहे थे और माताप्रसाद उनके सामने बैठे थे। विश्वंभरदयाल कह रहे थे, "यहाँ तक पहुँच गया हूँ, माताप्रसाद साहेब। जिस काम को हाथ में उठाया, इतनी बड़ी उम्मीदों के साथ, उसे यहाँ तक ले आया। अब आगे क्या होगा? उसकी कल्पना कर सकता हूँ!" इसी समय नौकर ने पंडित रामनाथ तिवारी के आने की सूचना दी।

विश्वंभरदयाल राजा रामनाथ तिवारी का स्वागत करने के लिए बाहर गए और उन्हें कमरे में ले आए। तिवारीजी को बिठलाते हुए विश्वंभरदयाल ने कहा, "कहिए राजा साहेब! क्या सेवा कर सकता हूँ?"

पंडित रामनाथ तिवारी थोड़ी देर तक अपने सामने बैठे हुए आदमी को गौर से देखते रहे। इकहरे बदन का आदमी, चेहरा किसी कदर कुरूप, लंबी नाक और चमकीली आँखें। पंडित रामनाथ ने समझ लिया कि जो आदमी उनके सामने बैठा है, वह असाधारण बुद्धि का आदमी है और किसी हद तक जिद्दी तथा अपनी धुन का पक्का। जरा सँभलते हुए रामनाथ तिवारी ने बात आरंभ की, "मैं आप से प्रभानाथ के संबंध में बातें करने आया था!"

"हाँ-हाँ! लेकिन आपको कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी! पंडित श्याम-नाथ तिवारी से तो मैंने साफ़-साफ़ कह दिया था कि प्रभानाथ मेरे लड़के की तरह है, उस पर आँच न आने पायेगी?" मुसकराते हुए विश्वंभरदयाल ने कहा।

"जी हाँ, आपकी मेहरबानी है! लेकिन मैं आपसे स्पष्ट और काम की बातें करने आया हूँ। आपको इसमें कोई एतराज तो न होगा?" यह कहकर पंडित रामनाथ तिवारी ने माताप्रसाद की ओर इस प्रकार देखा मानो उस आदमी की

उपस्थिति में उन्हें बात कहने मे संकोच हो रहा हो।

विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से कहा, "माताप्रसाद साहेब, आपको बाजार जाना था न ! देखिए मेरे लिए कुछ फल लाना न भूलिएगा !"

माताप्रसाद वहाँ से उठकर चले गए। थोड़ी देर रुककर रामनाथ ने कहा, "जी ! मैं यह दरियाफ्त करने आया था कि आप इस लड़के की जान की क्या कीमत चाहते हैं ?"

विश्वम्भरदयाल इस तरह के प्रश्न सुनने का आदी था। वह मुसकराया, "वह कीमत क्या आप दे सकेंगे, राजा साहेब ?"

"आप बतलाइये तो सही···" रामनाथ ने कहा, "दस हजार, बीस हजार, एक लाख—कितना चाहते हैं आप ?"

विश्वंभरदयाल हँस पड़ा, "जी, आप मुझे गलत समझ रहे हैं, राजा साहेब ! मैं पैसों का भूखा नहीं हूँ। आपकी कृपा से मैं भी बहुत बड़े सम्पन्न कुल का आदमी हूँ। पचास हज़ार—एक साथ मैं आसानी से खर्च कर सकता हूं ! नहीं राजा साहेब, रुपये-पैसे में जान की कीमत समझकर मुझसे बात करने आकर आपने गलती की !"

विश्वम्भरदयाल के इस उत्तर से रामनाथ सकपका गए, "फिर···फिर···" तिवारीजी आगे न कह सके; उसकी समझ में न आ रहा था कि अब क्या कहा जाय।

लेकिन इस अजीब मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से विश्वम्भरदयाल ने उन्हें निकाल लिया, "मैं जानता हूँ कि आप क्यों आए हैं और क्या चाहते हैं ! आप आए हैं प्रभानाथ को छुड़ाने; और मुझे अफ़सोस है कि उसका जुर्म बड़ा संगीन है—वह जुर्म है ब्रिटिश सरकार को उलटने की कोशिश करना।"

"आप अच्छी तरह जानते हैं कि वह ब्रिटिश सरकार को नहीं उलट सकता, यह उसका लड़कपन था कि वह उन बागियों के गिरोह मे शामिल हो गया !"

"जी हाँ, यह मैं जानता हूँ। लेकिन दूसरा जुर्म जो उससे भी ज्यादा संगीन है, यह है कि उसने या उसके साथी ने दो सिपाहियों की हत्या की है।"

"मिस्टर विश्वंभरदयाल ! इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ।"

"आप मेरे यहाँ आए हैं, राजा साहेब ! और इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि आपके लड़के पर आँच न आयेगी। सिर्फ वह थोड़ी-सी मदद कर दे। और मैं आपसे वादा करता हूँ कि मैं उस पर से हत्या का मामला भी हटा दूँगा !"

"कैसी मदद चाहते हैं आप ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी, मैं सिर्फ इतना चाहता हूं कि वह अपने साथियों का नाम [illegible] दे !"

विश्वंभरदयाल की बात सुनकर पंडित रामनाथ तिवारी [illegible] मौन बैठे रहे, इसके बाद उन्होंने धीरे से कहा, "तो आप [illegible] चाहते हैं ?"

"जी...मुखबिर क्या, मैं एक तरह से इस बड़े काम में उसकी मदद चाहता हूँ!" लड़खड़ाते हुए विश्वंभरदयाल ने कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "मिस्टर विश्वंभरदयाल! आप प्रभानाथ से ऐसा काम कराना चाहते हैं जो उसके नाम पर ही नहीं, हम लोगों के नाम पर भी बहुत बड़ा कलंक होगा। जहाँ तक मेरा खयाल है, प्रभानाथ आपकी यह शर्त किसी हालत मे मंजूर न करेगा। क्या उसे बचाने का कोई दूसरा तरीका नहीं है!"

पंडित रामनाथ तिवारी के उठने के साथ विश्वंभरदयाल भी उठ खड़ा हुआ था, "जी! मैंने आपको सबसे आसान तरीका बतलाया है राजा साहेब, और इस तरीके पर आपको तो कोई एतराज न होना चाहिए। आखिर मैं चाहता क्या हूँ? मुजरिमों को गिरफ़्तार करना! पीठ-पीछे वार करनेवालों को ढूँढ निकालना! ये बड़े खतरनाक मुजरिम हैं, इनको गिरफ़्तार करने में मदद देना तो हरएक आदमी का कर्तव्य है।"

रामनाथ अच्छी तरह समझ गए कि विश्वंभरदयाल से अधिक बात करना बेकार है, वे जानते थे कि उस पुलिस अफ़सर से वे पराजित हुए। और वे यह भी समझ गए थे कि विश्वंभरदयाल उस समय शक्तिशाली है। उन्होंने कहा, "देखिए, इस मामले में आप अभी जल्दी न कीजिएगा, मैं गौर करूँगा।"

रामनाथ तिवारी को उनकी कार तक पहुँचाकर जब विश्वंभरदयाल कमरे में लौटा, तब उसे अच्छा न लग रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि उसका दाँव ठीक नहीं पड़ा। रामनाथ तिवारी की हिचकिचाहट से भरी मुद्रा में उसने कुछ ऐसी बात देखी, जिससे उसे एक प्रकार की निराशा हुई। उसने श्यामनाथ तिवारी को देखा था, और उसने देख लिया था कि श्यामनाथ तिवारी कमजोर आदमी हैं—भावुक और व्यक्तित्वहीन। और श्यामनाथ को पहचान लेने के बाद उसे अपनी सफलता पर विश्वास हो गया था। लेकिन आज—रामनाथ से मिलकर, उनसे बातचीत करके उसका वह विश्वास डिग गया। प्रभानाथ श्यामनाथ का नहीं बल्कि रामनाथ का पुत्र है, विश्वंभरदयाल को यह भी मालूम हो गया था।

माताप्रसाद ने बाजार से लौटकर देखा कि विश्वंभरदयाल गुमसुम कुरसी पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। मुसकराने का प्रयत्न करते हुए माताप्रसाद ने पूछा, "कहिए, राजा साहेब से क्या बातचीत हुई?"

विश्वंभरदयाल ने सिर उठाया, "बहुत थोड़ी-सी बात हुई, नपी-तुली बात हुई और साथ ही जो बात हुई, वह मुझे अच्छी नहीं लगी!"

"उस बातचीत को अगर आप मुझे बतला दें तो कोई हर्ज तो न होगा? मुमकिन है मैं आपकी कुछ मदद ही कर सकूँ!" माताप्रसाद ने कहा।

"आप शायद इस मामले में मेरी ज्यादा मदद न कर सकेंगे। लेकिन चूँकि मैंने इस मामले में आपको शामिल कर लिया है, इसलिए मैं आपसे कोई बात न छिपाऊँगा। राजा साहेब मुझे रिश्वत देने आए थे!"

माताप्रसाद को इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, "कितनी रिश्वत दे

रहे थे ?" मुसकराते हुए विश्वंभरदयाल ने कहा, "अगर मैं चाहता तो एक लाख तक दे देते !"

"एक लाख !" माताप्रसाद की आँखें फैल गईं, "बड़ी लंबी रकम है ! और आपने इनकार कर दिया ?"

"क्यों ? क्या आप समझते हैं कि मैं एक लाख पर बिक सकता हूँ ?" विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद को कौतूहल की नजर से देखते हुए कहा, "तो फिर आप मुझे अभी तक नहीं पहचान सके, माताप्रसाद साहेब ! मैं रुपयों का भूखा नहीं हूँ। भगवान् की कृपा से मेरे पास बहुत कुछ है। मुझे चाहिए ताक़त, ओहदा, इज्जत ! मैं इस क्रांतिकारी दल को ढूँढ निकालना चाहता हूँ।"

"फिर ?" माताप्रसाद ने ऐसे स्वर में कहा मानो उन्हें विश्वंभरदयाल की महत्त्वाकांक्षाओं में कोई भी दिलचस्पी नहीं है।

"मैंने अपनी शर्त पेश की कि प्रभानाथ मुख़बिर बन जाय। लेकिन इसमें रामनाथ तिवारी कुछ पशोपेश करते दिखलाई दिये।"

माताप्रसाद अब फूट पड़े, "आपने बहुत बड़ी गलती की ! एक मौका हाथ में आया था, वह निकल गया। लम्बी रकम हाथ लग रही थी। आपने अभी तो उस लड़के के बाप से बात की है, जब बाप इतनी पशोपेश कर रहा है, तब लड़का यकीनन मुख़बिर बनने से इनकार कर देगा। मैं आपसे कहे देता हूँ कि आपने गलत रास्ता अपनाया है, और आप देखेंगे कि आप महज हवाई किले बना रहे हैं।"

विश्वंभरदयाल उठ खड़े हुए, उनके मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता आ गई थी, "क्या आप ठीक कह रहे हैं, माताप्रसाद साहेब ? क्या वास्तव में इसमें मुझे असफलता मिलेगी ? नहीं, आप गलती करते हैं। मैंने उस लड़के को देखा है, गौर से देखा है। और मुझे यकीन है कि वह कमजोर दिल का है, कमजोर तबीयत का है ! क्या वह मौत का मुकाबला कर सकता है ? शायद ! लेकिन उसमें कमजोरी है, और उसकी कमजोरी का मैं फायदा उठाना चाहता हूँ ! किस तरह से ? सवाल मेरे सामने यह है।"

५

जिस समय प्रह्लाददत्त उमानाथ से मिलने के लिए दयानाथ के बंगले में पहुँचा उसने देखा कि दयानाथ अकेला ड्राइंग-रूम में बैठा हुआ कुछ सोच रहा है दयानाथ ने प्रह्लाददत्त को देखा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर दयानाथ वैसा-का-वैसा बैठा रहा। प्रह्लाददत्त ने दरवाजे पर रुककर कहा, "माफ कीजिएगा दयानाथजी ! मैं उमानाथजी से मिलने आया हूँ। उन्होंने मुझसे इस समय यह मिलने को कहा था !"

"ओह ! क्षमा कीजिएगा—मैंने आपको देखा नहीं था।" दयानाथ ने प्रह्लाददत्त का स्वागत करने के लिए उठते हुए कहा, "आइए ! दरवाज़े पर क्यों खड़े हैं ?"

"मुझे डर मालूम होता था कि कहीं आप मुझे कमरे से निकाल बाहर न करें!" हँसते हुए ब्रह्मदत्त ने कहा। कमरे में आकर वह सोफे पर पैर फैलाकर बैठ गया, "क्यों दयानाथजी! आप इतना अधिक चिंतित क्यों हैं?"

"क्या बतलाऊँ, ब्रह्मदत्तजी! आप जानते ही हैं कि पिताजी ने मुझे त्याग दिया है! वे मुझसे इतना अधिक नाराज़ हैं कि कानपुर आकर वे होटल में ठहरे। प्रभानाथ की गिरफ्तारी की मुझे खबर तक देने की ज़रूरत उन्होंने नहीं समझी! मैं सोच रहा था कि आखिर यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है?" और ब्रह्मदत्त ने देखा कि दयानाथ के मुख पर एक अजीब तरह की विवशता है।

दयानाथ की इस विवशता पर ब्रह्मदत्त को दयानाथ के प्रति सहानुभूति हुई या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। उसने गंभीरतापूर्वक कहा, "हाँ, दयानाथजी! दुनिया बड़ी विचित्र जगह है, और इस विचित्र जगह में बातें भी बड़ी विचित्र होती हैं। लेकिन यह संघर्ष—यह तो कोई नई चीज़ नहीं है। मैं कहता हूँ कि अधिकांश मनुष्यों में यह संघर्ष रोज का किस्सा बन गया है। एक तरह से मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि एक साधारण आदमी का सारा अस्तित्व ही इसी संघर्ष में है। मैं जब अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ, अपने अतीत का मनन करता हूँ, वर्तमान को देखता हूँ, भविष्य की कल्पना करता हूँ, तब मुझे आश्चर्य होने लगता है कि मैं जिन्दा कैसे हूँ। दयानाथजी, मेरी सलाह तो यह है कि भावुकता को तिलांजलि देकर जिस प्रकार आपके सामने जीवन आता जाय, उसी रूप में आप स्वीकार कर लीजिए।"

ब्रह्मदत्त ने जो बात कही थी, वह अपनी समझ से बड़े महत्त्व की बात कही थी, एक दार्शनिक सत्य की व्याख्या की थी। लेकिन दयानाथ उस बात को सुनकर झल्ला उठा। दयानाथ ने अपना दुखड़ा रोया था ब्रह्मदत्त से कुछ सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, दर्शनशास्त्र पर एक लम्बा व्याख्यान सुनने के लिए नहीं। उसने तीव्र दृष्टि से ब्रह्मदत्त को देखा और फिर उठ खड़ा हुआ, भीतर जाने के लिए। पर दयानाथ दरवाजे पर से उमानाथ का स्वर सुनकर रुक गया।

उमानाथ ब्रह्मदत्त से कह रहा था, "आ गए, कामरेड! माफ करना, मैं जरा देर से सोकर उठा।" और उसने नौकर को पुकारकर चाय और नाश्ता लाने का हुक्म दिया।

दयानाथ ने उमानाथ से पूछा, "उमा, क्या तुम ददुआ से आज मिलोगे?"

"जी हाँ! चाय पीकर बस वहीं जा रहा हूँ! आप भी चलिए न!"

"नहीं, उमा! मेरा वहाँ जाना ठीक न होगा। तुम जानते ही हो कि ददुआ ने मुझे अपने यहाँ आने से मना कर दिया है!"

"यह ठीक है, लेकिन होटल में जाकर उनसे मिल लेने में क्या हर्ज है? आखिर वे आपके पिता ही हैं, और उनके लिए यह एक बहुत बड़ी विपत्ति का समय है!" ब्रह्मदत्त ने दयानाथ से कहा।

"आप नहीं समझते, ब्रह्मदत्तजी ! यह उनके ही लिए नहीं,
मेरे लिए भी विपत्ति का समय है। प्रभा मेरा भी भाई है। लेकिन मेरे यहाँ रहते हुए भी ददुआ होटल में ठहरे। मैं कानपुर में मौजूद था, लेकिन प्रभानाथ की गिरफ़्तारी की मुझे खबर तक देने में उन्होंने उमा को मना कर दिया था।" इसके बाद उसने उमानाथ से कहा, "नहीं, उमा ! मैं नहीं जाऊँगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं। मैं भी यही समझता हूँ कि आपका वहाँ जाना ठीक न होगा।"

नाश्ता आ गया था और दोनों कामरेडों ने डटकर नाश्ता किया। इसके बाद उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा, "चलो कामरेड, अब चला जाय ! रास्ते में बातचीत होगी।" फिर उसने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया, आपकी कार मैं लिए जा रहा हूँ। आपको कहीं जाना तो नहीं है ?"

"अभी तो नहीं, लेकिन जल्दी आ जाना। और बतलाना कि क्या-क्या हुआ। मैं बहुत चिंतित हूँ।"

उमानाथ ने चलते हुए ब्रह्मदत्त से कहा, "हाँ, तो मैं कह रहा था कि हम लोगों को अब अपना काम आरंभ कर देना चाहिए। कानपुर के वर्तमान संगठन को मैं संतोषजनक नहीं समझता। जब मजदूरों के इस प्रमुख केंद्र की यह हालत है, तब प्रांत के अन्य स्थानों में क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ।"

"जी हाँ, मैं आपसे सहमत हूँ," ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया, "जो काम हम यहाँ कर रहे हैं, उसमें हमें उत्साह नहीं, उमंग नहीं।"

"लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि यहाँ पर काम ही क्या हो रहा है ?" उमानाथ ने गंभीरतापूर्वक पूछा, "कितने मजदूरों को दुनिया की गतिविधि का पता है ? कितने मजदूर अपनी वास्तविक स्थिति, अपने अभाव तथा अपने अधिकारों को समझते हैं ? कितने मजदूर शिक्षित हैं ? क्या यहाँ मजदूरों का कोई पत्र है ?"

"जी नहीं ! पत्र के लिए पूँजी की जरूरत होती है, और वह पूँजी हमारे पास नहीं है। फिर भला हम पत्र कैसे निकाल सकते हैं ? लेकिन मेरा खयाल है कि मजदूरों का एक पत्र होना अत्यंत आवश्यक है !"

"मैं उस पूँजी का प्रबंध कर दूँगा, ब्रह्मदत्तजी ! पत्र का निकलना जरूरी है। आप अगले सप्ताह कानपुर के मजदूर-नेताओं की एक सभा बुला लीजिए। मैं और लोगों के संपर्क में आना चाहता हूँ—उनसे मिलकर अपना एक कार्य-क्रम निर्धारित करना चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है, मैं सभा का प्रबंध कराए देता हूँ। अगले रविवार को ठीक रहेगा न ?"

"हाँ, कामरेड !" कार उस समय तक मेस्टन रोड और चौक के चौराहे पर आ गई थी। कश्मीरी होटल, जहाँ उसके पिता ठहरे थे, सामने दिख रहा था। उमानाथ मुसकराया, "अगर ब्रिटिश राज्य के लिए कोई सबसे अधि[illegible]रनाक

"मुझे डर मालूम होता था कि कहीं आप मुझे कमरे से निकाल बाहर न करें!" हँसते हुए ब्रह्मदत्त ने कहा। कमरे में आकर वह सोफे पर पैर फैलाकर बैठ गया, "क्यों दयानाथजी! आप इतना अधिक चिंतित क्यों हैं?"

"क्या बतलाऊँ, ब्रह्मदत्तजी! आप जानते ही हैं कि पिताजी ने मुझे त्याग दिया है! वे मुझसे इतना अधिक नाराज़ हैं कि कानपुर आकर वे होटल में ठहरे। प्रभानाथ की गिरफ्तारी की मुझे खबर तक देने की ज़रूरत उन्होंने नहीं समझी! मैं सोच रहा था कि आखिर यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है?" और ब्रह्मदत्त ने देखा कि दयानाथ के मुख पर एक अजीब तरह की विवशता है।

दयानाथ की इस विवशता पर ब्रह्मदत्त को दयानाथ के प्रति सहानुभूति हुई या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। उसने गंभीरतापूर्वक कहा, "हाँ, दयानाथजी! दुनिया बड़ी विचित्र जगह है, और इस विचित्र जगह में बातें भी बड़ी विचित्र होती हैं। लेकिन यह संघर्ष—यह तो कोई नई चीज़ नहीं है। मैं कहता हूँ कि अधिकांश मनुष्यों में यह संघर्ष रोज का किस्सा बन गया है। एक तरह से मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि एक साधारण आदमी का सारा अस्तित्व ही इसी संघर्ष में है। मैं जब अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ, अपने अतीत का मनन करता हूँ, वर्तमान को देखता हूँ, भविष्य की कल्पना करता हूँ, तब मुझे आश्चर्य होने लगता है कि मैं ज़िन्दा कैसे हूँ। दयानाथजी, मेरी सलाह तो यह है कि भावुकता को तिलांजलि देकर जिस प्रकार आपके सामने जीवन आता जाय, उसी रूप में आप स्वीकार कर लीजिए।"

ब्रह्मदत्त ने जो बात कही थी, वह अपनी समझ से बड़े महत्त्व की बात कही थी, एक दार्शनिक सत्य की व्याख्या की थी। लेकिन दयानाथ उस बात को सुनकर झल्ला उठा। दयानाथ ने अपना दुखड़ा रोया था ब्रह्मदत्त से कुछ सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, दर्शनशास्त्र पर एक लम्बा व्याख्यान सुनने के लिए नहीं। उसने तीव्र दृष्टि से ब्रह्मदत्त को देखा और फिर उठ खड़ा हुआ, भीतर जाने के लिए। पर दयानाथ दरवाजे पर से उमानाथ का स्वर सुनकर रुक गया।

उमानाथ ब्रह्मदत्त से कह रहा था, "आ गए, कामरेड! माफ करना, मैं जरा देर से सोकर उठा।" और उसने नौकर को पुकारकर चाय और नाश्ता लाने का हुक्म दिया।

दयानाथ ने उमानाथ से पूछा, "उमा, क्या तुम ददुआ से आज मिलोगे?"

"जी हाँ! चाय पीकर बस वहीं जा रहा हूँ! आप भी चलिए न!"

"नहीं, उमा! मेरा वहाँ जाना ठीक न होगा। तुम जानते ही हो कि ददुआ ने मुझे अपने यहाँ आने से मना कर दिया है!"

"यह ठीक है, लेकिन होटल में जाकर उनसे मिल लेने में क्या हर्ज है? आखिर वे आपके पिता ही हैं, और उनके लिए यह एक बहुत बड़ी विपत्ति का समय है!" ब्रह्मदत्त ने दयानाथ से कहा।

"आप नहीं समझते, ब्रह्मदत्तजी! यह उनके ही लिए नहीं, मेरे लिए भी विपत्ति का समय है। प्रभा मेरा भी भाई है। लेकिन मेरे यहाँ रहते हुए भी दद्दुआ होटल में ठहरे। मैं कानपुर में मौजूद था, लेकिन प्रभानाथ की गिरफ़्तारी की मुझे ख़बर तक देने में उन्होंने उमा को मना कर दिया था।" इसके बाद उसने उमानाथ से कहा, "नहीं, उमा! मैं नहीं जाऊँगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं। मैं भी यही समझता हूँ कि आपका वहाँ जाना ठीक न होगा।"

नाश्ता आ गया था और दोनों कामरेडों ने डटकर नाश्ता किया। इसके बाद उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा, "चलो कामरेड, अब चला जाय! रास्ते में बातचीत होगी।" फिर उसने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया, आपकी कार मैं लिए जा रहा हूँ। आपको कहीं जाना तो नहीं है?"

"अभी तो नहीं, लेकिन जल्दी आ जाना। और बतलाना कि क्या-क्या हुआ। मैं बहुत चिंतित हूं।"

उमानाथ ने चलते हुए ब्रह्मदत्त से कहा, "हाँ, तो मैं कह रहा था कि हम लोगों को अब अपना काम आरंभ कर देना चाहिए। कानपुर के वर्तमान संगठन को मैं संतोषजनक नहीं समझता। जब मजदूरों के इस प्रमुख केंद्र की यह हालत है, तब प्रांत के अन्य स्थानों में क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ।"

"जी हाँ, मैं आपसे सहमत हूँ," ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया, "जो काम हम यहाँ कर रहे हैं, उसमें हमें उत्साह नहीं, उमंग नहीं।"

"लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि यहाँ पर काम ही क्या हो रहा है?" उमानाथ ने गंभीरतापूर्वक पूछा, "कितने मजदूरों को दुनिया की गतिविधि का पता है? कितने मजदूर अपनी वास्तविक स्थिति, अपने अभाव तथा अपने अधिकारों को समझते हैं? कितने मजदूर शिक्षित हैं? क्या यहाँ मजदूरों का कोई पत्र है?"

"जी नहीं! पत्र के लिए पूंजी की जरूरत होती है, और वह पूंजी हमारे पास नहीं है। फिर भला हम पत्र कैसे निकाल सकते हैं? लेकिन मेरा ख़याल है कि मजदूरों का एक पत्र होना अत्यंत आवश्यक है!"

"मैं उस पूंजी का प्रबंध कर दूंगा, ब्रह्मदत्तजी! पत्र का निकलना जरूरी है। आप अगले सप्ताह कानपुर के मजदूर-नेताओं की एक सभा बुला लीजिए। मैं और लोगों के संपर्क में आना चाहता हूँ—उनसे मिलकर अपना एक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है, मैं सभा का प्रबंध कराए देता हूँ। अगले रविवार को ठीक रहेगा न?"

"हाँ, कामरेड!" कार उस समय तक मेस्टन रोड और चौक के चौराहे पर आ गई थी। कश्मीरी होटल, जहाँ उसके पिता ठहरे थे, सामने दिख रहा था। उमानाथ मुसकराया, "अगर ब्रिटिश राज्य के लिए कोई सबसे अधिक ख़तरनाक

है तो मैं हूं; न लड़के भइया हैं जिनको जेल जाने का सर्टीफ़ि...
मिल चुका है और न प्रभा है, जिसकी फांसी की तैयारियां हो
...ा।"

...र रुक गई और ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ उतर पड़ा। ब्रह्मदत्त ने कहा,
...ा कामरेड, अब मैं जाऊंगा; मैं आपसे परसों मिलूंगा।"

ब्रह्मदत्त को विदा करके उमानाथ होटल में पहुंचा।

उस समय पंडित रामनाथ तिवारी पूजा से उठकर होटल के बरामदे में बैठे ...वेस्टन रोड की भीड़ को देख रहे थे। उस समय वे न कुछ सोच रहे थे, न ...ख रहे थे, वे केवल देख रहे थे—एकटक। वे क्या देख रहे हैं, क्यों देख रहे हैं—इसका भी पता उन्हें न था।

विश्वंभरदयाल से मिलने के बाद तिवारीजी किसी कदर हतबुद्धि-से हो गए थे। उन्होंने काम इतना कठिन न समझा था जितना उन्हें विश्वंभरदयाल से मिलने के बाद मालूम हुआ था। मुश्किल ही नहीं, उनके अन्दर से किसी ने कह दिया था, 'काम असंभव है!' और इस असंभव शब्द ने उन्हें मर्माहत कर दिया था। शाम के समय जब विश्वंभरदयाल के यहां से वे असफल लौटे थे, उन्होंने श्यामनाथ से कोई बात नहीं की थी। सुबह से अभी तक श्यामनाथ से उनकी मुलाकात न हुई थी। उमानाथ जब रामनाथ के सामने पहुंचा, तो रामनाथ ने कहा, "उमा! श्यामू कहां है? ज़रा उसे बुलाना!"

श्यामनाथ अपने कमरे में उदास लेटे हुए थे। उमानाथ ने उनसे कहा, "काका! दद्दुआ आपको बुला रहे हैं!"

श्यामनाथ चौंककर उठ खड़े हुए। उस समय उनका चेहरा मुरझाया हुआ था, उनकी आंखें लाल थीं। रातभर उन्हें नींद न आई थी। रामनाथ ने पिछली रात उनसे बात नहीं की, इसी से वे समझ गए थे कि रामनाथ को काम में सफलता नहीं मिली। स्वयं कुछ पूछने का उन्हें साहस न हुआ था। आज श्यामना... अपनी विवशता, अपनी निर्बलता और अपनी कायरता बुरी तरह अनुभव क... रहे थे। उनका लड़का गिरफ़्तार हो गया था और उसे बचाने का उनके ... कोई उपाय न था। रातभर वे सोचते रहे कि क्या किया जाय, पर उन्हें ... विषम समस्या का कोई हल न मिल सका था।

सिर झुकाए हुए श्यामनाथ रामनाथ के सामने बैठ गए। रामनाथ ने ... "श्यामू, कल शाम मेरी विश्वंभरदयाल से जो बातचीत हुई, उससे ... नतीजे पर पहुंचा कि वह आदमी सख्त है और ज़िद्दी है। इसी से मैंने उससे ... बात नहीं की, क्योंकि मेरी बातचीत में मामला सुधरने की जगह बिगड़... था। मेरा खयाल है कि उससे तुम्हें बातचीत करनी चाहिए।"

श्यामनाथ ने पूछा, "लेकिन आपसे क्या बातें हुईं?"

"क्या करोगे उन बातों को सुनकर, उनकी याद आते ही मेरा ख... ...है। उसने यह कैसे समझ लिया कि मेरा लड़का मुखबिर बनने...

हो जाएगा !" थोड़ी देर रुककर उन्होंने फिर श्यामनाथ से कहा,
"तुम्हीं उससे मिलो, संभलकर बातें करो। मुझे अधिक आशा तो नहीं है, लेकिन सम्भव है तुम्हें कुछ सफलता मिल जाय !"

"क्या ले-देकर कुछ काम नहीं चल सकता ?" श्यामनाथ ने पूछा।

"नहीं, श्यामू—उस आदमी को पैसे का लोभ नहीं है। अगर उस आदमी के साथ कोई चीज काम कर सकती है तो वह है भावना !"

श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "तो फिर मैं जा रहा हूँ। लेकिन भइया, न जाने क्यों मुझे उस आदमी से घृणा हो गई है। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता, उससे बात करना तो दूर रहा। उफ़! मैं नहीं जानता था कि वह आदमी इतना भयानक निकलेगा, नहीं तो मैं उसे उस दिन अपने घर में लाता ही नहीं।"

"खैर, जो हो गया, वह हो गया। वह तुम्हारे बस की बात नहीं थी। अब जो तुम्हारे बस की बात है, वह करो !" रामनाथ ने अपने छोटे भाई को आश्वासन देते हुए कहा।

इसी समय श्यामनाथ ने देखा कि माताप्रसाद उनके यहाँ चला आ रहा है। माताप्रसाद को अपने यहाँ आते देखकर श्यामनाथ के अन्दर आशा की एक लहर दौड़ गई। उन्होंने तपाक के साथ कहा, "आइए मुंशी माताप्रसाद साहेब ! कहिए, कैसे आना हुआ ? तशरीफ़ रखिए !"

बैठते हुए माताप्रसाद ने कहा, "मैंने सुना कि हुजूर कानपुर तशरीफ लाए हैं। लिहाजा मैंने सोचा कि हुजूर की हाज़िरी बजाता चलूँ !"

"जी हाँ ! प्रभानाथ की गिरफ़्तारी के सिलसिले में आया हुआ हूँ।" श्यामनाथ ने कहा।

"वह तो मुझे कल शाम को ही मालूम हो गया था, जब राजा साहेब इस सिलसिले में डिप्टी साहेब से मिलने तशरीफ ले गए।" अपनी आवाज को थोड़ी-सी धीमी करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुजूर खुद क्यों नहीं डिप्टी साहेब से मिलते ? मुमकिन है, कोई सूरत निकल आए !"

"वहीं जाने की मैं तैयारी कर रहा था। क्या आप समझते हैं कि मेरे मिलने से कुछ काम बन सकेगा ?" श्यामनाथ ने थाह लेने के लिए पूछा।

"मेरा तो ख्याल है, गोकि डिप्टी साहेब कुछ अजीब तरह के आदमी हैं।"

६

विश्वम्भरदयाल मानो श्यामनाथ की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने उठते हुए कहा, "आइए, मिस्टर तिवारी !" और यह कहकर उन्होंने श्यामनाथ से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया।

श्यामनाथ को जबर्दस्ती विश्वम्भरदयाल से हाथ मिलाना पड़ा। मजबूरी जो कराए, वह थोड़ा। थोड़ी देर तक श्यामनाथ मौन बैठे रहे, फिर उन्होंने कहा, "मैं आपके यहाँ आ ही रहा था कि माताप्रसाद से मेरी मुलाकात हो गई। वह

आप क़यास कर ही सकते हैं कि मैं आपके पास क्यों आया हूँ !

"जी हाँ ! आपके बड़े भाई राजा साहेब भी कल मेरे यहाँ पधारे थे।"

रदयाल ने मुसकराते हुए कहा, "देखिए, मिस्टर तिवारी ! आप जानते ही
इन क्रांतिकारियों के उपद्रव आजकल बुरी तरह बढ़ रहे हैं, और इसमें हम
वालों की बड़ी बदनामी हो रही है। अभी कुछ दिन पहले जिला रायबरेली
क सब-इंस्पेक्टर को गोली मार दी गई थी, और आज तक मुजरिमों का पता
चला ! इस वाक़िये में भी दो पुलिस के सिपाही जान से मारे गए।"

"यह तो मैं जानता हूँ !" श्यामनाथ ने कहा, "लेकिन आपका मतलब क्या
?"

"मैं वही कह रहा था !" विश्वंभरदयाल ने उत्तर दिया, "देखिये मिस्टर
तिवारी, आप सरकार का नमक खाते हैं और एक ज़िम्मेदारी के ओहदे पर हैं।
अपने लिए भी मैं यही बात कह सकता हूँ ! ऐसी हालत में हम दोनों का यह फ़र्ज
है कि अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करें, उन छिपे हुए भयानक किस्म के मुजरिमों को
ढूंढ निकालें, उन्हें सज़ा दिलवाएँ। और मैं समझता हूँ कि हम लोग यह काम प्रभा-
नाथ के ज़रिये आसानी से कर सकते हैं !"

"यह किस तरह ?" विश्वंभरदयाल का मतलब समझते हुए भी श्यामनाथ
ने पूछा।

"इस तरह कि वह अपने वालिद को और मुझे इन क्रांतिकारियों का पता लगाने
में मदद दे। आपका खानदान प्रसिद्ध राजभक्त खानदान है; प्रभानाथ के लिए
यह एक बहुत आला मौका है कि वह अपनी राजभक्ति दिखलावे, वह आपका हाथ
बँटावे।" विश्वंभरदयाल कहता जा रहा था और श्यामनाथ के मुख के भावों को
भी साथ-साथ पढ़ता जा रहा था, "बुरा न मानिएगा। प्रभानाथ जैसे आपका
लड़का है, वैसे मेरा लड़का है। लेकिन क्या करूँ, मजबूरी है ! मुझे सरकार के
प्रति भी तो अपना कर्तव्य-पालन करना है; और इस काम में आपका लड़का ह
लोगों की सहायता कर सकता है।"

"लेकिन यह काम प्रभानाथ कभी न करेगा—कभी न करेगा !" श्यामन
ने एक-एक शब्द पर इस प्रकार जोर देते हुए कहा, मानो वे स्वयं प्रभानाथ
यह काम पसंद न करेंगे।

विश्वंभरदयाल को कुछ हँसी आ गई, लेकिन अपनी हँसी को दबाते हुए
कहा, "जी, मैं मानता हूँ कि इस काम में उसे हिचकिचाहट होगी, जब
आपको हिचकिचाहट हो रही है। वह यह समझेगा कि वह अपने साथियों
दगाबाज़ी करेगा; और वही क्यों, ज्यादातर लोग यही समझेंगे। लेकि
आप ध्यान से देखें तो आपके सामने यह साफ़ हो जाएगा कि बुराई को
के लिए, बुराई को मिटाने के लिए हम जो कुछ करते हैं, वह पाप नहीं
नीति कहलाती है। उस काम को हमें साधारण नैतिक नियमों से तो न
।"

श्यामनाथ ने विनम्रतापूर्वक कहा, "लेकिन मिस्टर विश्वंभर-दयाल, आप ज़रा सोचिए तो कि आप उससे क्या काम कराना चाहते हैं ?"

"वह तो मैंने आपको साफ़-साफ़ समझा दिया है!' विश्वंभरदयाल ने कहा, "मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि इसके बाद मैं उस लड़के को ए० एस० पी० नामज़द करा दूँगा—यह मेरा जिम्मा! मिस्टर तिवारी! कोरी भावुकता में पड़ जाना हम पुलिसवालों को शोभा नहीं देता!"

श्यामनाथ कभी भी अच्छे तार्किक नहीं रहे; विश्वंभरदयाल ने जो तर्क दिये थे, वे उनके लिए अकाट्य थे। पर उनकी आत्मा कह रही थी कि श्यामनाथ से एक बहुत जघन्य काम करने को कहा जा रहा है। उन्होंने एक बार फिर प्रयत्न किया, "मिस्टर विश्वंभरदयाल, मैं आपसे विनय करता हूँ कि आप और कोई दूसरा रास्ता बतलाइए! आप अपनी शर्त पर मत अड़िए—मैं आपसे फिर कहता हूँ कि वह लड़का आपकी इस शर्त को किसी हालत में न मानेगा।" श्यामनाथ के स्वर में एक करुण विवशता स्पष्ट थी।

"आप कोशिश तो करके देखिए, मिस्टर तिवारी; मैं जानता हूँ कि वह राजी हो जायेगा। सिर्फ़ उसे अच्छी तरह समझाने की ज़रूरत है! मैं उसे खुद समझाता, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं सुनेगा, क्योंकि वह मुझे गैर समझता है!"

"और अगर वह न माना ?"

"अगर वह न माना ?" विश्वंभरदयाल ने अपने माथे पर हाथ लगाते हुए श्यामनाथ के प्रश्न को दुहराया, "और अगर वह न माना तो मिस्टर तिवारी, मामला मेरे हाथ के बाहर है, क्योंकि इस मामले की खबर केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के पास पहुँच चुकी है। उस वक्त मामला अदालत के हाथ में होगा!"

इस उत्तर से श्यामनाथ तिलमिला उठे। वे उठ खड़े हुए, उस समय उनका मुख क्रोध से लाल हो गया था, "अच्छी बात है, मिस्टर विश्वंभरदयाल—मैं जाता हूँ। आप जो चाहें करें, मैं समझ गया कि आपसे मेरा कुछ भी भला नहीं हो सकता। आपके यहाँ हम लोगों का दौड़ना, अपने को इतना नीचे गिराना बेकार था!" और श्यामनाथ चल दिये।

रामनाथ श्यामनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्यामनाथ से सब बातें सुनकर उन्होंने कहा, "श्यामू! वारदात तुम्हारे इलाके में हुई है, जितनी भी शहादत पेश होगी, वह फ़तेहपुर की होगी। तुम अपने इलाके को सँभालो जाकर, और मैं लखनऊ जा रहा हूँ—होम-मेंबर से मिलने।"

उसी दिन शाम के समय पंडित रामनाथ तिवारी लखनऊ के लिए रवाना हो गये।

एकाएक खबर आई कि गांधी-इर्विन पैक्ट हो गया। दयानाथ को यह खबर उस समय मिली, जब वह कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ अपने कमरे में बैठा हुआ भावी कार्यक्रम पर बातचीत कर रहा था। टेलीफोन का रिसीवर रखते हुए उसने अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगों को यह ख़बर दी। सब लोग थोड़ी देर के लिए चुप हो गये। फिर दयानाथ ने एक मुसकराहट के साथ कहा, "चलो ! झगड़ा खत्म हुआ !"

और उसी समय ब्रह्मदत्त ने कहा, "जो कुछ हुआ, वह बुरा हुआ। यह हमारी जीत नहीं, बल्कि हार हुई।"

मार्कंडेय पास ही बैठा हुआ था। उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो, ब्रह्मदत्त !"

दयानाथ बिगड़कर बोला, "क्यों ? इसमें ठीक क्या है ? मैं तो कहता हूँ कि इसमें कांग्रेस की विजय हुई। ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस के आगे झुकना पड़ा। समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा।"

"जैसा मजबूर होना पड़ा, वह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ," ब्रह्मदत्त ने ज़रा तेज़ी से कहा, "महात्मा गांधी राउंड टेबिल कांफ्रेंस में जायेंगे—है न ऐसा ! और वहाँ एक-से-एक प्रतिक्रियावादी हिंदुस्तानी मौजूद हैं। स्पीचें होंगी, बहसें होंगी, और इसके बाद—टांय-टांय फिश ! न कुछ होने का, न कुछ मिलने का।"

यह ब्रह्मदत्त का व्यक्तिगत विचार था, और अगर दयानाथ इस व्यक्तिगत विचार से असहमत था तो वह भी अपना व्यक्तिगत विचार प्रकट कर सकता था। लेकिन दयानाथ एकाएक बिगड़ उठा। उसने कहा, "तुम उतना ही सोच-समझ सकते हो, जितनी तुम्हें शिक्षा मिली है, उसके आगे सोचना-समझना तुम्हारे लिए असंभव है !"

मार्कंडेय ने उसी समय दयानाथ को टोका, "क्या कह रहे हो, दयानाथ ! तुम अपने शब्द वापस ले लो !"

लेकिन शब्द निकल चुके थे, और उन शब्दों का वापस आना गैरमुमकिन था। ब्रह्मदत्त ने तड़पकर उत्तर दिया, "वह शिक्षा जो दूसरों का रक्त चूसकर अर्जित किये गये धन की सहायता से तुम्हें मिली है, वह तुम्हीं को मुबारक हो ! उस शिक्षा के साथ मानवता का अभिशाप है ! वह शिक्षा, जिस पर तुम्हें इतना अभिमान है, जिसका तुम दिन-रात ढिंढोरा पीटा करते हो, कल्याणकारी हो ही नहीं सकती !"

दयानाथ का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, "ब्रह्मदत्त ! तुमने मेरा अपमान किया है। लेकिन यह ख़ैरियत है कि तुमने मेरे अतिथि की हैसियत से मेरा अपमान किया है !" और दयानाथ उठ खड़ा हुआ।

ब्रह्मदत्त भी उठ खड़ा हुआ, "मैंने तुम्हारा अपमान किया है, इसलिए कि

मैं गरीब हूँ। और तुम जो अमीर हो, सब कुछ कह सकते हो, सब कुछ कर सकते हो बिना किसी की भावना को ठेस पहुँचाये हुए—बिना किसी का अपमान किये हुए ! कितनी मजेदार बात है !"

मार्कंडेय ने दयानाथ का हाथ पकड़कर बिठला लिया, "दया ! तुम अपने को भूल रहे हो, तुम अपने आदर्श से गिर रहे हो। तुमने अनुचित बात कही, अपने अनौचित्य को स्वीकार करने के स्थान पर तुम अपनी बात पर अड़े हुए हो !"

ब्रह्मदत्त वहीं खड़ा था, और मार्कंडेय ने दयानाथ से जो कुछ कहा, उससे ब्रह्मदत्त को एक तरह से संतोष हुआ। यह साबित हो गया था कि गलती दयानाथ की थी, ब्रह्मदत्त की नहीं। दयानाथ ने झल्लाकर कहा, "लेकिन···लेकिन··· मार्कंडेय, तुमने सुना कि ब्रह्मदत्त ने क्या-क्या कहा !"

"हाँ, ब्रह्मदत्त को यह सब कहने का पूरा अधिकार था, क्योंकि ब्रह्मदत्त को अहिंसा पर विश्वास नहीं। ब्रह्मदत्त की नैतिकता और तुम्हारी नैतिकता में जमीन-आसमान का अंतर है। अगर ब्रह्मदत्त की हिंसात्मक नीति को तुमने भी अपना लिया, तो तुम्हारा पवित्रता का वह सिद्धांत, मानवता का वह आदर्श, जिसे तुम अपने जीवन में अपना चुके हो—वह सब कहाँ रह गया ?"

मार्कंडेय की पहली बात ने ब्रह्मदत्त को शांत करने के लिए जो कुछ भी प्रभाव उत्पन्न किया था, उसकी दूसरी बात ने उस सब पर पानी फेर दिया। ब्रह्मदत्त बुरी तरह भड़क उठा,' तुम्हीं लोगों को मुबारक हो यह तुम्हारा ढोंग—क्योंकि यह सब सिद्धांत, यह सब नैतिकता, जिसकी तुम गला फाड़कर दुहाई देते हो—इस सब को मैं कोरा ढोंग समझता हूँ और खुले आम कहता भी हूँ। तुम देवता बनो—मैं तो मनुष्य की हैसियत से कायम रहने में ही अपना गौरव समझता हूँ।"

"काश कि तुम—तुम्हीं क्या, हम सब, मनुष्य बन सकते, ब्रह्मदत्त ! हम सब में पशुता है, वही पशुता जिसे हम हिंसा कहते हैं। और मानवता के विकास के अर्थ होते हैं उस हिंसा को अपने से निकाल बाहर करना, उस पशुता को छोड़ देना। लेकिन मैं देखता हूँ कि अपनी उस पशुता को कायम रखने पर तुम तुले हुए हो। यही नहीं, अपनी उस पशुता पर तुम्हें गर्व भी है !" मार्कंडेय ने कहा।

ब्रह्मदत्त जोर से हँस पड़ा, "कायरता और नपुंसकता पर विश्वास करने वाले गुलामो ! इंसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें पैदा करो—खूब पैदा करो ! लो, मैं तो चला !" और ब्रह्मदत्त वहाँ से चलता बना। ब्रह्मदत्त तो उस कमरे से चला गया, लेकिन उसकी हँसी का ठहाका उस कमरे में गूँजता रहा।

इतनी कटु बातचीत के बाद यह स्वाभाविक ही था, कि कांग्रेस की उस कमेटी में एक प्रकार की शिथिलता आ जाती। ब्रह्मदत्त के जाने के बाद धीरे-धीरे कमेटी के सभी कार्यकर्ता वहाँ से चले गये। अकेले दयानाथ और मार्कंडेय वहाँ रह गये—

ब्रह्मदत्त की हँसी का ठहाका अब भी दयानाथ के कानों में गूँज... कठोर और कर्कश ! दयानाथ सोच रहा था—मौन ! म

दयानाथ की इस गंभीर मुद्रा को कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर उसने दयानाथ का कंधा हिलाते हुए पूछा, "दयानाथ, क्या सोच रहे हो?"

दयानाथ मानो चौंक उठा। उसने कहा, "मार्कंडेय! ब्रह्मदत्त की बात सुनी?"

"हाँ, सुनी! लेकिन उससे क्या?"

"उससे क्या?" दयानाथ के मत्थे पर बल पड़ गये, "उससे क्या?—मार्कंडेय, बड़ी कठोर बात कह गया वह चलते-चलते! इंसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें। ठीक यही शब्द हैं उसके! मार्कंडेय, मैं सोच रहा हूँ क्या वास्तव में उसकी बात ठीक है!"

"तुम क्या समझते हो?" मार्कंडेय ने मुसकराते हुए पूछा।

"मैं क्या समझता हूँ? मार्कंडेय! जो कुछ मैं समझता हूँ, उसे कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। इतने दिनों तक जिस सिद्धांत को अपने जीवन का एकमात्र सत्य मान रखा है, यही नहीं, जिस सिद्धांत को मैंने अपना अस्तित्व ही बना लिया है, वह कहीं मिथ्या न साबित हो जाय? इसका मुझे डर लगता है, इसीलिए मैं सच कहता हूँ, उस पर सोचने-समझने की इच्छा नहीं होती, कायर की तरह उस प्रश्न को जबर्दस्ती अपने सामने से हटा देता हूँ। फिर भी, मार्कंडेय! जो कुछ सुनता हूँ, उसका असर तो मुझ पर पड़ता ही है!"

दयानाथ की इस करुण मुद्रा से मार्कंडेय गंभीर हो गया। उसने गौर से दयानाथ के उतरे हुए चेहरे को देखा और फिर वह उठ खड़ा हुआ। वह दयानाथ के सामने—ठीक सामने खड़ा हो गया, और दयानाथ के कंधों पर उसने अपने दोनों हाथ रख दिये। दयानाथ की नजर से अपनी नजर मिलाते हुए उसने कहा, "दयानाथ! जो कुछ मिथ्या है, वह त्याज्य है। उस पर मोह करना अपने को धोखा देना है, अपने ही साथ विश्वासघात करना है। और इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करूँगा कि तुम सोचो, ठीक तरह से सोचो और समझो! बाहर की बातों का असर तुम पर इसलिए पड़ता है कि तुम्हारे अंतर में अविश्वास है, निर्णय की कमी है। तुमने अपनी बुद्धि को पूर्ण विकास का अवसर नहीं दिया है। यह हिंसा और अहिंसा का प्रश्न—यही आज का एकमात्र प्रश्न है। यह याद रखना, दूसरों को सुधारने की प्रवृत्ति हिंसा है, स्वयं सुधरने की प्रवृत्ति अहिंसा है। अगर इस बुनियादी बात पर तुम्हें विश्वास हो सके, यदि तुम्हारी बुद्धि इसे स्वीकार कर सके, यदि तुम्हारी आत्मा इस बात को पूर्ण रूप से ग्रहण कर ले, तब दूसरों की बातों का असर तुम पर पड़ने के स्थान पर तुम्हारी बातों का असर दूसरों पर पड़ेगा, तब तुम्हारे अंदर कमजोरी के स्थान पर बल और साहस आ जायगा!"

मार्कंडेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। वह उठ खड़ा हुआ और मुसकराया, "शायद तुम ठीक कहते हो, मार्कंडेय—मुझे आत्मविवेचन करना ही होगा।"

मार्कंडेय के चले जाने के बाद दयानाथ अकेला रह गया। उस समय रात हो

गई थी और नौकर ने कमरे की बिजली जला दी थी। दयानाथ वैसा ही बैठा रहा। वह उस समय तेजी के साथ सोच रहा था। उस समय उसकी हालत ठीक वैसी हो रही थी, जैसी बारात चले जाने के बाद लड़की के पिता की होती है। उसकी आत्मा में एक प्रकार की भयानक निश्चिन्तता भर गई थी।

इधर कई महीने किस हलचल में बीते; ऐसी हलचल, जिसमें दयानाथ ने अपने को पूरी तौर से खो दिया था। और एकाएक वह हलचल खतम हो गई। दयानाथ के सामने अब थी वास्तविकता—कठिन और शुष्क!

क्या से क्या हो गया? आज दयानाथ मानो इस विषय पर विचार करने को कटिबद्ध हो गया था। नशा उतर जाने के बाद अर्धचेतन खुमार में जिस प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क धुंधला हो जाता है, ठीक उसी तरह उस समय उसका मस्तिष्क धुंधला था। चीजों को ठीक तरह से देखने की क्षमता उसमें नहीं है, वह यह अच्छी तरह जानता था। लेकिन फिर भी वह जबर्दस्ती सोच रहा था!

'क्या से क्या हो गया?' यह केवल एक मीमांसा भर थी, लेकिन इस मीमांसा के अन्दर एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न भी था—'आगे चलकर क्या होनेवाला है?' विगत शून्य का नाम है, लेकिन विगत की स्थिति भविष्य की कल्पना के साथ मिलकर एक समस्या बन जाती है। विगत अनुभव भविष्य का निर्माण-कर्ता होता है; और दयानाथ का विगत कटुताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह था। उन कटुताओं से घिरा हुआ दयानाथ सोच रहा था।

उसने वैभव को ठुकरा दिया था, एक आदर्श को पाने के लिए। और मानो उस आदर्श का मूल्य चुकाने के लिए अकेला उसका वैभव ही काफी न था, उसको अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ा था, अपने घरवालों से सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में। प्रभानाथ डकैती और हत्या के अभियोग में जेल में है और इस विपत्ति के काल में भी उसके पिता ने उसे नहीं पूछा। उसके पिता ने उसे सदा के लिए शरीर के सड़े हुए अंग की भाँति काटकर फेंक दिया। आज दयानाथ की क्या स्थिति थी? उसका आदर्श उसे कहाँ तक बढ़ा सका था? कानपुर-नगर में उसकी कितनी इज्जत थी? जनता पर उसके प्रभाव का कितना स्थायित्व था? जो बलिदान उसने किया था, उसका पुरस्कार क्या था और कैसा था?

दयानाथ जानता था कि उसके विरोधियों की संख्या काफी अधिक है। वह सोच रहा था, 'आखिर मेरा इतना विरोध क्यों? क्या मैं ईमानदार नहीं हूँ? क्या मैंने बलिदान करने में कोई कमी की है? क्या मैंने व्यक्तिगत लाभ पर [illegible] है? और इतना होते हुए भी मेरा विरोध बहुत अधिक है, [illegible] जा रहा है। आखिर लोग अकारण ही मेरा विरोध क्यों करते हैं?'

और स्वयं दयानाथ ने ही उत्तर दिया, 'गिरे हुए स्वार्थी [illegible] आदमी! यही लोग मेरा विरोध करते हैं!' यह बकवास! [illegible] अशिक्षित और उद्दत! इसकी ईमानदारी पर भी लोगों [illegible]

लोग उसको मानते हैं—उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। आख़िर उसमें कौन-सी योग्यता है? उसने कौन-सा त्याग किया है? कांग्रेस में आने से पहले उसकी आर्थिक स्थिति क्या थी, और आज क्या है? किस कुल और समाज का वह आदमी है—उसकी संस्कृति कितनी, उसका चरित्र ही क्या? फिर भी लोग उसे मानते हैं! यह क्यों? वह नेता क्यों बन गया? कैसे बन गया?'

दयानाथ ज़ोर से कह उठा, 'क्या मेरा यह सब त्याग बेकार गया?'

८

दयानाथ का त्याग वास्तव में बेकार गया या नहीं, यह नगर-कांग्रेस के सभापति के चुनाव से साबित होने वाला था।

कांग्रेस-कमेटी के सभापति पद के लिए खड़े होने की इच्छा दयानाथ में ज़रा भी न थी, पर उसके दलवालों ने उसे उस पद के लिए खड़े होने को मजबूर किया। लाला रामकिशोर के इस्तीफ़े से विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी। लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख नागरिक थे, करोड़पति और मिल-मालिक। कांग्रेस के भी वे बहुत बड़े कार्यकर्ता थे। लेकिन उस मूवमेंट में लाला रामकिशोर का जेल न जाना लोगों को बुरा लगा। लाला रामकिशोर का स्वास्थ्य अच्छा न था, और डॉक्टरों ने—उनमें कानपुर के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता डॉक्टर हीरालाल भी थे—लाला रामकिशोर को आगाह कर दिया था कि जेल का जीवन व्यतीत करने पर उनका हृदय-रोग उभड़ सकता है। लेकिन जनता को लाला रामकिशोर के व्यक्तिगत जीवन से कोई दिलचस्पी न थी, उसने यही मतलब लगाया कि ऐन मौक़े पर वे अपने को बचा गए।

इसके अलावा समाजवादी-दल एक अरसे से लाला रामकिशोर के ख़िलाफ़ प्रचार करता रहा था। उस दलवालों का कहना था कि लाला रामकिशोर कांग्रेस में इसलिए हैं कि कांग्रेस-द्वारा पूँजीपतियों का भला हो सकता है। लाला रामकिशोर की मिलों के मजदूरों के साथ वही अन्याय तथा ज़्यादतियाँ होती थीं, जो अन्य पूँजीपतियों की मिलों में मजदूरों के साथ होती हैं। और लाला रामकिशोर के जेल न जाने से इन वाम-पक्ष वालों का ज़ोर बढ़ रहा था।

दयानाथ लाला रामकिशोर की पार्टी का आदमी था। कांग्रेस के कार्यकर्ता अभी तक दक्षिण-पंथ के लोग ही होते आए थे—और संभवतः उसका कारण था कि दक्षिण-पंथ के लोगों के पास पैसा था। पर अब परिस्थिति बदल रही थी, वाम-पंथ के आदमी आगे बढ़ रहे थे। उनको रोकना जरूरी था; और इसलिए लाला रामकिशोर की पार्टी ने दयानाथ को ढाल की तरह कानपुर-नगर-कांग्रेस-कमेटी के सभापति-पद के लिए खड़ा कर दिया। जनता जानती थी कि दयानाथ महान् त्यागी तथा निस्वार्थ आदमी हैं।

लेकिन हवा बदल चुकी थी—रामकिशोर बुरी तरह बदनाम हो गए थे, और

रामकिशोर के साथ रामकिशोर की पार्टी भी बदनाम हो चुकी थी। दयानाथ का व्यक्तित्व क्या उस हवा के रुख को बदल सकेगा, प्रश्न यह था!

इस प्रश्न का उत्तर मार्कंडेय ने दयानाथ को अपनी सलाह के रूप में दिया, "दयानाथ! अब भी समय है। ब्रह्मदत्त से मिलकर बातें कर लो, हम समझते हैं कि उनको अपने पक्ष में करने से हमें बहुत बड़ी सहायता मिलेगी!"

उस पर दयानाथ ने कहा, "नहीं, मार्कंडेय! ब्रह्मदत्त से बात करना, उनकी खुशामद करना—इतना नीचे गिरने में मुझे विश्वास नहीं। मैं जानता हूँ कि मुझे विजय मिलेगी।"

मार्कंडेय हँस पड़ा, "दया, तुम गलती कर रहे हो। यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि तुम्हें सफलता मिलेगी ही!"

"क्या कहा!" दयानाथ मानो आश्चर्य से चौंक-सा उठा, "क्या तुम समझते हो कि मेरी सफलता अनिश्चित है? मार्कंडेय, मुझे विश्वास नहीं होता तुम्हारी बात पर!"

"विश्वास करना होगा, दया! कल्पना-लोक से उतरकर हमें वास्तविकता का मुकाबला करना है। तुम शायद नहीं जानते कि लाला रामकिशोर के कारण हमारी पार्टी का बल बहुत घट गया है। फिर कांग्रेस में बहुत-से नए-नए आदमी आ ग[illegible]।"

[illegible] दयानाथ [illegible]

"अगर लोग तुम्हारे खिलाफ वोट दें तो मुझे तो कोई आश्चर्य न होगा!" मार्कंडेय ने सहज भाव से कहा।

दयानाथ का चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर, मार्कंडेय! मैं समझूँगा कि कांग्रेस बेईमान और अयोग्य आदमियों का एक समूह भर है!"

"और यह समझकर भी तुम गलती ही करोगे, दयानाथ!" मार्कंडेय ने थोड़ा-सा गंभीर होकर कहा, "क्योंकि तुम्हें वोट देने के समय लोग तुम्हें वोट न देंगे, बल्कि तुम्हारी पार्टी को वोट देंगे। और तुम जानते ही हो कि तुम्हारी पार्टी किसी हद तक बदनाम हो चुकी है।"

"लेकिन मार्कंडेय! सभापति पद के लिए मैं खड़ा हो रहा हूँ, व्यक्ति की हैसियत से! जो लोग मुझे वोट नहीं देते, उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं, मेरी नेक-नीयती और ईमानदारी पर उन्हें शक है।"

मार्कंडेय ने कहा, "दयानाथ, एक बात याद रखना—लोग वोट देने आते हैं, वोट न देने नहीं आते हैं। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारे अलावा उन लोगों के सामने एक और भी आदमी है—और उस आदमी प[illegible] अधिक विश्वास हो सकता है, उस आदमी को वे तुमसे अधिक पसंद कर[illegible]

"लेकिन मार्कंडेय, मेरे मुकाबले जो आदमी खड़ा है, [illegible]

तुम्हें ही नहीं, सब लोगों को यह मालूम है कि रुपये-पैसे के विषय में उसमें ईमानदारी की कमी है!"

"मैं जानता हूँ, दयानाथ! लेकिन तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम समर्थ हो, तुम्हारे सामने अभाव नहीं है और इसलिए तुम ईमानदार बने रह सकते हो। लेकिन इस बात से मुझे मतलब नहीं—जब तुमने अपनी बात उठाई है तब मैं उसी पर बात करूँगा। यह तो तुम जानते ही हो कि बहुत से लोग तुम्हारे व्यक्तिगत रूप से खिलाफ हैं!"

"हाँ, यह मैं मानता हूँ।"

"और क्या तुमने कभी यह सोचा है कि यह क्यों? तुमने उनका कोई अहित नहीं किया, फिर वे लोग तुम्हारे खिलाफ क्यों हैं?" मार्कंडेय ने पूछा।

"हाँ मार्कंडेय, मैंने इस पर बहुत सोचा। लेकिन मुझे इसका कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि आखिर वे लोग मेरे खिलाफ क्यों हैं! अभी तुम्हीं ने कहा है कि मैंने उनका कोई अहित नहीं किया, मैंने अपने जीवन में कोई ऐसा काम नहीं किया कि लोग मुझसे घृणा करें। फिर भी मैं कभी-कभी यह अनुभव करता हूँ कि कुछ लोग मुझसे घृणा तक करते हैं।"

"तो मैं इसका कारण बतलाता हूँ," मार्कंडेय ने कहा, "दयानाथ! तुममें अहंमन्यता है, कठोर और कुरूप; और लोग तुम्हारी अहंमन्यता बर्दाश्त नहीं कर सकते! तुम्हारी हर हरकत में, तुम्हारे हर काम में, दूसरे के साथ तुम्हारे बर्ताव में तुम्हारी अहंमन्यता का जबर्दस्त पुट रहता है और अपनी उस अहंमन्यता को तुम देख नहीं पाते, क्योंकि वह तुमसे पृथक् की चीज़ नहीं।"

दयानाथ कुछ देर तक चुपचाप मार्कंडेय की इस बात पर सोचता रहा, फिर एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो, मार्कंडेय! लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ! मैं वास्तव में अनुभव करता हूँ कि अधिकांश मनुष्य ऐसे नहीं हैं जिनके साथ मैं बराबरी से मिल सकूँ। उनमें बेईमानी है, उनमें बेवकूफी है, उनमें संस्कृति, शिष्टता और सभ्यता का अभाव है!" यह कहते-कहते दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "मार्कंडेय, समझ में नहीं आता कि क्या करूँ! आज तुमने एक बहुत कटु सत्य मेरे सामने रख दिया, जिसकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनाव बहुत नज़दीक आ गया है, और इस चुनाव में मुझे सफलता प्राप्त करनी है—जिस तरह भी हो वैसे! ज़रा कोशिश करो!"

मार्कंडेय भी उठ खड़ा हुआ, "दयानाथ, मैं तो केवल एक उपाय देख पा रहा हूँ—वह है ब्रह्मदत्त से बातें करके उसे अपनी तरफ कर लेना!"

"ब्रह्मदत्त से मिलना, ब्रह्मदत्त की खुशामद करना! नहीं मार्कंडेय, यह असंभव है, मुझसे किसी हालत में न होगा। मैं ब्रह्मदत्त को जानता हूँ, पतित और बेईमान आदमी! उससे मिलने में कोई फायदा नहीं!"

"और मेरा खयाल है कि ब्रह्मदत्त के संबंध में आपकी धारणा बहुत गलत है, बड़के भइया!" दयानाथ को उमानाथ के ये शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़े।

"अरे उमा—तुम ! कब आए ? और ददुआ कहाँ है ?" दयानाथ ने पूछा।

"ददुआ [illegible] !" उमानाथ ने [illegible] प्रभा की पैरवी [illegible]

"मेरे संबंध में भी कुछ कहा है ?" दयानाथ ने जरा हिचकिचाते हुए पूछा।

"जी···कुछ नहीं; शायद जल्दी में थे !" दबी जबान उमानाथ ने उत्तर दिया।

"हूँ !" दयानाथ ने केवल इतना कहा, लेकिन उनके इस छोटे-से 'हूँ' में एक असह्य पीड़ा थी। दयानाथ मौन हो गया, और उसकी आँखों के आगे एक भयानक सूनापन आ गया। मार्कंडेय पास ही खड़ा था, उसने दयानाथ की उस अंतर्वेदना को पढ़ लिया। उसने कहा, "दया ! साहस करो, अपने को सुस्थिर रखो ! साधना का मार्ग बड़ा कठिन है, उस मार्ग पर रत रहना ही तुम्हारे लिए इष्ट है। बड़ी विषम स्थिति में आ पड़े हो दयानाथ, यह तुम्हारे आत्मिक बल की परीक्षा का समय है। सँभालो अपने को, जैसे भी हो सँभालो !" और यह कहकर मार्कंडेय चला गया।

मार्कंडेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा। उसकी चेतना और कर्मण्यता एकाएक जाग उठी; एक बार फिर वह अपने आपे में आ गया। उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मेरा इस समय क्या कर्तव्य है ! इतनी बड़ी विपत्ति के समय मैं पूछा तक नहीं जा रहा हूँ, जैसे मैं मर गया हूँ !"

उमानाथ मुसकराया, "केवल ददुआ की नजर ही में, बड़के भइया ! हम लोगों की नजर में नहीं। काशन, मैं और प्रभा—हम सब आपके हैं, आप हमारे हैं। प्रभा पर जितना अधिकार ददुआ का है, उतना ही अधिकार आपका भी है। आप जो कुछ भी कर सकते हैं, कीजिए, यद्यपि इसमें मुझे बहुत कम आशा है कि आप वास्तव में कुछ कर सकेंगे।"

"क्यों ? मैं क्यों न कुछ कर सकूँगा ?" दयानाथ ने पूछा, "उमा ! मैं वकील हूँ—कानपुर नगर का एक प्रमुख वकील; और जहाँ तक मैं समझता हूँ, प्रभा का मामला अब अदालत में आ गया है। ऐसी हालत में इस मामले में जो कुछ कोई कर सकता है, वह वकील ही कर सकता है !"

उसी दिन रात के समय पंडित श्यामनाथ तिवारी भी फतेहपुर से कानपुर आ गए। श्यामनाथ सीधे होटल पहुँचे, पर जब वहाँ उन्हें पंडित रामनाथ तिवारी और उमानाथ के आने की सूचना न मिली तो वह दयानाथ के यहाँ आए।

उमानाथ ने श्यामनाथ को, लखनऊ में जो कुछ हुआ था, वह [illegible]रेवार, बतला दिया।

श्यामनाथ उमानाथ से सब बातें सुनकर कुछ देर सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने दयानाथ की ओर देखा, "दया ! अब क्या हो ? प्रभानाथ को किसी तरह बचाना ही होगा, वह तुम्हारा भाई है !"

दयानाथ ने मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "काका ! वकालत छोड़ चुका हूँ, लेकिन भाई को बचाने के लिए फिर वकालत करूँगा—जो कुछ मेरे बस में है, उठा न रखूँगा ! देश के अच्छे से अच्छे वकील को बुलाऊँगा। हाँ, पुलिस के गवाह तो आपके ही हाथ में हैं न !"

"हाँ, दया ! मैंने उनसे बातें कर ली हैं और जहाँ तक मैं समझता हूँ, वे अपना बयान बदल देंगे। कल मैंने उस कांस्टेबिल को, जो मेरे बंगले में तैनात था, यहाँ बुलाया है, उससे बातें कर लेना !"

"तब फिर मामले में क्या रखा है ! मैं समझता हूँ कि प्रभा के छूटने में कोई अड़चन न होगी।" उमानाथ ने कहा।

"तुम गलती करते हो, उमा !" दयानाथ ने कहा, "काका के सामने ऐसी मुसीबतें खड़ी हो सकती हैं, जिनकी काका ने कभी कल्पना भी न की हो ! प्रभा के खिलाफ जुर्म बड़ा संगीन है और साथ ही यह भी याद रखना कि क्रांतिकारियों के मामले में सरकार पूरी-पूरी दिलचस्पी लेती है !"

यह बातें हो ही रही थीं कि माताप्रसाद के आने की सूचना आई। श्यामनाथ ने माताप्रसाद को वहीं बुलवा लिया। माताप्रसाद ने आते ही श्यामनाथ को लंबा-चौड़ा सलाम किया, "हुजूर की कार इधर आते हुए दिख गई थी। सोचा, हुजूर को हाजिरी देता चलूँ।"

"आपकी बड़ी मेहरबानी है ! तशरीफ रखिए !" श्यामनाथ ने कहा, "कहिए, विश्वंभरदयाल साहेब अभी यहीं हैं न ?"

"जी हाँ—इसी होटल में है !"

"क्या हाल हैं उनके ?"

"कुछ न पूछिए, हुजूर ! अब तो मुझसे भी भेद रखने लगे। अपनी जिद पर अड़े हुए हैं ! अच्छा हुजूर—एक अर्ज करूँ ?"

"हाँ-हाँ, कहिए !"

गला साफ करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुजूर ! मामला तो हमीं लोगों के हाथ में है। अगर विश्वभरदयाल साहेब को कोई सबूत ही न मिलने पाए ! हुजूर ही तो फतेहपुर के कप्तान हैं !"

श्यामनाथ ने माताप्रसाद को ध्यान से देखा। वह सोच रहे थे, कहीं यह आदमी भेद तो लेने नहीं आया है। लेकिन उनका अनुभव उनसे कह रहा था कि माताप्रसाद उनके साथ विश्वासघात नहीं करेगा। फिर भी कुछ सँभलते हुए श्यामनाथ ने कहा, "मामला तो विश्वंभरदयाल के हाथ में है, माताप्रसाद साहेब ! सरकार ने यह मामला उनके हाथ में सौंप दिया है। और जैसा विश्वंभरदयाल साहेब चाहेंगे, वैसा करेंगे !"

माताप्रसाद मुसकराए, "लेकिन हुजूर! हम लोग तो आपके आदमी हैं, और हमारे लिए आपकी आज्ञा सब कुछ है। जो कुछ आप कहेंगे, वही होगा।"

श्यामनाथ अब फट पड़े, "माताप्रसाद! प्रभानाथ को बचाना है, जिस तरह भी हो, बचाना है—मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ!"

"तो हुजूर, विश्वास रखिए—उसे बचाने की जी-जान से कोशिश करूँगा!" माताप्रसाद ने कहा, "आप मुझे अपना ही आदमी समझिए!"

"माताप्रसाद! इसमें मेरी जो कुछ भी मदद करोगे, वह बेकार न जाएगी, यह तो तुम जानते ही हो!"

"हाँ, हुजूर! आप लोगों के आला खानदान को और आप लोगों की उदारता को कौन नहीं जानता! लेकिन उन सबकी बात नहीं—सिर्फ हुजूर के खयाल से यह सब करूँगा।"

माताप्रसाद इसी के लिए श्यामनाथ के पास आए थे। श्यामनाथ को एक और सहायक मिला।

लेकिन न माताप्रसाद को और न श्यामनाथ को इस बात का पता था कि उनका साबिका एक बहुत जबर्दस्त आदमी से पड़ रहा है। विश्वंभरदयाल का व्यक्तित्व कितना प्रबल है, वह क्या-क्या कर सकता है, अगर इसका पता माताप्रसाद को होता, तो वह कभी भी ऐसी बात न कहते।

दूसरे दिन जब सुबह के समय माताप्रसाद विश्वंभरदयाल के यहाँ पहुँचे, विश्वंभरदयाल ने बड़े तपाक के साथ उनका स्वागत किया। माताप्रसाद को बिठलाते हुए विश्वंभरदयाल ने पूछा, "कहिए माताप्रसाद साहेब! पंडित श्यामनाथ तिवारी के कैसे मिजाज हैं? मुझसे तो बेहद नाराज होंगे!"

अपनी घबराहट दबाते हुए माताप्रसाद ने उत्तर दिया, "जी हुजूर! कल रात कप्तान साहेब मिल गए थे तो उन्होंने मुझे बुला लिया था। बहुत ज्यादा फिक्र में हैं!"

विश्वंभरदयाल मुसकराया, "तो इसमें आपके हिचकिचाने की क्या [illegible] है, माताप्रसाद साहेब? वे आपके अफसर हैं, और अगर [illegible] उनके बँगले के [illegible]-ब-खुद मिलने गए, तो इसमें हर्ज ही क्या है जो यह बात [illegible] जाए!" [illegible] इसके बाद विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद से मुकदमे की [illegible] शुरू कर दी।

"बातचीत खत्म हो जाने के बाद विश्वंभरदयाल [illegible] हुए कहा, [illegible] तक मेरा खयाल है, आज शायद पंडित श्यामनाथ [illegible] का [illegible] हो जायगा।"

"कप्तान साहेब का आज तबादिला हो [illegible]" [illegible]

"लेकिन उनके तबादिले की तो कोई बातचीत [illegible]!"

विश्वंभरदयाल ने उत्तर दिया, "माताप्रसाद साहेब! [illegible] में हुआ है और हमें फतेहपुर की अदालत [illegible]

सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस है, उसकी मौजूदगी में हमें फतेहपुर से शहादत मिलने में कठिनाई होगी। इसी बात को खयाल में रखकर मैंने इंस्पेक्टर जनरल से उनका तबादिला करवा दिया है!"

"हुजूर ने मुनासिब ही किया!" माताप्रसाद ने दबी जबान उत्तर दिया।

"जी हाँ, मेरा भी कुछ ऐसा ही खयाल है। इसके अलावा आज वह बँगले वाला कांस्टेबिल पंडित श्यामनाथ के साथ कानपुर आने वाला था, नए सुपरिटेंडेंट पुलिस ने उसे भी रोक दिया होगा और उस पर कड़ी निगरानी बिठला दी होगी! है न मजेदार बात?" और विश्वंभरदयाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। लेकिन कितनी भयानक थी वह विश्वंभरदयाल की हँसी—माताप्रसाद सिर से पैर तक काँप उठे।

१०

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड! तुम्हारे कहने के मुताबिक मैंने अब की रविवार को मीटिंग बुला ली है। सब लोग इकट्ठा होंगे। लेकिन मैं देखता हूँ कि लोगों में जोश की कमी है।"

"यह स्वाभाविक ही है, कामरेड!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "एक बड़ा मूवमेंट समाप्त हो जाने के बाद लोगों में शिथिलता आ ही जानी चाहिए! लेकिन इस शिथिलता को दूर करना हमारा कर्तव्य है। साथ ही हम कोई मूवमेंट नहीं उठाने जा रहे हैं—हमारा मुख्य ध्येय होगा अपना प्रचार करना—और उसके लिए यही उपयुक्त अवसर है!" थोड़ी देर तक रुककर उमानाथ ने फिर कहा, "कम्युनिज्म का साहित्य जो हिंदी और उर्दू में छपवाने को मैंने तुमसे कहा था, उसका क्या किया?"

"वे पुस्तिकाएँ छप गई हैं और मिल-एरिया में बँट रही हैं। पुलिसवाले सरगर्मी के साथ तलाश कर रहे हैं कि ये पुस्तिकाएँ निकलती कहाँ से हैं!" और ब्रह्मदत्त हँस पड़ा।

उमानाथ मुसकराया, "ठीक है। और कामरेड, तुम शायद कामरेड नरोत्तम को जानते होगे। आदमी बड़ा उत्साही और काम का मालूम होता है।"

ब्रह्मदत्त की भृकुटियों में बल पड़ गए, "कामरेड नरोत्तम! हाँ, मिला तो कई बार हूँ, लेकिन उसके संबंध में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है। तुम्हारा मतलब क्या है?"

"वह अभी यहीं आने वाले हैं। काम को विस्तृत रूप से चलाने में हमें अधिक-से-अधिक आदमियों की जरूरत पड़ेगी न! कामरेड मारीसन ने कामरेड नरोत्तम से मेरा परिचय कराया था। उन्होंने यह भी कहा था कि नरोत्तम ने उन्हें बहुत काफ़ी मदद दी है। मैं समझता हूँ कि बाहर के प्रचार के लिए हम कामरेड नरोत्तम को नियुक्त कर दें, आदमी शिक्षित और कर्मण्य है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, लेकिन उसकी मुसकराहट किसी हद तक व्यंग्यात्मक

थी, "जहाँ तक बाहर के प्रचार का सवाल है, मुझे कुछ नहीं कहना
है, क्योंकि यह मेरा क्षेत्र नहीं है। लेकिन कामरेड, मैं तुम्हें एक बात से आगाह कर देना आवश्यक समझता हूँ, नये और अनजाने आदमियों के संबंध में अच्छी तरह से छानबीन कर लेनी चाहिए।"

ब्रह्मदत्त के अविश्वास पर उमानाथ को हँसी आ गई। "ठीक कहते हो, कामरेड! मैंने कामरेड नरोत्तम की बाबत अच्छी तरह जानकारी हासिल कर ली है।" और उसी समय उसे बाहर से एक आदमी की आवाज सुनाई दी, "क्या मिस्टर उमानाथ घर पर हैं?"

"लो, कामरेड नरोत्तम आ गए!" कहकर उमानाथ कमरे के बाहर चला गया। बरामदे में एक नाटे कद का गोरा-सा युवक खड़ा था, सूट पहने हुए। उसकी आँखें चमकीली थीं और हाथ-पैर में एक अजीब तरह की चपलता। उमानाथ ने कहा, "आइए, कामरेड नरोत्तम! मैं आपके ही संबंध में कामरेड ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा था।" उमानाथ नरोत्तम का हाथ पकड़कर कमरे में ले आया। "इनको तो आप जानते ही होंगे—ये हैं कामरेड ब्रह्मदत्त!"

नरोत्तम मुसकराया, "नमस्कार, कामरेड ब्रह्मदत्त! हम लोग एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं।" उसने ब्रह्मदत्त से अपने नमस्कार का कोई जवाब न पाकर कहा, "आप लोग किसी गंभीर विषय पर बातें कर रहे थे।" और यह कहकर वह बैठ गया।

ब्रह्मदत्त एक शब्द नहीं बोला। वह ध्यान से कामरेड नरोत्तम को देख रहा था; एक तरह से ब्रह्मदत्त के देखने को असभ्यतापूर्वक घूरना भी कहा जा सकता था। नरोत्तम से वह केवल दो-चार बार मिला था, और प्रत्येक बार नरोत्तम ने उससे घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयत्न किया था। पर न जाने क्यों, ब्रह्मदत्त को नरोत्तम कभी पसंद नहीं आया। शिष्ट, हँसमुख और सुसंस्कृत नरोत्तम को वह क्यों नहीं पसंद कर सका, यह वह स्वयं न जानता था। नरोत्तम की चमकीली आँखों में उसे कुछ ऐसी चीज मालूम हुई, जिससे उसने नरोत्तम के निकट न आने में ही अपना कल्याण समझा। उसे कुछ ऐसा लगा, कि नरोत्तम में कुछ चीज है—छिपी हुई, बद! नरोत्तम मुसकराकर मिलता था, हँसकर बात करता था, लेकिन ब्रह्मदत्त को ऐसा लगता था कि नरोत्तम का यह मुसकराकर मिलना, हँसकर बात करना—यह सब उसके अंदरवाली किसी भयानक कुरूपता को छिपाने के लिए एक आवरण भर है!

उमानाथ ने बात छेड़ी, "तो फिर आपने तै कर लिया बाहर टूर करने के लिए?"

"जी हाँ—उसके लिए मैं एकदम तैयार हूँ। मुझे यहाँ से कब जाना है?"

"ऐसी कोई खास जल्दी नहीं—अभी कम से कम एक सप्ताह का [illegible] आपके पास है। इस बीच में हम लोगों को अपना कार्यक्रम निर्धारित करना पड़ेगा।"

"जी हाँ ! लोग कहते हैं कि जल्दी का काम शैतान का ! हर काम करने के पहले खूब अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिए !" और नरोत्तम खिलखिलाकर हँस पड़ा, "काम करने का प्लान भी तो बनाना है !"

"नहीं, प्लान बनाने की कोई जरूरत नहीं. वह मेरे पास बना-बनाया मौजूद है। आपको उसी प्लान के मुताबिक काम करना होगा।" उमानाथ ने कहा।

नरोत्तम ने कहा, "जी हाँ—उसी प्लान के मुताबिक काम करूँगा। लेकिन क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि वह प्लान आपने तैयार किया है या आपको कहीं और से मिला है ?"

ब्रह्मदत्त कुछ चौंक-सा पड़ा, "यह सवाल क्यों ?"

नरोत्तम ने ज़रा सँभलते हुए उत्तर दिया, "बात यह है कि अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने तैयार किया है, तो उसमें हम लोगों की सलाह से कुछ रद्दो-बदल किया जा सकता है। काम मुझको ही करना है न ! ऐसी हालत में अपनी कठिनाइयों के अनुसार उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहूँगा।"

"और अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने बनाया हो तो ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

नरोत्तम के उत्तर देने के पहले ही उमानाथ बोल उठा, "कामरेड ब्रह्मदत्त ! आपको मैं फिर बतला देना उचित समझूँगा कि हिंदुस्तान में कम्युनिस्ट पार्टी का मैं प्रमुख आदमी हूँ। मेरे ऊपर कोई नहीं है। यह प्लान मैंने बनाया है !"

उमानाथ का इतना अधिक खुल जाना ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा। उसने फिर एक बार प्रयत्न किया, "तो फिर ठीक है ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप कामरेड नरोत्तम को अपना कार्यक्रम बतला दें और इन्हीं से एक प्लान बनवा लें, क्योंकि काम इन्हीं को करना है !"

नरोत्तम हँस पड़ा, "आप ठीक कहते हैं, कामरेड ब्रह्मदत्त ! कामरेड उमानाथ, आप मुझे अपना प्लान दे दें और उसको मैं एक बार देखकर अध्ययन कर लूँ। इसके बाद जो-जो परिवर्तन मुझे उनमें आवश्यक पड़ेंगे—उन्हें नोट कर लूँगा और आपसे उन पर परामर्श कर लूँगा।"

लेकिन उमानाथ की अहंमन्यता उस समय तक सतह पर आ गई थी। दूसरों की यह मजाल कि वे उसके बनाए हुए प्लान पर अपनी कलम चलाएँ। उसने तेजी से कहा, 'कामरेड नरोत्तम ! जो प्लान मैंने बनाया है, वह बहुत सोच-समझकर ! आप कार्यकर्ता हैं; बिना किसी बात पर शंका किए, बहस किए, काम करना—यह आपका कर्तव्य है। आप यह प्लान ले जाइए, इसका अध्ययन कर लीजिए, फिर आपकी समझ में जो बातें न आएँ, उन्हें मैं आपको समझा दूँगा !"

और उमानाथ ने प्लान ड्राअर से निकालकर नरोत्तम को दे दिया।

की। उसी समय श्यामनाथ ने एक लंबी छुट्टी ले ली।

इलाहाबाद से श्यामनाथ तिवारी उन्नाव पहुँचे। जिस समय श्यामनाथ रामनाथ के यहाँ पहुँचे, वीणा रामनाथ तिवारी को अखबार सुना रही थी। अपने बड़े भाई के सामने पहुँचते ही श्यामनाथ रो-से पड़े, "भइया, सर्वनाश हो गया!"

"क्या बात है?" रामनाथ ने घबराकर पूछा।

"फ़तेहपुर का चार्ज मुझसे आज सुबह ले लिया गया। भइया! जो कुछ भी मैं प्रभा को बचाने के लिए कर सकता था, अब न कर सकूँगा।"

रामनाथ थोड़ी देर तक एकटक अपने छोटे भाई की ओर देखते रहे, इसके बाद उन्होंने अपनी आँखें शून्य में गड़ा दीं। कुछ रुककर उन्होंने धीरे से कहा, "श्यामू! तुम्हें नियति पर विश्वास है?"

श्यामनाथ मर्माहत-से मौन रहे।

रामनाथ ने कुछ देर तक श्यामनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा करके कहा, "नियति का चक्र चल रहा है, श्यामू! एक बहुत बड़ी ताकत हमारे खिलाफ़ है। जरा सोचकर और समझकर हमें उस ताकत का मुकाबला करना पड़ेगा, बहुत सँभलकर! एक कदम भी गलत पड़ा और विनाश अवश्यंभावी है। कहीं हम हार न जाएँ, इसका खयाल रखना पड़ेगा!" और अनायास ही रामनाथ उठ खड़े हुए, मानो उनका दम घुट रहा हो। उस समय वे कह रहे थे, अपने ही से, 'कहीं हम हार न जाएँ—हार न जाएँ! नहीं, हारना असंभव है!' और वे उस समय बरामदे से बाहर निकलकर खड़े हो गए। अमावस्या की रात घिर आई थी—अमावस्या के उस गहरे अंधकार में उन्होंने अपनी आँखें गड़ा दीं। 'हे भगवान्! क्या मुझे पराजित होना पड़ेगा? तुम चाहते क्या हो? तुम्हारे विरुद्ध लड़ना!—इतना बल मुझमें नहीं है! मुझे बल दो, मेरे भगवान्!'

उस रात पंडित रामनाथ तिवारी को नींद नहीं आई। उनकी समझ में न आ रहा था कि प्रभानाथ को किस तरह बचाया जाय। उनकी हरएक चाल गलत पड़ रही थी, हर जगह उन्हें असफलता मिल रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि नियति उनके साथ युद्ध कर रही है, और नियति ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह उन्हें पराजित करेगी ही।

सुबह उन्होंने श्यामनाथ से कहा, "श्यामू! कानपुर जाकर प्रभा की पैरवी का इंतजाम करो! इस बीच में मैं सोचूँगा कि क्या किया जाय!"

पर मानो श्यामनाथ के प्राणों में बल ही न रह गया हो। बड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, "भइया! आप कानपुर चलिए! मुझसे कुछ न हो सकेगा। अब आपका ही सहारा है!"

दूसरे दिन श्यामनाथ के साथ रामनाथ कानपुर के लिए रवाना हो गए। रामनाथ ने एक बँगला किराये पर ले लिया और उसी में वे उतरे। उन्हें मालूम

था कि उमानाथ दयानाथ के यहाँ ठहरा है, श्यामनाथ तिवारी को
उन्होंने उमानाथ को बुलाने को भेजा।

श्यामनाथ जब उमानाथ के घर पहुँचे, उमानाथ घर पर न था। दयानाथ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ अपने चुनाव की तैयारी में लगे थे। श्यामनाथ के आते ही उन्होंने उठकर उनके चरण छुए और जब दयानाथ को पता लगा कि रामनाथ ने दूसरा बँगला किराए पर ले लिया है तब उन्होंने मर्माहत होकर कहा, "तो काका! बात यहाँ तक पहुँच गई है! दद्दुआ ने इस तरह मुझे छोड़ दिया है!"

श्यामनाथ ने इस पर केवल इतना कहा, "दया! तुम तो जानते ही हो बड़े भैया को।"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "हाँ, काका, मैं जानता हूँ। लेकिन उनके साथ और सब लोगों ने—सब लोगों ने…!" और दयानाथ आगे कुछ न कह सके; उनका गला रुँध गया।

एक क्षण के लिए श्यामनाथ विचलित हो उठे। उन्होंने दयानाथ का हाथ पकड़ लिया "दया, मुझे क्षमा करो। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे साथ जो अन्याय हो रहा है, उसमें मैं भी सम्मिलित हूँ। लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी इच्छा के विरुद्ध! मैं अपने आपे में नहीं हूँ।"

छठा परिच्छेद

उमानाथ कह रहा था, और उसके सामने बैठे हुए दस आदमी गौर से सुन रहे थे, "ये सारी भावनाएं, यह धर्म-कर्म, यह दया, यह प्रेम, यह त्याग!—यह सब-का सब एक ढकोसला है, जिन्हें समर्थों ने असमर्थों को बह-काने के लिए, धोखा देने के लिए बनाया है। ये जितनी भावनाएँ हैं, उनका रूप मनुष्य की सामर्थ्य के अथवा असमर्थता के साथ बदलता रहता है। समाज के नियमों का निर्माण शासक-वर्ग के व्यक्तियों द्वारा हुआ है, और यही शासक-वर्ग समाज का शोषक-वर्ग है, जिसने अपनी सुविधा के लिए, अनन्त काल तक शोषितों को अपना शिकार बनाए रखने के लिए, यह सब धर्म, कर्म, दया, करुणा का जाल बिछाया है। इनकी दुहाई देना बहुत बड़ी छलना है। और जन-समुदाय को इस छलना से बचाना पड़ेगा।

"अपने यहाँ के ही पूँजीपति बनिये को लो—वह बहुत बड़ा धर्मात्मा बनता है। उसने मंदिर बनवाए हैं, उसने धर्मशालाएँ बनवाई हैं। उसने अस्पताल खोले, उसने स्कूल खोले। वह गंगा-स्नान करता है, वह निरामिष-भोजी है। और उसके बाद उसका वास्तविक रूप देखो! मनुष्य का खून चूसकर वही पूँजीपति ... है, उसके ही शोषण के कारण सारी आदमी भूखों तड़पकर मर जा

स्वार्थ के लिए वह झूठ बोलता है, दूसरों को धोखा देता है। और साथ ही लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए वह खुले हाथों दान करता है।

"मैं पूछता हूँ कि यह राष्ट्रीयता है क्या? यह राष्ट्रीयता एक ढकोसला है, जिसका पूँजीपतियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिए निर्माण किया है। इस राष्ट्रीयता के नाम पर लाखों करोड़ों आदमी अपनी जानें दे देते हैं। भला किन का होता है? पूँजीपतियों का!

"कांग्रेस इन्हीं पूँजीपतियों की संस्था है और गांधी इन पूँजीपतियों का प्रतिनिधि है। सत्याग्रह में जेल जानेवालों की संख्या पर ध्यान दो, और तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा कि उन लोगों में अधिकांश मध्य वर्ग के लोग हैं, जिन्हें पूँजीपतियों ने जेल जाने के लिए प्रोत्साहित किया है, पूँजीपति लोग समय-समय पर धन से जिनकी सहायता करते रहते हैं। इस सत्याग्रह को चलाने वाले देश के पूँजीपति हैं। और अब आप सब लोग पूछ सकते हैं कि देश के पूँजीपति इस स्वतन्त्रता-संग्राम में क्यों दिलचस्पी ले रहे हैं?

"इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर ही हमारे सिद्धांत की, हमारे समुदाय की, हमारी नीति की सबसे बड़ी और अकाट्य दलील है। आप लोग यह याद रखिए कि जन-समुदाय न स्वतंत्र के रूप को जानता है, न स्वतंत्रता के मूल को—और यह बात केवल हिन्दुस्तान के जन-समुदाय पर ही लागू नहीं है। यह बात दुनिया के प्रत्येक स्वतंत्रता अथवा परतंत्र जन-समुदाय पर लागू है। उत्पीड़ित, दलित और अशिक्षित जन-समुदाय केवल राज्य से ही शासित नहीं है, वह पूँजीवाद अथवा उच्च श्रेणीवाद का गुलाम है। मजदूर को अपने मालिक के, किसान को ज़मींदार के इशारों पर नाचना पड़ता है। उस मजदूर अथवा किसान की सारी नैतिकता, उसका हँसना-गाना, उसका धर्म-कर्म—यह सब का सब पूँजीपति के चंद चाँदी के टुकड़ों पर बिक रहा है। उसका सारा अस्तित्व उस पशु का-सा अस्तित्व है, जो मालिक के यहाँ पलता है, उसका अन्न खाता है, उसका असबाब ढोता है और इसलिए जन-समुदाय की स्वतंत्रता के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक ही है। मैं यह मानता हूँ कि विभिन्न देशों के जन-समुदाय में राष्ट्रीयता की एक झूठी और घातक भावना भर दी गई है, पर यह सब पूँजीपतियों ने तथा उच्च श्रेणीवालों ने जन-समुदाय को बेवकूफ बनाकर अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए किया है। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि जन-समुदाय में स्वतंत्रता के लिए वास्तविक उत्साह होना असम्भव है। वह तो इतना जानता है कि उसे अनन्त काल तक गुलामी करनी ही पड़ेगी—अपने मालिक की; वह मालिक चाहे हिन्दुस्तानी हो, चाहे अँग्रेज हो!

"देश की स्वतंत्रता से लाभ होगा केवल पूँजीपतियों को। आज अँग्रेज पूँजीपति अपने साम्राज्यवाद की सहायता से हमारे देश का सारा व्यवसाय अपने हाथ में किए हुए हैं। वह हमारे देश के व्यवसाय को पनपने नहीं देता। इसका अर्थ

यह है कि हमारे देश का पूँजीपति उतना मुनाफा नहीं कर सकता, जितना अँग्रेज पूँजीपति कर लेता है। और इसीलिए आज हिंदुस्तानी पूँजीपति का यह स्वार्थ है कि हिंदुस्तान स्वतन्त्र हो, जिसमें वह बिना रोक-टोक देश के जन-समुदाय को उत्पीड़ित और शोषित कर सके, जिससे वह भेड़-बकरी के समान हिंदुस्तान के जन-समुदाय को अपना गुलाम बना सके।

"और इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें, हम मजदूरों को, हम किसानों को न कोई दिलचस्पी है, न कोई दिलचस्पी होनी चाहिए। हमें पूँजीपतियों से लड़ना है, हमें संगठित होकर श्रेणीवाद का विनाश करना है—तब हमें वास्तविक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

"लेकिन यह किस प्रकार संभव है?" एक आदमी ने पूछा।

उमानाथ ने उत्तर दिया, "यह विश्व-क्रांति द्वारा संभव है।"

"और विश्व-क्रांति कैसे संभव है?"

"रूस द्वारा!" उमानाथ ने कहा, "रूस विश्व-क्रांति का आयोजन कर रहा है, हमें उसके लिए तैयार होना चाहिए। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह राष्ट्रीयता, यह स्वराज्य की लड़ाई—यह सब बेकार है। मेरे मत में तो यह हम लोगों के हितों के लिए किसी अंश तक हानिकारक है। अभी इस परतन्त्रता की हालत में तो हम सब हिंदुस्तान के निवासी—हम मजदूर, किसान, मध्यवर्ग के लोग और पूँजीपति—ब्रिटेन के खिलाफ रूस की सहायता कर सकते हैं; और इसलिए कम-से-कम हिंदुस्तान में विश्व-क्रांति का काम आसान हो जाएगा, लेकिन यदि एक बार हिंदुस्तान को स्वतन्त्रता मिल गई और देश के मजदूर तथा किसान एक बार देश के पूँजीपतियों के शिकंजे में पूरी तौर से कस गए, तो याद रखियेगा, उस कल्याणकारी भावी विश्व-क्रांति के समय रूस का विरोधी एक जबर्दस्त दल हिंदुस्तान में तैयार हो जायगा।"

"इसके मानी तो यह हुए कि जब तक रूस विश्व-क्रांति न करे, तब तक हम हिंदुस्तानियों को ब्रिटेन की गुलामी करनी चाहिए, और खास तौर से जब विश्व-क्रांति का न कोई निश्चित समय है, न उसकी कोई निश्चित रूपरेखा है!" ब्रह्मदत्त ने कहा।

"रूपरेखा मौजूद है, लेकिन वह गुप्त है—उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता। और जरा आप लोग चीजों पर ठीक तौर से गौर करें। जैसा मैं कह चुका हूँ, राष्ट्रीयता एक छिछली और थोथे की चीज है, हमारी समस्या राष्ट्रीय समस्या नहीं है, हमारी समस्या वर्गवाद की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। दुनिया भर के मजदूर-किसान उत्पीड़ित हैं, दुनिया भर के पूँजीपति मौज करते हैं। इसलिए हमें पूँजीवाद के खिलाफ युद्ध करते रहना है। हमारा यह युद्ध एक दिन का नहीं है, एक वर्ष का नहीं है, इस युद्ध की अवधि एक लंबी अवधि रहेगी। इस युद्ध में हमें कुशल लोगों का नेतृत्व चाहिए, और यह नेतृत्व हमें रूस से ही मिल सकता है। रूस की जो नीति है वह हमारी नीति होनी चाहिए। और जितनी जल्दी हम

स्वार्थ के लिए वह झूठ बोलता है, दूसरों को धोखा देता है। और साथ ही लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए वह खुले हाथों दान करता है।

"मैं पूछता हूँ कि यह राष्ट्रीयता है क्या? यह राष्ट्रीयता एक ढकोसला है, जिसका पूंजीपतियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिए निर्माण किया है। इस राष्ट्रीयता के नाम पर लाखों करोड़ों आदमी अपनी जानें दे देते हैं। भला किन का होता है? पूंजीपतियों का!

"कांग्रेस इन्हीं पूंजीपतियों की संस्था है और गांधी इन पूंजीपतियों का प्रतिनिधि है। सत्याग्रह में जेल जानेवालों की संख्या पर ध्यान दो, और तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा कि उन लोगों में अधिकांश मध्य वर्ग के लोग हैं, जिन्हें पूंजीपतियों ने जेल जाने के लिए प्रोत्साहित किया है, पूंजीपति लोग समय-समय पर धन से जिनकी सहायता करते रहते हैं। इस सत्याग्रह को चलाने वाले देश के पूंजीपति हैं। और अब आप सब लोग पूछ सकते हैं कि देश के पूंजीपति इस स्वतन्त्रता-संग्राम में क्यों दिलचस्पी ले रहे हैं?

"इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर ही हमारे सिद्धांत की, हमारे समुदाय की, हमारी नीति की सबसे बड़ी और अकाट्य दलील है। आप लोग यह याद रखिए कि जन-समुदाय न स्वतंत्र के रूप को जानता है, न स्वतंत्रता के मूल को—और यह बात केवल हिन्दुस्तान के जन-समुदाय पर ही लागू नहीं है। यह बात दुनिया के प्रत्येक स्वतंत्रता अथवा परतंत्र जन-समुदाय पर लागू है। उत्पीड़ित, दलित और अशिक्षित जन-समुदाय केवल राज्य से ही शासित नहीं है, वह पूंजीवाद अथवा उच्च श्रेणीवाद का गुलाम है। मजदूर को अपने मालिक के, किसान को जमींदार के इशारों पर नाचना पड़ता है। उस मजदूर अथवा किसान की सारी नैतिकता, उसका हंसना-गाना, उसका धर्म-कर्म—यह सब का सब पूंजीपति के चंद चाँदी के टुकड़ों पर बिक रहा है। उसका सारा अस्तित्व उस पशु का-सा अस्तित्व है, जो मालिक के यहाँ पलता है, उसका अन्न खाता है, उसका असबाब ढोता है और इसलिए जन-समुदाय की स्वतंत्रता के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक ही है। मैं यह मानता हूँ कि विभिन्न देशों के जन-समुदाय में राष्ट्रीयता की एक झूठी और घातक भावना भर दी गई है, पर यह सब पूंजीपतियों ने तथा उच्च श्रेणीवालों ने जन-समुदाय को बेवकूफ बनाकर अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए किया है। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि जन-समुदाय में स्वतंत्रता के लिए वास्तविक उत्साह होना असम्भव है। वह तो इतना जानता है कि उसे अनन्त काल तक गुलामी करनी ही पड़ेगी—अपने मालिक की; वह मालिक चाहे हिन्दुस्तानी हो, चाहे अंग्रेज हो!

"देश की स्वतंत्रता से लाभ होगा केवल पूंजीपतियों को। आज अंग्रेज पूंजीपति अपने साम्राज्यवाद की सहायता से हमारे देश का सारा व्यवसाय अपने हाथ में किए हुए हैं। वह हमारे देश के व्यवसाय को पनपने नहीं देता। इसका अर्थ

यह है कि हमारे देश का पूँजीपति उतना मुनाफा नहीं कर सकता, जितना अंग्रेज पूँजीपति कर लेता है। और इसीलिए आज हिंदुस्तानी पूँजीपति का यह स्वार्थ है कि हिंदुस्तान स्वतन्त्र हो, जिसमें वह बिना रोक-टोक देश के जन-समुदाय को उत्पीड़ित और शोषित कर सके, जिससे वह भेड़-बकरी के समान हिंदुस्तान के जन-समुदाय को अपना गुलाम बना सके।

"और इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें, हम मजदूरों को, हम किसानों को न कोई दिलचस्पी है, न कोई दिलचस्पी होनी चाहिए। हमें पूँजीपतियों से लड़ना है, हमें संगठित होकर श्रेणीवाद का विनाश करना है—तब हमें वास्तविक स्वतन्त्रता मिलेगी!"

"लेकिन यह किस प्रकार संभव है?" एक आदमी ने पूछा।

उमानाथ ने उत्तर दिया, "यह विश्व-क्रांति द्वारा संभव है।"

"और विश्व-क्रांति कैसे संभव है?"

"रूस द्वारा!" उमानाथ ने कहा, "रूस विश्व-क्रांति का आयोजन कर रहा है, हमें उसके लिए तैयार होना चाहिए। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह राष्ट्रीयता, यह स्वराज्य की लड़ाई—यह सब बेकार है। मेरे मत में तो यह हम लोगों के हितों के लिए किसी अंश तक हानिकारक है। अभी इस परतंत्रता की हालत में तो हम सब हिंदुस्तान के निवासी—हम मजदूर, किसान, मध्यवर्ग के लोग और पूँजीपति—ब्रिटेन के खिलाफ रूस की सहायता कर सकते हैं, और इसलिए कम-से-कम हिंदुस्तान में विश्व-क्रांति का काम आसान हो जाएगा, लेकिन यदि एक बार हिंदुस्तान को स्वतन्त्रता मिल गई और देश के मजदूर तथा किसान एक बार देश के पूँजीपतियों के शिकंजे में पूरी तौर से फँस गए, तो याद रखिएगा, उस कल्याणकारी भावी विश्व-क्रांति के समय रूस का विरोधी एक जबर्दस्त दल हिंदुस्तान में तैयार हो जायगा।"

"इसके माने तो यह हुए कि जब तक रूस विश्व-क्रांति न करे, तब तक हम हिंदुस्तानियों को ब्रिटेन की गुलामी करनी चाहिए, और खास तौर से तब जब विश्व-क्रांति का न कोई निश्चित समय है, न उसकी कोई निश्चित रूपरेखा है!" प्रभादत्त ने कहा।

"रूपरेखा मौजूद है, लेकिन वह गुप्त है—उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता। और जरा आप लोग चीजों पर ठीक तौर से गौर करें। जैसा मैं कह चुका हूँ, राष्ट्रीयता एक छिछली और थोथे की चीज है, हमारी समस्या राष्ट्रीय समस्या नहीं है, हमारी समस्या वर्गवाद की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। दुनिया भर के मजदूर-किसान उत्पीड़ित हैं, दुनिया भर के पूँजीपति मौज करते हैं। इसलिए हमें पूँजीवाद के खिलाफ युद्ध करते रहना है। हमारा यह युद्ध एक दिन का नहीं है, एक वर्ष का नहीं है, इस युद्ध की अवधि एक लंबी अवधि रहेगी। इस युद्ध में हमें कुशल लोगों का नेतृत्व चाहिए, और यह नेतृत्व हमें रूस से ही मिल सकता है। रूस की जो नीति है वह हमारी नीति होनी चाहिए। और जिस[illegible] हम

विश्व-क्रांति के लिए तैयार हो सकते हैं, उतनी ही जल्दी विश्व-क्रांति होगी। यह याद रखिए कि यह समाजवादी दल अकेले रूस में नहीं है, अकेले हिंदुस्तान में नहीं है, यह समाजवादी दल सारी दुनिया में फैला है और सारी दुनिया के मज़दूर और अन्य शोषित लोग रूस की अध्यक्षता में, रूस के पवित्र नेतृत्व में, इस विश्व-क्रांति के लिए तैयार हो रहे हैं!"

२

उमानाथ के इस व्याख्यान का प्रभाव वहाँ बैठे हुए अधिकांश आदमियों पर पड़ा, और जिस समय उमानाथ वहाँ से निकला, एक नवयुवक ने उससे कहा, "कामरेड उमानाथ! मैं आपको बधाई देता हूँ कि आपने हम लोगों को वास्तविक स्थिति समझाकर हमारी आँखें खोल दीं। मैं चाहता हूँ कि आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।"

"आप आजकल क्या करते हैं?" उमानाथ ने पूछा।

"आजकल मैं बेकार हूँ!" उस नवयुवक ने उत्तर दिया, "पिछले साल मैंने बी० ए० पास किया था; आगे पढ़ नहीं सकता, क्योंकि घर की हालत बहुत खराब है; और अभी तक लाख कोशिश करने पर कोई नौकरी नहीं मिली। और नौकरी भी कैसे मिले? नौकरी मिलने के लिए होनी चाहिए सिफ़ारिश। हरएक बड़े आदमी के भाई-भतीजे, नाते-रिश्तेदार हैं। पहले उन्हें नौकरी मिलेगी या मुझे!"

उमानाथ मुसकराया, "ठीक कहते हो! अच्छा अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि तुम एम० ए० पढ़ो तो उसमें तुम्हें कोई आपत्ति होगी?"

"एम० ए० मैं कैसे पढ़ूँ? मैं कह चुका हूँ न, कि घर की हालत बहुत खराब है!"

"इसकी चिंता मत करो। तुम्हारी पढ़ाई का खर्चा मैं बर्दाश्त करूँगा। तुम्हारा काम होगा यूनिवर्सिटी में रहकर विद्यार्थियों में समाजवाद का प्रचार करना। समाजवाद पर अधिक-से-अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं—वह पूरा साहित्य मैं दूँगा। उसे तुम पढ़ डालो और उस साहित्य का दूसरे विद्यार्थियों में प्रचार करो! हमें आवश्यकता है मज़दूरों का संगठन करने के लिए पढ़े-लिखे निर्भीक नौजवानों की। और ऐसे नौजवानों की कमी नहीं है, जिन्हें पग-पग पर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन लोगों को संगठित करना आसान होगा। इसके अलावा इन नेक लोगों को विश्व की समस्याओं से परिचित भी कराया जा सकेगा।"

उस समय तक ब्रह्मदत्त उमानाथ के पास आ गया था। उमानाथ ने उस युवक से कहा, "तुम मुझसे फिर कभी मेरे घर पर मिलना, मैं तुम्हारा सब प्रबंध कर दूँगा।"

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के साथ चलते हुए कहा, "कामरेड! कामरेड नरोत्तम

विश्व-क्रांति के लिए तैयार हो सकते हैं, उतनी ही जल्दी विश्व-क्रांति होगी। यह याद रखिए कि यह समाजवादी दल अकेले रूस में नहीं है, अकेले हिंदुस्तान में नहीं है, यह समाजवादी दल सारी दुनिया में फैला है और सारी दुनिया के मजदूर और अन्य शोषित लोग रूस की अध्यक्षता में, रूस के पवित्र नेतृत्व में, इस विश्व-क्रांति के लिए तैयार हो रहे हैं !"

२

उमानाथ के इस व्याख्यान का प्रभाव वहाँ बैठे हुए अधिकांश आदमियों पर पड़ा, और जिस समय उमानाथ वहाँ से निकला, एक नवयुवक ने उससे कहा, "कामरेड उमानाथ ! मैं आपको बधाई देता हूँ कि आपने हम लोगों को वास्तविक स्थिति समझाकर हमारी आँखें खोल दीं। मैं चाहता हूँ कि आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।"

"आप आजकल क्या करते हैं ?" उमानाथ ने पूछा।

"आजकल मैं बेकार हूँ !" उस नवयुवक ने उत्तर दिया, "पिछले साल मैंने बी० ए० पास किया था; आगे पढ़ नहीं सकता, क्योंकि घर की हालत बहुत खराब है; और अभी तक लाख कोशिश करने पर कोई नौकरी नहीं मिली। और नौकरी भी कैसे मिले ? नौकरी मिलने के लिए होनी चाहिए सिफ़ारिश। हरएक बड़े आदमी के भाई-भतीजे, नाते-रिश्तेदार हैं। पहले उन्हें नौकरी मिलेगी या मुझे !"

उमानाथ मुसकराया, "ठीक कहते हो ! अच्छा अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि तुम एम० ए० पढ़ो तो उसमें तुम्हें कोई आपत्ति होगी ?"

"एम० ए० मैं कैसे पढ़ूँ ? मैं कह चुका हूँ न, कि घर की हालत बहुत खराब है !"

"इसकी चिंता मत करो। तुम्हारी पढ़ाई का खर्चा मैं बर्दाश्त करूँगा। तुम्हारा काम होगा यूनिवर्सिटी में रहकर विद्यार्थियों में समाजवाद का प्रचार करना। समाजवाद पर अधिक-से-अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं—वह पूरा साहित्य मैं दूँगा। उसे तुम पढ़ डालो और उस साहित्य का दूसरे विद्यार्थियों में प्रचार करो ! हमें आवश्यकता है मजदूरों का संगठन करने के लिए पढ़े-लिखे निर्भीक नौजवानों की। और ऐसे नौजवानों की कमी नहीं है, जिन्हें पग-पग पर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन लोगों को संगठित करना आसान होगा। इसके अलावा इन नेक लोगों को विश्व की समस्याओं से परिचित भी कराया जा सकेगा।"

उस समय तक ब्रह्मदत्त उमानाथ के पास आ गया था। उमानाथ ने उस युवक से कहा, "तुम मुझसे फिर कभी मेरे घर पर मिलना, मैं तुम्हारा सब प्रबंध कर दूँगा।"

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के साथ चलते हुए कहा, "कामरेड ! कामरेड नरोत्तम

की कोई खबर नहीं मिली ?"

उमानाथ के मस्तक पर चिंता की एक हलकी-सी रेखा अंकित हो गई, "अभी तक तो नहीं मिली और मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि नरोत्तम के हाथ में काम सुपुर्द करके मैंने समझदारी का काम नहीं किया !"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "मैंने तुम्हें पहले ही आगाह कर दिया था, कामरेड !" लेकिन ब्रह्मदत्त की मुसकराहट में भी चिंता निहित थी, "कामरेड ! अगर मान लो कि नरोत्तम तुम्हारे हाथ के लिखे हुए प्लान को सरकार के हाथ में सुपुर्द कर दे तो ?"

"तो सरकार मुझे गिरफ्तार कर सकती है, यद्यपि मेरी गिरफ्तारी के लिए सिर्फ इतना-सा सबूत काफी न होगा। फिर भी सरकार के खुफिया विभाग को तो तुम जानते ही हो—उन्होंने मेरे खिलाफ़ और न जाने क्या-क्या सबूत इकट्ठा कर रखे हों ?"

कुछ देर तक ब्रह्मदत्त सोचता रहा, फिर उसने कहा, "कामरेड ! यह तो अच्छा नहीं हुआ। मुझे अब पूरी तौर से यकीन होने लगा है कि नरोत्तम का सी० आई० डी० विभाग से संबंध है। जरा सावधान रहना होगा आपको—और अगर कुछ मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो आप उसी समय मुझे बुलवा लीजिएगा !"

ब्रह्मदत्त को रास्ते से ही विदा करके उमानाथ बँगले में पहुँचा। वहाँ एक आदमी बैठा हुआ उमानाथ की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस आदमी ने उमानाथ से कहा, "मैं स्पेशल डिपार्टमेंट का इंस्पेक्टर लाल-बहादुर हूँ—तकलीफ के लिए माफ कीजिएगा, लेकिन आपसे कुछ जरूरी बातें पूछनी थीं !"

उमानाथ बैठ गया। उसने मन-ही-मन कहा, 'तो आरंभ हो गया !' और उसने लालबहादुर से कहा, "हाँ-हाँ, पूछिए !"

लालबहादुर ने जरा गला साफ करके आरंभ किया, "बात यह है कुँवर साहेब—आप जानते ही हैं—जी हाँ, हम लोगों को तो सरकार जैसा कहे, वैसा करना पड़ता है। तो—जी हाँ, आपके खिलाफ कुछ ऐसी खबरें मिली हैं कि मुझे आपसे पूछताछ करने को तैनात किया गया है—लिहाजा मैं आपकी खिदमत में हाजिर हो गया।" यह कहकर लाल बहादुर मुसकराया।

इस समय तक, और खास तौर से लालबहादुर की बातचीत के ढंग से उमानाथ सुव्यवस्थित हो गया था। उमानाथ ने कहा, "हाँ-हाँ—तो पहले कुछ चाय-वाय पी लीजिए, फिर बातचीत होती रहेगी। आपको कोई खास जल्दी तो नहीं है ?"

"अजी, जल्दी किस बात की—हम लोग तो वक्त के मालिक होते हैं—सिर्फ मौत से बस नहीं चलता, वरना हमारी ब्रिटिश सरकार के बस में है।" और लालबहादुर अपने मजाक पर खुद हँस पड़ा।

उमानाथ ने नौकर से चाय बनाने को कह दिया, फिर वह लालबहादुर के पास बैठ गया। उसने पूछा, "इंस्पेक्टर साहेब—अब आपमुझे पहले यह बताइए कि सरकार के क्या इरादे हैं ?"

"जी···इरादे क्या हैं—इसका तो मुझे खास पता नहीं, लेकिन कार्रवाई आपके खिलाफ़ शुरू कर दी गई है—यह तो इसी से आपको मालूम हो जाएगा कि मैं यहां तहक़ीक़ात के लिए भेजा गया हूं। अब सरकार अपना इरादा मेरी तहक़ीक़ात की रिपोर्ट पर कायम करेगी···समझे जनाब !"

"जी हां, यह तो मैं अच्छी तरह समझ गया, और मैं यह भी जानता हूं कि आप एक नेक व शरीफ हिंदुस्तानी हैं—आपके घर-बार है, बीवी-बच्चे हैं। नौकरी आपको करनी पड़ती है बीवी-बच्चों के लिए—यह काम, जिसे दुनिया में कोई भी आदमी अच्छा नहीं कह सकता, आप सिर्फ़ अपने बीवी-बच्चों के पालन-पोषण के लिए करते हैं !" उमानाथ ने कहा।

"सही फ़रमाया आपने कुंवर साहेब ! बड़ी गृहस्थी और लंबा खर्च। नौकरी छोड़ दूं तो भूखों मरना पड़े। ये कांग्रेस वाले यह तो समझते नहीं, महज़ चिल्लाते-भर हैं कि सरकारी नौकरी छोड़ दो। पूछिए साहेब, नौकरी छोड़ दूं तो इतने लोगों को कांग्रेस खिलाएगी ? वैसे देशभक्ति मेरे दिल में भी है—लेकिन कुंवर साहेब, यह सब देशभक्ति उसी को शोभा देती है, जिसके पास पैसा हो। मेरे पास भी अगर लाख-पचास हजार रुपया हो जाय, तो मैं भी देशभक्ति कर सकता हूं !"

उमानाथ के चेहरे पर एक मुसकराहट आई, "इंस्पेक्टर साहेब ! अगर आप समझदारी के साथ काम करें, तो कुछ दिनों में आपके पास इतना रुपया आसानी से हो सकता है !"

लालबहादुर ने ज़रा मुंह बनाते हुए कहा, "आपकी बड़ी कृपा है, कुंवर साहेब—लेकिन दुनिया में हाथ-पैर बचाकर काम करने को ही बुद्धिमानी कहते हैं। इसके अलावा एक बात और—मुझे दान-दक्षिणा लेने में विश्वास नहीं। यहां तो खरा सौदा करने वाले आदमी हैं। अगर आप खरे सौदे को मेरी समझदारी समझ सकें, तो वह समझदारी मेरे पास काफ़ी है।"

इस समय तक चाय आ गई थी। उमानाथ और लालबहादुर ने चाय पी। चाय पीकर लालबहादुर ने कहा, "तो कुंवर साहेब ! मुझे यह दरयाफ़्त करना था कि आजकल आप कानपुर में क्या कर रहे हैं, और आगे चलकर क्या करने के इरादे हैं ?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "अपने छोटे भाई की गिरफ़्तारी के सिलसिले में उसकी पैरवी करने के लिए यहां रुका हुआ हूं—इसके बाद क्या करूंगा, यह मैंने अभी तय नहीं किया है।"

"मिल-एरिया में आपने कुछ सभाएं कीं और कम्यूनिज़्म पर आपने कुछ व्याख्यान दिए—क्या यह बात ठीक है ?"

"चूंकि पंडित ब्रह्मदत्त मेरे मित्र हैं, वे मुझे मजदूरों की दो-एक सभाओं में अवश्य ले गए। लेकिन कम्यूनिज्म पर मैंने कोई व्याख्यान नहीं दिया—न मैं कम्यूनिस्ट हूं!"

"आप जर्मनी में कम्यूनिस्ट पार्टी के मेंबर रहे हैं। साथ ही आपने हिंदुस्तान में कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठन का एक बड़ा प्लान तैयार किया है—क्या आप इससे भी इनकार करते हैं? आप जरा सोचकर इसका उत्तर दीजिएगा—दो-चार दिन का समय मैं आपको इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए दे सकता हूं। और जहां तक आपने पिछले बयान दिए हैं, वे बिलकुल ठीक हैं—मैंने उनकी तहकीक़ात कर ली है, और उन्हें ठीक पाया है!" यह कहकर लालबहादुर हँस पड़ा।

उमानाथ ने अपने पर्स से सौ-सौ के दस नोट निकालकर लालबहादुर की जेब में डाल दिए। "आपकी बड़ी कृपा है। आगे चलकर और जो कुछ कारंवाई होनेवाली होगी, उसका पता मुझे चल जायगा!"

"इतमीनान रखिए, कुंवर साहब! भरसक कोशिश करूंगा कि आप पर कोई आंच न आने पाए। लेकिन जरा हाथ-पैर बचाकर काम कीजिएगा!" लालबहादुर ने चलते हुए कहा।

३

उमानाथ लालबहादुर को विदा करके चिंतित हो गया। उसे यह अनुभव होने लगा कि नरोत्तम पर विश्वास करके उसने गलती की, और अब वह निरापद नहीं है, क्योंकि पुलिस की आंखों में वह चढ़ गया है।

एकाएक उसे मार्कंडेय की हँसी सुनाई दी। दरवाजे पर खड़ा मार्कंडेय कह रहा था, "कहो जी उमा—तुम भी चिंतित हो सकते हो, मुझे यह आज मालूम हुआ!" यह कहकर मार्कंडेय उमानाथ के पास बैठ गया। उसने कहा, "दयानाथ कहां हैं?"

"पता नहीं, मैं तो अभी-अभी आया हूं!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "शायद अपने चुनाव की दौड़-धूप कर रहे हैं!"

मार्कंडेय मुसकराया, "चुनाव की दौड़-धूप कर रहे हैं—बिलकुल बेकार! वह जीत नहीं सकते—हम लोगों की पार्टी बहुत कमजोर हो गई है!" कुछ रुककर मार्कंडेय ने फिर कहा, "उमा! ब्रह्मदत्त पर तुम क्यों नहीं जोर डालते? ब्रह्मदत्त की पार्टी काफी मजबूत है, वह पार्टी अगर दयानाथ को वोट दे दे, तो दयानाथ का चुन लिया जाना निश्चित हो जाएगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "मार्कंडेय भइया, कहावत यहां पर मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त की हो रही है। ब्रह्मदत्त बड़के भइया को सपोर्ट करने पर तैयार है, केवल एक शर्त पर कि बड़के भइया खुद उससे और उसकी पार्टी से वोट देने को कहें।"

"यह तो ठीक है। दया उन लोगों से कह दें, मामला खत्म हुआ।'

उमानाथ ने नौकर से चाय बनाने को कह दिया, फिर वह लालबहादुर के पास बैठ गया। उसने पूछा, "इंस्पेक्टर साहेब—अब आपमुझे पहले यह बताइए कि सरकार के क्या इरादे हैं ?"

"जी···इरादे क्या हैं—इसका तो मुझे खास पता नहीं, लेकिन कार्रवाई आपके खिलाफ़ शुरू कर दी गई है—यह तो इसी से आपको मालूम हो जाएगा कि मैं यहां तहक़ीक़ात के लिए भेजा गया हूँ। अब सरकार अपना इरादा मेरी तहक़ीक़ात की रिपोर्ट पर कायम करेगी···समझे जनाब !"

"जी हां, यह तो मैं अच्छी तरह समझ गया, और मैं यह भी जानता हूँ कि आप एक नेक व शरीफ हिंदुस्तानी हैं—आपके घर-बार है, बीवी-बच्चे हैं। नौकरी आपको करनी पड़ती है बीवी-बच्चों के लिए—यह काम, जिसे दुनिया में कोई भी आदमी अच्छा नहीं कह सकता, आप सिर्फ़ अपने बीवी-बच्चों के पालन-पोषण के लिए करते हैं !" उमानाथ ने कहा।

"सही फ़रमाया आपने कुंवर साहेब ! बड़ी गृहस्थी और लंबा खर्च। नौकरी छोड़ दूं तो भूखों मरना पड़े। ये कांग्रेस वाले यह तो समझते नहीं, महज़ चिल्लाते-भर हैं कि सरकारी नौकरी छोड़ दो। पूछिए साहेब, नौकरी छोड़ दूं तो इतने लोगों को कांग्रेस खिलाएगी ? वैसे देशभक्ति मेरे दिल में भी है—लेकिन कुंवर साहेब, यह सब देशभक्ति उसी को शोभा देती है, जिसके पास पैसा हो। मेरे पास भी अगर लाख-पचास हज़ार रुपया हो जाय, तो मैं भी देशभक्ति कर सकता हूँ !"

उमानाथ के चेहरे पर एक मुसकराहट आई, "इंस्पेक्टर साहेब ! अगर आप समझदारी के साथ काम करें, तो कुछ दिनों में आपके पास इतना रुपया आसानी से हो सकता है !"

लालबहादुर ने ज़रा मुंह बनाते हुए कहा, "आपकी बड़ी कृपा है, कुंवर साहेब—लेकिन दुनिया में हाथ-पैर बचाकर काम करने को ही बुद्धिमानी कहते हैं। इसके अलावा एक बात और—मुझे दान-दक्षिणा लेने में विश्वास नहीं। यहां तो खरा सौदा करने वाले आदमी हैं। अगर आप खरे सौदे को मेरी समझ-दारी समझ सकें, तो वह समझदारी मेरे पास काफ़ी है।"

इस समय तक चाय आ गई थी। उमानाथ और लालबहादुर ने चाय पी। चाय पीकर लालबहादुर ने कहा, "तो कुंवर साहेब ! मुझे यह दरयाफ़्त करना था कि आजकल आप कानपुर में क्या कर रहे हैं, और आगे चलकर क्या करने के इरादे हैं ?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "अपने छोटे भाई की गिरफ़्तारी के सिलसिले में उसकी पैरवी करने के लिए यहां रुका हुआ हूँ—इसके बाद क्या करूंगा, यह मैंने अभी तय नहीं किया है।"

"मिल-एरिया में आपने कुछ सभाएं कीं और कम्यूनिज़्म पर आपने कुछ व्याख्यान दिए—क्या यह बात ठीक है ?"

"चूँकि पंडित ब्रह्मदत्त मेरे मित्र हैं, वे मुझे मजदूरों की दो-एक सभाओं में अवश्य ले गए। लेकिन कम्यूनिज्म पर मैंने कोई व्याख्यान नहीं दिया—न मैं कम्यूनिस्ट हूँ!"

"आप जर्मनी में कम्यूनिस्ट पार्टी के मेंबर रहे हैं। साथ ही आपने हिंदुस्तान में कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठन का एक बड़ा प्लान तैयार किया है—क्या आप इससे भी इनकार करते हैं? आप जरा सोचकर इसका उत्तर दीजिएगा—दो-चार दिन का समय मैं आपको इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए दे सकता हूँ। और जहाँ तक आपने पिछले बयान दिए हैं, वे बिलकुल ठीक हैं—मैंने उनकी तहकीक़ात कर ली है, और उन्हें ठीक पाया है!" यह कहकर लालबहादुर हँस पड़ा।

उमानाथ ने अपने पर्स से सौ-सौ के दस नोट निकालकर लालबहादुर की जेब में डाल दिए। "आपकी बड़ी कृपा है। आगे चलकर और जो कुछ कार्रवाई होने-वाली होगी, उसका पता मुझे चल जायगा!"

"इतमीनान रखिए, कुँवर साहेब! भरसक कोशिश करूँगा कि आप पर कोई आँच न आने पाए। लेकिन जरा हाथ-पैर बचाकर काम कीजिएगा!" लाल-बहादुर ने चलते हुए कहा।

३

उमानाथ लालबहादुर को विदा करके चिंतित हो गया। उसे यह अनुभव होने लगा कि नरोत्तम पर विश्वास करके उसने गलती की, और अब वह निरापद नहीं है, क्योंकि पुलिस की आँखों में वह चढ़ गया है।

एकाएक उसे मार्कंडेय की हँसी सुनाई दी। दरवाजे पर खड़ा मार्कंडेय कह रहा था, "कहो जी उमा—तुम भी चिंतित हो सकते हो, मुझे यह आज मालूम हुआ!" यह कहकर मार्कंडेय उमानाथ के पास बैठ गया। उसने कहा, "दयानाथ कहाँ हैं?"

"पता नहीं, मैं तो अभी-अभी आया हूँ!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "शायद अपने चुनाव की दौड़-धूप कर रहे हैं!"

मार्कंडेय मुसकराया, "चुनाव की दौड़-धूप कर रहे हैं—बिलकुल बेकार! वह जीत नहीं सकते—हम लोगों की पार्टी बहुत कमजोर हो गई है!" कुछ रुक-कर मार्कंडेय ने फिर कहा, "उमा! ब्रह्मदत्त पर तुम क्यों नहीं जोर डालते? ब्रह्मदत्त की पार्टी काफी मजबूत है, वह पार्टी अगर दयानाथ को वोट दे दे, तो दयानाथ का चुन लिया जाना निश्चित हो जाएगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "मार्कंडेय भइया, कहावत यहाँ पर मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त की हो रही है। ब्रह्मदत्त बड़के भइया को सपोर्ट करने पर तैयार हैं. केवल एक शर्त पर कि बड़के भइया खुद उससे और उसकी पार्टी से वोट देने को कहें।"

"यह तो ठीक है। दया उन लोगों से कह दें, मामला खतम हुआ

"लेकिन यही मुसीबत है, मार्कंडेय भइया! बड़के भइया ब्रह्मदत्त और उसकी पार्टी के आगे हाथ फैलाना स्वाभिमान के विरुद्ध समझते हैं!"

ये बातें हो रही थीं कि एक कार बँगले के बरामदे में रुकी। उमानाथ यह देखने के लिए बाहर गया कि कौन आया है—और उसने देखा कि श्यामनाथ तिवारी पिछली सीट पर आँखें बंद किये चुप बैठे हैं—और ड्राइवर आश्चर्य से उनकी ओर देख रहा है।

उमानाथ ने श्यामनाथ को हिलाया, "काका!"

श्यामनाथ ने आँखें खोलीं—उन्होंने अपने चारों ओर देखा, मानो वह उस स्थान को पहचानने की कोशिश कर रहे हों—और फिर धीरे-से मोटर का दरवाज़ा खोलकर वे उतरे। उमानाथ का सहारा लेकर वे बँगले की ओर बढ़े, उनके पैर लड़खड़ा रहे थे।

उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा, "क्या हुआ, काका? क्या बात है?" श्यामनाथ ने भर्राए हुए गले से कहा, "कुछ नहीं।"

उमानाथ श्यामनाथ को बँगले के अंदर ले गया, बरामदे में बिठलाते हुए उसने कहा, "नहीं काका! कुछ खास बात तो अवश्य है—बताइए न!"

श्यामनाथ ने एक ठंडी साँस ली, "उमा! प्रभा को तो मैंने बचा लिया है, लेकिन एक बहुत बड़ी कीमत देकर!"

उमानाथ चौंक उठा, "क्या कहा आपने? क्या प्रभा को···" और उमानाथ के माथे पर बल पड़ गये।

"हाँ, उमा! मैंने उसे राजी किया—मैंने! बहलाकर, फुसलाकर, धोखा देकर! मैंने उससे कहा कि अगर उसने क्रांतिकारी दल का नाम न बतलाया तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। मैंने उससे कहा कि अपराधियों का नाम बतलाना सर्वथा उचित है। न जाने कितने दिनों तक मैंने मेहनत की—और आज उसने अपनी स्वीकृति दे दी।" श्यामनाथ की आँखों में आँसू भरे थे।

उमानाथ ने कहा, "काका—पता नहीं आपने उचित किया या नहीं—लेकिन यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी।"

श्यामनाथ फूट पड़े, "उमा, उसे बचाने का और कोई चारा न था। उसके खिलाफ़ जो-जो सबूत इकट्ठा किये गये हैं, उनसे उसे फाँसी की सजा निश्चित है। रायबरेली में पुलिस इंस्पेक्टर की जो हत्या हुई थी, उसमें भी वह शामिल था। अब तुम्हीं बताओ, उसे किस तरह बचाया जा सकता था?"

उमानाथ ने कोई उत्तर न दिया। सवाल उसके भाई के जीवन का था और इस संबंध में वह अपने विश्वास प्रकट न कर सकता था। उसने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा, "तो क्या उस पर से मुकदमा उठा लिया गया है?"

"मुकदमा नए सिरे से चलेगा, जिसमें प्रभा सरकारी गवाह के तौर से पेश होगा।"

"उसने अपने साथियों के नाम बतला दिये?"

"अभी तो नहीं, लेकिन उसने मुझसे वादा कर लिया है। उसका बयान मैजिस्ट्रेट के सामने होगा!"

"दद्दुआ को आपने खबर दी है?"

"अभी कहाँ—सीधा जेल से चला आ रहा हूँ। जरा थोड़ी देर सुस्ताकर उन्नाव के लिए रवाना हो जाना है।"

शाम के समय श्यामनाथ तिवारी अपने बड़े भाई से मिलने के लिए उन्नाव चल दिये।

उस समय पंडित रामनाथ तिवारी लोकमान्य तिलक वाला गीता का भाष्य सुन रहे थे और वीणा उसे पढ़ रही थी। श्यामनाथ तिवारी को कार देखते ही रामनाथ ने वीणा से कहा, "इस समय का अध्ययन समाप्त! अब आराम करो जाकर और नौकर से चाय भिजवा देना।"

श्यामनाथ तिवारी ने अपने बड़े भाई के चरण छुए और सामने मौन बैठ गए। थोड़ी देर तक रामनाथ अपने छोटे भाई को देखते रहे, फिर उन्होंने पूछा, "कोई नई खबर?"

"जी हाँ! प्रभा को किसी तरह सरकारी गवाह बनने को राजी कर लिया है!" श्यामनाथ ने कहा।

रामनाथ तिवारी मुसकराए—पर उस मुसकराहट में एक अजीब तरह की करुणा थी, "श्यामू! बहुत बड़ी पराजय हुई है हम लोगों को, लेकिन जो कुछ हुआ, वह ठीक ही हुआ! शायद और कुछ हो भी नहीं सकता था!"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन न जाने क्यों—मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा है, श्यामू! एक जान बचाने के लिए दस···बीस···न जाने कितनी जानें नष्ट हों!" और एकाएक रामनाथ का मुख फिर विकृत तथा कठोर हो गया, "लेकिन···लेकिन···इन दस-पाँच जनों की चिंता ही क्यों? लाखों आदमी रोज मरते हैं—हम किसकी चिंता करते हैं? फिर हमारे करने से होता ही क्या है?"

रामनाथ और श्यामनाथ को यह पता न था कि वीणा बरामदे में खंभे की आड़ में खड़ी हुई यह बातचीत सुन रही है।

४

रात के समय भोजन करके पंडित श्यामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए। श्यामनाथ को विदा कर पंडित रामनाथ तिवारी अपने ड्राइंग-रूम में चुपचाप बैठ गए। वे उस समय उदास थे—उनका मन भारी था। उनसे ठीक तरह से भोजन न किया गया था। श्यामनाथ ने जो खबर उन्हें दी थी, वह उन्हें न जाने कैसी-सी लगी।

विश्वंभरदयाल से पंडित रामनाथ तिवारी प्यार न था पर

अदालत में चलने लगा था। प्रभानाथ की पैरवी करने के लिए अच्छे-से-अच्छे वकील बुलाए गए थे। लेकिन पुलिस ने जाल अच्छी तरह बिछाया था, बड़ी सावधानी के साथ। प्रभानाथ का उस जाल से छूटना असंभव-सा लग रहा था। वे बड़े-से-बड़े वकील भी प्रभानाथ को बचाने से निराश हो रहे थे। पुलिस ने पूरी तरह अपना मुकदमा साबित कर दिया था।

अदालत ने पुलिस की प्रार्थना पर मुकदमा कुछ दिनों के लिए मुल्तवी कर दिया था। विश्वंभरदयाल ने फिर एक बार श्यामनाथ तिवारी के पास प्रस्ताव भेजा था कि अगर प्रभानाथ सरकारी गवाह बनने पर तैयार हो जाय और अपने साथियों का नाम बतला दे, तो वे सरकार से कहकर उसे माफी दिलवा सकते हैं। और विश्वंभरदयाल के इस प्रस्ताव ने रामनाथ को अजीब परिस्थिति में डाल दिया था।

रामनाथ तिवारी कानपुर से उन्नाव चले आए थे—कानपुर का वातावरण उन्हें असह्य हो रहा था। वे यह जानते थे कि प्रभानाथ विश्वंभरदयाल की शर्तें मानने को कभी तैयार न होगा। और फिर परिणाम? परिणाम की कल्पना करते ही उनका हृदय काँप उठता था।

और आज जब उन्हें श्यामनाथ ने बतलाया कि प्रभानाथ विश्वंभरदयाल की शर्तें मानने को तैयार हो गया है, उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उदास मन वे सारी घटनाओं पर सोच रहे थे। उसी समय उन्हें सुनाई पड़ा, "ददुआ!"

रामनाथ ने चौंककर देखा, सामने वीणा खड़ी थी। "अरे, तुम! अभी तक जाग रही हो? क्यों क्या बात है?"

वीणा रामनाथ के सामने आकर खड़ी हो गई। उसने कहा, "सुना है प्रभानाथ मुखबिर बनने पर राजी हो गए हैं?"

'मुखबिर' शब्द से पंडित रामनाथ तिवारी तिलमिला उठे। अपने को संभालते हुए उन्होंने कहा, "मुखबिर नहीं, सरकारी गवाह बनने पर। एक यही तरीका है कि जिससे उसकी जान बच सकती है!"

"लेकिन उनकी जान बचने के माने होंगे कम-से-कम छः जनों का जाना। उस हत्या में छः आदमी और थे। उसके अलावा क्रांतिकारी दल में करीब तीस आदमी और हैं, और अगर प्रभा ने उनका नाम बतला दिया तो उन लोगों को कालेपानी की सजा हो सकती है।"

रामनाथ सँभलकर बैठ गए। उन्होंने गौर से वीणा को देखा, "तुम—तुम यह सब कैसे जानती हो? क्या तुम भी क्रांतिकारी दल में हो?" और वीणा के उत्तर देने के पहले ही वे उठ खड़े हुए, "अब समझा—अब समझा कि प्रभा ने तुम्हें उन्नाव क्यों बुलाया था! अब समझा कि एक बंगाली लड़की से उसकी इतनी घनिष्ठता क्यों थी, अब समझा!"

रामनाथ की इस मुद्रा से वीणा डरी नहीं, सहमी नहीं। उसने स्थिर-भाव से कहा, "आप ठीक समझे—लेकिन मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि प्रभानाथ जो

कुछ कर रहे हैं, क्या उचित कर रहे हैं ? क्या आप इसे उचित समझते हैं ?"

रामनाथ उत्तेजित हो उठे, "बिलकुल उचित कर रहा है वह ! तुम्हारी जान खतरे में है, तुम्हारे दोस्तों की जान खतरे में है—इसकी चिंता प्रभानाथ क्यों करे ? इसकी चिंता हम लोग क्यों करें ? जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा—भोगें —मरें ! छः नहीं, छः सौ आदमी मरें—वे कीड़े हैं, हमें इनकी चिंता क्यों हो ? जाओ यहाँ से, इसी समय मेरे घर से निकल जाओ !" रामनाथ चिल्ला उठे।

"इस तरह चिल्लाना आपको शोभा नहीं देता—मैं स्वयं जा रही हूँ। विश्वासघातियों के घर का अन्न खाकर मैंने अपने को अपवित्र कर लिया है—इसका प्रायश्चित करना होगा न !"

"विश्वासघाती !" रामनाथ वीणा की तरफ क्रोध से बढ़े, "क्या कहा ? विश्वासघाती ?"

वीणा ने इस समय विकराल रूप धारण कर लिया था, "हाँ—पतित, कीड़ों से भी गए-बीते—विश्वासघाती ! इतने आदमियों ने प्रभा पर विश्वास किया था—आज उस विश्वास को वह तोड़ रहा है। तुम लोग बड़े स्वाभिमानी, बड़े उत्तम आचरण के आदमी बनते हो। लेकिन मैं कहती हूँ कि तुम विश्वास को तोड़ने वाले, तुम अपने घनिष्ठ मित्रों को दगा देनेवाले हो। तुम उन लोगों की हत्या करने वाले—तुम कीड़ों से भी गए बीते हो—तुम शैतान हो।"

रामनाथ से अब न रहा गया, बढ़कर उन्होंने वीणा के मुँह पर एक तमाचा मारा। उस तमाचे से वीणा गिर पड़ी। उसे घसीटकर रामनाथ ने दरवाजे के बाहर कर दिया। दरवाजे पर से वीणा उठी, उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "विश्वासघाती ! विश्वासघाती !" और वह वहाँ से चली गई।

रामनाथ ने वीणा को रोका नहीं, उन्होंने उससे कुछ कहा नहीं; वे चुपचाप दरवाजे पर खड़े रहे। उनके कानों में रह-रहकर 'विश्वासघाती' शब्द सुनाई पड़ रहा था।

आज पहली बार रामनाथ तिवारी ने एक स्त्री पर हाथ उठाया था। आज पहली बार उन्होंने आकस्मिक उत्तेजनावश अपना विवेक खो दिया था। रामनाथ ने वीणा पर जो प्रहार किया था, वह इसलिए कि वीणा ने रामनाथ पर एक भयानक प्रहार किया था—ऐसा प्रहार, जिसे वह संभाल न सके थे। वीणा चली गई थी—लेकिन उसके प्रहार का असर रामनाथ पर बढ़ता ही जा रहा था।

'विश्वासघाती !' प्रभानाथ के लिए दुनिया इस भयानक शब्द का प्रयोग करेगी। और प्रभानाथ को यह विश्वासघात करने को प्रेरित किया गया है। रामनाथ कमरे में पागल की भाँति टहलने लगे।

रामनाथ की सारी अहम्मन्यता—उनका सारा आत्म-गौरव उस समय तिल-मिला उठा था, इतना कड़ा प्रहार दिया था वीणा ने ! वह मनुष्य,

झुकना नहीं जाना, जिसने दबना नहीं जाना—आज उसे एक स्त्री विश्वासघाती कहकर चली गई ! दरवाजे पर आकर रामनाथ फिर रुके। बँगले के दूसरे भाग का दरवाजा बन्द होने का शब्द उन्हें सुनाई दिया—वे उधर गए। वीणा कमरे के बाहर खड़ी थी और रामनाथ के कमरे की ओर देख रही थी। रामनाथ को देखते ही उसने अपना मुंह फेर लिया।

रामनाथ उसके पास पहुँचे। उन्होंने वीणा का हाथ पकड़ लिया, "वीणा—मुझे क्षमा करना जो मैंने तुम पर प्रहार किया—लेकिन तुमने मेरी आत्मा पर कितना कठिन प्रहार किया है, यह तुम न समझ सकोगी !"

वीणा चुप रही।

रामनाथ ने कहा, "इतनी रात में तो यहां से कोई गाड़ी नहीं मिलेगी ! कहां जा रही हो ?"

इस बार वीणा ने उत्तर दिया, "जहाँ जा रही हूँ, वहाँ गाड़ी पर चढ़कर नहीं जाया जाता, ददुआ।"

रामनाथ चौंक उठे, "क्या कहा ? आत्महत्या करोगी ?"

वीणा फूट पड़ी, "अपने और जिसे मैंने अपना सब कुछ मान लिया था, उसके पाप का प्रायश्चित करूंगी—अपने प्राण देकर ! इस शरीर के बंधन से मुक्त होकर आत्मा शायद जेल के सींखचों के अन्दर पहुँच सके—और तब एक बार मैं उन्हें यह जघन्य काम करने को रोकूंगी, एक बार वीर बनकर अपनी दुर्बलता पर विजय पाने को उत्साहित करूंगी, ददुआ !"

रामनाथ ने कमरे का दरवाजा खोला, वीणा को अन्दर भेजते हुए उन्होंने कहा "यह सब तुम्हें नहीं करना होगा। प्रभा ने जो दुर्बलता दिखाई है, वह क्षणिक हो सकती है। कल मैं उससे मिलने कानपूर जा रहा हूँ।"

५

श्यामनाथ को विदा करके जब उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुँचा, उस समय मार्कंडेय सोफ़ा पर लेटा हुआ था। उमानाथ थोड़ी देर तक अनिश्चित-सा दरवाज़े पर खड़ा रहा, फिर वह मार्कंडेय के पास कुर्सी पर बैठ गया। "सुना, मार्कंडेय भइया ! पुलिस मेरे पीछे भी लग गई है। आज एक सब-इंस्पेक्टर मुझसे पूछताछ करने आया था।"

मुसकराते हुए मार्कंडेय ने कहा, "तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? हिंदुस्तान में, और हिंदुस्तान में ही क्यों, दुनिया में पैसों पर बिकने वालों की कमी नहीं है। चारों तरफ़ जासूसों का एक जाल बिछा है—तुम किसी पर विश्वास नहीं कर सकते। जहां विश्वास किया, वहीं गए !"

मार्कंडेय उठकर बैठ गया, "फिर ! क्या किया तुमने ?"

"अभी तो मैंने उस सब-इंस्पेक्टर का मुंह बंद कर दिया है। लेकिन कहावत है न—'मौत ने घर का रास्ता देख लिया'।"

"उमा! तुम जो काम रहे हो, वह काफ़ी ज्यादा खतरे से भरा है। क्या तुम यह काम छोड़ नहीं सकते?"

"नहीं मार्कंडेय भइया— यह काम मेरा जीवन बन चुका है। इस काम को छोड़ने के माने होंगे अपने को, अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर लेना।"

"फिर क्या करोगे?" मार्कंडेय ने पूछा।

"यही तो समझ में नहीं आता। एक बहुत बड़े संगठन की जिम्मेदारी मैंने ली है। मेरे यहाँ आने से पहले कामरेड मारीसन के हाथ में यह काम था। इसके बाद मेरी नियुक्ति हुई, क्योंकि अंग्रेज होने के कारण कामरेड मारीसन पुलिस की निगाह में चढ़ गए थे। इसके अलावा हिंदुस्तानी न होने के कारण वे यहाँ ठीक तौर से काम भी नहीं कर पाते थे। मैंने आते ही काम बढ़ा दिया है।"

कुछ सोचकर मार्कंडेय ने कहा, "अच्छा उमा! रूस जो हिंदुस्तान में यह सब कर रहा है, इसमें क्या रूस का कोई हित है या केवल विश्व-कल्याण के लिए ही वह यह सब कर रहा है?"

"केवल विश्व-कल्याण के लिए!" उमानाथ ने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा, "रूस सारी दुनिया के दलित और उत्पीड़ित वर्ग का एकमात्र प्रतिनिधि है। रूस सारी दुनिया में साम्य स्थापित करना चाहता है!"

"मेरा ऐसा ख़याल है कि इस काम में रूस को काफ़ी रुपया खर्च भी करना पड़ता होगा।"

"निश्चय! बिना रुपये के कहीं कोई काम चलता भी है?" उमानाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन हम कम्यूनिस्ट—हम लगन के आदमी हैं। कम-से-कम खर्च में अधिक-से-अधिक काम करना हमारा ध्येय है, मार्कंडेय भइया!"

"मुझे तुम हिंदुस्तानी कम्युनिस्टों और तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है!" यह कहकर मार्कंडेय जोर से हँस पड़ा।

चौंककर उमानाथ ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं?"

मार्कंडेय ने उत्तर दिया, "उमा! यह याद रखना, कि जो पैसा देकर तुम लोगों को खरीद रहा है, उसका इस खर्च करने में एक बहुत बड़ा स्वार्थ होना अनिवार्य है!"

"हम लोगों को खरीद रहा है? हम लोगों को कौन खरीद सकता है? हम अपने विश्वासों पर दृढ़ हैं—हम एक सिद्धांत के लिए लड़ रहे हैं—हम पूँजीपतियों के भयानक शत्रु हैं। खरीदा-बेचा जाता है पूँजीवाद में!" उमानाथ ने उत्तेजित होकर कहा, "कांग्रेस के अंदर जो पूँजीवाद का नग्न नृत्य हो रहा है, उस पाप से हम कम्यूनिस्टों को तौलने वालों की बुद्धि पर हमें तरस आना चाहिए, मार्कंडेय भइया!"

मार्कंडेय कांग्रेस पर किए गए इस प्रहार को पी-सा गया। उसने कहा—"उमा! तो तुम्हारा ख़याल है कि रूस एक महान देश है!"

"हाँ—रूस महान देश है। रूसवालों ने ही पूँजीवाद को अपने यहाँ से निकाल

बाहर करने का साहस किया है। रूस ही इस दुनिया का नेतृत्व करने योग्य है।"

मार्कंडेय उठ खड़ा हुआ, "उमानाथ! अँग्रेजों के हाथ बिकने वालों को फिर तुम व्यर्थ दोष दे रहे हो! उनकी और तुम्हारी स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं। वे समझते हैं कि इंग्लैंड के हाथ ही देश का कल्याण है जबकि तुम समझते हो कि रूस के हाथ देश का कल्याण है। हम इंग्लैंड के हाथ बिकने वालों को दोष इसलिए देते हैं कि इंग्लैंड यहाँ शासन कर रहा है। लेकिन तुम लोगों का यह प्रयत्न है कि अगर रूस यहाँ शासन करने आए तो हिंदुस्तान रूस की गुलामी के लिए तैयार रहे। दुनिया में वास्तविकता बड़ी भयानक है, बड़ी कुरूप है। ये सारे सिद्धांत मौखिक हैं। चीज़ वही संभव है, जो मनोवैज्ञानिक है। और मनोवैज्ञानिक कहता है कि अनुचित साधन अपनाने वाले का कभी उच्चादर्श हो ही नहीं सकता। जाल, फ़रेब, धोखा, झूठ, हिंसा—इनको सत्ता को स्वीकार करनेवाला कोई भी राष्ट्र दूसरों का कल्याण नहीं कर सकता, उमा!" मार्कंडेय बिना उमानाथ का उत्तर सुने ही वहाँ से चला गया।

उस समय सूर्यास्त हो चुका था और कमरे में अंधेरा छाया हुआ था। मार्कंडेय एक बहुत कड़ी बात कहकर चला गया था—उमानाथ इसका अनुभव कर रहा था। उस कमरे का अंधकार उसकी आत्मा में समाया जा रहा था। घबराकर उमानाथ ने बिजली का स्विच दबा दिया। फिर आकर चुपचाप वह कुर्सी पर बैठ गया।

पर उस बिजली के पीले प्रकाश में उमानाथ को धुंधलापन ही नज़र आ रहा था। उसके अन्दर इस तरह अचानक ही फिर आने वाली उदासी को उमानाथ समझ न पा रहा था। यह सब क्यों? उमानाथ को कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि आगे कोई बहुत अशुभ घटना घटित होने वाली है। निराशा का एक अथाह सागर उसकी आँखों के सामने लहरा रहा था। और एकाएक उसने अपने से ही पूछा, 'यह निराशा क्यों?'

सुबह से जो कुछ हुआ—वे कोई ऐसी बातें नहीं थीं, जो उमानाथ को विचलित कर सकें। पुलिस के मामले को उसने टाल दिया था, प्रभानाथ का मामला व्यक्तिगत प्रभानाथ का था, और उसमें भी प्रभानाथ के बचने की ही बात थी। और जो कुछ मार्कंडेय कह गया, वह एक प्रलाप-भर था। लेकिन फिर भी इन घटनाओं ने एकरूप होकर, एक में मिलकर उमानाथ के अन्दर भयानक उथल-पुथल पैदा कर दी थी। उमानाथ आँखें बंद किए हुए सोच रहा था, 'मैं यह सब क्या कर रहा हूँ? क्यों कर रहा हूँ? और आगे चलकर मुझे क्या करना होगा?' उमानाथ के सामने एक के बाद एक ये प्रश्न आ रहे थे और इन प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर उसके पास न था। एकाएक चौंककर उसने आँखें खोलीं, उसने देखा कि फर्श पर उसके सामने उसके पैर के पास महालक्ष्मी बैठी है।

"अरे, तुम?" उमानाथ कह उठा।

"आज आप बहुत उदास हैं ! अगर कोई हर्ज न हो तो मुझे बताइये, क्या बात है !" महालक्ष्मी ने करुण स्वर में पूछा।

उमानाथ जितना ही महालक्ष्मी को अपने जीवन से दूर हटाने का प्रयत्न करता था, उतना ही अधिक महालक्ष्मी उमानाथ के जीवन में आने का प्रयत्न करती थी। महालक्ष्मी भी उमानाथ के जीवन में एक समस्या थी। लगातार उमानाथ की सेवा—केवल एक दासी की भांति—महालक्ष्मी ने अपना व्रत बना रखा था। महालक्ष्मी का त्याग, उसका असीम आत्म-बलिदान—उमानाथ इसकी उपेक्षा न कर सकता था। उमानाथ को महालक्ष्मी के प्रति क्रोध होता था, पर उस क्रोध से प्रबल भावना थी उमानाथ के महालक्ष्मी के प्रति दुख की।

उमानाथ ने कहा, "महालक्ष्मी—आज न जाने क्यों मन एकाएक उदास हो गया है। ऐसा दिखता है कि मुझे हिंदुस्तान छोड़कर जाना पड़ेगा !"

महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिए, "आप मत जाइए—उन्हीं को यहीं बुला लीजिए। मैं घरवालों से कहकर सब कुछ ठीक कर दूंगी—लेकिन आप मत जाइए—मैं विनती करती हूँ।"

उमानाथ हँस पड़ा, "नहीं महालक्ष्मी, यह बात नहीं है। तुम नहीं समझोगी !"

[illegible]

कम मैं तो गिरफ्तार नहीं होना चाहता !"

"क्या आप भी···आप भी···" महालक्ष्मी कहते-कहते रुक गई; उसका गला भर आया था।

"नहीं, मैंने डकैती नहीं की, हत्या भी नहीं की। लेकिन सरकार के खिलाफ मैं जरूर हूँ !"

"और कोई दूसरा उपाय नहीं ?" महालक्ष्मी की आँखों में आँसू भर आए थे।

उमानाथ हँस पड़ा, "इतनी अधिक चिंता की बात नहीं है। उठो, अन्दर जाओ ! बड़के भइया आते होंगे !"

महालक्ष्मी सिर झुकाए अन्दर चली गई, उमानाथ उठकर बरामदे में आ गया।

थोड़ी देर तक उमानाथ बरामदे में खड़ा रहा, फिर उसके पैर अपने आप उठ गए—वह शहर की ओर चल दिया।

उस समय बहादत्त घर पर ही था; उमानाथ के आते ही उसने उसका अभिवादन किया—"अरे कामरेड, तुम इस वक्त !"

एक हल्की मुसकराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "ऐसे ही, घर में मन नहीं लग रहा था ! तुम्हारे यहाँ चला आया।"

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के मुख पर चिंता के भाव पढ़ लिए, "क्या बात है, कामरेड—आज तुम्हारा मुँह बहुत उतरा हुआ है। कोई खास घटना घटी है क्या ?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "हाँ, ब्रह्मदत्त ! आज जब मैं मीटिंग के बाद घर लौटा, तब एक पुलिस इंस्पेक्टर मेरे घर आया। वह मेरे मूवमेंट पर तहकीकात करने भेजा गया था !"

"यह तो बुरा हुआ, कामरेड ! मैंने पहले ही कहा था कि नरोत्तम पर विश्वास करके तुमने अच्छा नहीं किया। फिर ?"

"जहाँ तक उस इंस्पेक्टर का सवाल है, मैंने उसे तो अपने बस में कर लिया है। लेकिन ब्रह्मदत्त ! बात सरकार तक पहुँच गई है—अधिकारी वर्गों की आँखों में आ चुका हूँ।"

ब्रह्मदत्त ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा, "कामरेड, मेरी सलाह मानो तो थोड़े दिनों के लिए तुम अपना काम-काज बंद कर दो। हम लोगों को तुमने काम समझा दिया ही है; हम लोग उसे चलाते रहेंगे। तुम यहाँ से हट जाओ, इसमें ही भला है। जब सरकार तुम्हारे मामले में असावधान हो जाय, तब तुम काम शुरू कर देना !"

"मैं भी यही ठीक समझता हूँ।" उमानाथ ने उत्तर दिया।

६

सुबह दस बजे पंडित रामनाथ तिवारी प्रभानाथ से मिलने पहुँचे। प्रभानाथ ने पिता के चरण छुए और चुपचाप उदास खड़ा हो गया।

रामनाथ ने पूछा, "अच्छी तरह हो, किसी तरह का कोई क्लेश तो नहीं है ?"

"जी नहीं, शारीरिक क्लेश तो कोई नहीं है, किन्तु मानसिक पीड़ा जरूर है।"

"कैसी मानसिक पीड़ा ?" रामनाथ तिवारी ने पूछा।

इस बार प्रभानाथ ने सिर उठाकर अपने पिता को देखा, "ददुआ ! काका ने कल सरकारी गवाह बनने की मेरी अनुमति ले ली है—लेकिन तब से मेरे मन में एक भयानक अशांति भर गई है। यह काम, जो मैं कर रहा हूँ, अपनी इच्छा के विरुद्ध कर रहा हूँ।"

रामनाथ ने अपने पुत्र की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा, "प्रभा ! अपने कर्मों का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं होता है। किसी के विवश करने से जिसे तुम अनुचित समझते हो, उसे करना कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय तुम्हारे हाथ में है।"

प्रभानाथ बढ़कर पिता के चरणों में गिर पड़ा। "ददुआ—कल से बुरी तरह भटक रहा हूँ। आपने मुझे उचित रास्ता दिखला दिया। एक बहुत बड़े पाप से

आपने मुझे बचा लिया है। अब मैं शांतिपूर्वक हँसते-हँसते मर सकता हूँ।"

रामनाथ सहमकर एकदम पीछे हटे, "क्या कह रहे हो, प्रभा! तुम मेरा मतलब ठीक तरह नहीं समझे।"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। उसके मुख की उदासी जाती रही थी। उसके मुख पर उल्लास का तेज था, दृढ़ता की चमक थी, "ददुआ, मरना है ही—आज नहीं तो कल। इस नश्वर शरीर को बचाने का मोह मुझमें कैसे आ गया था, मुझे आश्चर्य हो रहा है। कैसे मैंने काका को अनुमति दे दी थी!"

रामनाथ को अब अपने पुत्र के सामने खड़ा रहना असह्य हो गया था। उन्होंने यह क्या कर डाला? रामनाथ के अंदरवाला पिता उन्हें धिक्कार रहा था कि उन्होंने स्वयं अपने हाथों अपने पुत्र को फाँसी पर चढ़ने को तैयार किया है। उन्होंने जल्दी से कहा, "प्रभा! तुमने अपने काका से जो वादा किया है, उसे पूरा करो—मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है!"

"आपका आशीर्वाद तो मुझे मिल चुका है, ददुआ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "अब कोई भी कमज़ोरी मुझ पर आधिपत्य नहीं जमा सकती, इतना विश्वास रखिए!"

रामनाथ से और ज़्यादा न बोला गया, सिर झुकाए हुए वह अपने पुत्र के सामने से चले आए।

जेल से लौटकर पंडित रामनाथ तिवारी को अपने छोटे भाई से मिलने की हिम्मत न हुई, वे सीधे उन्नाव चले गए।

शाम के समय उन्होंने वीणा को बुलवाया, "कल वाली खबर, कि प्रभानाथ मुखबिर बनने पर राज़ी हो गया है, ग़लत थी। मैं आज सुबह प्रभा से मिल आया हूँ।"

आश्चर्य से वीणा ने रामनाथ की ओर देखा, "आपने···ददुआ···आपने··· मुझे आश्चर्य होता है!"

"चुप रहो, और जाओ यहाँ से! चुड़ैल कहीं की!" रामनाथ क्रोध में कह उठे, "अब मुझे अपना मुँह मत दिखाना!"

न जाने क्यों, रामनाथ की गाली सुनने पर भी, वीणा ने अनायास ही झुक-कर रामनाथ के चरण की धूल अपने मस्तक पर लगा ली। उसने रामनाथ से कहा, "ददुआ, आपने अपने पुत्र को खोया है, लेकिन मैंने अपना सर्वस्व खो दिया है!"

रामनाथ का स्वर कठोर हो गया, "वीणा! क्या तुम सच कह रही हो?"

"देवता-तुल्य अपने पूज्य से मैं झूठ न बोल सकूँगी!" वीणा ने शांतभाव उत्तर दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक कठोर दृष्टि से वीणा को देखते रहे, उन्होंने वीणा के मस्तक पर हाथ रख दिया, "हिंदू-पत्नी के कर्तव्य को

हो—मुझे तुमसे आशा है?"

"आपको मेरी ओर से निराश होने का अवसर न आएगा।" वीणा ने उत्तर दिया।

७

सुबह जब उमानाथ सोकर उठा, उसका मन हल्का था। चाय पीकर जब वह ड्राइंग-रूम में गया, वहाँ दयानाथ अपने साथियों से चुनाव के विषय में परामर्श कर रहे थे। मार्कंडेय ने उमानाथ को देखते ही कहा, "आओ उमा, बड़े मौके से आ गए हो तुम। अब यह ब्रह्मदत्त वाला मसला तुम हल करो!"

दयानाथ ने उत्तेजित होकर कहा, "ब्रह्मदत्त—ब्रह्मदत्त! मुझे ब्रह्मदत्त से कुछ नहीं कहना है, न मुझे उसकी सहायता की ही कोई आवश्यकता है। ये पतित और नीच कोटि के व्यक्ति—ये इतना ऊपर चढ़ जायँ, मुझसे भीख मँगवाएँ, खुशामद करवाएँ—यह विधि की विडम्बना ही है!"

"इतना उत्तेजित होने की कोई बात नहीं दयानाथ।" मार्कंडेय ने समझाया, "तुम यह याद रखना कि तुम राजनीति को अपने जीवन में अपना चुके हो, और राजनीति में यह सब कुछ करना पड़ता है।"

दयानाथ ने और भी गरम होकर कहा, "मार्कंडेय! ऐसी कोई भी बात राजनीति में सही मानने को मैं तैयार नहीं हूँ, जिसे साधारण जीवन में मैं बुरी समझूँ। मैं उस राजनीति को समाज के लिए घातक समझता हूँ, जो नैतिकता से परे है।"

"पर यह बात नैतिकता से कहाँ परे है? तुमसे कोई अनैतिक बात करने को तो मैं नहीं कह रहा हूँ; मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम ब्रह्मदत्त से स्वयं मिलकर उससे अपनी पार्टी के साथ वोट देने के लिए कहो। मैं मानता हूँ कि इस काम में तुम्हारी अहंमन्यता को धक्का जरूर लगेगा, लेकिन दयानाथ, अहंमन्यता से ऊपर उठना ही सबसे बड़ी अहिंसा है।"

दयानाथ कह उठा, "मार्कंडेय, अहिंसा निर्बल की चीज़ नहीं है, अहिंसा सबल की चीज़ है। निर्बल में अहिंसा कायरता समझी जाती है। आज मुझे अपना हित-साधन करना है, और अपने हित-साधन के लिए जब मैं ब्रह्मदत्त के सामने जाता हूँ, तब मैं उसके अंदरवाली हिंसा-वृत्ति को तुष्ट करके उसे और भी पुष्ट करने के पाप का भागी बन जाता हूँ। मैं ब्रह्मदत्त के सामने झुकने को तैयार हूँ। लेकिन तब, जब मैं सबल हूँ, जब ब्रह्मदत्त से मुझे कोई काम न हो, जब ब्रह्मदत्त को मुझसे कोई काम हो!"

"यही तुम्हारी अहंमन्यता है, दया!" मार्कंडेय कह उठा, "तुम झुकने के लिए तैयार नहीं; तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे सामने झुकें। यह कोई बुरी बात भी नहीं है, जहाँ तक व्यक्तित्व का सवाल है, लेकिन राजनीति में अपने व्यक्तित्व को लोक-हित में मिला देना पड़ता है और लोक-हित के लिए दूसरों के

आगे झुकने में मैं तो कोई हर्ज नहीं समझता। मेरी बात मानो,
दया—बिना ब्रह्मदत्त के आगे झुके तुम्हारी विजय असंभव है!"

दयानाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर उसने कहा, "अच्छी बात है—जैसा कहते हो करूँगा, केवल तुम लोगों को संतुष्ट करने के लिए!" और वह उमानाथ की ओर घूमा, "उमा, अगर तुम्हें ब्रह्मदत्त मिलें, तो उनसे कह देना कि मैं कल सुबह उनके यहाँ आऊँगा, वे घर पर ही रहें।"

सब लोगों के चले जाने के बाद जब दोनों भाई अकेले रह गए, तब उमानाथ ने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया! आपने सुना है—प्रभा सरकारी गवाह बनने पर राजी हो गया है!"

दयानाथ चौंक उठे, "असंभव! यह क्या कह रहे हो?"

"कल शाम काका मुझसे कह गए हैं। वे कल रात दद्दुआ के यहाँ चले गए थे।"

दयानाथ गंभीर हो गया, "विश्वास नहीं होता, उमा! क्या प्रभा अपने प्राण बचाने के लिए अपने साथियों के साथ विश्वासघात करेगा? यह तो हम लोगों के कुल के नाम पर बहुत बड़ा कलंक होगा!"

उमानाथ हँस पड़ा, "प्राण बचाने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता, बड़के भइया! लेकिन प्रभा को अपने प्राणों का इतना मोह हो गया है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर उमानाथ ने फिर कहा, "बड़के भइया, विपत्ति के बादल मुझ पर भी मँडरा रहे हैं। कल एक पुलिस इंस्पेक्टर मुझसे पूछताछ करने आया था। एक हजार रुपया देकर मैंने अभी तो उसे अपनी ओर मिला लिया है, लेकिन खेल ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगा।"

"क्या कहा? सरकार को तुम्हारे कम्यूनिस्ट होने का पता चल गया है? यह तो बुरा हुआ!"

"ब्रह्मदत्त का कहना है कि मैं कुछ समय के लिए कानपुर से चला जाऊँ सोच रहा हूँ कि दो-चार महीने के लिए बानापुर हो आऊँ, इस बीच में पुलिस भी मेरी तरफ से असावधान हो जाएगी!"

दयानाथ मुसकराया, "लेकिन यह कब तक? दो-चार महीने बाद जब तुम आओगे, पुलिस फिर तुम्हारे पीछे लगेगी। छिपकर काम करना तो मुझे ठीक नहीं जँचता, जो कुछ करो खुलकर, निर्भीक होकर।"

"लेकिन बड़के भइया—आप जानते ही है कि हमारी संस्था गैर-कानूनी है। खुलकर हम अपना काम कर ही नहीं सकते।"

"ऐसी हालत में तुम्हारा मार्ग गलत है—उसे सदा के लिए त्याग देना ही तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा।"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप क्या कह रहे हैं, भइया? मैं अपने पवित्र आदर्शों को छोड़ दूँ, असंभव! हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ना है, हमें पूँजीवाद

करना है, हमें सामंतशाही को मिटाना है। यह काम आसान नहीं है जब कि देश के अधिकांश लोग भेड़-बकरियों से भी गए-बीते हैं।…"

उमानाथ अपनी बात खत्म भी न कर पाया था। कि कमरे में सब-इंस्पेक्टर लालबहादुर ने प्रवेश किया। लालबहादुर दयानाथ को अच्छी तरह पहचानता था। उसने दयानाथ को अभिवादन करके उमानाथ से कहा, 'कुंवर साहेब, मैं आपको आगाह करने आया हूँ—खतरा सिर पर मँडरा रहा है।"

"क्या मतलब है आपका ?" उमानाथ ने पूछा।

"मैं नहीं जानता था कि अफ़सरान आपके मामले में इतनी सरगर्मी दिखलाएँगे। मेरा ऐसा खयाल है कि दो-तीन दिन में आपके नाम वारंट निकल जायगा। आपके पास तीन दिन का समय है—आप जैसा उचित समझें, करें।"

लालबहादुर के जाने के बाद दयानाथ ने पूछा, "अब क्या करोगे, उमा ? गाँव तो तुम नहीं जा सकते, क्योंकि पुलिस वहाँ तुम्हारा पीछा करेगी।"

उमानाथ ने चिंतित भाव से कहा, "हाँ, बड़के भइया ! अब केवल एक उपाय है—मैं हिंदुस्तान छोड़ दूं। हिंदुस्तान में जहाँ भी रहूँगा, वहीं गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा !"

"लेकिन हिंदुस्तान के बाहर कैसे जा सकोगे ?"

"इसकी चिंता आप न करें। बंबई, कलकत्ता—जहाँ से होगा, किसी भी विदेशी जहाज में स्मगल करके रवाना हो जाऊँगा—इन हथकंडों में हम लोग सिद्धहस्त हैं। लेकिन सवाल मेरे सामने पैसे का है। हिंदुस्तान से जाने के लिए पास में दस-पाँच हजार रुपया तो होना ही चाहिए। इतना रुपया ददुआ से कैसे माँगा जाय ?"

दयानाथ ने कहा, "मेरी तो आर्थिक स्थिति तुम जानते ही हो, उमा ! अभी तो तुम यहाँ से चले जाओ, फिर मौका पाकर ददुआ से माँग लेना !"

"आप ठीक कहते हैं।" उमानाथ ने कहा।

सातवाँ परिच्छेद

"मैंने राजपूत-इतिहास में पढ़ा था कि बाप अपने बेटे को फांसी दे सकता है। यकीन नहीं होता था माताप्रसाद—किस तरह एक बाप अपने बेटे को फाँसी के तख्ते पर भेज सकता है। लेकिन पंडित रामनाथ तिवारी इस बीसवीं सदी में, अपने बेटे को फाँसी के तख्ते पर भेज रहे हैं—कुछ समझ में नहीं आता—जरा भी समझ में नहीं आता !" विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद से कहा।

माताप्रसाद चुप थे—क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कैसे हो रहा है—इस

सबमें अब उन्हें कोई दिलचस्पी न रह गई थी। वे यह अनुभव कर रहे थे कि परिस्थितियों द्वारा वे एक अप्रिय तथा घृणित कांड में पड़ गए हैं। उन्होंने विश्वंभरदयाल को कोई उत्तर नहीं दिया।

पर अपनी बात विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वह बात उसने कही थी स्वयं अपने से। प्रभानाथ ऐन मौके पर मुखबिर बनने से इनकार कर जाएगा, इसकी उसने आशा न की थी। उसकी जीती हुई बाजी अनायास ही उसके हाथ से निकल गई। जज के सामने विश्वंभरदयाल को लज्जित होना पड़ा, जज के सामने ही नहीं, सारे पुलिस डिपार्टमेंट के सामने, और सबसे बढ़कर अपने सामने उसे लज्जित होना पड़ा था। विश्वंभरदयाल के माथे पर बल पड़ गए थे—उसके मुख पर एक भयानक प्रतिहिंसा की छाया घिर आई थी। कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा रहा, और फिर वह फूट पड़ा, "बाप बेटे से कहे कि अपना बयान वापस लेकर फाँसी पर चढ़ जाय! मैं जानता हूँ कि प्रभानाथ बयान देता, लेकिन उस दिन रामनाथ ने प्रभानाथ से मिलकर मेरे किए-धरे पर पानी फेर दिया। अपने बेटे की जान लेकर वह मुझे हराना चाहता है। मैं जानता हूँ—रामनाथ भी जानते हैं कि प्रभानाथ के फाँसी पर चढ़ने से मुझे कोई फायदा नहीं होगा—रामनाथ तिवारी का फायदा उसी में है, जिसमें मेरा फायदा है। लेकिन रामनाथ तिवारी अपना फ़ायदा नहीं चाहते—इसलिए कि वे मेरा फायदा नहीं चाहते। वह मुझे गिराना चाहते हैं, मुझे जलील करना चाहते हैं!"

इस बात का उत्तर देने की माताप्रसाद को कोई आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि यह बात भी विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वरन् अपने से कही थी; पर न जाने क्यों माताप्रसाद अपने को न रोक सके। उन्होंने कहा था, "अगर आप मुझे माफ करें तो मैं कहने की हिम्मत जरूर करूँगा कि आप चीजों को गलत तौर से समझ रहे हैं!"

"गलत तौर से समझ रहा हूँ?" विश्वंभरदयाल ने माताप्रसाद पर अपनी तेज आँखें गड़ाते हुए पूछा, "माताप्रसाद साहेब, आप क्या कह रहे हैं?"

"जी, मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने आपको पहले ही आगाह कर दिया था कि आप गलत रास्ता अपना रहे हैं। राजा साहेब ने जो कुछ किया, उसी की उनसे उम्मीद की जा सकती थी। प्रभानाथ का मुखबिर बन जाना उनके आला खानदान पर एक बहुत बड़ा कलंक होता—उस कलक से वे बचना चाहते थे। उसमें आपकी दुश्मनी-दोस्ती का कोई सवाल नहीं उठता।"

विश्वंभरदयाल कह उठा, "यहीं पर आप गलती करते हैं, माताप्रसाद साहेब! असलियत यह है कि मेरे और राजा साहेब के बीच में एक शतरंज का खेल हो रहा है—प्रभानाथ उसमें महज एक मोहरा है। मैं पूछता हूँ कि प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वह अपने खानदान पर कलंक क्यों समझते हैं? अगर मान भी लिया जाय कि वह प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वाकई अपने कलंक समझते हैं, तो फिर ऐसी हालत में वह मुझे व मेरी हरकतों

से देखते होंगे—सवाल यह है। मैंने कहा न—प्रभानाथ मोहरा है—खेलने वाला मैं हूँ—चाल मेरी है। राजा साहेब मुझसे नफ़रत करते हैं—नफ़रत! अपने लड़के को भी कुर्बान करके वह मुझे हराना चाहते हैं···" और एकाएक विश्वंभरदयाल हँस पड़ा। बड़ी कुरूप और भयानक हंसी थी वह, और वह बड़ी देर तक हँसता रहा। उसने कहा, "लेकिन माताप्रसाद साहेब—मैं भी ज़बर्दस्त खिलाड़ी हूँ; मुझे हराना आसान काम नहीं है। मैं जीतूंगा और फिर जीतूंगा—हारने के लिए मैंने कदम नहीं उठाया।"

इस बार मातप्रसाद चौंक उठे—उन्होंने विश्वंभरदयाल की ओर एक कौतूहल की दृष्टि डाली। मातप्रसाद की आँखों वाले कौतूहल को विश्वंभरदयाल ने पढ़ लिया था, "मातप्रसाद साहेब! मौत से भी भयानक चीज़ होती है उसकी पीड़ा। मृत्यु में भय है, पीड़ा नहीं है। प्रभानाथ ने भय पर विजय पा ली है—मैं जानता हूँ, वह पीड़ा पर विजय न पा सकेगा।"

"मैं समझा नहीं!" और मातप्रसाद की समझ में वास्तव में विश्वंभरदयाल की बात न आई थी।

"जी—आप नहीं समझ पाए—समझना मुश्किल भी है। आपको शायद यह पता नहीं कि दुनिया की बड़ी-से-बड़ी सरकारों को अकसर ऐसे लोगों से साबिका पड़ता है जो मौत से नहीं डरते। और उन लोगों पर हावी आना, उनसे बात कहला लेना, उनसे बातें निकाल लेना—कभी-कभी यह निहायत जरूरी होता है। ऐसी हालत में सरकार के सामने एक ही रास्ता रह जाता है—उस निर्भय आदमी को भयानक पीड़ा देना!"

"तो क्या आपका मतलब है कि उस लड़के को···?" मातप्रसाद कहते-कहते रुक गए।

"जी हाँ—आप बिलकुल ठीक समझे! मुझे उससे बात कहलानी है—और मैं कहलाऊंगा। हमारी सरकार लोगों से बात कहलाना जानती है"—और विश्वंभरदयाल उठ खड़े हुए।

२

मुंशी मातप्रसाद स्तब्ध-से रह गए। बात यहाँ तक पहुँच सकती है—इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। पंडित श्यामनाथ तिवारी के लड़के के साथ वह बरताव किया जाएगा, जो साधारण खूनियों और डकैतों के साथ किया जाता है—शायद उससे भी कड़ा बरताव किया जाए। उन्होंने सुन रखा था कि पुलिस के कुछ ऐसे विभाग हैं, जो अमानुषिक यंत्रणा देने में सिद्धहस्त हैं। उन यंत्रणाओं के आगे बड़े-से-बड़े दिल के आदमी भी काँप उठते हैं।

मातप्रसाद ने यह तै कर लिया कि इसकी सूचना पंडित श्यामनाथ तिवारी को दे दी जाय। शायद विश्वंभरदयाल ने मातप्रसाद से जो बातें कही थीं, इसीलिए कही थीं कि वे बातें पंडित रामनाथ के कानों तक पहुँच जाएँ। विश्वंभर-

दयाल एक कुशल खिलाड़ी है—उससे भी अधिक भयानक खिलाड़ी है। माताप्रसाद जानते थे कि विश्वम्भरदयाल जीतने पर तुला हुआ है। जो बात उसने कही है, उसे वह पूरा करेगा।

जब माताप्रसाद पंडित श्यामनाथ तिवारी के यहाँ पहुँचे, उन्हें पता चला कि श्यामनाथ तिवारी अपने भाई से मिलने को उन्नाव गए हैं। माताप्रसाद सीधे उन्नाव के लिए रवाना हो गए।

श्यामनाथ तिवारी को पिछले दिन ही यह खबर मिल गई थी कि प्रभानाथ ने मुखबिर बनने से इनकार कर दिया है। रामनाथ तिवारी से इस संबंध में बातें करने के लिए ही यह उन्नाव गए थे।

रामनाथ कह रहे थे, "श्यामू—मैं प्रभा को बचाऊँगा, मैं तुमसे कहता हूँ। अपनी सारी ताकत लगा दूँगा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि प्रभा को फाँसी नहीं होगी।"

उसी समय रामनाथ तिवारी को माताप्रसाद के आने की इत्तला मिली। वीणा बगल वाले कमरे में बैठी हुई इन दोनों भाइयों की बातचीत सुन रही थी, और उसके मन में एक प्रकार की शांति थी, एक प्रकार का संतोष था। पर माताप्रसाद के आते ही उसका दिल न जाने क्यों धड़कने लगा। एक अज्ञात भय से वह सिहर उठी।

श्यामनाथ ने माताप्रसाद का स्वागत किया, "आइए माताप्रसाद साहेब ! कैसे तकलीफ़ की ?"

"हुज़ूर, बड़ा गज़ब हो गया। उस शैतान ने यह तै कर लिया है कि जिस तरह भी हो, प्रभानाथ से बात निकलवाई ही जाएगी।" माताप्रसाद ने कहा।

"तुम्हारा मतलब···" श्यामनाथ पूरी बात कहते-कहते रुक गए।

"जी हाँ—प्रभानाथ को टार्चर करने की तैयारी है। मुमकिन है टार्चर शुरू भी हो गया हो !"

रामनाथ उठ खड़े हुए, "बात यहाँ तक पहुँच गई है। मेरे लड़के को पुलिस टार्चर करेगी। श्यामू—चलो, मुझे अभी कानपुर चलना है।"

सब लोगों के चले जाने के बाद वीणा बरामदे में आकर बैठ गई। उस समय वह बहुत अधिक उद्विग्न थी। माताप्रसाद ने जो खबर दी थी, उस खबर के महत्त्व को वह जानती थी। वह जानती थी कि टार्चर क्या बला है, वह यह भी जानती थी कि वीर-से-वीर आदमी भी उस टार्चर को नहीं बर्दाश्त कर सकता।

क्या पंडित रामनाथ तिवारी कुछ कर सकेंगे ? नहीं—कुछ भी नहीं। वीणा जानती थी कि उस महान् ब्रिटिश सरकार की नजर में रामनाथ तिवारी घास के एक कण हैं। रामनाथ से कुछ नहीं होगा—और वीणा सिर से पैर तक सिहर उठी।

प्रभानाथ कहाँ हैं—वह नहीं जानती थी। वह कानपुर में नहीं होगा, यह निश्चित था। पुलिस उसे कानपुर से हटाकर और कहीं ले जाएगी—

जिसका रामनाथ और श्यामनाथ को पता न लग सके। उसे प्रभानाथ का पता लगाना होगा, उसे अब काम करना होगा।

वीणा—एक तो स्त्री और उस पर अकेली—अपनी पिस्तौल को देख रही थी और सोच रही थी। एक बहुत बड़ा, एक बहुत महत्त्व का काम था उसके सामने ! क्या वह उसे कर सकेगी ?

३

पंडित रामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए थे, पर उनका दिल कह रहा था कि वे कुछ न कर सकेंगे। उनके मन में एक प्रकार की निराशा भर गई थी, उनके अंदर एक प्रकार का भय समा गया था।

निराशा और भय—रामनाथ ने पहली बार इन चीजों का अनुभव किया था। बड़े जबर्दस्त आदमी से उनका मुकाबला पड़ा है; और अब वे यह अनुभव करने लगे थे कि उस आदमी को पराजित करना असंभव-सा है। विश्वंभरदयाल जैसे न जाने कितने आदमियों से उनका वास्ता पड़ चुका था, लेकिन कभी भी उन्हें उस प्रकार के भय का अनुभव न हुआ था। जो उनके सामने आया, उसे उनके आगे झुकना पड़ा। आज पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि जो आदमी उनके सामने आया है, वह उन्हें झुकाने पर तुला हुआ है।

और रामनाथ तिवारी को ऐसा अनुभव हुआ कि मनुष्य से नहीं, इस समय उनका युद्ध नियति के साथ चल रहा है। विश्वंभरदयाल उस नियति का साधन-मात्र है।

मोटर तेजी के साथ चली जा रही थी और रामनाथ तिवारी सोच रहे थे। विश्वंभरदयाल की इतनी मजाल कि वह उनके लड़के को टार्चर करे ! वह चाहते थे कि विश्वंभरदयाल उनके सामने आए और वे विश्वंभरदयाल को मसल दें—हमेशा के लिए मिटा दें। प्रतिहिंसा की भयानक आग उनमें भड़क उठी थी।

कानपुर पहुँचकर वे सीधे जेल पहुँचे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि सुबह के समय प्रभानाथ कानपुर से पुलिस की हिरासत में किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया गया है। यह खबर सुनकर रामनाथ तिवारी का सिर चकरा गया। इतनी जल्दी कार्रवाई शुरू हो गई !

पुलिस ने अदालत से एक महीने की मोहलत ले ली थी। पुलिस का यह कहना था कि प्रभानाथ बहुत खतरनाक किस्म का मुलजिम है, उसके क्रांतिकारी साथी उसे बचाने की कोशिश कर सकते हैं—यही नहीं, प्रभानाथ की जान को उन क्रांतिकारियों के हाथ से भी खतरा है—और ऐसी हालत में जब तक अदालत में मामला पेश न हो, पुलिस प्रभानाथ को एक अज्ञात स्थान में रखेगी।

दूसरे दिन रामनाथ ने बहुत कोशिशें की कि प्रभानाथ के स्थान का उन्हें पता लग सके, लेकिन इसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। शाम के समय रामनाथ निराश भाव से उन्नाव लौट गए।

रामनाथ के जाने के बाद श्यामनाथ कानपुर में अकेले रह गए—असहाय और हतबुद्धि ! उन्होंने एक बार विश्वंभरदयाल से मिलने की कोशिश की, पर वे सफल न हो सके। विश्वंभरदयाल ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। पागल की तरह श्यामनाथ दयानाथ के यहाँ गए।

उमानाथ उस समय ड्राइंग-रूम में अकेला बैठा अपना कार्यक्रम बना रहा था। पंडित श्यामनाथ तिवारी की लड़खड़ाती चाल और पीले चेहरे को देखकर वह उठ खड़ा हुआ। आगे बढ़कर उसने कहा, "अरे काका ! आपकी यह कैसी हालत ?"

टूटे शब्दों में श्यामनाथ ने कहा, "उमा ! प्रभा का पता नहीं—पुलिस ने उसे न जाने कहाँ भेज दिया ! हे भगवान् ! उसकी न जाने क्या दशा होगी !"

उमानाथ ने सुन लिया था कि प्रभानाथ ने मुखबिर बनने से इनकार कर दिया है—और यह सुनकर उसे खुशी भी हुई थी। सारी स्थिति वह समझ गया। उसने कहा, "यह तो बुरा हुआ, काका ! अब क्या हो ?"

"उसका पता लगाना होगा, उमा ! किसी तरह उसका पता लगाना होगा। दया कहाँ है ?"

"आज उनका चुनाव हो रहा है—उसमें फँसे हैं। आते ही होंगे।" उमानाथ ने कहा।

उसी समय मार्कंडेय के साथ दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। उस समय दोनों मौन थे, दोनों गंभीर थे। आते ही श्यामनाथ ने कहा, "दया ! बड़ा गजब हो गया !"

"आप, काका ?" दयानाथ ने आगे बढ़ते हुए कहा, "क्यों, क्या बात है ?"

"प्रभा का हाल तो तुम्हें मालूम ही है। आज सुबह प्रभा को पुलिस ने जेल से निकालकर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया है !"

दयानाथ चुपचाप कुरसी पर बैठ गया, थोड़ी देर वह मौन बैठा रहा। फिर उसने कहा, "हूँ ! फिर क्या किया जाय ?"

"यही पूछने आया हूँ, दया ! किसी तरह से प्रभा का पता लगाना ही होगा ! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ—इसीसे तुम्हारे पास आया हूँ !"

दयानाथ उस समय शून्य की ओर देख रहा था ! उसने कुछ रुककर कहा, "मेरी समझ में भी कुछ नहीं आ रहा है। हर तरफ़ निराशा—हर तरफ अंधकार ! किसी चीज पर विश्वास नहीं किया जा सकता, कोई चीज निश्चित नहीं !" और दयानाथ एक व्यंग्यात्मक हँसी हँस पड़ा।

दयानाथ के इस उत्तर से उमानाथ को आश्चर्य हुआ, "क्या हुआ बड़के भइया, जो आपमें इतनी कटुता आ गई ?"

उत्तर मार्कंडेय ने दिया, "हुआ यह कि दयानाथ आज के चुनाव में हार गए। ब्रह्मदत्त ने दयानाथ की मदद नहीं की—उसने अपनी समस्त शक्तियाँ आप के खिलाफ़ लगा दी थीं !"

जिसका रामनाथ और श्यामनाथ को पता न लग सके। उसे प्रभानाथ का पता लगाना होगा, उसे अब काम करना होगा।

वीणा—एक तो स्त्री और उस पर अकेली—अपनी पिस्तौल को देख रही थी और सोच रही थी। एक बहुत बड़ा, एक बहुत महत्त्व का काम था उसके सामने! क्या वह उसे कर सकेगी?

३

पंडित रामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए थे, पर उनका दिल कह रहा था कि वे कुछ न कर सकेंगे। उनके मन में एक प्रकार की निराशा भर गई थी, उनके अंदर एक प्रकार का भय समा गया था।

निराशा और भय—रामनाथ ने पहली बार इन चीजों का अनुभव किया था। बड़े जबर्दस्त आदमी से उनका मुकाबला पड़ा है; और अब वे यह अनुभव करने लगे थे कि उस आदमी को पराजित करना असंभव-सा है। विश्वंभरदयाल जैसे न जाने कितने आदमियों से उनका वास्ता पड़ चुका था, लेकिन कभी भी उन्हें उस प्रकार के भय का अनुभव न हुआ था। जो उनके सामने आया, उसे उनके आगे झुकना पड़ा। आज पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि जो आदमी उनके सामने आया है, वह उन्हें झुकाने पर तुला हुआ है।

और रामनाथ तिवारी को ऐसा अनुभव हुआ कि मनुष्य से नहीं, इस समय उनका युद्ध नियति के साथ चल रहा है। विश्वंभरदयाल उस नियति का साधन-मात्र है।

मोटर तेजी के साथ चली जा रही थी और रामनाथ तिवारी सोच रहे थे। विश्वंभरदयाल की इतनी मजाल कि वह उनके लड़के को टार्चर करे! वह चाहते थे कि विश्वंभरदयाल उनके सामने आए और वे विश्वंभरदयाल को मसल दें—हमेशा के लिए मिटा दें। प्रतिहिंसा की भयानक आग उनमें भड़क उठी थी।

कानपुर पहुँचकर वे सीधे जेल पहुँचे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि सुबह के समय प्रभानाथ कानपुर से पुलिस की हिरासत में किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया गया है। यह खबर सुनकर रामनाथ तिवारी का सिर चकरा गया। इतनी जल्दी कार्रवाई शुरू हो गई!

पुलिस ने अदालत से एक महीने की मोहलत ले ली थी। पुलिस का यह कहना था कि प्रभानाथ बहुत खतरनाक किस्म का मुलजिम है, उसके क्रांतिकारी साथी उसे बचाने की कोशिश कर सकते हैं—यही नहीं, प्रभानाथ की जान को उन क्रांतिकारियों के हाथ से भी खतरा है—और ऐसी हालत में जब तक अदालत में मामला पेश न हो, पुलिस प्रभानाथ को एक अज्ञात स्थान में रखेगी।

दूसरे दिन रामनाथ ने बहुत कोशिशें की कि प्रभानाथ के स्थान का उन्हें पता लग सके, लेकिन इसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। शाम के समय रामनाथ निराश भाव से उन्नाव लौट गए।

उसी समय दयानाथ ने कहा, "चुप रहो, मार्कंडेय! ब्रह्मदत्त उमा का मित्र है—बहुत बड़ा मित्र है!"

दयानाथ का यह वाक्य उमानाथ को अखर गया। लेकिन उत्तर मार्कंडेय ने दिया, "दयानाथ, मुझे दुःख इस बात का है कि उमानाथ के लाख प्रयत्न करने पर भी तुम ब्रह्मदत्त को अपना मित्र नहीं बना सके। इसमें दोष उमा का नहीं है, ब्रह्मदत्त का नहीं है, दोष तुम्हारा है।"

इस समय तक दयानाथ के अंदरवाली कटुता बहुत अधिक उभड़ चुकी थी, "मेरा दोष है मार्कंडेय—मैं मानता हूँ! मैं इन पशु-तुल्य आदमियों के आगे झुकने को तैयार नहीं—यह मेरा दोष है। मैंने इतना अधिक त्याग किया, मैं पितृद्रोही बना, मैंने अपना सारा वैभव, सारा सुख छोड़ दिया—इन लोगों के लिए! और इसके परिणाम में मुझे क्या मिला? अविश्वास—अपमान! मेरा ही दोष है कि मैंने पहले इस सबको नहीं सोचा था कि इन पशुओं के साथ काम करने के लिए स्वयं पशु बन जाना पड़ेगा! तुम ठीक कहते हो, मार्कंडेय—मैं अपने दोष को स्वीकार करता हूँ!"

मार्कंडेय को दयानाथ के इन उद्गारों से दुःख हुआ। उसने कहा, "दया, जरा ठंडे दिमाग से सोचो! तुम्हारी अहंमन्यता पर जो भयानक प्रहार हुआ है, उससे तुम मर्माहत हो रहे हो।"

पर दयानाथ इस समय आपे से बाहर हो चुका था। उसने कहा "मेरी

सहायता मिल जाय !"

श्यामनाथ चौंककर उठ बैठे, "हाँ, यह तुमने ठीक कहा। मुझे तो यह सूझा ही नहीं था। मैं कल सुबह ही इलाहाबाद चला जाऊँगा।"

४

शाम के समय जब पंडित रामनाथ तिवारी घर पहुँचे, वीणा बरामदे में चुपचाप बैठी रामनाथ तिवारी का इंतजार कर रही थी। रामनाथ तिवारी अपनी मोटर से चुपचाप उतरकर अपने कमरे में चले गए—उन्होंने भीतर से दरवाजा उढ़का लिया।

वीणा समझ गई कि रामनाथ तिवारी को कोई सफलता नहीं मिली, उसका मन और भी भारी हो गया।

रात के समय भी जब रामनाथ तिवारी अपने कमरे से बाहर नहीं निकले तब वीणा ने डरते-डरते उनके कमरे का द्वार खोला। रामनाथ तिवारी चुपचाप लेटे थे। वीणा ने कहा, "ददुआ !"

रामनाथ ने अपनी आँखें खोलकर वीणा को कुछ देर तक देखा, फिर शिथिल स्वर में उन्होंने कहा, 'क्या है ?"

"आपके खाने का समय हो गया है—उठिए !"

रामनाथ चुपचाप उठ खड़े हुए। ड्राइंग-रूम में पहुँचकर वे बैठ गए—उन्होंने कहा, "मुझे भूख नहीं है !"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिए !"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वीणा रसोई से थाली परोसवाकर ले आई। भोजन करते हुए रामनाथ ने कहा "प्रभा को पुलिस किसी अज्ञात स्थान में ले गई है। मैंने बहुत पता लगाने की कोशिश की, लेकिन मुझे पता न लग सका।"

रामनाथ की बात सुनकर वीणा काँप उठी। "ददुआ—यह तो बुरा हुआ !"

"बुरा हुआ या भला हुआ—यह मैं नहीं कह सकता; लेकिन इतना जानता हूँ कि मैं आज पराजित हुआ—उस विश्वम्भरदयाल के हाथ से !" रामनाथ के स्वर में एक अजीब करुणा थी—दयनीयता थी।

वीणा चुप रही। रामनाथ की करुणा उसके हृदय में चुभ गई।

रामनाथ को उनके कमरे में पहुँचाकर वीणा लेट गई। उस समय वह बहुत उद्विग्न थी।

प्रभानाथ को वह जानती थी—बहुत अच्छी तरह। वह जानती थी कि

वीणा रात भर जागती रही—उसकी आँखों में निद्रा न थी।

वीणा स्पष्ट देख रही थी कि अंत उसके सामने है। यह अंत उस दिन से हमेशा उसके सामने रहा था, जिस दिन वह क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हुई थी, पर उस अंत को उसने इतने निकट से इसके पहले कभी अनुभव न किया था। लेकिन अंत से उसे भय न था, झिझक न थी। केवल एक विचित्र प्रकार का स्पंदन भर था। उसका विगत जीवन धीरे-धीरे उसके सामने छायाचित्र की भाँति आने लगा—उसके अधिकांश साथी इस दुनिया से चले गए थे। और एकाएक प्रतिभा की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

प्रतिभा—वीणा की अभिन्न साथिन—उसके सामने खड़ी मुसकरा रही थी, मानो वह कह रही हो कि वह लगातार वीणा का इंतजार करती रही है। और एकाएक प्रभानाथ की मूर्ति प्रतिभा की बगल में आकर खड़ी हो गई। उद्धत, हृष्ट-पुष्ट प्रतिभाशाली नवयुवक!

प्रभानाथ से वीणा ने प्रेम किया था। वह प्रेम कितना प्रशांत और कितना संपूर्ण था। अपने जीवन के प्रत्येक अभाव को वीणा ने अपने को प्रभानाथ में लय करके खो दिया था, उसका समस्त अस्तित्व प्रभानाथ था। और प्रभानाथ को पाकर वह अपने मार्ग से प्रायः हट गई थी। इस थोड़े-से काल में, जब वह प्रभानाथ के साथ रही, वह अपने दल को भूल गई थी, वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई थी, वह अपने व्रत को भूल गई थी। एक प्रभानाथ—और उसके आगे कुछ नहीं।

और एकाएक उसकी आँखों के आगे जेल की एक काल्पनिक कोठरी आ गई। उसने देखा कि सींखचों के अंदर प्रभानाथ पड़ा है—उसके हाथों में हथकड़ियाँ हैं, पैरों में बेड़ियाँ हैं, और वह कराह रहा है! भय से वीणा चीख उठी; जबर्दस्ती उसने अपनी आँखें खोल दीं—और अब उसके सामने उसका कमरा था, जिसमें उषा की प्रथम किरणें प्रवेश कर रही थीं।

वीणा उठ खड़ी हुई। पंडित रामनाथ तिवारी स्नान कर रहे थे। जल्दी-जल्दी वीणा ने पूजा के फूल तोड़कर पूजा-गृह में रख दिए—रामनाथ तिवारी की ओर से वह तीन घंटे के लिए निश्चित हो गई। सब कुछ करके वह अपने कमरे में लौटी। उसने अपनी सबसे सुंदर साड़ी निकालकर पहनी, और दो-चार आभूषण, जो उसके पास थे, उनसे उसने अपना संपूर्ण सिंगार किया। इसके बाद उसने अपनी पिस्तौल निकाली। उस पिस्तौल को उसने बहुत दिनों से न छुआ था। आज उस पिस्तौल के लोहे को छूकर वह कुछ सिहर उठी। लेकिन उसने अपना मन कड़ा किया, पिस्तौल में उसने कारतूस लगा दिए।

वह कमरे के बाहर निकली। रामनाथ पूजा के घर में पूजा कर रहे थे। पूजा-गृह की देहली पर वह रुकी, और धीरे से उसने अपना मस्तक देहरी पर रखकर प्रणाम किया। वह प्रणाम पूजा-गृह के देवता को न किया गया था। वह अंतिम प्रणाम वीणा ने प्रभानाथ के पिता, अपने श्वसुर पंडित रामनाथ तिवारी

का किया था। और फिर दबे पाँव वह वहाँ से चल दी।

स्टेशन आकर वह कानपुर वाली गाड़ी में बैठ गई।

५

कानपुर स्टेशन पर उतरकर वीणा दयानाथ के बंगले की ओर रवाना हो गई। एक बार उसके मन में आया कि वह अपनी पार्टीवालों से मिले, उन्हें सारी परिस्थिति बतलाए, उनकी सहायता ले—पर दूसरे ही क्षण उसने अपना विचार बदल दिया। यह मामला उसका था, निजी, जिसका पार्टीवालों से कोई संबंध न था। प्रभानाथ उसका था, वह प्रभानाथ की थी। जो कुछ उसे करना था, वह प्रभानाथ के हित के लिए, अपनी पार्टीवालों के लिए नहीं। अपने और प्रभानाथ के जीवन में किसी भी तीसरे व्यक्ति का आना उसके लिए असह्य था। जो कुछ करेगी, वह करेगी।

आज वह अपने में एक नवीन प्रकार की चेतना, एक नई स्फूर्ति अनुभव कर रही थी। आज वह साक्षात् शक्ति बनकर निकल पड़ी थी—पिस्तौल उसके वक्ष में था। आज वह विनाश के तांडव के लिए तैयार होकर आई थी। उसकी अवस्था ठीक उस दीपक के समान थी, जो बुझने के पहले एक प्रखर प्रकाश अपने चारों ओर बिखेर देता है। उसके मन में भय न था, उसके मन में झिझक न थी; अपने प्राणों को हथेली पर रखकर वह मौत से खेलने निकल पड़ी थी। प्रातःकाल के बाल्य और हँसते हुए जीवन की ओर उसका ध्यान न था—वह अपने अंतर में एक पूर्ण-रूप से विकसित और प्रौढ़ जीवन का अनुभव कर रही थी।

दयानाथ के बंगले के बाहर ही ताँगे से उतरकर उसने ताँगेवाले को विदा कर दिया। पैदल उसने बंगले में प्रवेश किया। उस समय आठ बजे थे।

उमानाथ बरामदे में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था, वीणा को देखकर वह चौंक उठा। उठते हुए उसने कहा, "आप इस वक्त यहाँ?"

वीणा मुसकराई, "जी हाँ! प्रभानाथ की तलाश में निकली हूँ।"

वीणा की मुसकराहट में निहित उस करुणा को, और उसके वाक्य में निहित निश्चय को उमानाथ समझ सका या नहीं; यह नहीं कहा जा सकता। उसने केवल इतना कहा, "मैं समझता हूँ कि आप प्रभा का पता न लगा सकेंगी—दद्दुआ, काका और हम सब लोग पता लगाने में हार गए हैं।"

वीणा ने शांत भाव से कहा, "लेकिन मैं हारने के लिए नहीं निकली हूँ—मैं प्रभा का पता लगाने आई हूँ। थोड़ी-सी सहायता चाहती हूँ!"

"कैसी सहायता?" कौतूहल से उमानाथ ने पूछा।

"मुझे आप विश्वंभरदयाल का पता बतला दीजिए—उसके आगे मैं सब-कार लूँगी!"

"चलिए, विश्वंभरदयाल के बंगले में मैं आ

वीणा रात भर जागती रही—उसकी आँखों में निद्रा न थी।

वीणा स्पष्ट देख रही थी कि अंत उसके सामने है। यह अंत उस दिन से हमेशा उसके सामने रहा था, जिस दिन वह क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हुई थी, पर उस अंत को उसने इतने निकट से इसके पहले कभी अनुभव न किया था। लेकिन अंत से उसे भय न था, झिझक न थी। केवल एक विचित्र प्रकार का स्पंदन भर था। उसका विगत जीवन धीरे-धीरे उसके सामने छायाचित्र की भाँति आने लगा—उसके अधिकांश साथी इस दुनिया से चले गए थे। और एकाएक प्रतिभा की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

प्रतिभा—वीणा की अभिन्न साथिन—उसके सामने खड़ी मुसकरा रही थी, मानो वह कह रही हो कि वह लगातार वीणा का इंतजार करती रही है। और एकाएक प्रभानाथ की मूर्ति प्रतिभा की बगल में आकर खड़ी हो गई। उद्धत, हृष्ट-पुष्ट प्रतिभाशाली नवयुवक!

प्रभानाथ से वीणा ने प्रेम किया था। वह प्रेम कितना प्रशांत और कितना संपूर्ण था। अपने जीवन के प्रत्येक अभाव को वीणा ने अपने को प्रभानाथ में लय करके खो दिया था, उसका समस्त अस्तित्व प्रभानाथ था। और प्रभानाथ को पाकर वह अपने मार्ग से प्रायः हट गई थी। इस थोड़े-से काल में, जब वह प्रभानाथ के साथ रही, वह अपने दल को भूल गई थी, वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई थी, वह अपने व्रत को भूल गई थी। एक प्रभानाथ—और उसके आगे कुछ नहीं।

और एकाएक उसकी आँखों के आगे जेल की एक काल्पनिक कोठरी आ गई। उसने देखा कि सीखचों के अंदर प्रभानाथ पड़ा है—उसके हाथों में हथकड़ियाँ हैं, पैरों में बेड़ियाँ हैं, और वह कराह रहा है! भय से वीणा चीख उठी; जबर्दस्ती उसने अपनी आँखें खोल दीं—और अब उसके सामने उसका कमरा था, जिसमें उषा की प्रथम किरणें प्रवेश कर रही थीं।

वीणा उठ खड़ी हुई। पंडित रामनाथ तिवारी स्नान कर रहे थे। जल्दी-जल्दी वीणा ने पूजा के फूल तोड़कर पूजा-गृह में रख दिए—रामनाथ तिवारी की ओर से वह तीन घंटे के लिए निश्चित हो गई। सब कुछ करके वह अपने कमरे में लौटी। उसने अपनी सबसे सुंदर साड़ी निकालकर पहनी, और दो-चार आभूषण, जो उसके पास थे, उनसे उसने अपना संपूर्ण सिंगार किया। इसके बाद उसने अपनी पिस्तौल निकाली। उस पिस्तौल को उसने बहुत दिनों से न छुआ था। आज उस पिस्तौल के लोहे को छूकर वह कुछ सिहर उठी। लेकिन उसने अपना मन कड़ा किया, पिस्तौल में उसने कारतूस लगा दिए।

वह कमरे के बाहर निकली। रामनाथ पूजा के घर में पूजा कर रहे थे। पूजा-गृह की देहली पर वह रुकी, और धीरे से उसने अपना मस्तक देहरी पर रखकर प्रणाम किया। वह प्रणाम पूजा-गृह के देवता को न किया गया था। वह अंतिम प्रणाम वीणा ने प्रभानाथ के पिता, अपने श्वसुर पंडित रामनाथ तिवारी

का किया था। और फिर दबे पाँव वह वहाँ से चल दी।

स्टेशन आकर वह कानपुर वाली गाड़ी में बैठ गई।

५

कानपुर स्टेशन पर उतरकर वीणा दयानाथ के बंगले की ओर रवाना हो गई। एक बार उसके मन मे आया कि वह अपनी पार्टीवालों से मिले, उन्हें सारी परिस्थिति बतलाए, उनकी सहायता ले—पर दूसरे ही क्षण उसने अपना विचार बदल दिया। यह मामला उसका था, निजी, जिसका पार्टीवालों से कोई संबंध न था। प्रभानाथ उसका था, वह प्रभानाथ की थी। जो कुछ उसे करना था, वह प्रभानाथ के हित के लिए, अपनी पार्टीवालों के लिए नहीं। अपने और प्रभानाथ के जीवन में किसी भी तीसरे व्यक्ति का आना उसके लिए असह्य था। जो कुछ करेगी, वह करेगी।

आज वह अपने में एक नवीन प्रकार की चेतना, एक नई स्फूर्ति अनुभव कर रही थी। आज वह साक्षात् शक्ति बनकर निकल पड़ी थी—पिस्तौल उसके वक्ष में था। आज वह विनाश के ताण्डव के लिए तैयार होकर आई थी। उसकी अवस्था ठीक उस दीपक के समान थी, जो बुझने के पहले एक प्रखर प्रकाश अपने चारों ओर बिखेर देता है। उसके मन मे भय न था, उसके मन में झिझक न थी; अपने प्राणों को हथेली पर रखकर वह मौत से खेलने निकल पड़ी थी। प्रातःकाल के बाल्य और हँसते हुए जीवन की ओर उसका ध्यान न था—वह अपने अंतर में एक पूर्ण-रूप से विकसित और प्रौढ़ जीवन का अनुभव कर रही थी।

दयानाथ के बंगले के बाहर ही ताँगे से उतरकर उसने ताँगेवाले को विदा कर दिया। पैदल उसने बंगले में प्रवेश किया। उस समय आठ बजे थे।

उमानाथ बरामदे में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था, वीणा को देखकर वह चौंक उठा। उठते हुए उसने कहा, "आप इस वक्त यहाँ?"

वीणा मुसकराई, 'जी हाँ! प्रभानाथ की तलाश में निकली हूँ!"

वीणा की मुसकराहट में निहित उस करुणा को, और उसके वाक्य में निहित निश्चय को उमानाथ समझ सका या नहीं; यह नहीं कहा जा सकता। उसने केवल इतना कहा, "मैं समझता हूँ कि आप प्रभा का पता न लगा सकेंगी—दद्दुआ, काका और हम सब लोग पता लगाने में हार गए हैं।"

वीणा ने शांत भाव से कहा, 'लेकिन मैं हारने के लिए नहीं निकली हूँ—मैं प्रभा का पता लगाने आई हूँ। थोड़ी-सी सहायता चाहती हूँ!"

"कैसी सहायता?" कौतूहल से उमानाथ ने पूछा।

"मुझे आप विश्वभरदयाल का पता बतला दीजिए—उसके आगे मैं सब-कुछ कर लूंगी!"

"चलिए, विश्वंभरदयाल के बंगले में मैं आपको पहुँचा दूं!" उमानाथ ने

कहा।

'नहीं—आप मेरे साथ मत चलिए, नहीं तो आप मुसीबत में फँस सकते हैं! मैं अकेले सब-कुछ कर लूँगी। आप सिर्फ मुझे पता बतला दीजिए!"

उमानाथ ने वीणा का पता बतला दिया।

वीणा ने चलते हुए कहा, "मैं यहाँ आई और आप से मिली, यह बात केवल दो व्यक्ति जानते हैं—आप और मैं, तीसरा आदमी इस बात को न जानने पाए, यह मेरी आपसे प्रार्थना है!"

वीणा चली गई और उमानाथ लौटकर फिर कुरसी पर बैठ गया। वह अजीब चक्कर में था। आखिर वीणा क्या करेगी? लेकिन उसका मन कह रहा था कि वीणा कुछ करेगी ज़रूर—और जो कुछ वह करेगी, वह भयानक होगा। उमानाथ ने वीणा के स्वर में एक तरह की दृढ़ता देखी, उसकी आँखों में एक तरह का विश्वास देखा था।

६

उमानाथ अनायास ही बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था। ऐसी उद्विग्नता शायद उसने पहले कभी अनुभव न की थी। लाख प्रयत्न करने पर भी उमानाथ को उस उद्विग्नता का कोई स्पष्ट कारण न मिल रहा था, पर फिर भी एक भयानक उथल-पुथल वह अपने अन्तर में अनुभव कर रहा था। उमानाथ को उस समय कुछ ऐसा लग रहा था कि उसके चारों ओर जो कुछ है, वह सब-का-सब अनायास ही बदलने वाला है—और वह यह भी अनुभव कर रहा था कि यह बदलना अच्छा न होगा, यह बदलना विनाश होगा! विनाश में निहित निर्माण भी है—उमानाथ को इस बात पर विश्वास था; लेकिन निर्माण की कोई स्पष्ट रूपरेखा उसके सामने न होने के कारण उसका निर्माण के प्रति विश्वास उसके अन्दर वाले विनाश के प्रति भय पर विजय न पा सकता था!

उमानाथ उठ खड़ा हुआ—मर्माहत-सा! उसने मन-ही-मन कहा, 'समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है।' और वह ज़ोर से अपने अन्दरवाली विवशता पर ही हँस पड़ा। कमरे से निकलकर वह बरामदे में बैठ गया। लेकिन बरामदे में भी उसकी विचारधारा ने साथ न छोड़ा, और उसने उस समय दयानाथ और मार्कंडेय के आगमन को मन-ही-मन धन्यवाद दिया।

मार्कंडेय को उमानाथ के साथ छोड़कर दयानाथ अन्दर चला गया। थोड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे, इसके बाद मार्कंडेय ने कहा, "देख रहे हो, उमा! ज़रा-सी बात पर दयानाथ इतने अधिक कटु हो गए हैं!'

यह स्पष्ट था कि दयानाथ के अन्दर एक प्रकार की कटुता पैदा हो रही थी, और इस पर उमानाथ को आश्चर्य हो रहा था। दयानाथ—त्याग और बलिदान का एकनिष्ठ उपासक—एक ज़रा-सी बात से उसके अन्दर कटुता क्यों पैदा हो रही है, उमानाथ की समझ में न आ रहा था। उमानाथ ने केवल इतना कहा,

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है, मार्कंडेय भइया! बड़के
भइया अपनी ही हठधर्मी के कारण इस चुनाव मे हारे हैं, ऐसी हालत
में वे दूसरों को दोष कैसे दे सकते हैं!"

"एक तरह से तुम्हारी बात ठीक है, उमा, लेकिन एक दूसरा पहलू भी है—और अगर उस पहलू पर गौर करोगे तो दयानाथ के अन्दर वाली कटुता तुम्हें स्वाभाविक लगेगी।"

उमानाथ ने मार्कंडेय की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह सोचने लगा। इतने मे उसे सुनाई पड़ा, "कहो कामरेड, क्या सोच रहे हो?"

उमानाथ ने चौंककर देखा, ब्रह्मदत्त खड़ा मुसकरा रहा था। उमानाथ ने कहा, "कुछ नहीं, यों ही इस अजीब-गरीब दुनिया की अजीब-गरीब रफ्तार पर सोच रहा था!"

ब्रह्मदत्त खिलखिलाकर हँस पड़ा, "कामरेड! कुछ सोचना-विचारना—यह सब बेकार है! कुछ भी समझ में नहीं आ सकता—रत्ती भर नहीं!"

मार्कंडेय ने कौतूहल के साथ ब्रह्मदत्त को देखा, फिर उसने मुसकराते हुए कहा, "ब्रह्मदत्त! तुम भी दार्शनिक बन रहे हो? इस दर्शन में संभलकर ही रहना।"

ब्रह्मदत्त मार्कंडेय की बात के व्यंग्य को पी गया, उसने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बैठते हुए ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "दयानाथजी के क्या हाल हैं? अपनी पराजय पर उन्हें एक धक्का-सा लगा होगा? वे कल्पना भी नहीं करते थे कि पराजित होंगे।"

उमानाथ ने बात टालने की कोशिश की, "छोड़ो भी इस बात को, ब्रह्मदत्त! जो कुछ हो चुका, उस पर बात करना बेकार है!"

लेकिन शायद ब्रह्मदत्त अपनी कैफियत देने पर तुल गया था, "नहीं कामरेड! उस बात को स्पष्ट न करना मेरे हित में न होगा, क्योंकि प्रश्न तुम्हारे बड़े भाई का है, और इसलिए दयानाथ जी का मामला मेरे लिए किसी हद तक व्यक्तिगत प्रश्न हो जाता है। लेकिन कामरेड, मैंने बहुतेरी कोशिश की कि दयानाथजी झुकें, अपनी अहम्मन्यता छोड़कर वह एक क्षण के लिए मेरे स्तर पर आएँ, मुझसे बराबरी से मिलें! और मैं असफल हुआ, यह मार्कंडेयजी अच्छी तरह जानते हैं! मनुष्यता का कल्याण करने का दम भरने वाला कांग्रेस का एकनिष्ठ प्रतिनिधि वर्गवाद का कितना बड़ा पुजारी हो सकता है, यह मैंने दयानाथजी में स्पष्ट देखा। और मैं कहता हूँ कामरेड, इस पर मुझे ग्लानि हुई, ग्लानि ही नहीं, एक प्रकार का भयानक विद्रोह मेरे अंतःकरण में भर गया!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की भावना को समझता था, वह भी तो वर्गवाद का भयानक शत्रु था! लेकिन न उमानाथ और न ब्रह्मदत्त दयानाथ का ठीक-ठीक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सके थे। उमानाथ ने कहा, "मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं, बड़के भइया भी वर्गवाद के उतने ही बड़े प्रतिनिधि हैं, जितना कोई

पूंजीपति हो सकता है।"

इस पर मार्कंडेय ने कहा, "उमा ! एक बात तुम्हारी ठीक है, दूसरी बात में तुम गलती कर गए ! दयानाथ वर्गवाद में विश्वास करते हैं, यह मैं मानता हूं; लेकिन उनका वर्गवाद पूंजीवाद का वर्गवाद नहीं है, वह दूसरा ही वर्गवाद है।"

"यह दूसरा वर्गवाद कहां से निकल आया...जरा मैं भी सुनूं ?" ब्रह्मदत्त ने कहा।

"लेकिन तुम बुरा न मान जाना !" मार्कंडेय ने मुसकराते हुए कहा।

"आप इसकी चिंता न करें—मैं जानता हूं कि आप लोग इस बात की जरा भी परवाह नहीं करते कि दूसरा आदमी आपकी बात पर बुरा मानता है या उसे पसंद करता है। आप लोग सत्य के उपासक हैं न !" और ब्रह्मदत्त अपने मजाक पर खुद हंस पड़ा।

मार्कंडेय ने कहा, "तो फिर सुनो ब्रह्मदत्त ! दुनिया में एक चीज होती है संस्कृति; नेकी और ईमानदारी, शील और विनय। आज इन मानवीय गुणों का उपासक एक नया वर्ग पैदा हो रहा है, और दयानाथ उस वर्ग के आदमी हैं।"

इस बात से ब्रह्मदत्त तिलमिला उठा, "नेकी, ईमानदारी, संस्कृति, शील और विनय ! समाज के भयानक भुलावे। असत्य की नींव पर बनाए गए वे मंदिर जिनमें पूंजपति उत्पीड़ित जन-समुदाय को छल-कपट से फंसाकर अपना काम निकालता है !"

लेकिन उमानाथ ने पूछा, "मार्कंडेय भइया ! आपने जो कुछ कहा, वह बाहरी रूप से ठीक दिखता है, लेकिन उनका एक आंतरिक रूप है, जिसे आप नहीं देख पाते ? यह संस्कृति, यह विनय, यह शील, यह नेकी, यह ईमानदारी !—ये सब-के-सब समर्थता से उत्पन्न हैं, उस समर्थता से, जिसे दूसरों को दबाकर, दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को असमर्थ बनाकर कुछ इने-गिने लोगों ने हासिल कर लिया है !"

"यहीं गलती कर रहे हो, उमा !" मार्कंडेय ने उत्तर दिया, "ये सब चीजें, जिन्हें तुम समर्थ कहते हो, उनके पास नहीं हैं। यद्यपि इन्हीं चीजों को मैं पूर्ण समर्थता समझता हूं ! तुमने अपने समर्थ पूंजीपति को तो देखा ही है ! वह न नेक है, न ईमानदार है ! उसमें न शील है, न विनय है ! सांस्कृतिक दृष्टि से वह बहुत नीचे गिरा हुआ है ! यह नेकी-ईमानदारी की संस्कृति मनुष्य के अन्दर वाली प्रेम, दया और त्याग की भावनाओं पर अवलंबित है, स्वयं अपने को मिटाने की भावना द्वारा जनित है ! लेकिन शायद इसे तुम न समझ सकोगे, क्योंकि तुम्हारी संस्कृति हिंदुस्तानी नहीं है, तुम्हारी संस्कृति विदेशी है !"

ब्रह्मदत्त बोल उठा, "मार्कंडेयजी ! मैंने माना कि उमानाथजी विलायत हो

दोनों के पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उमानाथ ने कहा, "कामरेड,
मैं समझता हूँ कि अब मुझे कानपुर से चल देना चाहिए !"

सी समय ब्रह्मदत्त ने दूर पर एक कार आती देखी। ब्रह्मदत्त सुपरिटेंडेंट की कार को पहचानता था। उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! तुम्हें यहाँ गना पड़ेगा। मेरा खयाल है उस कार में तुम्हारे नाम वारंट भी है !"

कार दूर ही थी और पीछा करने वाले दो आदमी उस समय तक ब्रह्मदत्त र उमानाथ के नजदीक पहुँच गए थे। उनके बाएँ हाथ पर कानपुर का ग्रीन र्क था; दोनों ने ग्रीन पार्क में प्रवेश किया। पीछा करने वालों में एक आदमी र्क के फाटक पर रह गया और एक इन दोनों के पीछे लग गया।

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड ! अब हम दोनों का साथ छूटना चाहिए। मैं इन पुलिस वालों से उलझता हूँ, इस बीच में तुम तेजी से पार्क की दूसरी तरफ निकलकर शहर की तरफ रवाना हो जाओ।"

साथ वाला आदमी इन दोनों से दस कदम पीछे था। ब्रह्मदत्त ने रुककर साथ चलने वाले आदमी से पूछा, "तुम हम लोगों के पीछे-पीछे क्यों चल रहे हो ?"

"आपके पीछे मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो यों ही घूमने चला आया हूँ।"

उमानाथ इस समय बहुत आगे बढ़ गया था। उस आदमी ने जैसे ही आगे ने की कोशिश की, ब्रह्मदत्त ने उसका हाथ पकड़ लिया, "पहले मुझे यह बत-ओ, कि तुम कौन हो और तुम्हारा मंशा क्या है ?" उस आदमी ने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "छोड़ो मेरा हाथ, बेकार उलझ रहे हो !"

लेकिन ब्रह्मदत्त ने कहा, "पहले मेरे सवाल का जवाब दे दो, तब तुम्हारा हाथ छोड़ूँगा।"

इस समय तक उमानाथ पेड़ों के एक झुरमुट के नीचे पहुँच गया था और वह पार्क की चहारदीवारी की तरफ दौड़ने लगा था। उस आदमी ने ज़ोर से आवाज़ लगाई—"लाला !"

ब्रह्मदत्त ने देखा कि लाला के साथ सुपरिटेंडेंट पुलिस और एक सब-इंस्पेक्ट चले आ रहे हैं। ब्रह्मदत्त के लिए केवल एक उपाय था उस आदमी का मुँह कर दिया जाय ! ब्रह्मदत्त ने भरपूर एक घूंसा इस आदमी को मारा—और खाकर वह आदमी जमीन पर गिर पड़ा।

पुलिस वाले दौड़कर ब्रह्मदत्त के पास आ गए। इंस्पेक्टर ने ब्रह्मदत्त से "तुमने इस आदमी को मारा क्यों ?"

"इसने मुझे गाली दी थी !"

सुपरिटेंडेंट पुलिस ने दूसरा सवाल किया, "उमानाथ कहाँ है ?"

"कौन उमानाथ ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"वही जो तुम्हारे साथ थे !" लाला ने कहा।

"मेरे साथ कोई नहीं था।" ब्रह्मदत्त ने ग्रीन पार्क के फाटक की त

कहा।

सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने लाला से कहा, "इस आदमी को गिरफ्तार कर लो, इसने मुलजिम के भागने में मदद दी है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते—और आपका मुलजिम अब आपको नहीं मिल सकता!"

७

प्रभानाथ के मामले में विश्वंभरदयाल को अभी तक कोई सफलता नहीं मिली थी। दो दिन से प्रभानाथ को एक मिनट भी नहीं सोने दिया गया था, लगातार उससे प्रश्न किए जा रहे थे। लेकिन प्रभानाथ यह सब बर्दाश्त कर रहा था!

विश्वंभरदयाल को आश्चर्य हो रहा था। आश्चर्य ही नहीं, उसे एक तरह की निराशा हो रही थी! क्या वास्तव में प्रभानाथ इतना वीर है कि वह इन यन्त्रणाओं को बर्दाश्त कर जाएगा? अगर प्रभानाथ ने दो दिन और न बतलाया—तब? विश्वंभरदयाल की असफलता!

दो दिन बीत गए—अगले दो दिन भी बीत सकते हैं। विश्वंभरदयाल अजीब उलझन में था। आखिर किस तरह प्रभानाथ से बात कहलाई जाय?

और जब विश्वंभरदयाल अपनी इन उलझनों में पड़ा था, उसी समय उसे वीणा के आने की सूचना मिली। बरामदे में आकर उसने देखा—एक युवती कुर्सी पर बैठी विश्वंभरदयाल की प्रतीक्षा कर रही है। विश्वंभरदयाल ने पास पड़ी कुरसी पर बैठते हुए कहा, 'कहिए, कैसे तकलीफ की आपने?"

'मैं आपसे प्रभानाथ के संबंध में बातें करने आई हूँ!'

विश्वंभरदयाल चौंक उठा। उसने वीणा को गौर से देखा—क्या यह लड़की···?' और वीणा ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया, 'देखिए—मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूँ कि प्रभानाथ को आप बचा दें। मैं उनकी पत्नी हूँ—मेरा सुहाग आप न लूटें!"

अपने उन्नाव के प्रवास-काल में वीणा ने बड़ी साफ हिंदुस्तानी बोलनी सीख ली थी। विश्वंभरदयाल यह निश्चय न कर पा रहा था कि यह लड़की हिंदुस्तानी है या बंगाली। वीणा के बात करने के ढंग में एक अहिंदी भाषी की झलक तो स्पष्ट थी, लेकिन भाषा वह शुद्ध बोल रही थी।

विश्वंभरदयाल ने कहा "मैं क्या कर सकता हूं।' मैंने तो उसे एक उपाय बतलाया था, और वह राजी हो गया था, लेकिन खुद उसके बाप ने बरगला दिया।'

वीणा ने करुण-भाव से कहा, "मैं जानती हूँ—दद्दुआ ने उन्हें मना कर दिया था। दद्दुआ के तीन लड़के हैं—एक चला गया तो दो तो रह जाएंगे—लेकिन मेरे लिए?—मेरा केवल एक ही आधार है।"

"लेकिन मैं मजबूर हूँ!" विश्वंभरदयाल ने कहा, "केवल एक उ प्रभानाथ अपने साथियों के नाम बतला दे—और मैं जिम्मेदारी लेता

साफ़ छूट जायगा !"

वीणा ने कहा, "आप मुझे उनसे मिला दें—मैं उन्हें इस बात पर राजी कर दूंगी। उन्हे जीवित रहना चाहिए, अपने लिए न सही, पर मेरे लिए तो ! मेरी आपसे यही विनय है कि एक बार आप मुझे उनसे मिला दें ! मैं उन्हें राजी कर लूंगी !"

विश्वंभरदयाल मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। जिस उलझन में वह पड़ गया था, अनायास ही उस उलझन से निकलने का एक बहुत सुगम साधन उसके हाथ में आ गया था। उसने कहा, "अच्छी बात है, मैं अभी आपको प्रभानाथ से मिलाता हूँ चलकर, लेकिन याद रखिएगा कि अगर आपके घरवालों ने आपको सिर्फ इस बात के लिए भेजा है कि आप प्रभानाथ का पता लगाएँ कि वह कहाँ है, तो इसमें उनको असफलता ही होगी, क्योंकि आज ही मैं उसका यहाँ से ट्रांसफर करके दूसरी जगह भेज दूंगा।"

विश्वंभरदयाल ने अपनी कार निकलवाई और वीणा को साथ बिठलाकर वे कैम्प-जेल में पहुँचे। उन्होंने प्रभानाथ को बुलवाया।

प्रभानाथ की सारी शक्तियाँ उस दिन सुबह से ही जवाब देने लगी थीं। अपनी समग्र शक्तियों को वह दो दिनों तक कैम्प-जेल की यंत्रणाओं पर विजय पाने में लगाए रहा था—और अब उसकी शक्तियाँ क्षीण होने लगी थीं। प्रभानाथ के चारों ओर निराशा थी। सुबह से कई बार उसने सोचा था कि वह सब कुछ बतलाकर इन यंत्रणाओं से छुटकारा पाए—लेकिन उन्हीं बची-खुची शक्तियों ने उसे ऐसा करने से प्रत्येक बार रोक दिया। पर प्रभानाथ जानता था कि अधिक समय तक उसकी शक्तियाँ उसका साथ न दे सकेंगी।

जिस समय प्रभानाथ वीणा के सामने आया, उसके पैर काँप रहे थे, उसके चेहरे पर पीलापन था। वीणा को देखते ही वह कह उठा, "तुम वीणा !"

वीणा ने आँख से इशारा किया—और प्रभानाथ समझ गया कि उसे अधिक बात नहीं करनी है। उसे केवल वीणा की बात सुननी है।

वीणा ने प्रभानाथ के पैर छुए—इसके बाद उसने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा, "मैंने सुना है कि तुमने अपने साथियों के नाम बताने से इनकार कर दिया है ! ददुआ की बात तुमने मान ली, लेकिन तुमने मेरा जरा भी ध्यान नहीं किया। मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगी ? बोलो ! बोलो !" और वीणा की हिचकियाँ बँध गईं।

स्त्री कितना बड़ा अभिनय कर सकती है, यह प्रभानाथ ने सोचा तक न था। वीणा कहती जा रही थी, "तुमने मुझे विधवा बनाने के लिए ही मुझसे विवाह किया था क्या ? क्या तुम्हारा मेरे प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है ?"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा की बात सुनी ! उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वीणा यह विवाह वाली बात कहाँ से निकाल लाई ! उसने कहा, "तो तुम क्या चाहती हो ?"

हिचकियाँ लेते हुए उसने कहा, "तुम्हारी यह कैसी हालत है? इन यंत्रणाओं से तुम कब तक लड़ सकोगे? बोलो! मैं तुमसे कहने आई हूँ कि तुम अपने साथियों के नाम बतला दो!"

प्रभानाथ आसमान से गिरा। "अपने साथियों के नाम बतला दूँ—असंभव! जाओ मेरे सामने से—जाओ!"

लेकिन वीणा ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ लिया। उसने प्रभानाथ की उँगली अपने हाथ वाली अँगूठी पर लगा ली, "मैं जाने के लिए नहीं आई हूँ, मैं इस यंत्रणा से तुम्हें मुक्त करने आई हूँ!"···और वीणा चुप हो गई। इस बीच में उसने अपनी अँगूठी प्रभानाथ को दे दी थी।

प्रभानाथ उस अँगूठी के स्पर्श से वीणा का मतलब समझ गया। तनिक संयत होकर उसने कहा, "मुझे समय दो।"

"नहीं—समय की बात नहीं—तुम्हें अपने साथियों के नाम बतलाने ही होंगे, अपने लिए नहीं, मेरे लिए!"

"अच्छी बात है—लेकिन तुम मेरे सामने से जाओ—जाओ!" और प्रभानाथ विश्वम्भरदयाल की ओर घूमा, "मुझे यह न मालूम था कि आप मेरे खिलाफ इस अस्त्र का प्रयोग कीजिएगा—मैं हारा!" और प्रभानाथ वहाँ से घूमकर चल दिया।

विश्वम्भरदयाल को ताज्जुब हो रहा था कि कितनी आसानी से उसका काम हो गया। अपनी विजय की प्रसन्नता के भावों में उसने अपने को इतना अधिक खो दिया था कि न वह वीणा के मुख के भावों का अध्ययन कर सका और न प्रभानाथ के मुख के भावों का। उसने मुसकराते हुए वीणा से कहा, "चलिए! जहाँ कहिए, मैं आपको पहुँचा दूँ।"

वीणा उसके साथ कार पर बैठ गई, "आपके बँगले के सामने मेरा ताँगा खड़ा है—वहीं चलिए; वहाँ से मैं चली जाऊँगी!"

विश्वंभरदयाल के साथ वीणा उसके बँगले पर लौट आई। वहाँ कोई ताँगा नहीं था।

"मालूम होता है, मेरा इंतजार करते-करते ताँगावाला चला गया। आप अपने नौकर से कोई ताँगा मँगवा दीजिए, बड़ी कृपा होगी!"

विश्वंभरदयाल इस समय काफ़ी उदार हो रहे थे, "आप मेरी कार से जाइए न!"

"नहीं, आप ताँगा मँगवा दीजिए।"

विश्वम्भरदयाल ने कार के ड्राइवर को ताँगा लाने का आदेश देकर वीणा से कहा, "अच्छी बात है—आप तब तक ड्राइंग-रूम में बैठिए।"

विश्वम्भरदयाल यह कहकर अंदर चला गया—जब वह बाहर आया उस समय वीणा चुपचाप बैठी थी। सामनेवाली कुरसी पर बैठते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैंने नौकर से चाय लाने को कह दिया है, आप चाय पीकर

"...अरे..." यह कहते-कहते उसका चेहरा पीला पड़ गया—वह भय से काँप उठा।

उसने देखा कि वीणा पिस्तौल ताने उसके सामने खड़ी है! वीणा ने कहा, "तुम समझते हो कि तुम जीते—शैतान कहीं के! मैं कहती हूँ कि तुम हारे। मैंने प्रभानाथ को पोटेशियम साइनाइड दे दिया है—मैं प्रभानाथ को मारकर खुद मरने के लिए निकली थी। लेकिन खुद मरने से पहले तुम्हें मारने का मुझे मौका मिल गया..." और यह कहते हुए उसने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया, गोली विश्वंभरदयाल के माथे में घुस गई। वीणा लगातार गोलियाँ चलाती गई—और जब उसकी पिस्तौल में एक गोली बाकी बची, उसने वह गोली अपने माथे में मार ली।

८

पंडित श्यामनाथ तिवारी ने देखा—प्रभानाथ का शरीर काला पड़ गया था। पर प्रभानाथ के चेहरे पर एक प्रकार की शांति थी, एक प्रकार का संतोष था। श्यामनाथ तिवारी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया।

विश्वंभरदयाल ने यहाँ तक कर डाला—उनका लड़का उनके सामने मरा पड़ा था। उस समय एकाएक श्यामनाथ की मुद्रा में एक अजीब तरह का परिवर्तन हो गया।

वीणा के जाते ही प्रभानाथ ने अँगूठी में दिया हुआ जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी। कैम्प-जेल में एक तरह की सनसनी फैल गई। उसी समय पंडित श्यामनाथ तिवारी को इस घटना की सूचना भेज दी गई थी।

श्यामनाथ ने जेलर से कहा, "अब क्या होगा?"

"लाश पोस्टमार्टम के लिए भेजी जाएगी। शाम तक आपको इत्तला मिल जायगी!"

"बहुत अच्छा!" शांत भाव से श्यामनाथ ने कहा, लेकिन उसी समय वे जोर से हँस पड़े, "मरने के बाद भी उसके शरीर को शांति नहीं, मरने के बाद भी उसके शरीर की चीर-फाड़ होगी। खूब मजाक करते हैं आप लोग!"

जेलर को पंडित श्यामनाथ के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्यामनाथ हँस रहे थे, "भेजिए जेलर साहेब इस लाश को चीर-फाड़ के लिए—इसमें रखा ही क्या है? जब जिंदा आदमी को आप लोगों ने उसके बाप से छीन लिया था, तब इस मुर्दा शरीर को उस बाप के हवाले करके आप उस अभागे बाप की हँसी उड़ाते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं हूँ कि आप लोग मेरी हँसी उड़ा सकें!" और यह कहकर श्यामनाथ वहाँ से चल दिये।

अपनी कार पर बैठते हुए श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा, "विश्वंभरदयाल के मकान पर चलो!"

श्यामनाथ ने बगल में रखे हुए अटैचीकेस से अपना सर्विस रिवाल्वर निकाला

—आज श्यामनाथ बदला लेने पर तुल गए थे। विश्वंभरदयाल के
बंगले में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ पुलिसवालों की भीड़ लगी हुई है। श्यामनाथ मन-ही-मन हँस पड़े, 'इतने पुलिसवाले अपनी हिफ़ाजत के लिए इसने रख छोड़े हैं...लेकिन नहीं बचेगा—आज वह नहीं बचेगा!'

श्यामनाथ के कमरे में प्रवेश करते ही पुलिसवालों ने उन्हें रास्ता दे दिया। और श्यामनाथ ने देखा कि विश्वंभरदयाल मरा पड़ा है।

"यह क्या?" श्यामनाथ ने कहा।

पास खड़े हुए एक सब-इंस्पेक्टर ने कहा, "इस औरत ने इनकी हत्या करके अपनी हत्या कर ली!" और उसने एक तरफ़ पड़ी हुई वीणा की लाश की तरफ़ इशारा किया।

"अरे—यह तो वीणा है!" श्यामनाथ कह उठे। और वे वीणा के पास जाकर खड़े हो गए।

"क्या आप इसे पहचानते हैं?" पुलिस इंस्पेक्टर ने पूछा।

"पहचानता हूँ? मुझसे पूछते हो इसे पहचानता हूँ?" और श्यामनाथ का स्वर प्रखर होता गया, "यह लड़की मुझसे बाजी मार ले गई!" यह कहते हुए श्यामनाथ ने अपना रिवाल्वर निकालकर विश्वंभरदयाल की लाश के सामने तान लिया, मैं आज इस आदमी को मारने आया था—लेकिन इस लड़की ने मेरा अधिकार छीन लिया; चुड़ैल कहीं की!" श्यामनाथ दाँत पीसने लगे, "मेरा अधिकार छीन ले गई यह चुड़ैल। लेकिन—अभी मुझे और कुछ करना है—कुछ और करना है!" यह कहते-कहते उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया और बढ़कर विश्वंभरदयाल के शव को एक ठोकर मारी।

पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ लिया। श्यामनाथ चिल्ला पड़े, "नरक का कीड़ा—मेरे खानदान को मिटाकर गया—गया!"

श्यामनाथ अनायास ही रुक गए—"तुम्हीं मेरे साथ मज़ाक नहीं कर सकते—मैं भी तुम लोगों के साथ मज़ाक कर सकता हूँ! सुना विश्वंभरदयाल—एक छोटी-सी लड़की—तुम्हारे साथ मज़ाक कर गई!" और श्यामनाथ ज़ोर से हँस पड़े।

६

प्रभानाथ और वीणा की दाह-क्रिया समाप्त करके पंडित रामनाथ तिवारी उन्नाव लौट गए। आज पहली बार उन्होंने अपने जीवन में पराजय की धुंधली छाया देखी थी। श्मशान में पंडित रामनाथ तिवारी अपने मन पर अधिकार रखे रहे, अविचलित भाव से अपने ही पुत्र का दाह-संस्कार उन्होंने किया। पर लौटकर उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनकी शक्तियाँ उन्हें जवाब देने लगी हैं।

वे उस बड़े बँगले में अकेले बैठे थे—स्तब्ध, मौन! वह पराजय की धुंधली छाया, जिसे उन्होंने प्रभानाथ की चिता में आग लगाते हुए देखा था, अब धीरे-

धीरे गहरी होती जा रही थी। जीवन के प्रति एक प्रकार की भया-नक उदासीनता वे अनुभव कर रहे थे—इतनी थकावट उनके प्राणों में भर गई थी कि वे चिर-विश्राम की कामना करने लगे थे।

उनके मन में न मोह था, न विषाद था। उनकी आत्मा में अशांति नहीं थी, विद्रोह नहीं था। एक निष्क्रिय अचेतनता का अंधकार उनकी आँखों के आगे घिर रहा था। उस अंधकार के प्रति उनकी क्षीण चेतना आत्म-समर्पण कर रही थी।

पंडित रामनाथ तिवारी के सामने एक विकराल शून्य था—और उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो वह शून्य उन्हें निगले ले रहा है। उस समय उन्होंने आकाश की ओर देखकर कहा, हे भगवान् ! क्या यही तुम्हारी इच्छा है ?'

पर रामनाथ तिवारी की चेतना को लौटना पड़ा। उनके सामने खड़े हुए श्यामनाथ कह रहे थे, "भइया ! सुना ! वह लड़की वीणा—वह आपकी अध्या-पिका—वह मुझसे बाजी मार ले गई !" और श्यामनाथ हँसने लगे।

"श्यामू !" रामनाथ ने कठोर स्वर में कहा।

रामनाथ के इस कठोर स्वर से श्यामनाथ चौंक उठे। गंभीर होकर उन्होंने कहा, "भइया, प्रभा को बचाना है ! मैं उसे न बचा सकूँगा—आप ही उसे बचाइए !" और श्यामनाथ एक खाली कुरसी पर बैठकर रोने लगे।

रामनाथ ज़ोर लगाकर उठे—श्यामनाथ के सिर पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "श्यामू ! अपने ऊपर अधिकार रखो, चलो, थोड़ी देर के लिए सो जाओ !"

"नहीं भइया, आप जानते नहीं, वे उसे जहर खिला देंगे—बड़े शैतान हैं वे लोग ! मेरे घर से ही मेरे लड़के को पकड़ ले गए—भोला-भाला, सीधा-सादा ! भइया, क्या कभी प्रभा क्रांतिकारी हो सकता है ? क्या प्रभा कभी हत्या कर सकता है ? फिर क्यों उन लोगों ने उसे जहर खिला दिया ! उसे बचाइए, भइया ! —उसे बचाइए !"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "श्यामू, होश की बात करो !"

श्यामनाथ चौंककर उठ खड़े हुए, "आप खड़े हैं और मैं बैठा हूँ—ऐसी गलती तो मुझसे पहले कभी नहीं हुई ! मुझे क्षमा कीजिए—आपके पैर पड़ता हूँ भइया, मुझे क्षमा कीजिए !"

रामनाथ ने श्यामनाथ का हाथ पकड़कर अंदर ले चलते हुए कहा "लेटो चलकर, श्यामू ! जब तक मैं न कहूँ, तब तक मत उठना ! सो जाओ !"

श्यामनाथ को पलंग पर लिटाकर रामनाथ लौट आए। अंधकार उनकी आँखों के आगे से हट गया था, चेतना उनकी लौट आई थी। उन्हें यह अनुभव होने लगा था कि उनके सामने उनका उत्तरदायित्व था। परिस्थितियों का मुकाबला न कर सकने वाले कमजोर और बेबस उनके भाई को उनकी सहायता की आवश्यकता है। अब भी—इतना सब हो जाने के बाद भी रामनाथ को साहस

की जरूरत मालूम हुई। उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें वज्र की तरह कठोर होना पड़ेगा। पराजय—पराजय की भावना अपने अन्दर है।
मनुष्य जब तक अपने अन्दर से पराजित न हो, पराजित नहीं। बाहर वाली परिस्थितियों से लड़कर हारना या जीतना मनुष्य के वश की बात नहीं; असीम शक्तियाँ उसके खिलाफ केन्द्रित हो सकती हैं। लेकिन अपने अन्दर से हारना या जीतना—यह मनुष्य स्वयं कर सकता है।

भीतर घर में उन्हें स्त्रियों और बच्चों की आवाज सुनाई पड़ रही थी। कानपुर से महालक्ष्मी और राजेश्वरी श्यामनाथ के साथ आ गई थीं। अकेले श्यामनाथ ही नहीं, ये स्त्रियाँ, ये बच्चे, ये सब-के-सब रामनाथ पर अवलंबित थे, आश्रित थे। उनका स्वामित्व धीरे-धीरे जाग रहा था। इस निश्चिय कमजोरी से काम न चलेगा, यह तो जीवित मृत्यु है! उन्हें अन्तिम समय तक लड़ना है, काम करना है।

लड़ना—किससे? काम करना—कौन-सा काम?

न वे अपने विपक्षी को देख सकते थे, और न वे अपना कर्तव्य निश्चित कर पा रहे थे। उनके मन में आ रहा था कि एक बार वे अपने विपक्षी को देख पाते। इन परिस्थितियों के चक्र को चलाने वाले के सामने होकर उसकी इच्छा वे जान पाते—उसके कार्यक्रम को वे समझ पाते! उन पर एक के बाद एक वार हो रहे थे—और वे वार एक अदृश्य स्थान से हो रहे थे, एक अदृश्य शक्ति द्वारा! और ऐसी हालत में उन्हें लड़ना था, साहस के साथ उस अदृश्य का मुकाबला करना था।

उनके अन्दर वाली गुरुता और अहमन्यता करवटें बदल रही थी। सब-कुछ खोकर भी लड़ना है, बिना झुके हुए—अन्त तक! जब तक वे अपने अन्दर से पराजित नहीं होते, तब तक वे विजयी हैं; और अपने अन्दर विजयी होना अथवा पराजित होना, यह उनके वश में था। वे मुसकरा पड़े—पर उनकी उस मुसकराहट में कितनी भयानक करुणा थी!

रामनाथ तिवारी कितनी देर तक इस अर्धचेतन अवस्था में बैठे रहे—इसका उन्हें ज्ञान न था! उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उनके चरण छुए और एकाएक वे चौंक उठे। आँखें खोलकर उन्होंने देखा—सामने उमानाथ खड़ा था।

"तुम, उमा!" रामनाथ ने कहा।

"हाँ, दद्दुआ! मुझे दुःख है कि मैं श्मशान में नहीं पहुँच सका, मेरे गिरफ्तार पुलिस का वारंट है!"

"मझली बहू से मालूम हुआ कि तुम फरार हो! बैठो! कैसे आए?"

उमानाथ रामनाथ के इस भावनाहीन और ठंडे स्वर से घबरा गया, "मैंने सुना दद्दुआ—प्रभा का यह अन्त होगा, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी!"

"प्रभा की बात छोड़ो—वह विगत का मरना बन चुका है! अपनी बात कहो! तुम्हारे खिलाफ भयानक अभियोग है! सुना है कि——

सरकार को ही नहीं, बल्कि हम सब पूंजीपतियों को मिटाने पर तुले हुए हो !"

उमानाथ ने रामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक उमानाथ को देखते रहे, "मिटाना—मिटाना ! यही तुम लोग सीख सके हो—तुम्हारी सारी शिक्षा और सारी संस्कृति तुम्हें केवल इतना सिखा सकी है कि मिटाओ ! लेकिन मिटा वही सकता है जो सबल है !" और रामनाथ हँस पड़े।

उमानाथ अपने पिता से तर्क करने नहीं आया था, उसके पास तर्क करने का समय भी नहीं था।

रामनाथ ने फिर कहा, "बोलो—अब क्या इरादे हैं ? सुना है कि अगर तुम पकड़े गए तो तुम्हें कालेपानी की सजा हो सकती है !"

"जी हाँ !" उमानाथ ने कहा, "इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ !"

"तो मैं सब कुछ ठीक करा दूंगा ! कल मैं तुम्हें साथ लेकर गवर्नर से मिलूँगा—तुम्हारे खिलाफ़ वारंट हट जाएगा ! अपनी ज़मीन-जायदाद संभालो, उमा ! शान्तिपूर्वक रहो !"

"आप मेरा मतलब नहीं समझे ! मैं सरकार से माँफी माँगने नहीं आया हूँ, मैं हिंदुस्तान से बाहर जाना चाहता हूँ !"

उमानाथ ने जो कुछ कहा, रामनाथ थोड़ी देर तक उसे समझने की कोशिश करते रहे, "समझा ! ब्रिटिश सरकार के हाथ से निकलना चाहते हो—देश के बाहर रहकर तुम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ना चाहते हो ! तुम अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरों के गिरोह मे शामिल होकर दुनिया में एक भयानक उथल-पुथल मचाना चाहते हो ! लेकिन इसके लिए मेरे पास आने की क्या ज़रूरत थी ?"

उमानाथ के अन्दर एक प्रकार की निराशा-सी आ गई थी। उसने दबी ज़बान से कहा, "हिंदुस्तान से बाहर जाने के लिए मुझे रुपयों की ज़रूरत है—अधिक नहीं, दस हज़ार से काम चल जाएगा !"

रामनाथ मुसकराए, "हम पूंजीपतियों को मिटाने के लिए तुम हमारा ही रुपया चाहते हो ? कितनी मजेदार बात है और तुम समझते हो मैं स्वय विनष्ट होने के लिए तुम्हें शक्ति प्रदान करूँगा—तुम्हें रुपया दूंगा !" रामनाथ कहते-कहते उठ खड़े हुए, "उमा, जाओ यहाँ से। तुम समाज के सबसे भयानक शत्रु हो—जाओ—मेरे सामने से—जाओ !" रामनाथ का स्वर बहुत प्रखर हो गया था।

उमानाथ चल पड़ा, मर्माहत-सा ! वह कमरे के बाहर निकला और वहाँ उसने देखा कि महालक्ष्मी खड़ी है। महालक्ष्मी ने भर्राए हुए स्वर में कहा, "मेरे साथ आइए !"

उमानाथ चुपचाप महालक्ष्मी के साथ भीतर अपने कमरे में चला गया। उमानाथ को बिठलाकर उसने अपनी अलमारी खोली। अलमारी से उसने अपने

गहनों का बक्स निकाला—और वह बक्स उसने उमानाथ के सामने रख दिया। उसने कहा, "मैंने आपकी और दद्दुआ की बातें सुनीं। मेरे पास कुल दो हजार रुपये हैं—बाकी मेरा गहना है! यह सब आप ले जाइए। जल्दी-से-जल्दी कुशलपूर्वक आप हिंदुस्तान के बाहर चले जाइए—सिर्फ़ एक विनय है—निरापद स्थान में पहुँचकर किसी तरह अपनी कुशलता का संदेश भेज दीजिएगा!" और उमानाथ ने देखा कि महालक्ष्मी उसके चरणों को पकड़े रो रही है।

एकाएक उमानाथ ने उठकर महालक्ष्मी को अपने आलिंगन-पाश में कस लिया, "महालक्ष्मी! तुम स्त्री नहीं हो, देवी हो! लेकिन··· तुम्हारा गहना···"

महालक्ष्मी ने उमानाथ का मुँह बन्द करते हुए कहा, "स्त्री का सबसे बड़ा गहना है उसका सुहाग! मेरा सुहाग अचल रहे—मुझे यह गहना नहीं चाहिए! आप इसे लेकर जल्दी-से जल्दी चले जाइए!"

उमानाथ का लड़का अवधेश बाहर राजेश और ब्रजेश के साथ था। महालक्ष्मी अवधेश को उठाकर ले आई और उसने उसे उमानाथ की गोद में दे दिया, "अपने लड़के को आप अपना आशीर्वाद दे जाइए!"

उमानाथ ने अवधेश को प्यार किया—इसके बाद उसने अपनी स्त्री का आलिंगन किया। उसने कहा, "महालक्ष्मी—मैं जल्दी लौटूँगा, तुम मेरी प्रतीक्षा करना!" और गहने का बक्स लेकर सिर झुकाए हुए वह वहाँ से चला गया।

१०

उमानाथ के जाने के बाद रामनाथ ड्राइंग-रूम में बैठ गए। एक अजीब तरह की कठोरता वे अपने अन्दर अनुभव कर रहे थे। कितनी आसानी के साथ उन्होंने उमानाथ को उस रात के अंधकार में निरवलंब और विवशता की अवस्था में निकाल बाहर किया! रामनाथ के अन्दर से किसी ने कहा, 'तुम मनुष्य नहीं, दानव हो!'

लेकिन रामनाथ की अहंमन्यता पूरी शक्ति के साथ उभर आई थी। हरएक पराजय के बाद उनकी अहंमन्यता और भी अधिक भयानक कटुता लेकर फिर से लड़ने को तैयार हो जाती थी। 'अन्त तक लड़ना है—बिना झुके हुए!' रामनाथ ने मन-ही-मन कहा, 'पराजय—नहीं, मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता!'

उस समय रात के दस बज रहे थे। उन्हें सुनाई पड़ा, "दद्दुआ!"

रामनाथ ने चौंककर पीछे देखा, "मझली बहू! क्या है?"

"कुछ खा लीजिए—कल से आपने कुछ खाया नहीं है!"

प्रभानाथ की मृत्यु की खबर पाने के बाद से अभी तक रामनाथ के मुख में अन्न का एक दाना न गया था। उन्हें भूख भी नहीं मालूम हो रही थी। उन्होंने कहा, "इस वक्त भूख नहीं है, बहू! जाओ, तुम सब लोग खा लो—मैं इस समय न खाऊँगा!"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिए—इस तरह कैसे काम चलेगा !"

"कह दिया है, जाओ—इस वक्त भूख नहीं है।" रामनाथ ने कड़े स्वर में उत्तर दिया।

महालक्ष्मी चली गई। महालक्ष्मी के चले जाने के बाद रामनाथ को ऐसा लगा, मानो उनमें कुछ आवश्यकता से अधिक कटुता आ गई है। वे उठे और बरामदे में निकल आए। चारों ओर गहरा अन्धकार छाया था।

थोड़ी देर तक वे उस अंधकार में खड़े रहे। वे कमरे में चलने को घूम ही रहे थे कि उन्होंने बँगले में एक कार आती हुई देखी। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'इतनी रात में कौन हो सकता है ?'

वे कमरे में बैठकर आने वाले की प्रतीक्षा करने लगे। और उन्होंने देखा कि आने वाला उनका बड़ा लड़का दयानाथ है।

दयानाथ को देखते ही रामनाथ की भृकुटियों पर बल पड़ गए। उन्होंने दयानाथ को देखते ही कहा, "तुम !"

दयानाथ रामनाथ के चरण छूता-छूता रुक गया, "जी हाँ !"

रामनाथ की भृकुटियों के बल नहीं गए। उन्होंने कुछ चुप रहकर कहा, "तुम्हें यहाँ, अपने घर में देखकर ताज्जुब हुआ ! शायद कुल पर जो गहरा धक्का लगा है, उसके दुःख में तुम अपने शब्दों को भूल गए !"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "जी नहीं ! मैं भूला कुछ नहीं, केवल मैंने अपनी गलती अनुभव कर ली है !"

"कैसी गलती ?" रामनाथ ने पूछा।

"कि मैंने कांग्रेस में सम्मिलित होकर गलती की ! मैं कांग्रेस छोड़ रहा हूँ !"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "दया ! तुम कांग्रेस को छोड़कर और भी बड़ी गलती कर रहे हो। मुझे सब कुछ मालूम है। तुम चुनाव में हारे—और चुनाव में हार जाने पर तुममें निराशा पैदा हो गई। तुम कायर की तरह वहाँ से भाग रहे हो। तुम बाहर से पराजित नहीं हुए—आज चुनाव में हारे हो, कल चुनाव में जीत भी सकते हो, वह सब तो परिस्थितियों पर निर्भर था—तुम पराजित हुए हो अपने ही अन्दर से ! मुझे इस बात का दुःख है।"

दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके पिता ने जो बात कही थी, उसमें सत्य है, यह उसने अनुभव किया। यह मन-ही-मन सोच रहा था—क्या उसने उन्नाव लौटकर गलती की ?

रामनाथ ने कुछ रुककर फिर कहा "तुमने मेरे यहाँ लौटकर गलती की। जीवन का क्रम आगे बढ़ना है—पीछे लौटना असंभव है ! मेरे यहाँ तुम्हें स्थान नहीं है, दया—तुम समझदार हो, मेरी बात समझ ही गए होगे !"

दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था। उसने कहा, "आप ठीक कहते हैं, मैंने अपने प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है—आपने मेरी कमजोरी बतलाकर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया।" और यह कहकर उसने अपने पिता के चरण छुए।

रामनाथ बैठे रहे। दयानाथ ने फिर कहा, "मेरी पत्नी और बच्चे—वे आ गए हैं। उनको लेकर मैं अभी जा रहा हूँ !"

"अपनी पत्नी और बच्चों को यहाँ छोड़ सकते हो—केवल तुम त्याज्य हो, तुम्हारी पत्नी और बच्चे नहीं !" रामनाथ ने कहा।

दयानाथ मुसकराया, "पीछे लौटना असंभव है दद्दुआ—आपने ही अभी बतलाया है ! आपने सारे कुल को मना कर दिया कि मुझसे कोई संपर्क न रखा जाय—क्योंकि सारे कुल पर आपका अधिकार था; इस कुल का स्वामी होने के कारण ! और मैं समझता हूँ, कि अपनी पत्नी और बच्चों पर मेरा अधिकार है! अगर मैं आपके लिए त्याज्य हूँ, तो आप भी मेरे लिए त्याज्य हैं !" और दयानाथ तेज़ी के साथ कमरे से बाहर चला गया।

एक बार रामनाथ के मन में आया कि वे दयानाथ को रोकें—पर उनकी अहम्मन्यता ने उन पर विजय पाई। राजेश्वरी और उनके बच्चे बिना रामनाथ से मिले दयानाथ के साथ चले गए। रामनाथ ने जाती हुई कार का शब्द सुना—उन्होंने राजेश्वरी और उसके बच्चों की आवाज़ें भी सुनीं। पर वे अपने आसन से नहीं हिले। वे समझते थे कि राजेश्वरी और राजेश-बजेश उनसे मिलने, उनसे विदा लेने आएँगे।

और दयानाथ के जाने के साथ रामनाथ की चेतना एकाएक जाग उठी।

दयानाथ ने रामनाथ के कुल की बात चलाई थी—और आज रामनाथ का कुल उजड़ गया था। उनके तीनों लड़के उनसे बिछुड़ गए थे—शायद हमेशा के लिए। सारा कुल नष्ट हो गया, रामनाथ नितान्त अकेले रह गए !

और उनके अन्दर से किसी ने कहा, 'यह सब तुमने किया—तुम्हारी अहम्मन्यता ने तुम कुल-घातक हो !'

रामनाथ बल लगाकर खड़े हो गए। उन्होंने ज़रा ज़ोर से कहा, 'मैं कुल-घातक हूँ—झूठ ! एकदम झूठ !' और पागल की तरह वे कमरे में टहलने लगे !

रामनाथ विक्षिप्तावस्था में टहल रहे थे और अपने से कह रहे थे, 'सब कुछ समाप्त हो गया—कोई नहीं—सब गए। अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो, रामनाथ ! प्रभा को मृत्यु से रोका जा सकता था—अगर जेल में जाकर तुम उससे न मिले होते ! उमा को रुपये देकर तुम बचा सकते थे—लेकिन तुमने उसे अपकार और निराशा में ढकेलकर हत्या के लिए उसे अपना शत्रु बना लिया। और दया—वह तुम्हारे पास आया, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ! लेकिन तुमने उसे निकाल बाहर किया ! अपने ही हाथों तुमने अपना विनाश किया ! तुम्हारी सम्पन्नता—तुम्हारी अहम्मन्यता—यह सब निर्माण नहीं कर सके—इन्होंने भयानक विनाश किया है—तुम अधम हो—तुम पापी हो !'

रामनाथ का स्वर तेज होता गया, 'तुम्हारा छोटा भाई—तुम पर विश्वास करने वाला, तुम्हारा भरोसा करने वाला, तुम्हें देवता की तरह पूजने वाला पागल हो गया है ! अब क्या करोगे, किससे बोलोगे ? किस पर शासन

सब गए—हमेशा के लिए गए। दुनिया में बिना तुम्हारी सहायता के लोगों का काम चल सकता है। तुम समर्थ नहीं हो, तुम जीवन में ते नहीं, तुम अपने जीवन में भयानक रूप से हारे हो।'

रामनाथ को सुनाई पड़ा, "ददुआ!"

रामनाथ ने देखा, महालक्ष्मी दरवाजेपर खड़ी थी और कह रही थी, "शांत ोइए, ददुआ!—थोड़ा-सा खा लीजिए चलकर!"

लेकिन रामनाथ ने महालक्ष्मी को कोई उत्तर नहीं दिया, वे अपने से ही कह रहे थे, 'तुम पापी हो, तुम हत्यारे हो, तुम कुलघातक हो!" और वे कुरसी पर बैठ गए।

महालक्ष्मी के पास अवधेश खड़ा था। महालक्ष्मी ने अवधेश से कहा, 'बेटा, अपने बाबा को लिवा लाओ जाकर, खाना खाने के लिए।"

अवधेश जाकर रामनाथ के पास खड़ा हो गया। उसने तुतलाते हुए कहा, "बाबा—बा···बा···खाना···!"

रामनाथ ने अवधेश को थोड़ी देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखा और फिर धीरे-धीरे उनके हाथ बच्चे की तरफ बढ़े। उन्होंने बच्चे को गोद में ले लिया और वे खड़े हो गए।

और उस समय उन्हें अनुभव हुआ कि दूसरों को उनके सहारे की जरूरत नहीं रही। अब उनको उस बच्चे के सहारे की जरूरत है! उस बच्चे को छाती से चिपटाते हुए उन्होंने कहा, "बेटा—बेटा, इस बूढ़े का साथ मत छोड़ना!"